‘जगमग दीपज्योति’ में अभिव्यक्त सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना सन् (2004 से 2014 तक)

मणिपाल विश्वविद्यालय, जयपुर की पीएच. डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

प्रस्तुतकर्ता

श्रवण कुमार खोड़ा

निर्देशिका

प्रो. (डॉ.) कुसुम शर्मा

भाषा विभाग (हिन्दी)

MANIPAL UNIVERSITY JAIPUR

INSPIRED BY LIFE

भाषा विभाग (हिन्दी)

मणिपाल विश्वविद्यालय, जयपुर

जयपुर-303007

राजस्थान, भारत

अगस्त, 2018

CANDIDATE'S DECLARATION

I hereby certify that work which is being presented in the thesis entitled **''जगमग दीपज्योति में अभिव्यक्त सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना सन् (2004 से 2014 तक)''** in partial fulfilment of the requirements for the award of the Degree of Doctor of Philosophy submitted to the Department of **Language (Hindi),** of the Manipal University Jaipur, Jaipur is an authentic record of my own work carried out during the period from **2014** to **2018** under the supervision of **Prof. (Dr.) Kusum Sharma,** Department of Journalism & Mass Communication (Ex-Head, Depatment of Langauges), Manipal University Jaipur.

The matter presented in the dissertation has not been submitted by me for the award of any other degree of this or any other Institute.

Date:

Place: Jaipur

Shravan Kumar Khoda
(Research Scholar)

CERTIFICATE

This is to certify that the above statement made by the candidate is correct to the best of my knowledge and belief.

Date:

Place: Jaipur

Prof. (Dr.) Kusum Sharma
(Supervisor)

प्राक्कथन

जब व्यक्ति कुछ विचार या विमर्श करता है तो उसके मन और मस्तिष्क में बहुत सारे भाव उत्पन्न होने लगते हैं। उन भावों को रूप देने के लिए वह कभी वाणी, कभी लेखन का प्रयोग करता है। इस साहित्य लेखन में भावों और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए कथा–साहित्य से बेहतर कुछ नहीं सूझता। आज आधुनिक समय में उपन्यास, कहानी, लेख, कविता ही ऐसी विधा है जिसमें कोई भी लेखक अपने भावों एवं विचारों को पूरी आत्मीयता एवं स्वतंत्रता के साथ अभिव्यक्त कर सकता है।

यह कहना अनुचित न होगा कि आज के समयाभाव वाले जटिलतापूर्ण तथा उदासीन जीवन में व्यक्ति और समाज की समस्याओं की प्रस्तुति एवं सुख–दुख का उद्घाटन छोटी–छोटी कहानियाँ, कविताएँ, लेख आदि कर रहे है। आज देश की अधिकांश भाषाओं में कहानी, लेख, कविता आदि पत्र–पत्रिकाओं में छपना, उसकी बहुलता एवं लोकप्रियता इस बात का प्रमाण है कि कहानी, लेख, कविता के पाठक वर्ग की एक बड़ी संख्या है जो इनका अध्ययन कर इस प्रकार के साहित्य का प्रभाव भी ग्रहण कर रहे हैं।

हिन्दी भाषी समाज की साहित्यक मानसिकता को गढ़ने और हिन्दी साहित्य की समृद्धि में हिन्दी लघु पत्रिकाओं का योगदान और उनकी अनवरत संघर्ष यात्रा महत्त्वपूर्ण है। स्वतंत्रता के पश्चात सामाजिक और सांस्कृतिक समस्याओं को केन्द्र में रखकर अनेक महत्त्वपूर्ण पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ, जिनमें कुछ पत्रिकाएँ किसी कारणवश बन्द भी हो गई मगर इन पत्रिकाओं में अपनी एक अलग पहचान बनाते हुए '**जगमग दीपज्योति पत्रिका**' सन् 1985 से लगातार बिना किसी रुकावट के **सुमति कुमार जैन जी** के सम्पादन में प्रकाशित होती रही है तथा अपनी रचनाओं से समाज में फैली भ्रांतियों, कुरीतियों के प्रति सामान्य जन को एक ओर आगाह कर रही है तो दूसरी ओर इन्हीं विषयों पर आधारित लेखों का वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत कर इन भ्रान्तियों को तोड़ने का प्रयास कर रही है। इस पत्रिका में अनेक साहित्यकार जो उत्कृष्ट कोटि के विद्वान है उनके द्वारा लिखे गये लेख, कहानी, कविता आदि बहुत प्रभावशाली हैं जिनमें उन्होनें समाज में होने वाली घटनाओं को केन्द्र में रखकर अपने विचार प्रस्तुत किये है। जब मैंने उनकी इन रचनाओं का अध्ययन किया और उनमे चित्रित घटनाओं की समाज से तुलना की तो मुझे लगा कि वास्तव में समाज में कुछ ऐसी घटनाएँ है जो हमारे समाज को अव्यवस्थित कर रही है और हमारी संस्कृति को भटका रही है। तब उनके द्वारा बताए गए कारण से मुझे समझ में आया कि क्यों हमारा समाज अव्यवस्थित हो रहा है और क्यों हमारी संस्कृति दिन–प्रतिदिन गलत रास्ते पर चल रही है शायद यही वजह रही है कि मैंने अपने विचारों को अधिक विस्तार देने के

लिए अपना रुख इस पत्रिका की ओर किया तथा इस पर शोध कार्य करने का विचार कर परम आदरणीय **प्रो. (डॉ.) कुसुम शर्मा** के पास गया तथा इस पर चर्चा करने के पश्चात अन्तिम रूप से इस पर शोध कार्य करने का निर्णय लिया।

विषय चयन के सन्दर्भ में यह उल्लेख करना आवश्यक है कि शोध के दौरान सबसे बड़ी समस्या सामग्री संकलन थी। **'जगमग दीपज्योति'** निश्चित ही बड़ी पत्रिका है, परन्तु शोध प्रक्रिया का आरम्भिक चरण अर्थात जब मैंने आधार सामग्री के रूप में **सुमति कुमार जैन जी** द्वारा संपादित पत्रिका **'जगमग दीपज्योति'** को तलाशना आरम्भ किया तो बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अन्त में कटिन प्रयासों के पश्चात सफलता प्राप्त हुई और मुझे यह पत्रिका इसके प्रकाशन स्थान **दीपज्योति ग्रुप ऑफ पब्लिकेशन, अलवर** से उपलब्ध हो पायी मगर वहाँ से भी इसके 103 अंक ही प्राप्त हो सके। विवेचन–विश्लेषण के क्रम में कहानी, कविता, लेख आदि के चयन में कितनी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ छूट गई और मेरे अल्पज्ञता के कारण कितने अल्प महत्त्व के लेखकों की रचनाएँ स्थान पा गई हैं, कहना कठिन कार्य है परन्तु मेरा प्रयत्न यही रहा है कि पत्रिका में अभिव्यक्त समस्त रचनाओं को उनके प्रभाव एवं वैशिष्ट्य के आधार पर चुना जाये। यद्यपि पत्रिका की अधिकांश हिन्दी रचनाओं को संक्षेप में देखने एवं समझने का प्रयास किया गया है।

विषय-विभाजन :—व्यवस्थित अध्ययन एवं शोध–कार्य की सुविधा के लिए प्रस्तुत शोध को छः अध्यायों में विभक्त किया गया है।

प्रथम अध्याय :- 'सुमति कुमार जैन जी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व' —इस अध्याय में जैन जी के जन्म, माता–पिता, पारिवारिक परिवेश एवं बचपन, वैवाहिक जीवन व संतान, स्वभाव एवं रुचि, जीविकोपार्जन के स्त्रोत, साहित्य लेखन की प्रेरणा एवं प्रारम्भ, व्यक्तित्व के आधारभूत मूल्य, साहित्यक योगदान के साथ उन्हें प्राप्त राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कारों की भी जानकारी दी गई है। इस प्रकार प्रस्तुत अध्याय में सुमति कुमार जैन जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय :- 'समाज एवं संस्कृति की उत्पत्ति, अर्थ एवं परिभाषा' के अन्तर्गत समाज का अर्थ स्पष्ट करते हुए समाज की उत्पत्ति एवं परिभाषाओं का चित्रण किया गया साथ ही संस्कृति का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसकी उत्पत्ति एवं परिभाषाओं को परिभाषित किया गया है।

तृतीय अध्याय :- 'जगमग दीपज्योति में अभिव्यक्त सामाजिक चेतना' में चेतना का अर्थ स्पष्ट करते हुए चेतना की परिभाषा एवं चेतना के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है तथा **'जगमग दीपज्योति'** पत्रिका में चित्रित विविध विधाओं में अभिव्यक्त सामाजिक

समस्याएँ यथा–नारी से सम्बन्धित, पारिवारिक, निम्न वर्ग, युवा वर्ग, दहेज प्रथा, पर्यावरण प्रदूषण, जातिगत भेदभाव, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, जीव हत्या, हिन्दी भाषा का गिरता स्तर आदि सभी समस्याओं पर साहित्यकारों द्वारा सुझाये गये विचारों का अध्ययन करते हुए उनके द्वारा बताए गए कारण एवं निवारण पर प्रकाश डालकर समाज में चेतना जागृत करने का प्रयास किया है।

चतुर्थ अध्याय :- 'जगमग दीपज्योति में अभिव्यक्त सांस्कृतिक चेतना' में सांस्कृतिक चेतना को परिभाषित किया गया है साथ ही पत्रिका में चित्रित विविध विधाओं में अभिव्यक्त सांस्कृतिक समस्याएँ जैसे–लिव–इन–रिलेशनशिप, समाप्त होते संस्कार, मीडिया के माध्यम से विकसित हो रही अश्लीलता, बदलती संस्कृति का प्रभाव आदि सभी प्रकार की सांस्कृतिक समस्याओं पर विभिन्न विद्वानों, साहित्यकारों, संतो, मुनियों के द्वारा सुझाये गये विचारों एवं उपदेशों का अध्ययन कर उनके द्वारा बताए गए कारण एवं निवारण पर प्रकाश डालकर पाठक वर्ग में समाज एवं संस्कृति के प्रति चेतना जागृत करने का प्रयास किया गया है। ये सभी समस्याएँ पत्रिका में साहित्यकारों द्वारा अपनी रचनाओं में प्रकाशित की गई है जिनका विश्लेषण–संश्लेषण समस्याओं के रूप में मैने अपने शोध में किया है।

पंचम अध्याय :- 'मेरी नजर में अभिव्यक्त पाठकों की प्रतिक्रियाएँ' में पत्रिका के विषय में विभिन्न पाठकों के विचारों पर प्रकाश डाला गया है तथा उनके विचारों के माध्यम से वर्तमान समय में पत्रिका की उपयोगिता को सिद्ध करने का प्रयास किया गया है और बताया है कि आज यह पत्रिका किस प्रकार से लोगों में सामाजिक व सांस्कृतिक चेतना जागृत कर अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे रही है।

षष्ठम् अध्याय :–शोध प्रबन्ध के अन्तिम भाग उपसंहार में शोध कार्य के निष्कर्षों को संक्षेप में प्रस्तुत करते हुए पत्रिका में अभिव्यक्त विभिन्न सामाजिक व सांस्कृतिक समस्याओं के माध्यम से भारतीय समाज व संस्कृति पर पड़ने वाले सकारात्मक व नकारात्मक प्रभावों को बताया गया है तथा उन समस्याओं के प्रति भारतीय समाज को जागृत करने का प्रयास करते हुए, उन समस्याओं के निराकरण के उपयों पर भी प्रकाश डाला गया है जो प्रकाशित घटनाओं में अभिव्यक्त किये गये है।

अन्त में ग्रन्थ सूची के अन्तर्गत सर्वप्रथम आधार ग्रन्थ के रूप में **'जगमग दीपज्योति पत्रिका'** के उन अंकों की सूची प्रस्तुत की गयी है जिनकी कहानियों, कविताओं, लेखों को विस्तार से विवेचन–विश्लेषण के लिए चुना गया है। तत्पश्चात सहायक ग्रन्थ की सूची प्रस्तुत की गयी है।

प्रस्तुत शोधकार्य मैंने अपनी आदरणीया मार्गदर्शिका **मणिपाल विश्वविद्यालय, जयपुर** की **प्रो. (डॉ.) कुसुम शर्मा** के निर्देशन एवं परामर्श में पूर्ण किया। जिन्होंने विषयचयन से लेकर समग्र शोध कार्य की पूर्णता तक विषय को गहराई से समझने की प्रेरणा दी तथा जब भी सामाजिक जिम्मेदारियों में मैं इस विषय से दिशाहिन हो गया तब न केवल मार्गदर्शिका के रूप में अपितु आत्मीयजन बन मुझे फिर सक्रिय शोधार्थी बनने का होसला दिया। मैं बहुत खुशनसीब हूँ कि मुझे उनके जैसी उदार एवं प्रतिभाशाली व्यक्तित्व वाली निर्देशिका मिली, जिनकी छत्र–छाया में मैं अपने शोध कार्य को भली–भांति पूर्ण कर सका। कभी उन्होंने मुझे अपनी व्यस्तता और कमी का एहसास नहीं होने दिया और एक अभिभावक की तरह मेरा मार्ग दर्शन किया। मैं उनके स्नेह और निर्देशन का सदा आभारी रहूँगा।

इस शोध–प्रबन्ध का एक लम्बा समय रहा। इन वर्षों में कई लोगों का प्रत्यक्ष और परोक्ष सहयोग मुझे मिलता रहा उन सभी का मैं हृदय से आभार ज्ञापन करता हूँ। जिनके स्नेह और आशीर्वाद से ही यह कार्य संपन्न हुआ।

जिनके बलबूते पर मैं यहाँ पहुँच पाया उन माता–पिता से कैसे उऋण हो पाऊँगा। स्वयं कड़ी धूप में परिश्रम कर मुझे छाँव में रखकर हमेशा मुझे शिक्षा के लिए उकसाने वाले मेरे पूज्य माताजी श्रीमती तीजा देवी एवं पिताजी श्री बाबू लाल खोड़ा है साथ ही संघर्षमयी जीवन में हमेशा मेरी डूबती हुई जीवन कश्ती को बचाने वाले मेरे दोनों बड़े भाई रामावतार एवं रामस्वरूप और भाभियाँ संतोष एवं कलावती के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन कर आशीर्वाद की याचना करता हूँ उनके प्रति आभार के लिए मेरे पास शब्द नहीं है। अन्त में विशेष महत्त्व मेरी धर्म पत्नी जीवन की भाग्यरेखा समान दीक्षा मीणा जो कि मुझे हमेशा धीरज बंधाती रही और मुझे आगे बढ़ने में प्रेरक बनी।

मुझे हमेशा मेरे मित्रों एवं रिश्तेदारों ने प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग दिया उनका मैं आभार व्यक्त करना चाहूँगा। इनमे सर्वप्रथम मेरे चाचा–चाची मन्नी देवी एवं लाल चन्द जी, सास–ससुर रंजना देवी एवं महादेव जी, साथ ही मेरी सहपाठी प्रियंका यादव और आशा प्रजापत है। इसके अतरिक्त मुझे जिन मित्रों एवं रिश्तेदारों ने प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग दिया है उनका भी मैं तह दिल से आभार व्यक्त करता हूँ।

यह शोध प्रबंध मेरा पहला प्रयास है। इसमे यत्र–तत्र त्रुटियों का होना अवश्य संभावी है। मैं उसके लिए क्षमापार्थी हूँ।

श्रवण कुमार खोड़ा
शोधार्थी

अनुक्रमणिका

विवरण		पृष्ठ संख्या
प्राक्कथन		**i-iv**
प्रथम अध्यायः— सुमति कुमार जैन जी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व		**1—18**
1.1	व्यक्तित्व	1
1.2	कृतित्व	8
1.3	शोध समस्या	12
1.4	शोध के उद्देश्य	13
1.5	शोध विधि	14
1.6	संबंधित साहित्य का अध्ययन	16
द्वितीय अध्यायः— समाज एवं संस्कृति : उत्पत्ति, अर्थ एवं परिभाषा		**19—37**
2.1	समाज की उत्पत्ति एवं अर्थ	19
2.2	समाज की परिभाषा	20
	2.2.1 भारतीय विद्वानों की परिभाषाएँ	20
	2.2.2 पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाएँ	22
2.3	समाज का स्वरूप एवं विकास	24
2.4	**संस्कृति : उत्पत्ति, अर्थ एवं परिभाषा**	**26**
	2.4.1 संस्कृति की उत्पत्ति एवं अर्थ	26
	2.4.2 संस्कृति की परिभाषा	28
	2.4.2.1 भारतीय विद्वानों की परिभाषाएँ	28
	2.4.2.2 पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाएँ	30
	2.4.3 संस्कृति का स्वरूप एवं विकास	33

तृतीय अध्यायः– 'जगमग दीपज्योति' में अभिव्यक्त सामाजिक चेतना 38–209

3.1 चेतना से अभिप्राय 38

3.2 सामाजिक चेतना : अर्थ एवं परिभाषा 39

3.3 सामाजिक चेतना का स्वरूप 41

3.4 'जगमग दीपज्योति' में चित्रित विविध विधाओं में अभिव्यक्त सामाजिक समस्याएँ, सन् (2004 से 2014 तक) 43

3.4.1 नारी से सम्बन्धित समस्याएँ 44

3.4.1.1 नारी पर हो रहा अत्याचार 44

3.4.1.2 नारी शिक्षा 57

3.4.1.3 बलात्कार 59

3.4.1.4 भ्रूण हत्या 64

3.4.1.5 लिंग–भेद 87

3.4.2 पारिवारिक समस्याएँ 94

3.4.2.1 टूटते व बिखरते परिवार 94

3.4.2.2 वृद्धावस्था 99

3.4.3 निम्न वर्ग के परिवारों की समस्याएँ 114

3.4.3.1 गरीबी 115

3.4.3.2 बाल–मजदूरी 120

3.4.3.3 भीख मांगना 128

3.4.4 युवाओं से सम्बन्धित समस्याएँ 131

3.4.4.1 पथ–भ्रष्ट होते युवा 131

3.4.4.2 रुचि के विपरीत शिक्षा ग्रहण करने से मानसिक तनाव 140

3.4.4.3 मद्यपान 143

3.4.5 दहेज प्रथा 149

3.4.6 पर्यावरण प्रदूषण 157

3.4.7 जातिगत भेदभाव 167

3.4.8 आतंकवाद 171

3.4.9 भ्रष्टाचार 175

3.4.10 जीव हत्या 185

3.4.11 हिन्दी भाषा का गिरता स्तर 190

चतुर्थ अध्यायः– 'जगमग दीपज्योति' में अभिव्यक्त सांस्कृतिक चेतना 210–265

4.1 सांस्कृतिक चेतना से अभिप्राय 210

4.2 'जगमग दीपज्योति' में चित्रित विविध विधाओं में अभिव्यक्त सांस्कृतिक समस्याएँ, सन् (2004 से 2014 तक) 212

4.2.1 लिव–इन–रिलेशनशिप 212

4.2.2 समाप्त होते संस्कार 225

4.2.3 मीडिया के माध्यम से विकसित हो रही अश्लीलता 239

4.2.4 बदलती संस्कृति का प्रभाव 253

पंचम अध्याय :– मेरी नजर में अभिव्यक्त पाठकों की प्रतिक्रियाएँ 266–284

षष्ठम् अध्यायः– उपसंहार 285–306

प्रकाशित पत्रों की सूची 307–310

परिशिष्ट : सन्दर्भ ग्रन्थ सूची 311–330

1. आधार ग्रन्थ
2. सहायक ग्रन्थ (हिन्दी)
3. सहायक ग्रन्थ (अंग्रेजी)
4. पत्र–समाचार पत्र
5. वेबसाइट

प्रथम अध्याय

सुमति कुमार जैन जी :
व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रथम अध्याय

1. सुमति कुमार जैन जी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

1.1 व्यक्तित्व

1.2 कृतित्व

1.3 शोध समस्या

1.4 शोध के उद्देश्य

1.5 शोध विधि

1.6 संबंधित साहित्य का अध्ययन

प्रथम अध्याय

सुमति कुमार जैन जी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

1.1 व्यक्तित्व

1.1.1 जन्म एवं माता–पिता :–

श्री सुमतिकुमार जैन का जन्म 25 जून 1943 में राजस्थान के सिंहद्वार, अलवर के बहादुरपुर ग्राम में हुआ। आपकी माता स्व. श्रीमती कमलेश देवी जी एवं पिता स्व. श्री ऋषभकुमार जी पालावत है।

1.1.2 पारिवारिक परिवेश एवं बचपन :–

आपके दो लघु भ्राता श्री सुरेश चन्द एवं श्री सुदर्शन कुमार जैन है। तीन लघु बहनें श्रीमती प्रेम ललवानी, श्रीमती सरोज श्रीमाला एवं श्रीमती शशि रांका हैं। आपका परिवार मध्यम वर्गीय एवं धार्मिक परिप्रेक्ष्य से जुड़ा हुआ था। प्रारम्भ से ही साधु–संतों के दर्शनार्थ जाने में आपकी रूचि बनीं। आपके पिताश्री का कार्यक्षेत्र प्रारम्भ में कलकत्ता में रहा, अतएव बचपन दादा–दादी स्व. श्री रामचन्द्र जी पालावत एवं श्रीमती गुलाबदेवी के साथ ही बना रहा। आपने अलवर में ही अपनी शिक्षा एवं उच्च शिक्षा, विज्ञान विषय से की। बाल्यकाल से ही आपने सृजन चेतना का विशेष प्रभाव रहा एवं कुछ कर दिखाने की आपकी प्रवृत्ति रही। अध्ययन काल में ही आपमें शैक्षिक एवं सह शैक्षिक प्रवृत्तियों के प्रति विशेष रूचि रही। आपने अध्ययन करते समय ही जीविकोपार्जन करने के लिए सफल प्रयास भी किए। आपके पिताश्री का अलवर में स्थायी निवास होने पर आप भी उनके साथ कपड़े के व्यवसाय में अपनी उच्च शिक्षा का अध्ययन बीच में ही छोड़कर संलग्न हो गये। आपने जिला व राज्य स्तर पर भाषण प्रतियोगिता एवं निबन्ध प्रतियोगिता में कई बार प्रथम स्थान प्राप्त किया तथा विशिष्ट पुरुस्कारों से सम्मानित हुए।

1.1.3 वैवाहिक जीवन व संतान :–

30 जनवरी 1963 में स्व. श्री ईश्वरचन्द जी एवं स्व. श्रीमती उमरावदेवी भूरा की ज्येष्ठ संतान उषाजी से आपका विवाह सम्पन्न हुआ। वर्ष 1964 में आपकी पुत्री 'ज्योति' का जन्म हुआ। वर्ष 1966 में आपको पुत्ररत्न 'दीपक' की प्राप्ति हुई एवं वर्ष 1970 में आपके जुड़वाँ दो बेटियाँ क्रमश 'दीप्ति' एवं 'प्रीति' का जन्म हुआ।

1.1.4 स्वभाव एवं रूचि :–

आपकी रूचि विशेष रूप से वसुधैव कुटुम्बकम की भावना से निहित रही। आपका दृष्टिकोण आदर्शोंन्मुखी अध्यायों से जुड़ा रहा। आप धर्मसाधना पथ के पथिक बने तथा समाज सेवा आपका पाथेय रहा। आपका मानना रहा कि सत्य का आचरण करने वाले दिव्य ज्ञान की अजस्र धारा प्रवाहित करते हैं। गुणीजनों के सम्मान एवं

अभिनन्दन से गुणवान व्यक्ति में धर्ममयी कार्य करने का उल्लास पैदा होता है। गुणियों के गुणगान से व्यक्ति के जीवन में गुणों की अभिवृद्धि होती है। प्रज्ञावान ज्ञानी व्यक्ति अपने जीवन को ऊर्जावान बनाता हुआ समाज को आत्मबोधी प्रेम का आलोक देता है। श्री जैन प्रज्ञापथ के पथिक बने और मानव धर्म ही उनका पाथेय बना। आपने दीपक की भाँति स्वयं जलकर समाज के असहाय व्यक्तियों को सेवा और प्रेम का आलोक प्रदान किया। सुवासित चंदन की तरह अपने धर्ममयी ज्ञान एवं कर्मों की सुगन्ध समाज में फैलायी। इनका व्यक्तित्व 5 वटों रूपी गुणों की पंचवटी बना। 1. शीलवट, 2. तिलवट, 3. तरुवट, 4. करुवट, 5. क्षात्र वट।

1. **शीलवट** – शीलवट के अनुसार इनके व्यक्तित्व में शीलता, शालीनता, नम्रता, समता एवं क्षमता का अद्‌भुत योग है।
2. **तिलवट** – तिल की तरह पिसकर जैसे तेल प्राप्त होता है ऐसे ही ये स्नेह प्रदान करते हैं। स्नेह करना एवं प्रेम की प्रतिमूर्ति है।
3. **तरुवट** – जैसे पेड़ की छाया सभी प्राणियों को शान्ति एवं शीतलता प्रदान करती हैं ये भी अपने पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक प्राकल्पों से सत्यं, शिवं, सुन्दरमं का मार्ग प्रशस्त करते हैं।
4. **करुवट** – इन्होंने भौतिकवादी भोगी जीवन से आध्यात्मवादी योगी जीवन की ओर भी करवट ली।
5. **क्षात्रवट** – किसी दिव्य उद्देश्य की प्राप्ति हेतु शास्त्र और शस्त्र के द्वारा क्षत्रिय की तरह जूझते रहते हैं। इन्होंने दिव्य व्यक्तित्व के विराट, विशद् आत्मस्वरूप की आत्मबोधी उर्ध्व–उर्मी से महाचेतना का दीप जलाया।

1.1.5 जीविकोपार्जन के स्त्रोत :–

कपड़े के व्यवसाय से कुछ वर्षों तक स्वयं को एवं परिवार को खुशहाल बनाया किन्तु अधिक समय तक इस कार्य में सफलता न मिलने से इन्होंने लम्बे अर्से तक विभिन्न–विभिन्न व्यवसाय किए, पर साहित्य लेखन आपके मन में हर दम हिलोरे लेता रहा और आपके मन में विचार आया कि एक ऐसी पत्रिका को प्रारम्भ किया जाए जो जन–जीवन के लिए प्रेरणा–प्रदीप बन जाए, प्रकाश का दीया बन ज्योत से ज्योत प्रज्ज्वलित कर दे और इसके माध्यम से लाखों गिरते हुए को संभाला जा सके, टूटे दिलों को हिम्मत दी जा सके, सोतों को जगाया जा सके, पापियों को पावन बनाया जा सके, बिखरते हुओं को जोड़ा जा सके, इसके लिए स्वयं अपनी लेखनी से सहकार हों साथ ही औरों को जोड़कर अपने भावों को प्रकट कर सकें।

1.1.6 साहित्य लेखन की प्रेरणा एवं प्रारम्भ :–

श्री सुमतिकुमार जैन का साहित्य एवं सांस्कृतिक क्षेत्र भी प्रारम्भ से ही समृद्ध रहा। इनका गद्यात्मक लेख के साथ–साथ पद्यात्मक एवं संगीतमय गद्य लेखन विलक्षण है। जिसको पढ़कर और सुनकर सभी मंत्रमुग्ध हो जाते है। आपकी भाषा शैली

प्रभावोत्पादक है। आपका लेखन सामाजिक सरोकार रखता है। आपका मानना रहा कि 'व्यक्तित्व को हमें कृतित्व में अपनाना होगा ताकि हमारा व्यक्तित्व विराट बन सके।

गुरुजनों, साधु–साध्वियों से इस विषय पर चर्चा की, उनका आशीर्वाद लिया एवं श्रीमती उषाजी से विचार विमर्श कर यह निश्चय किया गया कि हम एक पत्रिका को प्रारम्भ करेंगे, दिमाग में यह भी बात थी कि पत्र–पत्रिकाओं से विशेष आर्थिक लाभ नहीं होता है और एक अवधि के बाद आर्थिक परिस्थितियोवश उसे बन्द करना पड़ता है पर मन में तो साहित्य लेखन पूरे वर्चस्व से जमा हुआ था। आखिर वर्ष 1985 में दीपावली के अवसर पर '**दीपज्योति**' के नाम से प्रथम अंक की प्रस्तुति हुई और प्रकाशन विभाग भारत सरकार से रजिस्ट्रेशन व अन्य व्यवस्थाओं को कराने के बाद वर्ष 1986 से '**जगमग दीपज्योति**' के नाम से पत्रिका का हर माह नियमित अंक प्रकाशित होता गया और आज यह पत्रिका 33 वें वर्ष में चल रही है। पत्रिका का नाम तो '**दीपज्योति**' ही रखना चाहते थे किन्तु सरकार द्वारा यह शीर्षक स्वीकृत न होने के कारण इसे '**जगमग दीपज्योति**'नाम दिया गया। यह पत्रिका सांस्कृतिक, सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक सभी विषयों का समावेश कर प्रकाशित हो रही है।

आपके हृदय और मस्तिष्क में ज्ञान भावों और विचारों का मन्थन सदा चलता रहता है, जीवन में आते–जाते विभिन्न पड़ावों से अनायास मिली अनुभूतियाँ और यथार्थ से साक्षात्कार के क्षणों में संजोये पल जब सहज रूप से उजागर होते तो आपमें चेतना और उसके भावों की अमूर्तता का साकार रूप दृष्टिगत होने लगता है और आप अपने समय को आत्मसात करते हुए, अनुभूति के दायरों में यात्रा करते हुए आगे बढ़ते रहे और उन अहसासों की सम्वेदना का स्पंदन तरंगित करता तो आपकी सूक्ष्म दृष्टि और चेतना, व्यापकता की ओर बढ़कर रचना प्रक्रिया को सम्बल देती रही, सृजन धर्म का निर्वहन कराती रही। भाव, विचार और जीवन मूल्यों को उल्लेखित करते हुए अपने सामाजिक महत्व को विश्लेषित और विवेचित करते हुए आपकी साहित्यिक निधि बनी रही।

कई बीज ऐसे होते हैं जो धरती के गर्भ में जाते ही पल्लवित होते हैं तो अनेक ऐसे होते हैं जो धरती के गर्भ में ही परिपक्व होते रहते हैं लेकिन उनका पल्लवन विलम्ब से होता है, पर वृक्ष के रूप में विकसित होकर फल दोनों देते हैं, इन दोनों ही वृक्षों की छाया इनके नीचे विश्राम करने वाले पथिकों को मिलती है और इन बीजों में विकसित वृक्ष धरा का शृंगार बनते हैं। कुछ कर दिखाने की मनोभावना वाले **सुमतिकुमार जैन** एक ऐसे ही तरुवर हुए जिनका पल्लवन साहित्य की धरा पर भले ही विलम्ब से हुआ लेकिन उनके सृजन की छाव में उस प्रत्येक पथिक को, पाठक को शीतलता की अनुभूति हुई जो उनके सृजन से रूबरू हुआ। ये वार्ता विमर्श और विद्वता के ऐसे रूपाकार बने जिन्हें अनुभव ने बड़ी तल्लीनता के साथ तराश दिया। इनके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता रही जो उनके कृतित्व में भी प्रतिबिम्बित होती रही वह है उनकी सहज विनम्रता जो आज के समकालीन साहित्य परिदृश्य में बड़ी विरल है।

श्री जैन ने अपने लेखन में सूर्य का आलोक और चाँदनी की उजास के साथ–साथ सरिता का सहज प्रवाह तथा मन्द–मन्द बहते समीर का वह धीर भी दिया जो उनकी सहजता की पहचान को गढ़ता है और श्री जैन का सृजन इस सहजता के परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण बन गया। इन्होंने हिन्दी साहित्य के अभिनव स्वरूप को शिल्पित किया और शैली को भंगिमा दी। हिन्दी साहित्य की सभी विधाओं को आपने अपनी कलम दी और रचनाकारों की पूरी टीम को सक्रिय कर डाला, सभी में जीवन दर्शन, सन्देश व साहित्य का प्रभाव उढ़ेला। साहित्य के प्रभाव का आंकलन किया। बाल्यावस्था, किशोरावस्था, युवावस्था में पढ़े जाने वाले साहित्य को श्रेय दिया और पत्रिका के माध्यम से अपनी कलम दी, शनैः–शनैः आपका लेखन सत्यं, शिवं, सुन्दरम का रूप लेता गया। वे इसके माध्यम से समाज के उच्च आदर्शों में जुड़ते गये, सांस्कृतिक उत्कर्ष को स्पष्ट करते रहे। उन्होंने पाठक वर्ग को इतिहास का स्वाद, अतीत का रस, सभी धर्मों व दर्शन का आनन्द दिया। साधु–संतो से परिचित होने की वजह से उनके भी उत्कृष्ट लेखों का पत्रिका में प्रकाशन हुआ। वैचारिक दृष्टि की धवलता व सत्य परख चिन्तन को पत्रिका में प्राथमिकता दी गई। आपका दृष्टिकोण आदर्शोन्मुखी अध्यायों से जुड़ा, युवा पीढ़ी के प्रति उदारता व जागरूकता लेते हुए इनके सन्दर्भ के विषयों को भी इसमें प्रकाशित किया गया। वाणी में माधुर्य जहाँ आपका विशेष लक्ष्य रहा वहीं मनन का माधुर्य, चन्दन की शीतलता तत्त्व साक्षात्कार का अमिट प्रस्फुटन हुआ। जीवन को ईश्वर के प्रति समर्पण करना व धर्ममय बनाने का लक्ष्य भी सदैव आपने स्वीकारा। संसार की असारता व स्वार्थ दृष्टिकोण में पर्दाफाश करने में आपने अपनी रचनाओं में महत्वपूर्ण स्थान दिया। प्रभु के प्रति सम्पूर्ण निष्ठा भावना, नमन व गुणानुवाद इनके व्यक्तित्व की अनूठी विशेषता बनी। पत्रिका में अनेकों महापुरुषों की गौरवगाथा को प्रकाशित कर भक्ति, श्रद्धा और विश्वास का अनूठा रूप संजोया। पत्रिका जन जीवन के लिए प्रेरणा प्रदीप्त बन जाए, प्रकाश का दीया बन ज्योत से ज्योत प्रज्ज्वलित कर दे, हर एक के परिवार में प्रकाश का दीया उज्ज्वल होता रहे और प्रकाशित रचनाएं टूटे हुए दिलों को जोड़े, सोतो को जगाएं, पापियों को पावन बनाएं, बिखरते हुए को एकता के सूत्र में बांधे इन विचारों से पत्रिका सदैव ओतप्रोत बनीं। परिणामस्वरूप आधुनिकता की अंधी दौड़ में यह प्रकाश का दीया सचमुच अन्धकार के बीच संबल बना, प्रमाद को हटाकर आत्म चिंतन करने का आह्वान करती हुई पत्रिका ने हर एक को समय का सदुपयोग करना और अपना जीवन उन्नत बनाना, विकासवादी पवित्र सोच व दृष्टि अपनाने पर ही बल दिया।

'जगमग दीपज्योति' की प्रेरणा, ज्ञानज्योति बन जागरण का ओज निरन्तर आगे बढ़ाने में सदैव प्रयासरत रही और वह ऐसी बढ़ी जैसे सूर्य की प्रखर रोशनी अंधकार चीरकर आगे बढ़ती रही। इनकी सोच और चिंतन तो हमेशा यही रहा। अपनी लेखनी में सामर्थ्य भर प्रकाश से अंधकार से जूझने का साहसी संकल्प और मन में यही धारणा

बनी कि स्वर्ण कितना भी आभावान क्यों न हो कसौटी पर कसे जाने पर, आँच पर तपाये जाने पर ही वह कुंदन को प्राप्त होता है। इनके लेखों तथा आलेखों, साहित्य समीक्षाओं में यद्यपि वर्णात्मक अधिक है लेकिन सघनता भी चिन्तन में अभिव्यक्त हुई है। अनुभवों से परिपक्व श्री जैन की लेखनी से निश्रृत लेख, आलेख वास्तव में वे शब्द निर्झर हैं जिनकी अनुगूँज समकालीन साहित्य परिदृश्य में गूँजती है क्योंकि ये कृत्रिमता के परिधान ओढ़े हुए नहीं है अपितु इनका सौन्दर्य नैसर्गिक है। वैसे भी सम्प्रेषण सहजता का होता है, नैसर्गिकता का ही होता है। उस सरलता का होता है जो उसे शिल्पित करता है। जगमग दीपज्योति रूपी दीपक ने एक ऐसा प्रकाश का दिया जलाया जिसमें निशा की काली अंधियारी को चीरकर उदित होने वाला अंशुमाली, निद्रा, तंद्रा में अलसाये मानव को नूतन जागृति का संदेश देता रहा। पत्रिका ने न केवल मनुष्य बनने की प्रेरणा दी अपितु उससे भी आगे बढ़ने, आत्मा से परमात्मा मिलन का उत्साह दिया।

1.1.7 व्यक्तित्व के आधारभूत मूल्य :—

- कोई दूसरा हम पर अंकुश डाले, उससे पहले हमें अपने आप पर अंकुश कर लेना चाहिए।
- अपने दोषों को देखकर उन पर परदा डालने की कोशिश करना स्वयं का अन्धापन हैं।
- अतीत की उपेक्षा करने की बजाय उसके उज्ज्वल पक्ष से प्रेरणा लेना वर्तमान को मंगल स्वरूप प्रदान करना है।
- जब हम किसी को जीवनदान नहीं दे सकते तो किसी को मारने का अधिकार भला कहाँ से मिल गया?
- अनुभूति, बुद्धि की अभिव्यक्ति नहीं वरन् सत्य की कसौटी है।
- किसी को छोटा समझ कर उसकी उपेक्षा मत करो, सूरज की एक किरण भी रात के अंधेरे को हटा देती है।
- कोयले की दलाली करने वालों के हाथ अच्छे कहाँ से होंगे ?
- आपका ध्येय है कि अपने लिए तो हर कोई जिया करता है, पर जिसकी रोशनी औरों को भी जीने का मार्ग दर्शित करे वही वास्तव में इन्सान है। ऐसे व्यक्ति अपनी खुशी, आनन्द, साधना को अपने तक ही सीमित नहीं रखते हुए अनगिनत लोगों को अपनी स्नेहिल दिव्यता का स्वाद देते है।
- आपके आदर्शानुसार अपना माहौल इस प्रकार बनाऐ कि हर सुबह ईद हो, हर दोपहर होली और हर रात दीवाली हो।
- सदैव नई मिठास रखें, यही जीवन में सफलता का विश्वास देती है, और बुढ़ापे की सार्थकता के दमदार गुर सिखाती है।

- अपने आपको अपने आंगन में खिलता हुआ पुष्प समझें, खिला हुआ वह कल्पवृक्ष समझें जिसकी छाया में सभी आनन्दित हो।
- इन सबके भी उपरान्त आपके आन्तरिक गुणों में सबसे महत्त्वपूर्ण रहा तो 'संस्कार ही जीवन की पूजा है।' सुसंस्कारों से आबाद जीवन उन्नत बनता है और इसके समक्ष संसार के सभी धन वैभव नगण्य है।
- आज वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना कोसों दूर हो गई है, संस्कार लुप्त हो गये हैं, नैतिक मूल्यों का अवमूल्यन हो चुका है। ऐसे में मानवीय जीवन अंधकार व पतन की ओर बढ़ता जा रहा हैं इसके प्रति चिन्तन हो, आप आध्यात्मिक चेतना के उर्ध्वीकरण के लिए एवं शाश्वत तत्त्वों के प्रतिष्ठापन के लिए सदैव प्रयासरत् हैं एवं सुसंस्कारों के लिए अपनी पत्रिका जगमग दीपज्योति को माध्यम बनाये हुए हैं।
- आपका संपूर्ण व्यक्तित्व प्रेम से सराबोर है। यही समर्पण, लगन व सेवा का नाम है। अपनी गलती के प्रति क्षमा मांग लेना आपके जीवन का मूल सिद्धान्त रहा है और दूसरे की गलती पर भी क्षमा कर देना आपके व्यक्तित्व की विशेषता रही है।
- गुरु भक्ति भी आपके जीवन की अक्षुण्ण प्रवृत्ति रही है।
- अपने आपको सभी के दिलों में स्थान देने के लिए सदैव यही कहते हैं–

'भूल से यदि भूल हो गई हो तो भूल समझकर भूल जाना,
मगर भूलना भूल को, नहीं भूल से हमें भूल जाना।'

आपका स्त्री विषयक दृष्टिकोण भी सुसंस्कारों से जुड़ा हुआ है। आज जब स्वतंत्रता के नाम पर स्त्रियों ने अपने आप को इतना आजाद बना लिया है कि परिवारों की संरचना ही विघटित हो गई है। पूरा विश्व एक बाजार बन गया है। स्त्री को भी आज बाजार बना दिया है। ऐसा भी नहीं कि सभी इसमें सम्मिलित हैं बहुत सी महिमाशील महिलाओं की कमी नहीं है, जिन्होंने अपनी कुशलता से हर क्षेत्र में सफलता का परचम लहराया है। यह इनके व्यक्तित्व की विशेषता है जिसने **'जगमग दीपज्योति'** पत्रिका के माध्यम से उन महिलाओं को जो आधुनिकता के बहाव में बह रही हैं ऐसा साहित्य दिया जो उन्हें ज्ञान दें, संस्कृति को शालीन बनाए, उसे समझाए कि वही औरत शालीन है जो परिवार को इज्जतदार बनाएं, परिवार इज्जतदार बनता है तभी सांस्कृतिक मूल्यों का विकास होता है। उसी से कल्याणकारी मानव संस्कृति का निर्माण हो सकता है। इस संदर्भ में आपके विचारों के अनुसार –

संस्कारों का जागरण होता जहाँ प्रकाम, खुलते रहते हैं, वहां नये–नये आयाम।
जीवन में संस्कार का सबसे ऊँचा स्थान है, करता संस्कारी मनुज अपना अनुसंधान।
सहज सुधड़ व्यवहार हो, और उदार विचार, आवश्यक इसके लिये जागे शुभ संस्कार।

हर वर्ष आप **'जगमग दीपज्योति'** का एक अंक **'महिला विशेषांक'** के रूप में देते हैं। वर्ष 2000 में जनवरी माह में आपकी धर्मपत्नी **श्रीमती उषा जी** के देहवसान के बाद

से महिला विशेषांक को हर वर्ष जनवरी माह का बनाने का निर्णय कर उन्हीं को समर्पित करने का लक्ष्य रखा, जो परम आदरणीय उषाजी की अविस्मरणीय छवि आपके मानस–सरोवर में तैरती रहती है जिसमें अवगाहन कर समस्त नवयुवक व प्रौढ़ डूबते उतरते व तैरते रहते हैं। ऐसी प्रियतमा भक्ति आपकी पत्रिका जगमग दीपज्योति के माध्यम से प्रकट होती है, जो जन–जन में सांस्कृतिक मूल्यों को जगाने, मनुष्य को अपने अन्तर्मन से परिचित कराने व उसे एक पवित्र आत्मा में परिवर्तित करने की अलख मशाल बनकर जला रही है। डॉ. शीला कौशिक ने सही फरमाया है –

'वक्त की धूप हो या तेज बारिश, कुछ कदमों के निशान कभी नहीं खोते।
जिन्हें याद करके मुस्कुरा दें आंखें, वो लोग दूर होकर भी कभी दूर नहीं होते'।।

यह है आपका प्रतिभा सम्पन्न विश्वास जिसमें सेवा भाव व कर्मठता कूट–कूट कर भरी हुई है, जिनकी ओर सहस्त्रों निगाहें देख रही हैं कि इन नयन कटोरों के स्नेह को आप कैसे संजो रहे हैं। यह तो वह अखंड ज्योत है जो कभी नहीं बुझेगी हमेशा जलेगी और भारत माँ के ऐसे लाल के मस्तिष्क को चन्दन तिलकांकित कर प्रसस्त करेगी।

आपका व श्रीमती उषाजी का एक ही उद्देश्य रहा स्त्री आत्मनिर्भरता की ओर बढ़े व बेहतरीन ढंग से अपने उजले भविष्य के ताने–बाने बूने। आत्मसम्मान बरकरार रखते हुए आत्मविश्वास सहित जीने के लिए अपनी दुलारियों को सोने–चाँदी–हीरे–मोती के गहने नहीं आत्मनिर्भरता का आभूषण पहनाएँ। जिस स्त्री में अनादिकाल से त्याग करने और अत्याचार सहने का घोल जन्मघूटि की तरह पिलाया जाता है उसे स्थगित करते हुए उन्हें आत्मसम्मान के साथ जीने और गौरव से सिर उठाकर चलने के योग्य बनाने का, आत्मविश्वास रोपित करने का काम करता है **'जगमग दीपज्योति'** का यह महिला विशेषांक, साथ ही इस अंक की उपलब्धि यह होती है कि यह अंक सिर्फ महिला रचनाकारों द्वारा, महिलाओं के लिए एवं देश की किसी भी विदूषी महिला के अतिथि संपादन में दिया जाता है। यह भी आपके स्त्री विषयक दृष्टिकोण का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

1.1.8 आन्तरिक व्यक्तित्व :–

आपके आन्तरिक व्यक्तित्व के गुणों में सबसे महत्त्वपूर्ण सत्संस्कार जीवन की पूजा है। सुसंस्कारों से आबाद जीवन उन्नत है उसके समक्ष संसार का धन, वैभव नगण्य है। भारत की पूर्व संस्कृति, सभ्यता, वसुधैवकुटुम्बकम् की भावना आज कोसों दूर हो रही है। आज की पीढ़ी विज्ञान के नये–नये साधनों के जाल में हिंसक बनती जा रही है, पूर्व सभी संस्कार लुप्त हो गये है। नैतिक मूल्यों का अवमूल्यन हो चुका है ऐसी स्थिति में आप अपनी पत्रिका के द्वारा परिवारों में खुली उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं और उन्हें जीवन का वास्तविक आईना दिखा रहे है। आपका प्रेरणास्पद जीवन हमेशा आध्यात्मिक चेतना के उर्ध्वीकरण के लिए एवं शाश्वत तत्वों के प्रतिष्ठापन के लिए ही बना हुआ है। विवेक योग जागृति हेतु सदैव सृजनशील हैं। आपका सम्पूर्ण व्यक्तित्व

प्रेम का विशाल सागर है, प्रेम, समर्पण, त्याग व सेवा का नाम है जिसमें कुछ लेने की भावना नहीं अपितु देने की भावना है। प्रेम का मूल स्वभाव मनुष्य को पूर्णता देना है।

1.2 कृतित्व :–

सामाजिक एवं धार्मिक – आपने अलवर के **स्थानकवासी जैन समाज** में वर्ष 1990 से 1993 तक सहमंत्री दायित्व का निर्वहन किया तथा वर्ष 1999–2001 में आपने **श्री व. स्था. जैन श्रावक संघ, अलवर के अध्यक्ष** पद पर रहते हुए धर्म एवं समाज की सेवा की।

आपके व आपकी धर्मपत्नी श्रीमती ऊषा जी के प्रयासों से अलवर में **जैन महिला मिलन** की स्थापना भी हुई। जिसमें श्रीमती ऊषा जी ने अपने जीवनकाल तक अध्यक्ष पद को सुशोभित किया। वर्ष 1998–1999 में आप **भारतीय जैन मिलन के जोनल अध्यक्ष** भी बनाये गये तथा आपके अध्यक्षीय काल में अलवर भारतीय जैन मिलन की पुरुष शाखा भी गठित हुई।

आप मानवता के प्रेरक कार्यों के लिए समर्पित संस्था **महावीर इन्टरनेशनल** अलवर केन्द्र के **कोषाध्यक्ष एवं प्रचार–प्रसार सचिव** के पद पर अनवरत 15 वर्ष तक रहे। आपने इस संस्था के **जोनल सैकेट्री** पद को भी गौरवान्वित किया तथा अन्तर्राष्ट्रीय कार्यकारिणी (अपैक्स) के भी सदस्य रहे।

आपके सद्प्रयासो से **ह्युमीनिटी इन्टरनेशनल नामक संस्था** की नींव रखी गई, जिसमें आप **मंत्री** बने। आपने आर्थिक रूप से असक्षम परिवारों में जा–जाकर उनके बच्चों को शिक्षा हेतु न सिर्फ प्रेरित किया अपितु उनकी शिक्षा के लिये सहयोगी बनें। इसी संस्था के माध्यम से आपने महिलाओं एवं वृद्धों को भी चौपाल–वार्ता के माध्यम से साक्षरता हेतु प्रेरणा दी।

अलवर में सन् 1990 में जैन साध्वी डॉ. मन्जुश्री जी महाराज की प्रेरणा से बनी सभी जैन–अजैन समाजों की एक समिति जिसको **शाकाहारी समिति** का नाम दिया गया, में **मंत्रीत्व** का कार्य–भार भी तीन वर्ष तक संभाला। इसके माध्यम से आपने पूना के पास चूजों को मारकर प्लास्टिक बनाये जाने वाले कारखाने का घोर विरोध कर बन्द करवाया। अलवर में बनने वालें बूचड़खाने और भिवाड़ी (अलवर) में लगने वाले शराब कारखाने का भी विरोध कर बंद करवाया।

आपने अपने सेवा–कार्यों को विस्तार देते हुए **श्री महावीर जैन औषधालय एवं चिकित्सालय, अलवर** में 3 वर्ष **अध्यक्ष** पद को सुशोभित किया है।

आपने वर्ष 2006 से 2015 तक नौ वर्ष **अखिल भारतीय साहित्य परिषद्, राजस्थान के अलवर क्षेत्रीय संयोजक** रूप में अपनी सेवाएं दी, विभिन्न कार्यक्रम कराए गए जिसमें तुलसी जयन्ती, कवि सम्मेलन, साहित्य की उन्नति के लिए विभिन्न प्रयास

करते हुए इस शाखा को बुलन्दियों पर पहुँचाने का प्रयास किया। वर्तमान में आप इसी संस्था के **विभागीय संयोजक** के रूप में अपनी सेवाएं दे रहे हैं।

1.2.1 सम्मान एवं अलंकरण :–

श्री जैन विभिन्न–विभिन्न स्थानों पर विशेष सम्मानों एवं अलंकारों से विभुषित हुए जिनमें निम्न मुख्य रूपेण हैं –

- साहित्यिक सांस्कृतिक कला संगम अकादमी परियावाँ, प्रतापगढ़ (उ.प्र.) द्वारा ''साहित्यश्री''।
- छठा अ. भा. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, गाजियाबाद द्वारा ''साहित्य मनीषी''।
- आल इण्डिया स्माल न्यूज पेपर्स एशोसियेशन बहराइच (उ.प्र.) द्वारा ''राजर्षि उदय प्रताप सिंह पुरस्कार''।
- जैमिनी अकादमी, पानीपत द्वारा आचार्य।
- आचार्य श्रीमद् विजय नित्यानन्द सूरिश्वर जी महाराज सा. द्वारा ''इतिहास मनीषी''।
- सकल दिगम्बर जैन समाज, आयड़, उदयपुर तथा धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान, बडौत, मुजफ्फरनगर, सलूम्बर, कोटा, उदयपुर, मुंबई द्वारा आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव द्वारा निष्पक्ष पत्रकारिता।
- श्री अखिल भारतीय कला सम्मान परिषद, कप्तानगंज, देवरिया द्वारा 'साहित्य कला सरस्वती'।
- संस्कार भारती शिक्षण संस्थान, विक्रमपुर, सुल्तानपुर, (उ.प्र.) द्वारा राजर्षि रणंजयसिंह सम्मान।
- श्री राम साहित्य एवं नाट्य मंडल, नाहन द्वारा साहित्य रत्न।
- आचार्य कनकनन्दी जी द्वारा 'समन्वयवादी पत्रकारिता'।
- अ. भा. साहित्यकार कल्याण मंच द्वारा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी सम्मान।
- अमरीकन ग्राफिक्ल इंस्टिटयूट द्वारा रिसर्च बोर्ड ऑफ एडवाईजर्स सदस्य।
- अन्तरर्राष्ट्रीय सम्मानोंपाधि महाविद्यालय, कुशिनगर द्वारा 'मानव रत्न'।
- साहित्यिक सांस्कृतिक कला संगम अकादमी परियावां द्वारा 'विद्या वाचस्पति'।
- कादम्बरी साहित्यिक सांस्कृतिक संस्था, जबलपुर द्वारा श्री विश्वंभरदयाल अग्रवाल सम्मान।
- अ. भा. साहित्य संगम, उदयपुर द्वारा 'सम्पादक सरताज'।
- राष्ट्रीय राज भाषा पीठ इलाहाबाद द्वारा 'भारती रत्न'
- राजस्थान सरकार, जिला प्रशासन, अलवर द्वारा 15 अगस्त 2007 को स्वाधीनता दिवस पर सम्मानित।

- अखिल भारतीय पत्रकारिता संगठन पानीपत द्वारा 'पं. युगल किशोर शुक्ल पत्रकारिता सम्मान'।
- आशा मेमोरियल मित्रलोक पब्लिक पुस्तकालय, देहरादून से 'लेखक मित्र'।
- साहित्यिक सांस्कृतिक कला संगम अकादमी द्वारा 'साहित्य मार्तण्ड'।
- शबनम साहित्य परिषद, सोजत सिटी द्वारा साहित्य सिद्धहस्त।
- जैमनी अकादमी से 'सम्पादक रत्न'।
- खानकाह सूफी दीदार शाह द्वारा 'विश्व आध्यात्म गौरव'।
- पुष्पा गंधा प्रकाशन, कर्वधा द्वारा स्व. श्री हरि ठाकुर स्मृति सम्मान।
- साहित्यिक सांस्कृतिक कला संगम अकादमी 'विवेकानन्द सम्मान'।
- वेदांग ज्योति, अन्तर्राष्ट्रीय ज्योतिषायुर्वेद वस्तु एवं तंत्र विज्ञान महासम्मेलन में 'साहित्य मार्तण्ड'।
- साहित्यिक सांस्कृतिक कला अकादमी, परियावाँ, प्रतापगढ़ द्वारा 'साहित्य महोपाध्याय'।
- बृजलोक साहित्य–कला–संस्कृति अकादमी, फतेहाबाद (आगरा) द्वारा आपको 'श्रेष्ठ सम्पादक रत्न सम्मान' से विभूषित किया गया। इनके अतिरिक्त भी विभिन्न धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक संस्थाओं ने आपको सहस्त्रों बार सम्मानित करके गौरव की अनुभूति प्राप्त की। यह कहना कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि सम्मान एवं अलंकरण आपसे जुड़कर स्वयं सम्मानित एवं अलंकृत हो गये।

1.2.2 साहित्यिक योगदान :–

श्री जैन का साहित्य क्षेत्र भी काफी समृद्ध एवं विस्तृत है। आपके सहस्त्रों लेख विभिन्न–विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में, पुस्तकों में स्मृति व अभिनन्दन ग्रंथों में, स्मारिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। आप '**जगमग दीपज्योति**' मासिक पत्रिका के माध्यम से स्थापित एवं नवोदित सभी साहित्यकारों को प्रकाशित कर साहित्य सेवा कर रहे हैं। आपके साहित्य के प्रति लगाव का ही परिणाम है कि '**जगमग दीपज्योति**' द्वारा वर्ष 2009 में **दो दिवसीय रजत जयंति कार्यक्रम** में संपूर्ण देश का प्रतिनिधित्व करते हुए लगभग 125 साहित्यकारों की उपस्थिति रही जिसे साहित्यकार सम्मेलन घोषित किया गया जिसमें राष्ट्रीय स्तर के 31 साहित्यकारों को सम्मानित किया गया। इसी प्रकार वर्ष 2010 में एक दिवसीय **रजत से स्वर्ण जयंती की ओर अग्रसर** कार्यक्रम में लगभग 115 साहित्यकार उपस्थित रहे जिनमें से 21 साहित्यकारों को सम्मानित किया गया। इन साहित्यिक सम्मानों में पत्रिका परिवार द्वारा सबसे बड़ा सम्मान पत्रिका संस्थापिका **स्व. श्रीमती ऊषा जैन स्मृति सम्मान** प्रदान किया गया। वर्ष 2013 में भी एक साहित्यिक कुंज मेला का आयोजन किया गया जिसमें पूरे देश एवं विदेश से आये करीब 200

साहित्यकारों में से 51 साहित्यकारों को सम्मानित किया। पूर्व की भाँति इस वर्ष भी स्व. श्रीमती उषा जैन स्मृति सम्मान प्रदान किया गया।

आपके सम्पादन में कई धर्म ग्रन्थ एवं साहित्यिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है। आपके संपादन में जहां **यादों की नगरी (कहानी संग्रह), निर्झर (काव्य संग्रह), लघुकथा संसार (लघुकथा संग्रह)** व देश के साहित्यकारों का **साहित्यकार परिचय ग्रन्थ** प्रकाशित हो चुके हैं। आपने एक वृह्द ग्रन्थ (लगभग 900 पृष्ठीय) **श्री वज्रांगदेव ग्रन्थ (चतुर्थ संस्करण)** का संपादन किया। इस ग्रंथ के मूल लेखक, मुंबई के श्री सीतारामजी पोद्दार हैं। यह ग्रंथ बजरंगबली, संकट मोचक हनुमानजी महाराज के विभिन्न क्रियाकलापों पर आधारित है, जिसकी सुन्दरता, भव्यता, विराटता, विशालता अद्वितीय है। इसी का परिणाम है कि आज हजारों पाठकों ने इस ग्रंथ की प्रसन्नता में अपने उदगार व्यक्त किये हैं। इस पर बने चतुर्थ संस्करण को दो खण्डों में विभाजित किया गया। यह ग्रंथ आपके सभी संस्कृति व धर्म से लगाव व जुड़ाव को दर्शित करता है।

सभी साहित्य सृजकों के साहित्य को प्रोत्साहन देने के लिए आपने **दीपज्योति ग्रुप ऑफ पब्लिकेशन** के नाम से एक संस्थान को प्रारम्भ किया जिसके अन्तर्गत अब तक करीबन 100–125 पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका है। हर पुस्तक में आपका साहित्य लेखन, भूमिका अथवा मेरे दो शब्दों के रूप में आपकी लेखन गुणवत्ता व साहित्य गरिमा को प्रदर्शित करता है।

साहित्य सृजकों के प्रति आपका लगाव इतना है कि यदि कोई साहित्यसृजक पीड़ित, दुखित, असहाय एवं आर्थिक स्थिति से कमजोर है तो उसकी यथा संभव मदद के लिए भी आपका मन बना हुआ है, जिसके लिए सभी के सहयोग से एक कोष बनाना प्रस्तावित है।

आप जैसे प्रबुद्ध ज्ञानी, जनमानस में साहित्य व संस्कृति में उर्वरा, संस्कारों के प्रेरक, बुद्धि में तीक्ष्णता, आरोग्य, सुख समृद्धि व उन्नति के प्रदाता की पत्रिका **'जनवरी माह'** का अंक महिलाओं द्वारा महिलाओं के लिए **'महिला अंक'** धर्म संस्कारों से जोड़ते हुए **'अप्रैल अंक' 'महावीर विशेषांक'** युवा पीढ़ी एवं बालकों को संस्कारित करने की भावना से ओत–प्रोत **'बाल युवा विशेषांक'** प्रकाशित कर रहे हैं। इन विशेषांकों को विस्तार देते हुए पत्रिका परिवार ने **'मार्च अंक रंगबिरंगे त्यौहार होली के साथ काव्य–मुक्तक–गजल विशेषांक जुलाई अंक आध्यात्मिक विशेषांक प्रकाशित करने का निर्णय लिया है।'** तुलसी का चौबारा भी आपके गुणों पर गर्व करके इतरा रहा है। धन्य भाग्य मेरे जो इसमें नित प्रति भोर संझा नई 'दीपज्योति' जलाएगा। अपने दृढ़ संकल्पों से मानस बंदन करेगा कि धरा पर कहीं न रह जावे अंधेरा। बाती इठलाती यहीं कहे कि सुख–दुखः का बंटवारा हो ताकि प्रेम का संदेश घर–घर तक जन–जन तक पहुंचे यह सब आपके व्यक्तित्व का ही अनोखापन है जो शुभ विचारों से आप्लावित है।

एक अच्छे संपादक के जितने गुण हो सकते हैं आपके व्यक्तित्व में उससे कहीं ज्यादा निहित है। अपने जीवन को सार्थकता प्रदान करते हुए पर दुःख की भावना को बनाए रखना, जीना व जिलाना, जीवन को ज्योतिर्मय बनाना तथा उसे संभालकर रखना महत्वपूर्ण है, यही आपके जीवन की भव्यता व दिव्यता है। आपका व्यक्तित्व सर्वांगीण दृष्टि से विकसित रहा है जहाँ आप अपनी आचारनिष्ठा व निर्मल साधना के लिए विश्रुत रहे, वही स्वावलम्बिता, अनुशासनप्रियता, मधुरता, मृदुता, कोमलता, ऋजुता, गंभीरता, अलौकिक सौम्यता, व्यवहार कुशलता, विनम्रता, समता, सरलता व सहिष्णुता आदि गुणों से समृद्ध रहा है। इन्हीं गुणों के कारण कोई भी व्यक्ति आपसे मिलकर प्रसन्न हुए बिना नहीं रहता है। आपके प्रति सहज श्रद्धा से अभिभूत हो जाता है। अब जीवों के लिए आपश्री की आत्म आराधना सुगंधित सुमनों की तरह सुवासित रहती है। आप हितभोजी और मृदुभाषी के अतिरिक्त ह्रदय की सरलता, वज्र की दृढ़संकल्पता, धैर्य की धीरता के गुणों से संम्पृक्त है आपका जीवन आचार और विचार का पावन संगम है। चरित्र, निष्ठा आपके अंग–अंग में समाई हुई है। आपका उत्कृष्ट तप त्याग, विशुद्ध आचार, परिष्कृत विचार, सूझ–बूझ के धनी, सरल स्वभाव, निष्कपट–निश्छल व्यवहार, समधुर वाणी, संयम में जागरुकता, मौन, ज्ञान, ध्यान–स्वाध्याय, बालिकाओं व बहनों में संस्कारों का बीजारोपण एवं नैतिक, आध्यात्मिक चेतना जागृत करने हेतु व्यापक स्तर पर साहित्य सर्जना का योगदान विशेष अविस्मरणीय है। यर्थाथतः इन दिव्य सद्‌गुणों, सुमनों से आपश्री जीवन उद्यान सुवासित हो महक रहा है। हमारा प्रबल पुण्योदय कहें या सुकृत साधन कहें, जहाँ हमें आपका पावन सानिध्य व मार्गदर्शन मिला। आपके जीवन को जिस पहलू से पढ़ें, देखें या समझें केवल गुणों की पंक्तियाँ ही दृष्टिगत होती है। आपका स्मरण आते ही अखण्ड आस्था के संख्यातीत दीप अंतर में जगमगा उठते हैं।[1]

1.3 शोध समस्या :–

व्यक्ति और समाज दोनों ही परिवर्तनशील है। दोनों में ही परिवर्तन होते रहे हैं, हो रहे हैं और होंगे। आज से 50 वर्ष पूर्व के भारतीय समाज के लोगों के व्यवहार और खान–पान का यदि हम अध्ययन करें तो अध्ययन से यह स्पष्ट हो जायेगा कि 50 वर्ष पूर्व के व्यक्तियों की अपेक्षा आज के व्यक्तियों का खान–पान ही भिन्न नहीं है बल्कि पहनावा भी भिन्न है। आज व्यक्तियों के विचार और मूल्यों में भी इतने लम्बे समय के अन्तराल में अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं, आज के शिक्षा जगत और समाज में अध्यापक की उतनी प्रतिष्ठा और सम्मान नहीं है जितना कि आज से 50 वर्ष पूर्व हुआ करता था। आज भौतिक वातावरण के परिवर्तन के साथ–साथ सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन भी हो रहे है। आदि काल से ही मानव अपनी सभ्यता के विकास के क्रम में अपने रहन–सहन, आवास, भोजन, वस्त्र, हथियार आदि में परिवर्तन करता आ रहा है। आवश्यकता आविष्कार की जननी है। जैसे–जैसे भौतिक परिवर्तन होता

जाता है मानव–आवश्यकताएँ बदलती जाती है और मानव का सांस्कृतिक स्वरूप परिवर्तित हो जाता है।[2]

मानव संस्कृति का पर्याप्त विकास हो गया है। आज मनुष्य सांस्कृतिक और सामाजिक वातावरण के तत्त्वों से इतना घिर गया है कि वह वातावरण में होने वाले परिवर्तन को ठीक से नहीं समझ पाता। इन परिवर्तनशील तत्त्वों में कुछ सामाजिक और सांस्कृतिक तत्त्व बहुत धीरे–धीरे बदलते है और कुछ इतने शीघ्र बदलते है कि दिन–रात में ही काया पलट हो जाती है। इस परिवर्तनशील वातावरण में मनुष्य अपने को व्यवस्थित करने के लिए नवीन प्रवृत्तियाँ, आदतें और जीवन–यापन के ढंग अपना लेता है। जो भारतीय समाज व संस्कृति के लिए पतन का कारण बन जाते है और समाज व संस्कृति का ह्रास होने लगता है।

जब किसी समाज में सामाजिक व सांस्कृतिक परिवर्तन होता है तो सामाजिक व सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण अनेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होती है। यह समस्याएँ उस समय और भी गम्भीर और विकराल रूप धारण कर लेती है जब सामाजिक परिवर्तनों की गति तीव्र होती है। सामाजिक व सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण समाज में असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न होती है, और असन्तुलन के ही कारण अनेक प्रकार की समस्यायें उत्पन्न होती है, इन समस्याओं के कारण ही पारिवारिक विघटन प्रारम्भ हो जाता है, सामाजिक तनाव उत्पन्न होता है, इन समस्याओं के कारण व्यक्तिगत विघटन भी होता है, बेकारी की समस्याएँ उत्पन्न होती है, पर्यावरण प्रदूषण, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, बढ़ती जनसंख्या, नारी से सम्बन्धित समस्या आदि कई प्रकार की समस्याओं का जन्म होने लगता है। 3 ये समस्याएँ क्यों उत्पन्न हो रही है इनके क्या–क्या कारण है व इन समस्याओं को रोकने के क्या–क्या उपाय हो सकते है। इन सभी समस्याओं का समाधान निकालने के लिए पत्रिका में अभिव्यक्त विभिन्न विधाओं के माध्यम से विभिन्न साहित्यकारों ने इन समस्याओं के प्रति अपने जो–जो कारण और निवारण बताये है ऊन सभी विचारों पर प्रकाश डालकर पाठकों में इनके प्रति चेतना जागृत करना मेरे शोध का उद्देश्य रहेगा।

1.4 शोध के उद्देश्य :–

विषय का चयन करते समय उसकी उपयोगिता का ध्यान भी अनिवार्य है। व्यर्थ के तत्त्वों पर दो–तीन वर्ष लगाकर प्रस्तुत किया गया शोध–प्रबन्ध न तो शोधक के भविष्य में आलोक–किरण उत्पन्न करता है और न साहित्य जगत् के लिए कोई नवीन उपलब्धि होती है। अतः हमारे जातीय जीवन अथवा सामाजिक चिन्तन में क्रान्ति लाने वाला शोध–कार्य न भी हो, साहित्य जगत् में नवीन जानकारी प्रस्तुत करने वाला तो होना ही चाहिए। अज्ञात साहित्य को ज्ञात बताने में उपयोगिता अधिक हो सकती है, किसी पुरातन तथ्य को नवीन धरातल पर व्याख्यायित करना भी उचित ही है किन्तु उस सामान्य कवि का समीक्षात्मक अध्ययन करने का क्या लाभ होगा जिसके हर पहलू

पर पहले से ही समीक्षात्मक ग्रन्थ लिखे जा चुके है? विषय की उपयोगिता नियुक्तियों की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण होती है। आजकल सौन्दर्यशास्त्र, शैलीविज्ञान, इतिहास दर्शन, पत्रकारिता आदि विषयों की अधिक चर्चा हो रही है। जो शोध छात्र साहित्य के उक्त पक्षों पर शोध विषय चुनना चाहेंगे, स्वाभाविक ही उनका विषय उनकी नियुक्तियों में सहायक होगा। अतः मैंने अपने शोध की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए अपने शोध का विषय **'जगमग दीपज्योति में अभिव्यक्त सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना सन् 2004 से 2014 तक'** को चुना है। जिसमे मेरे शोध के उद्देश्य निम्न रहेंगे।

- मेरे शोध कार्य द्वारा सुमति कुमार जैन जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित हो पायेंगे।
- समाज एवं संस्कृति की उत्पत्ति, अर्थ, स्वरूप एवं विकास की जानकारी प्राप्त हो पायेगी और भारतीय समाज व संस्कृति को विस्तार रूप से जान पायेंगे।
- सामाजिक समस्याएँ एवं उनके प्रकारों की जानकारी प्राप्त कर पायेंगे और उनके समाधानों से भी परिचित हो पायेंगे।
- सांस्कृतिक समस्याओं के विविध रूपों से परिचित होने के साथ–साथ उसके कारण एवं निवारण की जानकारी भी प्राप्त कर पायेंगे।
- विभिन्न विद्वानों, साहित्यकारों, संतो, मुनियों आदि के विचारों, उपदेशों से पाठक वर्ग में समाज एवं संस्कृति के प्रति चेतना जागृत करने में शोध कार्य उपयोगी सिद्ध होगा।
- सुदृढ़ राष्ट्र का निर्माण करने में सहायता प्राप्त होगी और साथ ही सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं अध्यात्मिक विषय सामग्री को एक स्थान पर उपलब्ध करवाने में सहयोगी सिद्ध होगा।

1.5 शोध विधि :–

मैंने अपने शोध कार्य के लिए **'वर्णनात्मक शोध विधि'** का चयन किया है। यह एक अप्रायोगिक शोध विधि है जिसमें दो या अधिक बोध चरों के बीच सम्बन्ध ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है। इसमें प्रयोगिक शोध की तरह अन्वेषक कोई अभिक्रिया करके शोध चरों में कोई वांछित परिवर्तन लाने का प्रयत्न नहीं करता। वह शोध चरों को अपने स्वाभाविक रूप में अध्ययन करके उनके बीच सम्बन्ध ज्ञात करने का प्रयत्न करता है। यह मान कर चला जाता है कि समाज में स्वाभाविक रूप से होने वाले बहुत से मानव व्यवहारों का किस प्रकार व्यवस्थित रूप से सर्वेक्षण एवं विश्लेषण करके शोध चरों के बीच सम्बन्ध ज्ञात किये जा सकते है। इस प्रकार वर्तमान घटनाओं तथा विगत घटनाओं जिनका सम्बन्ध वर्तमान से हो सकता है, से सम्बन्धित वर्णनात्मक शोध की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें शोध चरों का स्वाभाविक रूप से निरीक्षण,

परीक्षण तथा विश्लेषण करके यह पता लगाने का प्रयत्न किया जाता है कि कौन से कारक किस घटना, स्थिति या व्यवहार से सम्बन्धित हो सकते है।

इसकी अन्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

- व्यवहारगत विज्ञानों में यह सबसे अधिक प्रयोग होने वाली शोध विधि है क्योंकि–इसमें स्वाभाविक रूप से समाज में दिन प्रति दिन होने वाली घटनाओं, प्रक्रियाओं, अभिवृत्तियों इत्यादि में मानव व्यवहार का वर्णनात्मक शोध द्वारा अधिक सुव्यवस्थित रूप से परीक्षण, निरीक्षण तथा विश्लेषण किया जा सकता है।
- उन परिस्थितियों में जहाँ कोई घटना पहले से घटित हो चुकी है, उसके कारकों को जानने के लिए वर्णनात्मक शोध के अलावा कोई विकल्प नहीं बचता। शोधकर्ता द्वारा घटना के विभिन्न पहलुओं का सतर्कतापूर्वक निरीक्षण, परीक्षण तथा विश्लेषण करके ही उसके कारकों का पता लगाया जा सकता है।
- मानव व संस्थागत व्यवहार के बहुत से पक्ष जटिल स्वभाव के होते हैं, उनके भागों को अलग–अलग जोड़ कर नहीं समझा जा सकता क्योंकि उनमें अन्योन्याश्रय होता है। इसलिए ऐसी स्थिति में उन्हें समग्र रूप से एक व्यवहार निकाय के रूप में ही अध्ययन करना उपयोगी होगा और इसके लिए वर्णनात्मक शोध ही सबसे उपयुक्त है।[4]

साधारणतया मौलिक अनुसंधानों के द्वारा तीन प्रकार के प्रश्नों का उत्तर ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है। शोध कार्य किसी तथ्य से सम्बन्धित होता है और तथ्य के सम्बन्ध में तीन प्रकार के प्रश्न किये जा सकते हैं–**'क्या'**, **'क्यों' और 'कैसे'**? यदि इन प्रश्नो का उत्तर साहित्य में उपलब्ध है तो इसके लिए शोध की आवश्यकता नहीं होती है किन्तु इनमें से जिस प्रश्न का उत्तर उपलब्ध नहीं होता, उसी के लिए शोध कार्य किया जाता है। उपर्युक्त तीनों प्रश्न यह भी निर्धारित करते हैं कि सम्बन्धित शोध का संचालन किस प्रकार किया जाना चाहिए?

अतः मेरे शोध का विषय **'जगमग दीपज्योति में अभिव्यक्त सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना'** में मुझें **'क्या'** का उत्तर तो पत्रिका के विभिन्न साहित्यकारों द्वारा प्रकाशित उनकी विभिन्न विधाओं के माध्यम से प्राप्त हो गया है। अतः विषय सामग्री तो हमारे पास उपलब्ध है उसे खोजने की हमे आवश्यकता नहीं है। फिर हमारे सामने प्रश्न आता है **'क्यों'**? अथार्त शोध की आवश्यकता क्यों है। इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए हम यह पत्रिका जो सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना से जुडी हुई है, का अध्ययन करेंगे। जैसा कि हम सभी जानते है कि वर्तमान समय में सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का पतन हो रहा है अतः यह पतन क्यों हो रहा है इसके क्या–क्या कारण है, या यह पतन हो भी रहा है कि नहीं इनको जानना ही मेरे **'क्यों'** का उत्तर होगा। अब

हमारे सामने तीसरा प्रश्न आता है **'कैसे'**? इसका उत्तर प्राप्त करने के लिए मैं पत्रिका में प्रकासित विभिन्न विधाओं के माध्यम से साहित्यकारों ने किस–किस वर्ग की समस्याओं को प्रकाशित किया है, उन समस्याओं को एकत्रित करुँगा तत्पश्चात उनके द्वारा बताये गए कारणों व समाधानों का अध्ययन कर पाठकों में इसके प्रति चेतना जागृत करने का प्रयास करूँगा।

1.6 संबंधित साहित्य का अध्ययन :–

शोध कार्य की सफलता के लिए उससे संबंधित साहित्य का पुनरावलोकन आवश्यक है किसी भी अनुसंधान के लिए संबंधित साहित्य का पुनरावलोकन एवं अध्ययन अनिवार्य है क्योंकि इससे हमें यह विदित हो जाता है कि जिस शोध कार्य को हम करने जा रहे है उस पर पहले कितना कार्य हो चुका है और क्या किया जाना शेष है इससे हमारे सामने एक नवीन दुष्टिकोण भी विकसित होता है तथा शोध के लिए नये आयाम खुल जाते है। सम्बद्ध साहित्य से तात्पर्य अनुसंधान की समस्या से सम्बन्धित उन सभी प्रकार की पुस्तकों, ज्ञान कोषों, पत्र–पत्रिकाओं, प्रकाशित तथा अप्रकाशित शोध प्रबन्धों एवं अभिलेखों आदि से है जिनके अध्ययन से हमें रूपरेखा तैयार करने एवं कार्य को आगे बढ़ाने में सहायता मिलती है। इस शोध में सम्बद्ध साहित्य के अध्ययन से मुझे विभिन्न पत्रिकाओं एवं पुस्तकों के माध्यम से समाज एवं संस्कृति को जानने में सहायता प्राप्त हुई। मेरे शोध कार्य से सम्बद्ध कुछ प्रमुख पत्रिकओं एवं पुस्तकों का विवरण इस प्रकार है।

- **सच्चिदानन्द सिन्हा** की पुस्तक **'संस्कृति और समाजवाद'** (सन् 2004) में वाणी प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुई। इस पुस्तक का अध्ययन कर मैंने संस्कृति के विविध आयामों की जानकारी प्राप्त की।
- **डॉ. कृष्णा कांत पाठक** की पुस्तक **'भारतीय संस्कृति के आधार स्तम्भ'** (सन् 2009) में राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर से प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में मैंने भारतीय सामाज की विभिन्न व्यवस्थाओं यथा–वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, संस्कार व्यवस्था आदि का अध्ययन किया।
- **डॉ. रूपनारायण त्रिपाठी** की पुस्तक **'भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व'** (सन् 2013) में पंचशील प्रकाशन, जयपुर से प्रकाशित हुई। इस पुस्तक के अध्ययन से भारतीय संस्कृति की विशेषताओं व संस्कृति की विभिन्न स्थितियों को जानने का अवसर प्राप्त हुआ।
- **अब्दुल अलीम** के शोध ग्रन्थ **'नज़ीर अकबरावादी के काव्य का सांस्कृतिक एवं सामाजिक अध्ययन** (सन् 1989) शोध गंगा से अध्ययन किया इसमे संस्कृति के स्वरूप, क्षेत्र, उत्पत्ति आदि को जानने में सहायता प्राप्त हुई।

- **कांबके द्वारकादास निवृत्ती** के शोध ग्रन्थ **'मनोज सोनकर के काव्य में सामाजिक चेतना** (सन् 2011) शोध गंगा से अध्ययन किया इसमे समाज के स्वरूप, क्षेत्र, उत्पत्ति, विकास आदि का विस्तार से वर्णन मिलता है।

- **अशोक एम. बांभणिया** के शोध ग्रन्थ **'नासिरा शर्मा के कहानी साहित्य में समकालीन समस्याएँ : एक अध्ययन'** (सन् 2014) विषय पर किये गये शोध कार्य का अध्ययन किया इसमें विभिन्न सामाजिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं का विस्तार पूर्वक चित्रण किया गया है।

- **श्रीमती क्रांति कनाटे** के सम्पादन में त्रैमासिक पत्रिका **'साहित्य परिक्रमा'** (सन् 1999) से **'अखिल भारतीय साहित्य परिषद'** द्वारा ग्वालियर से प्रकाशित हो रही है। परिषद की योजना के अनुसार आंचलिक भाषा के साहित्य को देश के सामने लाने के लिये साहित्य परिक्रमा के विशेषांक समय–समय पर निकाले जाते है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक राज्य से यह पत्रिका अलग–अलग नामों से प्रकाशित हो रही है। इस पत्रिका का अध्ययन कर विभिन्न राज्यों की संस्कृति का ज्ञान प्राप्त हुआ।

- **डॉ. ज्वाला प्रसाद कौशिक 'साधक'** के सम्पादन में बहुभाषिक त्रैमासिक पत्रिका **'समय–सरिता'** (सन् 2009) से मेरठ से प्रकाशित हो रही है। इस पत्रिका में विभिन्न प्रकार के शोध लेखों का प्रकाशन होता है जो हमें समाज व संस्कृति से परिचित करवाते है।

- **जितेन्द्र चौहान** के सम्पादन में त्रैमासिक पत्रिका **'साहित्य गुंजन'** (सन् 2009) से इंदौर से प्रकाशित हो रही है। यह पत्रिका अपनी कविता, लघुकथा, कहानी, लेख आदि के द्वारा सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन पर प्रकाश डालती हुई पाठकों को जागृत कर रही है।

- **नीलिमा टिक्कू** के सम्पादन में त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका **'साहित्य समर्था'** (सन् 2012) से जयपुर से प्रकाशित हो रही है। यह पत्रिका विशेष रूप से महिला साहित्यकार पर प्रकाशित होती है। इस पत्रिका के अध्ययन से साहित्य की विभिन्न विधाओं का ज्ञान प्राप्त होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. सुमति कुमार जैन, पत्र, 2017
2. डी.एन. श्रीवास्तव, सामाजिक मनोविज्ञान, साहित्य प्रकाशन, 1994, पृ0 511
3. डॉ. एस.पी. चौबे, शिक्षा के दार्शनिक, ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय आधार, लायल बुक डिपो, 1995, पृ0 122
4. डॉ. बी.एस रायजादा और डॉ. वन्दना वर्मा, शिक्षा में अनुसंधान के आवश्यक तत्व, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2011, पृ0 92–93

द्वितीय अध्याय

समाज एवं संस्कृति :
उत्पत्ति, अर्थ एवं परिभाषा

द्वितीय अध्याय

2. समाज : उत्पत्ति, अर्थ एवं परिभाषा

    2.1 समाज की उत्पत्ति एवं अर्थ

    2.2 समाज की परिभाषा

        2.2.1. भारतीय विद्वानों की परिभाषाएँ

        2.2.2. पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाएँ

    2.3 समाज का स्वरूप एवं विकास

2.4 संस्कृति : उत्पत्ति, अर्थ एवं परिभाषा

    2.4.1 संस्कृति की उत्पत्ति एवं अर्थ

    2.4.2 संस्कृति की परिभाषा

        2.4.2.1 भारतीय विद्वानों की परिभाषाएँ

        2.4.2.2 पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाएँ

    2.4.3 संस्कृति का स्वरूप एवं विकास

द्वितीय अध्याय

समाज एवं संस्कृति : उत्पत्ति, अर्थ एवं परिभाषा

2.1 समाज की उत्पत्ति एवं अर्थ :–

समाज की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये है। दैवी उत्पत्ति का सिद्धान्त समाज को ईश्वर की कृति मानता है। जिस प्रकार ईश्वर ने संसार की अन्य जड़ और चेतन वस्तुएँ उत्पन्न की, उसी प्रकार उसने समाज का भी निर्माण किया। वैसे तो समाज का अर्थ स्पष्ट करना कठिन है। **'सामान्य रूप से व्यक्तियों के समूह को समाज कहते है।'** व्यक्तियों के इन समूह विशेषों का अध्ययन सभी सामाजिक विज्ञानों में किया जाता है। **मानवशास्त्र** में मनुष्यों के किसी भी समूह को समाज की संज्ञा दी जाती है, यहाँ तक कि आदिम समुदाय को भी समाज कहा जाता है। **भूगोल** के विशेष क्षेत्र में समान सभ्यता वाले लोगों के समुदाय को समाज कहते हैं, जैसे–भारतीय समाज, यूरोपीय समाज। **धर्मशास्त्र** में धर्म विशेष के मानने वालों के समुदाय को समाज कहते हैं, जैसे–हिन्दू समाज, ईसाई समाज और मुसलमान समाज। **राजनीतिशास्त्र** में राज्य विशेष के लोगों के समूह को समाज कहते हैं, जैसे – भारतीय समाज, ब्रिटिश समाज और अमेरीकी समाज। परन्तु समाजशास्त्र में समाज का अर्थ इन सबसे भिन्न रूप में लिया जाता है।

समाजशास्त्रीय अर्थ में व्यक्तियों के समूह को समाज नहीं कहते अपितु समूह के व्यक्तियों में पाए जोने वाले सामाजिक सम्बन्धों की व्यवस्था अथवा जाल को समाज कहते हैं। अब प्रश्न उठता है कि सामाजिक सम्बन्ध क्या हैं। जब दो या दो से अधिक व्यक्ति एक–दूसरे के प्रति सचेत होते हैं और एक–दूसरे के प्रति कुछ व्यवहार करते हैं तो हम कहते हैं कि उनके बीच सामाजिक सम्बन्ध स्थापित हो गए है। यह आवश्यक नहीं कि ये सम्बन्ध मधुर और सहयोगात्मक ही हों, ये कटु और संघर्षात्मक भी हो सकते हैं। समाजशास्त्र में इन दोनों प्रकार के सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार समाज का **सर्वप्रथम मूल तत्त्व दो या दो से अधिक व्यक्तियों की पारस्परिक जागरूकता है।** दो या दो से अधिक व्यक्तियों के एक–दूसरे के प्रति सचेत होने के लिए यह आवश्यक है कि उनके उद्देश्य अथवा विचारों में या तो समानता हो या भिन्नता। इस प्रकार **समानता अथवा भिन्नता समाज का दूसरा मूल तत्त्व** होता है। यह पारस्परिक जागरूकता दो ही रूपों में परिणित हो सकती है–सहयोग में अथवा संघर्ष में। इसलिए **सहयोग अथवा संघर्ष को समाज का तीसरा मूल तत्त्व** माना जाता है। वस्तुस्थिति यह है कि मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एक–दूसरे के प्रति सचेत होते हैं और वे तब तक इन सम्बन्धों से नहीं बँधते जब तक उनकी एक–दूसरे से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती। इसे समाजशास्त्री अन्योन्याश्रितता कहते हैं।

यह समाज का **चौथा मूल तत्त्व** होता है। समाज के बारे में दो तथ्य और हैं, एक तो यह कि समाज अमूर्त होता है और दूसरा यह कि यह केवल मनुष्य जाति में ही नहीं अपितु पशु–पक्षियों और कीड़े–मकोड़ों में भी पाया जाता है, यह बात दूसरी है कि समाजशास्त्र में केवल मानव समाज का ही अध्ययन किया जाता है।[1]

कुछ समाजशास्त्रियों का विचार है कि समाज का अस्तित्व तभी कायम होता है जब इसके सदस्य एक–दूसरे को भली प्रकार जानते हो। इस प्रकार यदि दो व्यक्ति रेलगाडी में यात्रा कर रहे हों, तो उनका एक ही डिब्बे में सह अस्तित्व, एक ही स्थान पर एक ही समय में, एक ही साथ होना समाज का निर्माण नहीं करता परंतु ज्यों ही वे एक–दूसरे को जान जाते हैं, उनके बीच समाज तत्त्व का निर्माण हो जाता है। परंतु समाज की परिभाषा को पारस्परिक जागरूकता के तत्त्व से बाँध देना असुविधाजनक है क्योंकि अप्रत्यक्ष एवं अचेतन तत्त्वों का भी सामाजिक जीवन में अत्याधिक महत्त्व है। अतः हम कह सकते है कि मनुष्य मनुष्यों से पृथक रहकर अपने मानवीय अस्तित्व की रक्षा नहीं कर सकता। मनुष्य यदि मनुष्य की भांति रहना चाहता है और अपने अस्तित्व की रक्षा करना चाहता है तो उसे अपने आस–पास के व्यक्तियों से सम्बन्ध स्थापित करने होंगे। व्यक्तियों के इन सामाजिक सम्बन्धों को समाज कहते है। सामाजिक सम्बन्ध मनुष्य के प्रत्येक सम्बन्ध को कहते है। इनके द्वारा ही इसमें से प्रत्येक व्यक्ति अन्य व्यक्तियों से सम्बन्धित होता है।[2]

2.2 समाज की परिभाषा :–

यदि उपर्युक्त दृष्टिकोण से हम समाज की परिभाषा देना चाहें तो **डॉ. एस. पी. चौबे** के शब्दों में हम कह सकते हैं कि ''समाज वह जन–समुदाय हैं, जो भौगोलिक दृष्टि से एक ही क्षेत्र में रहता हो, कुछ सामान्य रुचियों, अनुभवों और संस्कृति का पोषक हो, स्थानीय एकता की दृष्टि से सचेत हो, सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक इकाई के रूप में काम करता हो और सर्वसाधारण की भलाई के लिए कुछ संस्थाओं द्वारा चलाया जाता हो।[3]

समाज के मूल स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए भारतीय विद्वानों ने उसे विविध परिभाषाओं के माध्यम से परिभाषित किया है। जिन्में से कुछ प्रमुख भारतीय विद्वानों की परिभाषाओं को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

2.2.1 भारतीय विद्वानों की परिभाषाएँ :–

शम्भूरत्न त्रिपाठी जी समाज को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि –''समाज का सामान्य अर्थ व्यक्तियों का समूह है। मनुष्य मनुष्यों से पृथक रहकर अपने अस्तित्व की रक्षा करने में असमर्थ होता है। अपने अस्तित्व की रक्षा करने हेतु उसे अपने

आसपास के व्यक्तियों से सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक है। व्यक्तियों के इन सामाजिक सम्बन्धों को समाज कहते है।''[4]

सत्यकेतु विद्यालंकार ने समाज को विस्तृत ढंग से परिभाषित करते हुए लिखा है –मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज में रहकर जीवन बिताना उसका स्वभाव है। अतः वह अन्य मनुष्यों के साथ अनेक प्रकार के सम्बन्ध स्थापित करता है। मनुष्यों के जीवन में एक दूसरे के साथ सम्बन्धों का जो जाल बिछा हुआ है उसी को समाजशास्त्र में समाज कहते है।''[5]

महादेव प्रसाद के शब्दों में –''समाज व्यक्तियों का एक संगठन है जिसमें लोग एक साथ चलते हों, जिसमें परिस्थिति और भावना की एकता हो, तथा जिसमें आवरण करते समय एक व्यक्ति दूसरे के अस्तित्व का भी ध्यान रखता हो।''[6]

समाज के सम्बन्ध में स्वर्णलता का कहना है –''समाज में मनुष्य के सभी प्रकार के सम्बन्धों की व्यवस्था होती है। सम्बन्ध सामाजिक जीवन के दौरान स्थापित होते है। सामाजिक सम्बन्ध धर्म, सामान्य नैतिक मूल्यों, विचारधारा, शिष्टाचार तथा आदर्श के आधार पर स्थापित होते है। स्वेच्छा इन सम्बन्धों के मूल में होती है। समाज सदा विद्यमान होता है।''[7]

डॉ. कुँवरपाल सिंह के शब्दों में –''समाज का अस्तित्व हमेशा किसी सामाजिक संरचना के रूप में ही पाया जाता है। एक ऐसे संगठन के रूप में जो निरंतर विकसित होता रहता है तथा जिसके प्रमुख क्रिया कलाप किसी दैवी शक्ति पर नहीं, बल्कि उत्पादन–प्रणाली के विकास पर आधारित होते है।''[8] अतः समाज एक क्रियात्मक संगठन, संस्था, सभा, समूह है, जिसमें मानवीय सम्बन्ध और विशिष्ट उद्देश्य निहित होते है।

डॉ. नत्थूलाल गुप्त ने कहा –''समाज एक अत्यन्त व्यापक शब्द है। इसकी अर्थ परिधि में धर्म–दर्शन, नैतिक मूल्य, सामाजिक संस्थाएँ, नारी दशा, शिक्षा मनोविनोद के साधन, स्वास्थ्य एवं रोग, अन्न–पान, गृहोपकरण, कला, स्त्री–शिक्षा आदि विविध विषयों का समावेश होता है।''[9]

शशिभूषण सिंहल के शब्दों में समाज की परिभाषा इस प्रकार है –''मानव के विकास क्रम में समाज की स्थापना हुई है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है, व्यक्ति ने अपनी रीति सम्बन्धी एवं पैतृक मूल वृत्तियों के कारण अपना अकेलापन त्यागकर पारिवारिक जीवन अपनाया है। उसके उपरान्त उसकी सामाजिक भावना उत्तरोतर विकसित होती रही है। अतः समाज, सोद्देश्य व्यक्तियों का गतिशील गठन है। समाज अपने सदस्यों को बाह्य घातक तत्त्वों द्वारा नष्ट होने से बचाता है, रक्षा कर उनके व्यक्तित्व का विकास करता है और कुछ जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा कर उन्हें पाने के लिए परिवर्तनशील होता है।''[10]

2.2.2 पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाएँ :–

भारतीय विद्वानों की तरहा ही पाश्चात्य विद्वानों ने भी समाज को परिभाषित किया है जिनमें से कुछ प्रमुख पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाएँ निम्नलिखित है।

एच. पी. फेयर चाइल्ड के अनुसार –''समाज व्यक्तियों का ऐसा समूह है जो अपने बहुत से प्रमुख हितों, उद्देश्यों जिनमें अनिवार्य रूप से स्वयं की रक्षा या भरण पोषण तथा स्वयं को स्थायित्व प्रदान करना सम्मिलित है, को पूरा करने में ये सहयोग करते है।''[11]

डॉ. लीकॉक ने समाज की परिभाषा देते हुए लिखा है –''समाज में केवल व्यक्तियों को परस्पर बाँधनेवाले, राजनीतिक सम्बन्ध ही शामिल नहीं है, अपितु मानवीय सम्बन्धों एवं सामूहिक गतिविधियों का सम्पूर्ण क्षेत्र सम्मिलित है।''[12]

कूले ने इस प्रकार व्याख्यायित किया है – ''समाज रीतियों या प्रक्रियाओं का एक जटिल ढाँचा है जो कि जीवित है और एक–दूसरे के प्रभाव के कारण आगे बढ़ता रहता है एवं पूर्ण अस्तित्व में इस प्रकार की एकता पायी जाती है जो कुछ एक भाग में होता है वह शेष पर प्रभाव डालता है।''[13]

ई.एच. कार ने कहा कि –''वस्तुतः मानव समाज की अन्य जीवों के समाज से अलगाने वाली यही महत्त्वपूर्ण सम्बन्धगत स्थिति है। बिना समाज के तो कोई रह ही नहीं सकता। इसीलिए कहा भी गया है कि नितान्त अकेला रहने वाला व्यक्ति या तो पशु है या देवता। कारण यही है कोई भी व्यक्ति अपने आप में अलग–थलग द्वीप जैसा नहीं होता। हर व्यक्ति महाद्वीप का एक अंश, पूर्ण का एक अंग होता है।''[14]

किंग्सले डेविस ने इसे स्पष्ट करते हुए बताया है –''मानव ही केवल ऐसा प्राणी नहीं है जो समाज में रहता है। चींटियाँ, दीमक, पक्षी, बंदर, लंगूर और अन्य असंख्य जानवर भी तो अपने–अपने समाज में रहते है।''[15]

मैकलेवर के अनुसार –सम्बन्धों के जाल का अभिप्रायः सामाजिक सम्बन्धों की उस व्यवस्था से है जिसके अन्तर्गत समाज के सभी सदस्य इस प्रकार एक–दूसरे से सम्बन्धित हो जाते हैं कि उनके जीवन में सम्बन्धों का एक जटिल जाल की सृष्टि करता है जिसे कि समाजशास्त्र में हम समाज कहते है। अतः समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है। वास्तविकता यह है कि समाज उन सम्बन्धों का विधान है जिनमें और जिनके द्वारा हम जीवित रहते है।''[16]

अतः विभिन्न भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई समाज की व्याख्या के आधार पर यह कहा जा सकता है कि समाज ऐसे व्यक्तियों के समूह को कहा जाता है जिनमें एक प्रकार की व्यवस्था और अनुशासन हो तथा जिनका समान लक्ष्य हो। समाज हेतु शारीरिक और मानसिक दानों प्रकार की समानता, एकरूपता अनिवार्य है। अतः समाज

वह जनसमूह है जिसके उद्देश्य एक ही समान है और जो एक–दूसरे से मेल–जोल देखकर जीवनपथ पर आगे बढ़ता है। इसलिए समाज का सदस्य होने के नाते मनुष्य को समाज में प्रचलित रीति–रिवाजों, मान्यताओं, आस्थाओं का पालन करना अनिवार्य हो जाता है।

समाज परिवर्तनशील धरातल पर टिका है। समय–समय पर विभिन्न सामाजिक सदस्यों द्वारा परिवर्तन लाए जाने का प्रयास रहता है। इसके अतिरिक्त प्रकृति, स्वभाव, परिस्थितियाँ एवं सकारात्मक सोच भी समाज को एकसूत्र में बांधते हुए परिवर्तन के संकेत देती है।

अतः भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई समाज सम्बन्धी परिभाषाओं के आधार पर समाज के विषय में कई निष्कर्ष प्राप्त होते है। जिनको हम निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझ सकते है।

- समाज व्यक्तियों का समूह है।
- जिसमें लोग मिलकर एक साथ, एक गति से, एक से चलें, वही समाज है।
- जिसके साथ व्यक्ति किसी प्रकार का अपनापन महसूस करे चाहे वह मानव समाज का एक अंश ही क्यों ना हो समाज है।
- मनुष्यों के जीवन में एक दूसरे के साथ सम्बन्धों का जो जाल बिछा हुआ है वही समाज है।
- एक दूसरे पर प्रभाव डालने वाले व्यक्तियों का एक विस्तृत संगठन ही समाज है।
- उन सभी संगठनों का समूह जिन्हें मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तथा अपने जीवन को सुखी व पूर्ण बनाने के लिए निर्मित करता है समाज है।
- समाज मनुष्य के सभी प्रकार के सम्बन्धों की व्यवस्था होता है।
- एक स्थान पर विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए एकत्र व्यक्ति ही समाज है।
- सत्त परिवर्तनशील व्यवस्था को हम समाज कहते है।
- समूह के व्यक्तियों के बीच होने वाली अन्तः क्रियाओं की जटिल व्यवस्था समाज है।
- मानवीय सम्बन्धों एवं सामूहिक गतिविधियों का सम्पूर्ण क्षेत्र समाज है।
- समाज रीतियों या प्रक्रियाओं का एक जटिल ढाँचा है।
- समाज ऐसे व्यक्तियों का संग्रह है जो कुछ सम्बन्धों अथवा व्यवहार की विधियों द्वारा संगठित है।
- व्यवस्थित मानव समुदाय जिसमे सब लोग समान प्रकार से अपने कर्त्तव्यों का सम्पादन करते हुए व्यवस्थित ढंग से रह सके समाज है।
- एक ही स्थान पर समानधर्मी व्यवसायियों द्वारा निर्मित समुदाय समाज है।
- एक दूसरे के सहारे प्रगति पथ पर अग्रसर होने वाले व्यक्तियों का समूह समाज है।

2.3 समाज का स्वरूप :–

व्यक्ति के लिए समाज एक अनिवार्य संस्था है। इसका निर्माण व्यक्ति ही करता है। "**निस्समाज व्यक्ति कोरी कल्पना हैं।**" इसलिए व्यक्ति समाज से पृथक् रहकर अपना अस्तित्व नहीं रख सकता। जब कुछ व्यक्ति पारस्परिक हितों की रक्षा के लिए एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं और पारस्परिक व्यवहार करते हैं तो इसे हम समाज के गठन की प्रक्रिया कहते हैं। जब तक समाज के जन–समुदाय में एकता और पारस्परिक सह–सम्बन्ध की भावना नहीं होगी तब तक वह जन–समुदाय समाज नहीं कहा जा सकता। जब समुदाय के लोग समान रुचि के कारण समान भावनाओं से बंध जाते हैं तो उनका समुदाय एकता में बंधकर समाज का रूप धारण कर लेता है।

समाज बड़ा व्यापक होता है। इसके आकार की कोई सीमा नहीं होती। दो व्यक्तियों से लेकर समूचे विश्व तक मानव समाज की सीमा हो सकती है। एक बड़े समाज में समाज की कई छोटी–छोटी इकाइयाँ होती है। विश्व–समाज में अनेक राष्ट्र, राष्ट्र–समाज में विभिन्न प्रदेश, प्रदेश–समाज में कई जिले, जिले में कई नगर और गाँव हो सकते है। नगर–गाँव में मुहल्ले, सभाएँ, परिषदें आदि सामाजिक संस्थाएँ हो सकती हैं।

समाज के संगठन में व्यक्ति का भारी योगदान रहता है। प्रत्येक व्यक्ति समाज के आदर्श की रक्षा में अपना योगदान देता है। वह अपने व्यक्तित्व की रक्षा करते हुए समाज की भलाई का भी ध्यान रखता है। व्यक्ति चाहे अध्यापक हो, चाहे इन्जीनियर हो, कलाकार आदि कुछ भी हो वह समाज द्वारा निर्धारित मान्यताओं के अनुकूल आचरण करता है। समाज का आदर्श, उसका उद्देश्य व्यापक और स्थायी होता है। इसमें व्यक्ति के जीवन के सभी अंग आ जाते है। समाज के आदर्श से व्यक्ति के जीवन के सभी अंग प्रभावित होते हैं।[17]

अतः कहा जा सकता है कि समाज मनुष्य के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि समाज ही मनुष्य का रक्षक है। मनुष्य आवश्यकताओं का पुंज है यदि उसकी प्रमुख आवश्यकताएँ पूरी न हो तो जीवन सुरक्षित न रहे। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह अन्य व्यक्तियों से सम्बन्ध स्थापित करता है और उनका सहयोग प्राप्त करके अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

समाज का विकास :–

आदिकाल में मनुष्य जंगलों में स्वच्छन्दतापूर्वक विचार करते थे। यौन सम्बन्ध नियमित या नियंत्रित नहीं था। धीरे–धीरे सभ्यता का विकास हुआ। यौन सम्बन्ध नियंत्रित हो गया। विवाह संस्था और परिवार का जन्म हुआ। मनुष्य कृषि करने लगा और कृषि में अभिवृद्धि हुई तो लोग कृषि की रक्षा के लिए झुण्डों में एक स्थान पर स्थित रहने लगे। लोगों के बीच परस्पर सहयोग की भावना बढी। धीरे–धीरे परिवारों के संयुक्त रूप ने समाज का रूप धारण कर लिया।

वर्तमान समाज का विकास अनेक चरणो में होकर हुआ है। समाज का विकास तभी होता है, जब उस के लिए आवश्यक कारण विद्यमान हों। **मार्क्स** ने मानव समाज के इतिहास को पाँच युगों में बाँटा है –**आदिम साम्यवादी युग, दास्तव युग, सामन्तवादी युग, पूँजीवादी युग और समाजवादी युग।**

समाज एक विशाल परिवार है। वह केवल व्यक्तियों का संकलन मात्र नहीं है, बल्कि उन व्यक्तियों के समुदाय में परस्पर सहयोग, व्यवहार, भाषा, संस्कृति आदि संपन्न होते है। जिस प्रकार शरीर के अन्यान्य अवयवों में भिन्नता के बावजूद सम्बन्ध रहता है, वे स्वतंत्र होते हुए भी परस्परावलंबी के रूप में कार्य करते हैं, उसी प्रकार समाज के सारे व्यक्ति स्वतंत्र होते हुए भी, परस्पराश्रित है और उनके इस स्वस्थ सम्बन्ध पर ही समाज का विकास निर्भर है।

पुरातन काल में भारतीय विचारधारा के अनुसार, समाज अवयवी (शरीर) के रूप में ज्ञातव्य है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र – समाज के चार वर्ग है। जिस प्रकार शरीर के अंगों में घनिष्ठता रहती है और सब अंग मिलकर, शरीर के अस्तित्व को मुखरित करते है, ठीक इसी प्रकार चार वर्गों का समूह समाज कहलाता है और चार वर्गों में घनिष्ठता रहती है। परन्तु कालान्तर में वर्गों की घनिष्ठता विकृत हो गयी और ब्राह्मण उच्च व अभिजात वर्गों का अंग बन गये क्षत्रिय और वैश्य भी अपने–अपने कर्मों में संलग्न थे और तीन वर्गों ने शूद्र की उपेक्षा कर दी और पदों से उत्पन्न होने की वजह से शूद्र वर्ग को नीचा और निकृष्ठ मानकर, उपेक्षित कर दिया।[18]

प्राचीनकाल में भारतीय समाज में वर्ण–व्यवस्था को प्रमुख स्थान था। वर्ण–व्यवस्था का आधार गुण व कर्म था। इसलिए ब्राह्मण उच्चवर्ग के अधिकारी थे, क्षत्रिय देश की सेवा के लिए थे, वैश्य धन अर्जन के लिए व्यापार और खेती करने के लिए थे और शूद्र इन तीन वर्गों की सेवा के लिए तथा नौकरी के लिए थे। कालान्तर में वर्ण–व्यवस्था का विकृत रूप जाति–व्यवस्था में विकसित हुआ और जन्म के आधार पर वर्ग दृढ़ हो गये। भले ही वेद–पाठ करें या न करें, फिर भी जन्म के आधार पर वह ब्राह्मण ही है। 19 वीं शताब्दी तक समाज में जाति–प्रथा के बन्धन कठोर हो गये थे। 20 वीं शताब्दी में जाति–प्रथा अपने प्राचीनतम रूप में तो नहीं रही, फिर भी जातीय–भावना ने जन–जीवन के मानस को जकड रखा है। प्रत्येक जाति सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संगठित हो रही है।

आज के समाज में धन एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है। वित्त के आधार पर समाज के तीन स्तर है – उच्च, मध्य और निम्न। धन के आधार पर व्यक्ति की प्रतिष्ठा और सामाजिक स्थिति जानी जाती है। इसलिए समाज धन सामग्री जुटाने में हमेशा व्यस्त रहता है और इसी के चलते सामाजिक विकास होता रहता है। आज समाज आधुनिक है, शिक्षित है, समता तथा बंधुत्त्व की गुहार लगाता है, पर धन उसका लक्ष्य है और उसे पाने के लिए दिन–रात वह कार्यरत रहता है अर्थात समाज विकास व्यवस्था है और वह स्थायी स्वरूप से परिवर्तनशील है।[19]

2.4 संस्कृति : उत्पत्ति, अर्थ एवं परिभाषा

2.4.1 संस्कृति : उत्पत्ति एवं अर्थ :–

उत्पत्ति की दृष्टि से संस्कृति शब्द पर विचार किया जाये तो ज्ञात होता है कि **संस्कृति शब्द संस्कृत से निष्पन्न है। 'संस्कृति' शब्द 'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु में क्तिन प्रत्यय लगने पर बनता है। सम्+कृ+क्ति=संस्कृति। सम् का अर्थ है 'सम्यक् रूप से' और 'कृ' धातु 'करने' के अर्थ में प्रयुक्त होती है। इस प्रकार सम्यक् रूप से किए गए कार्यों की शृंखला ही संस्कृति है।** वैसे भी संसार में तीन समान – धर्मी शब्द प्रचलित हैं – संस्कार, संस्कृत और संस्कृति। संस्कार उन पवित्र और उदात्त विचारों एवं कार्यों का सूचक है जो जीवन को व्यवस्थित बनाते हैं और सद्गति प्रदान करते है। यहाँ संस्कार के स्वरूप पर ध्यान देने से यह स्पष्ट अनुभव होता है कि 'संस्कार' शोधन या परिष्कार करने की एक विशेष पद्धति अथवा व्यवस्था है, जिसे उस पद्धति द्वारा परिष्कृत कर दिया गया है, वह संस्कृत है और परिष्कृत करने की प्रेरक शक्ति ही संस्कृति है। संस्कृति ऐसी परिष्कृत कृति है जो जीवन को समग्र रूप में परिष्कृत करने की प्रेरणा प्रदान करती है। मानव के उदात्त विचार और कार्य ही उसके प्रेरक शक्ति के रूप हैं। इस आधार पर ''संस्कृति उन उदात्त विचारों और पवित्र कार्यों की इच्छा को कहते है, जो किसी देश या जाति के जीवन को गति प्रदान करते है।''[20]

डॉ. मनमोहन शर्मा ने संस्कृति शब्द की उत्पत्ति संस्कार शब्द से मानी है। उनका कथन है कि ''संस्कृति शब्द की उत्पत्ति संस्कार शब्द से मानना अधिक युक्तिसंगत होगा, क्योंकि संस्कार का अभिप्राय किसी वस्तु के मल (दोष) को दूर कर उसको पूर्ण–शुद्ध बनाना है। संस्कारों के द्वारा न केवल शरीर, अपितु आत्मा या अन्तःकरण भी शुद्ध होता है। सम्यक् संस्कारों से युक्त कृतियाँ ही तो संस्कृति हैं।''[21]

आज की हिन्दी में यह अंग्रेजी शब्द 'कल्चर' का पर्याय माना जाता है। अतः कल्चर शब्द का अर्थ समझना उचित होगा। अंग्रेजी में संस्कृति शब्द के लिए कल्चर (Culture) शब्द का प्रयोग होता है जिसकी उत्पत्ति लेटिन भाषा के 'कोलर' (Colere) से निष्पन्न कुल्टुरा (Cultura) शब्द से मानी जाती है। ''जिसका अर्थ क्रमण, कृषि, उत्पादन, संवर्धन, सुधार, संस्कृति, विशिष्टता पालन है।'' उत्पत्ति की दृष्टि से 'कल्चर' की निष्पत्ति जिस 'कोलर' शब्द से हुई है उसका तात्पर्य दो अर्थों में हैं – एक पूजा करने के तथा दूसरा कृषि कार्य या पशुपालन के सन्दर्भ में। इन पक्षों पर इस प्रकार से विचार कर सकते हैं 'कल्चर' शब्द अपने बौद्धिक, सामाजिक और कलात्मक सन्दर्भ में वसुन्धरा को उर्वर बनाने की क्रिया का परिचायक है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि प्रारम्भ में व्यक्ति भूमि को परिष्कृत करके उर्वर बनाते थे और इन्हीं माध्यमों से व्यक्ति के मानसिक और सामाजिक परिवेशों का भी निर्माण किया करते थे। इस विषय में 'कल्चर' मनुष्य की सहज प्रवृत्तियों, सम्वेदनात्मक स्थितियों और आध्यात्मिक जिज्ञासाओं के सही

और समुचित परिष्कार का द्योतक है। इसी परिष्कार के द्वारा हम अपने जीवन में चरमोत्कर्ष प्राप्त करते है। अगर हम 'कल्चर' शब्द को कल्टीवेशन के अर्थ में संगीत में प्रयुक्त करते है तो इससे दूसरा अर्थ भी उपस्थित हो जाता है, जो विकासवादी–सिद्धान्त को प्रश्रय देता है। कृषि के विकास के विविध सोपानों पर हम उसके विविध विकसित ज्ञान स्रोतों से अवगत होते है। यही स्थिति 'संस्कृति' की भी होती है। आरम्भ में हम इसके कुछ स्वरूपों से ही परिचित रहते है, पर इसके विकास की सभी अवस्थाओं का अवलोकन करने के पश्चात् हमें ऐसी वैज्ञानिक पद्धति उपलब्ध हो जाती है जो मानवता को पुष्पित एवं फलित करती है।

सम्पूर्ण सामाजिक जीवन की समाप्ति 'संस्कृति' में होती है। विभिन्न सभ्यताओं का उत्कर्ष तथा अपकर्ष संस्कृति द्वारा ही मापा जाता है। उसके द्वारा ही विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों और आधारों का समन्वय किया जा सकता है। आधुनिक युग में इस शब्द को अंग्रेजी 'कल्चर' के अर्थ में प्रयुक्त करने के लिए विशेष आग्रह परिलक्षित अवश्य होता है, पर इसका यह तात्पर्य नहीं कि यह हमारी प्राचीन अर्थ–संगति से सर्वथा मुक्त है।

पाश्चात्य साहित्य में 'कल्चर' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम **बेकन** ने किया। उन्होंने इस संदर्भ में ज्ञान के महत्त्व को स्वीकार किया और इसे सुख और शक्ति वृद्धि का प्रमुख साधन माना। बाद में यह शब्द पर्याप्त प्रचलित हो गया। जर्मन भाषा में इसे 'Kulture' शब्द द्वारा अभिहित किया जाता है। **'गेटे'** ने हमें आध्यात्मिक संस्कृति की अवधारणा से परिचित कराया। उसका महाकाव्य **'फाउस्ट'** इसी अवधारणा का प्रतिफलित स्वरूप है। इस महाकाव्य को ज्ञान की खोज में सम्पूर्ण जीवन उत्सर्ग करने का प्रतिमान माना है। आचार्यों के आर्ष ग्रन्थों में इसका निश्चित अर्थ में प्रयोग भी किया गया है। आरम्भ में ये शब्द कृषि और प्रकृति के सर्वशक्तिमान तत्त्वों की उपासना के परिचायक रहे है। पर बाद में इनका अर्थ विस्तार हुआ और ये आधुनिक सन्दर्भ में प्रयुक्त होने लगे है। इसमे कोई सन्देह नहीं कि आधुनिक काल में संस्कृति 'कल्चर' का पर्याय बन गयी है, पर यह तथ्य इस बात का परिचायक सिद्ध नहीं होता कि संस्कृति शब्द का अपना निजी इतिहास और पृष्ठभूमि नहीं है। भारतीय चिन्तन में कुछ समय तक पाश्चात्य विचारधाराओं का आधिपत्य रहा है इसके परिणाम स्वरूप कुछ ऐसे शब्द जीवन के साथ समरत हो गये है जिनका अंग्रेजी नाम लेते ही या तो हिन्दी पर्याय सामने प्रस्तुत हो जाता है या हिन्दी नाम लेते ही अंग्रेजी पर्याय। 'कल्चर' और 'संस्कृति' इस दृष्टि से एक रूप हो गये हैं।[22]

इस प्रकार संस्कृति के व्युत्पत्यर्थ एवं कोशगत अर्थों पर विचार करने के पश्चात् स्पष्ट होता है कि गतिशीलता परिवर्तन के माध्यम से विकसित होती है। प्रारम्भिक युग से अब तक जीवन की गति को समझने की प्रक्रिया में निरन्तर विकास हुआ है, इसलिए संस्कृति शब्द के अर्थ में निरन्तर विकास होना स्वाभाविक है।

2.4.2 संस्कृति की परिभाषाएँ :–

संस्कृति की व्याप्ति विश्व मानव समाज में इतनी गहन है कि जिससे सभी विद्वज्जनों का ध्यानाकृष्ट होना स्वाभाविक है। प्रायः सभी विद्वानों, साहित्यकारों, समाज शास्त्रियों व दार्शनिकों ने अपने–अपने सोच–विचार के अनुसार इसकी भिन्न–भिन्न परिभाषाएँ प्रस्तुत की है। दोनों तरफ के सांस्कृतिक दृष्टिकोण अलग–अलग है। देश–काल के अनुसार सांस्कृतिक चर्चा में भी अलगाव नजर आते है। अतः संपूर्ण परिभाषाओं को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

2.4.2.1 भारतीय विद्वानों की परिभाषाएँ
2.4.2.2 पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाएँ

2.4.2.1 भारतीय विद्वानों द्वारा दी गई संस्कृति विषयक परिभाषाएँ :–

संस्कृति के बारे में सोचने पर यह एक व्यापक जीवन सिद्धान्त लगता है। इस दृष्टिकोण को मानने से कोई भी अपवित्र नहीं बनता है। संस्कृति को जीवन सिद्धान्त के रूप में मानना भारतीयता की धारणा को स्पष्टता देता है। वह उच्च आदर्शों और मूल्यों की ओर जनता को ले जाता है। वह सभी वस्तुओं या जीव जन्तुओं को समान आदर और अधिकार के अधीन मानने की उच्च सोच बन जाता है।

वासुदेवशरण अग्रवाल का कहना है– ''संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का सर्वांगपूर्ण प्रकार है। हमारे जीवन का ढंग हमारी संस्कृति है। संस्कृति हवा में नहीं रहती, उसका मूर्तिमान रूप होता है। जीवन के नानाविध रूपों का समुदाय ही संस्कृति है।''[23]

रामधारी सिंह दिनकर :– रामधारी सिंह दिनकर जी ने अपने **'संस्कृति के चार अध्याय'** ग्रंथ में संस्कृति की परिभाषा इस प्रकार दी है – ''संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है, जिसमें हम जन्म लेते है। इसलिए जिस समाज में हम पैदा हुए है अथवा जिस समाज में हम मिलकर जी रहे है, उसकी संस्कृति हमारी संस्कृति है। यद्यपि अपने जीवन में हम जो संस्कार जमा करते है वह भी हमारी संस्कृति का अंग बन जाता है और मरने के बाद हम अन्य वस्तुओं के साथ अपनी संस्कृति की विरासत भी अपनी संतानों के लिए छोड़ जाते है। अतः संस्कृति वह चीज मानी जाती है जो सारे जीवन को व्यापे हुए है तथा जिसकी रचना और विकास में अनेक सदियों के अनुभवों का हाथ है। यही नहीं संस्कृति हमारा पीछा जन्म–जन्मान्तर तक करती है।''[24]

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय :– डॉ. भगवतशरण उपाध्याय संस्कृति को सामाजिक सन्दर्भ के साथ जोड़ते हुए लिखते है – ''संस्कृति का सम्बन्ध सामाजिक जीवन से अधिक है। जब समाज एक ही रीति से कुछ करता है, एक ही विश्वास रखता है, एक ही प्रकार के आर्दश सामने रखता है। अपने पुरखों के काम को समान रूप से आदर, गर्व, गौरव की

चीज समझता है, तब संस्कृति का जन्म होता है। संस्कृति आदमी के सामाजिक जीवन का प्राण है।''[25]

सत्यकेतु विद्यालंकार :– संस्कृति पर अपने विचार व्यक्त करते हुए सत्यकेतु विद्यालंकार लिखते हैं – ''मनुष्य अपनी बुद्धि का प्रयोग कर विचार और कर्म के क्षेत्र में जो सृजन करता है, उसी को संस्कृति कहते है। मनुष्य ने जो धर्म का विकास किया, दर्शनशास्त्र के रूप में जो चिन्तन किया, साहित्य, संगीत और कला का जो सृजन किया, सामूहिक जीवन को हितकर और सुखी बनाने के लिए जिन प्रथाओं और संस्कारों को विकसित किया, उन सबका समावेश हम संस्कृति में करते है।''[26]

प्रभुदयाल मीतल :– श्री प्रभुदयाल मीतल ने संस्कृति को राष्ट्र व समाज की आत्मा माना है। उनके अनुसार – ''संस्कृति किसी भी देश जाति या समाज की आत्मा होती है जिसमें उक्त देश, जाति या समाज के चिन्तन–मनन, आचार–विचार, रहन–सहन, बोली, भाषा, वेशभूषा, कला–कौशल आदि बातों का समावेश होता है।''[27]

भीमसिंह मलिक :– डॉ. भीमसिंह मलिक के अनुसार – ''संस्कृति समूह अथवा समाज की वस्तु है किसी एक व्यक्ति की नहीं, क्योंकि इसका विकास सामाजिक परम्परा द्वारा होता है। यह समाज के असंख्य व्यक्तियों के सामूहिक प्रयत्न का परिणाम है और यह प्रयत्न भी ऐसा कि जिसे उत्तरोत्तर आने वाली मानव संततियाँ निरन्तर करती रहती है।''[28]

बाबू गुलाबराय :– बाबू गुलाबराय ने संस्कृति की परिभाषा देते हुए लिखा है – ''यद्यपि संस्कृति का मूल आधार मानवता है, तथा देश–विशेष के वातावरण की विशेषता के कारण वह उस देश के नाम से–जैसे भारतीय संस्कृति, ईरानी संस्कृति, अंग्रेजी संस्कृति आदि नामों से विहित होने लगती है। संस्कृति का एक ही मूल उद्देश्य मानते हुए हम यह कह सकते है कि संस्कृति देश–विशेष की उपज होती है, उसका सम्बन्ध देश के भौतिक वातावरण और उसमें पालित, पोषित एवं परिवर्द्धित विचारों से होता है।''[29] यह परिभाषा भाषा की दृष्टि से सुगठित न होते हुए भी संस्कृति के मूल स्वरूप को व्यापक रूप में प्रस्तुत करती है। इस परिभाषा में संस्कृति का मूल उद्देश्य मानवता को बताया गया है। साथ–साथ भौतिक वातावरण को भी संस्कृति निर्माण में मुख्य माना गया है। इस परिभाषा में विचार के साथ आचार को जोड़ने की आवश्यकता नहीं समझी गयी है। सम्भवतः विचार में ही आचार को भी समाहित माना गया है।

आगे चलकर बाबू गुलाबराय कहते है, ''संस्कृति शब्द का सम्बन्ध संस्कार से है, जिसका अर्थ है संशोधन करना, उत्तम बनाना, परिष्कार करना। संस्कृत शब्द का भी यही अर्थ है और संस्कार व्यक्ति के भी होते है और जाति के भी, किन्तु जातीय संस्कारों को ही संस्कृति कहते हैं। भाववाचक होने के कारण संस्कृति एक समूह–वाचक शब्द है।''[30]

राहुल सांस्कृत्यान :– ''एक पीढ़ी आती है, वह अपने आचार–विचार, रूची–अरूची, कला–संगीत, भोजन–छाजन या किसी और दूसरी आध्यात्मिक धारणा के बारे में कुछ स्नेह की मात्रा अगली पीढ़ी के लिए छोड़ जाती है। एक पीढ़ी के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी और आगे बहुत सी पीढ़ियाँ आती जाती रहती है और सभी अपना प्रभाव या संस्कार अपनी अगली पीढ़ी पर छोड़ती जाती है। यही प्रभाव संस्कृति है।''[31]

2.4.2.2 पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई संस्कृति विषयक परिभाषाएँ :–

जिस प्रकार हिन्दी के विभन्न विद्वानों ने अपनी प्रज्ञा शक्ति से संस्कृति की बहुआयामी परिभाषाएँ अभिव्यक्त की हैं उसी प्रकार पाश्चात्य विद्वानों ने भी अपने–अपने मतानुसार संस्कृति को परिभाषित करने का प्रयास किया है। उनके द्वारा दी गई परिभाषाएँ अग्र लिखित से है।

ई.आर.ए. सैलिगमैन :– 'एनसाईक्लोपीडिया ऑफ द सोशल सांईसिज' में संस्कृति को इस प्रकार परिभाषित किया गया है – ''संस्कृति सामाजिक विरासत है, जिसमें परम्परा से पाया हुआ कौशल, वस्तु, सामग्री, यांत्रिक क्रियायें और मूल्यों का समावेश हो जाता है।'' अतः संस्कृति का जन्म समाज से होता है और जिसके माध्यम से मनुष्य समस्त संस्कारों को ग्रहण करता है।[32]

किंबाल यंग :– किंबाल यंग के शब्दों में ''संस्कृति शब्द न्यूनाधिक रूप में उन आदतों, विचारों, मनोवृत्तियों और मूल्यों के संगठित सुदृढ़ प्रतिमानों की और संकेत करता है जो एक नवजात शिशु को उसके पूर्वजों अथवा बड़ा होने पर अन्य व्यक्तियों द्वारा हस्तांतरित होते है।''[33]

ई. बी. टायलर :– ई. बी. टायलर के अनुसार – ''व्यापक अर्थ में मानवीय जीवन–यापन की समग्र व्याख्या को संस्कृति समझा जा सकता है। इसमें ज्ञान, विश्वास, शिल्प–कला और अन्य कलाएं, नैतिकता, नियम, रीति–रिवाज तथा वे सभी अन्य योग्यताएँ समाहित हो जाती है जिन्हें व्यक्ति, समाज का सदस्य होने के नाते ग्रहण करता है।''[34]

एन. एनेस्टेसी :– एन. एनेस्टेसी के कथानानुसार – ''संस्कृति का विस्तार अत्याधिक विविधतापूर्ण है, जिसमें केवल भौतिक वस्तुएं ही नहीं, वरन् भाषा, रीति–रिवाज, कौशल, रुचियाँ और विश्वास भी समाविष्ट है जो कि एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संक्रमित होते रहते है।''[35] अतः पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाले रीति–रिवाजों को एनेस्टेसी ने संस्कृति माना है।

जॉन लुईस जिलीअन :– जॉन लुईस जिलीअन के मतानुसार – ''आचार व्यवहार, प्रथाएँ, मान्यताएँ, दृष्टिकोण, भावनाएँ और अन्य सामाजिक व्यवहार अनेक तत्त्वों से प्रभाव ग्रहण करते है। ये सब प्रत्येक समाज में एक सुनिश्चित पद्धति और परम्परा का निर्माण करते है। यह परम्परा समाज के सभी व्यक्तियों की थाती है। इन सभी प्रचलित

और सर्वमान्य व्यवहार पद्धतियों को समष्टि रूप से संस्कृति की संज्ञा दी जाती है। वर्गों और मनुष्यों के परस्पर सम्बन्ध और उनके समस्त सापेक्ष व्यवहार सामान्य रूप से स्वीकृत होकर संस्कृति का रूप खड़ा करते है।''[36]

मैथ्यू आर्नल्ड :– मैथ्यू आर्नल्ड के अनुसार – ''संसार में सर्वोत्तम बातों से परिचित होना सांस्कृतिक होना है। संस्कार की सभी बातों से परिचित होने से मनुष्य ज्ञानी बन जाता है। यह ज्ञान उसे संस्कारचित्त व्यक्ति बनाता है। संस्कारपूर्ण व्यक्ति संस्कार की सर्वोत्तम बातों से अवगत होने के कारण संस्कृति को आगे ले जाता है।''[37]

ब्रैडफोर्ड स्मिथ :– ब्रैडफोर्ड स्मिथ के अनुसार – ''संस्कृति का अर्थ है किसी समाज की जीवन–पद्धति, जिसमें उसकी शिल्प–कला, विश्वास और मान्यताएँ, संचित ज्ञान और वे मूल्य भी आ जाते है जिनके लिए उस समाज के सदस्य जीते है। इसके अलावा उसकी विकसित कलाएँ, पारिवारिक जीवन, सन्तान–पालन, विवाह और प्रणय की प्रथा, शिक्षा व्यवसाय और शासन अर्थात् उसकी शेष समूची विरासत भी जो उसके सदस्यों को उपलब्ध है या हो सकती है उसके अन्तर्गत आ जाती है।''[38]

सारोकिन :– समाजशास्त्री सारोकिन ने संस्कृति को मानसिक विकास की प्रक्रिया माना है। उनके अनुसार संस्कृति उन मूल्यों, आदर्शों और स्थापनाओं का समूह है जिसके अनुसार मनुष्य अपने जीवन की रीति और शैली का निर्माण करते है। मनुष्य अपने जीवन में जिन तत्त्वों को सत्यं, शिवं और सुन्दरं मानते है उनसे संस्कृति का रूप निर्मित होता है।[39]

संस्कृति सम्बन्धी भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण की तुलना करने पर स्पष्ट होता है कि भारतीय संस्कृति जहाँ अध्यात्म पर बल देती है, वहीं यूरोपीय संस्कृति बुद्धि पर। परन्तु विचारधाराओं में मत वैभिन्य होते हुए भी एक बात को सबने एक स्वर में स्वीकार किया है कि संस्कृति मन और मस्तिष्क का संस्कार परिष्कार करने वाली है। मन की संस्कारिता मनुष्य के व्यक्तित्व और चरित्र दोनों में प्रकट होती है। ईर्ष्या, द्वेष, स्वार्थ आदि कुप्रवृत्तियों को दूर कर महानता, संवेदना, रागात्मकता के द्वारा मन का सांस्कृतिक उन्नयन होता है। मानसिक धरातल पर व्यक्ति का सांस्कृतिक उन्नयन भौतिक जीवन के सभी पहलुओं में प्रतिफलित होकर समाज के जीवन को शिष्ट व संस्कृत बनाता है। थोड़े शब्दों में कहना चाहें तो संस्कृति का सम्बन्ध मानव के भौतिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक, दार्शनिक कलात्मक आदि सभी प्रकार के महत्त्वपूर्ण विकासों एवं जीवन के विविध पहलुओं से है।

इस प्रकार आचार–व्यवहार, रीति–रिवाज, पर्व–उत्सव, संस्कार, कला–कौशल, ज्ञान–विज्ञान, पूजा आदि के विधि–विधान एवं अनुष्ठान ही संस्कृति के प्रकाश्य रूप है। संस्कृति का निर्माण शनैः शनैः होता है। आरम्भ में शिक्षण संस्कार और अभ्यास के जो बीज मानव–जीवन में डाले जाते है, वही संस्कृति की आरम्भिक अवस्था है, और उन

बीजों के प्रतिफलित होने पर मानव–जीवन में जो विकास और परिमार्जन का स्वरूप प्रकट होता है, वही उसकी अन्तिम अवस्था है।

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृति का सम्बन्ध मानव बुद्धि, स्वभाव और उसकी मनोवृत्तियों से होता है। इन्हीं तत्त्वों की सहायता से व्यक्ति अपना विकास करता है। अतएव संस्कृति साध्य एवं साधन दोनों है। जब संस्कृति व्यक्ति तक सीमित रहती है तो व्यक्ति के व्यक्तित्व को और जब वह संपूर्ण जाति में प्रसार पाती है, तो वह राष्ट्रीय चेतना को विकसित करती है। उपर्युक्त विवेचन से निष्कर्ष निकलता है कि संस्कृति किसी राष्ट्र के व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत किया गया ऐसा व्यवहार है, जो आने वाले व्यक्तियों का आदर्श है, उनके द्वारा अनुकरणीय है और उन्हें सही अर्थों में सामाजिक बनाता है। संस्कृति किसी समाज को प्रवाहमय जीवन पद्धति हेतु मार्ग प्रशस्त करती है। संस्कृति के नियम शाश्वत होते हैं जो उस समय को एक विशिष्ट जीवन व्यतीत करने की चेतना प्रदान करते है। परिणामस्वरूप प्रत्येक देश, समाज अथवा राज्य एक विशिष्ट संस्कृति के लिये जाना जाता है।

भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई संस्कृति सम्बन्धी परिभाषाओं के आधार पर संस्कृति के विषय में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते है। जिनके आधार पर हम संस्कृति को समझ सकते है।

- संस्कृति समुदाय विशेष पर प्रकाश डालती है।
- बुद्धि और कर्म के क्षेत्र में सृजन करना ही संस्कृति है।
- जीवन को सुधारना, सुन्दर बनाना ही संस्कृति है।
- सम्यक् संस्कारों से युक्त कृतियाँ ही संस्कृति है।
- जीवन के नानाविध रूपों का समुदाय ही संस्कृति है।
- हमारे जीवन का ढंग ही हमारी संस्कृति है।
- संस्कृति का जन्म समाज से होता है।
- संस्कृति मानव के सम्पूर्ण व्यवहार का एक ढांचा है।
- पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाले रीति–रिवाज ही संस्कृति है।
- संसार में सर्वोत्तम बातों से परिचित होना ही संस्कृति है।
- जिससे आदर्श प्रतिस्थापित होते है, उसे संस्कृति कहते है।
- सामाजिक चेतना का निर्वाह करना ही संस्कृति है।
- मानवीय जीवन–यापन की समग्र व्याख्या को संस्कृति समझा जा सकता है।
- संस्कृति का सम्बन्ध आदमी के सामाजिक जीवन से है।
- संस्कृति भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों का सम्मिलित रूप होती है।
- संस्कृति समाज की प्रयत्नशीलता का परिणाम होती है।
- संस्कृति का समाज से वही सम्बन्ध है जो व्याकरण का किसी भी भाषा से होता है।

- संस्कृति नीति–नियमों, आदर्शों, नैतिकता, मान्यताओं, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक विशेषताओं का समग्र रूप होती है।
- संस्कृति का सम्बन्ध मानव–जीवन के संस्कार और परिष्कार से है।
- संस्कृति किसी भी देश, जाति या समाज की आत्मा होती है।
- जिन कामों से किसी देश–विदेश के समस्त समाज पर कोई अमिट छाप पड़े वह स्थायी प्रभाव ही संस्कृति है।
- संस्कृति का जन्म समाज से होता है।
- संस्कृति मानव के व्यवहार और पर्यावरण से प्रभावित है।

2.4.3 संस्कृति का स्वरूप एवं विकास :–

भारतवर्ष अति प्राचीन देश है। प्राचीनता की दृष्टि से विचार करने पर भारतीय संस्कृति विश्व की आदि सभ्यताओं में से एक है। 'भारतीय संस्कृति का विकास न तो एक काल में हुआ और न ही यह रूढ़िवादी बनकर रही। आदिकाल से ही यह एक शिला के रूप में अविचल रही। अन्य सांस्कृतिक लहरों के थपेड़ों ने इस पर अनेकों आघात किए परन्तु वे इसके मूल स्वरूप को बदलने में सफल न हुए अपितु अपने प्रवाह के कुछ अंश अवश्य इस शिला पर छोड़ गये जिसको इसने सहर्ष ग्रहण कर लिया। जिस प्रकार अनेकों नद–नदियों के जल से आप्लावित होकर स्रोतस्विनी गंगा अंतिम लक्ष्य के रूप में समुद्र को प्राप्त कर लेती है उसी प्रकार विभिन्न योगदानों से संपुष्ट होती हुई सांस्कृतिक धारा भी मानव कल्याण के चरम लक्ष्य को प्राप्त करती है।[40]

कहते हैं कि किसी भी राष्ट्र और उसके नागरिकों के अस्तित्व के लिए संस्कृति उतनी ही महत्त्वपूर्ण है, जितना कि उनके लिए भोजन, हवा और पानी। जिस प्रकार भोजन, हवा और पानी के बिना कोई राष्ट्र और उसके नागरिक जीवित नहीं रह सकते उसी प्रकार बिना संस्कृति के राष्ट्र और नागरिकों का कोई अस्तित्व नहीं रह सकता है। इसलिए यह सत्य है कि संस्कृति किसी व्यक्ति के प्राणों की रक्षा भले ही न करती हो, पर राष्ट्र के अस्तित्व की रक्षा अवश्य करती है। इसलिए प्रत्येक राष्ट्र और जाति की अपनी अलग–अलग संस्कृति होती है, उसी के अनुसार उस समाज, उस राष्ट्र और उस जाति की पहचान होती है।

आज संसार में यूरोपियन, अमरीकन, रूसी, चाइनीज, अरबी आदि अनेक संस्कृतियाँ पाई जाती हैं, पर इस संसार के सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है कि इनमें सबसे पुरानी संस्कृति भारतवर्ष की ही है। साथ ही हम यह भी कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति सबसे प्राचीन ही नहीं, सबसे श्रेष्ठ भी है, क्योंकि संसार की अन्य संस्कृतियों में आध्यात्मिकता का बहुत ही कम अंश पाया जाता है या अधिकांश आधिभौतिक विषयों तक ही सीमित है, पर भारतीय संस्कृति का मुख्य लक्ष्य आध्यात्मिक उन्नति ही हैं, क्योंकि जो संस्कृति मनुष्य में 'पंच तत्त्वों का पुतला' होने की भावना भर दे और इस

जीवन के बाद किसी प्रकार की आशा, भरोसा न दिला सके, वह मनुष्य या समाज की उन्नति कदापि नहीं कर सकती।

भारतीय संस्कृति ने अधिभौतिक अथवा लौकिक उन्नति की अवहेलना नहीं की है, जीवन को सुखी बनाने का मार्ग उसने स्पष्टता से समझाया है, पर अंतिम लक्ष्य सदैव आध्यात्मिक उन्नति को ही समझा है अथवा यह कहना चाहिए कि उसने समस्त लौकिक कार्यों और उद्योगों का सम्बन्ध आध्यात्मिक उन्नति से ही जोड़ दिया है, जिससे मनुष्य भौतिकवाद के दोषों से बच सके और समस्त सांसारिक कार्यों को करते हुए आत्म–कल्याण के ध्येय को न भूले। अगर हमारी संस्कृति के निर्माताओं ने इस बात का ध्यान आरंभ से ही न रखा होता तो हमें भी वही दिन देखना पड़ता जो आज यूरोप, अमरीका में दिखाई पड़ रहा है। वहाँ इस समय एक ओर भौतिक उन्नति और वैभव की पराकाष्ठा दिखलाई पड़ रही है, तो दूसरी ओर स्वार्थ, ईर्ष्या–द्वेष, क्रोध, हत्या, व्यभिचार आदि की इतनी अधिकता पाई जाती है कि वे लोग किसी भी दिन अपने वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा आप ही नष्ट हो सकते हैं। इस अवस्था में अगर उनकी रक्षा होगी तो वह भारतीय सभ्यता के सिद्धांतों (पंचशील) के अपनाने से ही संभव होगी।[41]

भारतीय सभ्यता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जहाँ अन्य देशों ने अपने धर्म, सभ्यता, संस्कृति का सर्वोच्च लक्ष्य सांसारिक सुख और भोग की सामग्री प्राप्त करना समझ रखा है, भारतवर्ष का लक्ष्य सदा त्याग का रहा है। दूसरों के भोगवाद के मुकाबले में हम यहाँ की संस्कृति का आधार त्यागवाद कह सकते हैं। अब यह स्पष्ट है कि जहाँ के मनुष्यों का लक्ष्य भोगवाद होगा वहाँ दूसरों से परस्पर संघर्ष चलता ही रहेगा, क्योंकि संसार में जितनी भोग–सामग्री है, उसके मुकाबले में मनुष्य की तृष्णा कहीं अधिक बढ़ी–चढ़ी है। ऐसी जातियों के व्यक्ति पहले विदेशी अथवा अन्य जाति के लोगों को लूटने–मारने का कार्य करते हैं फिर जब बाहर का मार्ग रूक जाता है तो अपने ही देश के भाईयों पर हाथ साफ करने लगते है। उनके सामने कोई ऐसा आदर्श अथवा लक्ष्य नहीं होता, जिसके प्रभाव से वे ऐसे काम को बुरा समझें। उनको तो यही सिखाया गया है कि यह संसार सबलों के लिए है और यहाँ वही सफल मनोरथ होता है, जो सबसे अधिक शक्तिशाली या संघर्ष के उपयुक्त होता है।

इसके विपरीत भारतीय संस्कृति यह सिखलाती है कि इस संसार में जितनी भौतिक वस्तुएँ दिखलाई पड़ती हैं, उनका महत्त्व बहुत अधिक नहीं है, वे क्षणभंगुर हैं और किसी भी समय नष्ट हो सकती है। वास्तविक महत्त्व की चीज आत्म–सत्ता या परमात्मतत्त्व ही है, जो स्थायी और अविनाशी है। इसलिए मनुष्य को, जब तकवह संसार में है, भौतिक वस्तुओं का संग्रह और उपभोग तो करना चाहिए, पर अपनी दृष्टि सदा उसी सत्य आत्म–तत्त्व पर रखनी चाहिए, जो कि सब भौतिक वस्तुओं का मूल आधार है और जिसमें मनुष्य की जीवात्मा को सदैव निवास करना है। इस भावना के प्रभाव से मनुष्य स्वार्थान्ध होने से बचा रहता है और वह अपने हित के साथ दूसरों के हित की

रक्षा का भी ध्यान रखने में समर्थ होता है। वह अन्याय और अत्याचार के कार्यों से पाप समझ कर बचता है और इस प्रकार समाज में न्याय और सुख–शांति की स्थापना होती है। यही कारण है कि भारतीयों ने सब प्रकार की शक्ति प्राप्त करके भी कभी संसार को गुलाम बनाने की बात नहीं सोची और न कत्लेआम द्वारा किसी अन्य राष्ट्र का नामो–निशान मिटा देने का प्रयास किया। कोई समय ऐसा भी था कि संसार भर के धन का केंद्र भारत ही था और यहाँ सचमुच सोने और रत्नों के मंदिर और महल बनाए गए, पर उसने धन को अपना आदर्श कभी नहीं बनाया और उसके द्वारा अन्य देशों को अपने अधिकार में लाने की योजना कभी नहीं बनाई गई। सब प्रकार के सांसारिक वैभव को भोगते हुए भी उसने सदैव यह ख्याल रखा कि उसके ऊपर एक और सत्ता उसे दंड दिए बिना नहीं छोड़ेगी। इसी आध्यात्मिक भावना के आधार पर उसका जीवन सदैव संयमयुक्त बना रहा और वह सब मनुष्यों को ही नहीं समस्त प्राणियों को एक ही परम पिता के बनाए मान कर, करूणा और प्रेम का पात्र समझता रहा।[42]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :—

1. रमन बिहारी लाल और गजेन्द्र सिंह तोमर, शिक्षा के दार्शनिक, समाजशास्त्रीय और आर्थिक आधार, रस्तौगी पब्लिकेशन्स, 1998, पृ0 237
2. कांबके द्वारकादास निवृत्ती, मनोज सोनकर के काव्य में सामाजिक चेतना, 2011, पृ0 51—52 http://hdl.handle.net/10603/91290
3. डॉ. एस. पी. चौबे, शिक्षा के दार्शनिक, ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय आधार, लायल बुक डिपो, 1995, पृ0 58—59
4. शम्भूरत्न त्रिपाठी, समाज शास्त्र के मूलाधार, किताब महल, 1962, पृ0 33
5. सत्यकेतु विद्यालंकार, समाजशास्त्र, श्री सरस्वती सदन, 1972, पृ0 74
6. महादेव प्रसाद, समाज दर्शन, चाँद कार्यालय, 1994, पृ0 5
7. स्वर्णलता, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि, विवेक पब्लिशिंग हाउस, 1975, पृ0 2
8. डॉ. कुँवरपाल सिंह, हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना, पांडुलिपि प्रकाशन, 1976, पृ0 17
9. डॉ. नत्थूलाल गुप्त, महाभारत एक समाजशास्त्रीय अनुशीलन, पृ0 29
10. शशिभूषण सिंहल, हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ, विनोद पुस्तक मंदिर, 1988, पृ0 13
11. एच. पी. फेयर चाइल्ड, डिक्शनरी ऑफ सोश्योलॉजी, फिलोसोफिकल लाइब्रेरी, 1944, पृ0 300
12. विद्याभूषण, समाजशास्त्र के सिद्धान्त, किताब महल, 1979, पृ0 68
13. सी. एच.कूले, दि सोशियल प्रोसेस, पृ0 28
14. ई.एच. कार, इतिहास क्या है : अनुवादक—अशोक चक्रधर, पृ0 23 https://chakradhar.in/books/translation/itihaskyaahai
15. किंग्सले डेविस, ह्यूमन सोसाइटी, कोलियर मैमिलन लिमिटेड, 1949, पृ0 24
16. R.M. Maclver page, Socicty, New york holt, Rinehart and Winston, 1961, P. 8
17. डॉ. एस.पी. चौबे, शिक्षा के दार्शनिक, ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय आधार, लायल बुक डिपो, 1995, पृ0 58
18. डॉ. मंजुला गुप्ता, ऋग्वेद, मंडल—10, सूक्ति—90, मंत्र—12 उद्धतः हिन्दी उपन्यास समाज और व्यक्ति का द्वन्द्व, पृ0 9
19. श्रीमती पुलिकोंड कमला साई, अमृतलाल नागर के उपन्यासों में सामाजिक चेतना, 2016, पृ0 14 http://hdl.handle.net/10603/104632
20. जगदीशचन्द्र, निराला—काव्य में सांस्कृतिक चेतना, अभिनव प्रकाशन, 1979, पृ0 79
21. डॉ. मनमोहन शर्मा, भारतीय संस्कृति और साहित्य, पृ0 14
22. सत्यप्रकाश, मानक अंग्रेजी हिन्दी कोश, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1983, पृ0 97

23. वासुदेवशरण अग्रवाल, कला और संस्कृति, लोकभारती प्रकाशन, 1952, पृ0 5

24. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, साहित्य अकादमी, 1956, पृ0 15

25. डॉ. भगवतशरण उपाध्याय, भारत की संस्कृति की कहानी, राजपाल एंड सन्स प्रकाशन, 2012, पृ0 5–6

26. सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास,श्री सरस्वती सदन, 1976 पृ0 248

27. प्रभुदयाल मीतल, ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास भाग–1, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1962, पृ0 83

28. भीमसिंह मलिक, जायसी काव्य का सांस्कृतिक अध्ययन, 1978, पृ0 1 https://books.google.co.in/books?isbn=8170559235

29. बाबू गुलाबराय, भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, ज्ञान गंगा, 2008, पृ0 3–4
30. वही, पृ0 3

31. राहुल सांस्कृत्यान, बौद्ध संस्कृति, अध्याय–1, आधुनिक पुस्तक भवन, 1953, पृ0 3

32. E.R. A. Seligman, Encyclopaedia of the social sciences, Macmillan publishers, 1930, P. 112

33. Kimball Young, Social Psychology, American journal of sociology, Vol.-51, Issue-1, 1945, P. 7-8

34. E. B. Taylor, Primitiv Culture, Dover publication, Vol.-1, Reprint 2016, P. 1

35. N. Anestesi, Encyclopedia of education research, Macmillan company, 1969, P. 350

36. John Lewis Gillin, Culture Socialogy a revision of an introduction to sociology, Macmillan company, 1954, P. 139-140

37. Matthew Arnold, Culture and Anarchy, Smith elderand co., 1869, P. 24

38. ब्रेडफोर्ड स्मिथ, अनुवादक–कृष्णचन्द्र, अमेरिका की संस्कृति, पृ0 3–4

39. डॉ. पृथ्वीकुमार अग्रवाल, अनुवाद–भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, पृ0 7

40. डॉ. बैजनाथ पुरी, सुदूरपूर्व में भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, चौखम्भा प्रकाशन, 1962, पृ0 2

41. पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, भारतीय संस्कृति एक जीवन दर्शन, युग निर्माण योजना गायत्री, 2005, पृ0 3–4

42. वही, पृ0 6

तृतीय अध्याय

जगमग दीपज्योति में
अभिव्यक्त सामाजिक चेतना

तृतीय अध्याय

‘जगमग दीपज्योति’ में अभिव्यक्त सामाजिक चेतना

3.1 चेतना से अभिप्राय

3.2 सामाजिक चेतना : अर्थ एवं परिभाषा

3.3 सामाजिक चेतना का स्वरूप

3.4 ‘जगमग दीपज्योति’ में चित्रित विविध विधाओं में अभिव्यक्त सामाजिक समस्याएँ, सन् (2004 से 2014 तक)

- 3.4.1 नारी से सम्बन्धित समस्याएँ
  - 3.4.1.1 नारी पर हो रहा अत्याचार
  - 3.4.1.2 नारी शिक्षा
  - 3.4.1.3 बलात्कार
  - 3.4.1.4 भ्रूण हत्या
  - 3.4.1.5 लिंग–भेद
- 3.4.2 पारिवारिक समस्याएँ
  - 3.4.2.1 टूटते व बिखरते परिवार
  - 3.4.2.2 वृद्धावस्था
- 3.4.3 निम्न वर्ग के परिवारों की समस्याएँ
  - 3.4.3.1 गरीबी
  - 3.4.3.2 बाल–मजदूरी
  - 3.4.3.3 भीख मांगना
- 3.4.4 युवाओं से सम्बन्धित समस्याएँ
  - 3.4.4.1 पथ–भ्रष्ट होते युवा
  - 3.4.4.2 रुचि के विपरीत शिक्षा ग्रहण करने से मानसिक तनाव
  - 3.4.4.3 मद्यपान
- 3.4.5 दहेज प्रथा
- 3.4.6 पर्यावरण प्रदूषण
- 3.4.7 जातिगत भेदभाव
- 3.4.8 आतंकवाद
- 3.4.9 भ्रष्टाचार
- 3.4.10 जीव हत्या
- 3.4.11 हिन्दी भाषा का गिरता स्तर

तृतीय अध्याय
जगमग दीपज्योति में अभिव्यक्त सामाजिक चेतना

3.1 चेतना से अभिप्राय :—

'चेतना' शब्द बहुत ही व्यापक है। 'चेतना' शब्द की उत्पत्ति 'चित्त' शब्द से हुई है। इसका अर्थ 'चित्त' या 'मन' होता है। अतः 'चेतना' का अर्थ 'चित्त' या 'मन' के विशेष भाव या उसकी विशेष अनुभूति से है। चेतना का सम्बन्ध मानव की कुशाग्र बुद्धि चिन्तनशील प्रवृत्ति तथा आत्मानुभूति से है। मनुष्य चेतन शक्ति के द्वारा ही समाज में सम्बन्ध बनाता है। अतः समाज में रहते हुए समाज को नियमित करना तथा मानवता के अनुकूल बनाना ही चेतना है।[1]

'चेतना' शब्द मनोविज्ञान से जुड़ा है। इसका सामान्य अर्थ — जागृत अवस्था से है। व्याकरणिक दृष्टि से यह स्त्रीलिंग शब्द है। इस शब्द में 'चित्' धातु व 'ल्युट्' प्रत्यय है। अंग्रेजी भाषा में इसका समानार्थी शब्द Conscious है। हिन्दी में इसके पर्यायवाची शब्द है — बुद्धि, ज्ञान, चैतन्य, सुधि, होश, चेतन, जागरूकता, स्मृति आदि। चेतना शब्द के विभिन्न अर्थों से यह ज्ञात होता है कि यह मनुष्य के मन की जागृत अवस्था है। चेतना का मूल स्थान मानव मस्तिष्क है और मस्तिष्क की तीन स्थितियाँ है — चेतन, अवचेतन और अर्धचेतन। मनुष्य की चेतन अवस्था ही मनुष्य को क्रियाशील बनाती है और उसे विभिन्न परिस्थितियों व घटनाओं के प्रति प्रतिक्रियात्मक बनाती है। जबकि अचेतन और अर्धचेतन मन में इच्छाएँ व भावनाएँ सुप्त अवस्था में रहती है, जिन पर मनुष्य का कोई अधिकार नहीं होता।

चेतना मनुष्य मात्र का एक ऐसा गुण है जो उसे निर्जीव जड़ पदार्थों से अलग करती है। मनुष्य के क्रिया—कलापों व सामाजिक आचरण के ज्ञानपूर्ण तथा विवेकशील निर्णय को चेतना का परिणाम ही माना जा सकता है।[2]

चेतना के सम्बन्ध में **आचार्य जैन** का मानना है— ''चेतना मानव मस्तिष्क में निवास करने वाला वह तत्त्व है, जिसके द्वारा मनुष्य को स्वयं अपने बारे में, अपने आस—पास के वातावरण के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार चेतना के लिए केवल मनुष्य का मस्तिष्क ही नहीं वस्तुओं, पदार्थों का होना भी जरूरी है, जिससे मनुष्य का मस्तिष्क प्रभावित हो सके।''[3]

संक्षेपतः आज व्यवहार के स्तर पर जो प्रदेय है, अनुभूति के स्तर पर वही चेतना है। विभिन्न विद्वानों तथा शब्दकोशों के अनुसार चेतना का शाब्दिक अर्थ बुद्धि, होश, ज्ञान, चेत आदि ही है, क्योंकि विचार और उद्वेलन का दूसरा नाम ही चेतना है। अतः

कहा जा सकता है कि चेतना मनुष्य में उपस्थित वह तत्त्व है जिसके कारण उसे सभी प्रकार की अनुभूतियाँ प्राप्त होती है। चेतना स्वयं वस्तुओं का ज्ञान न होकर ज्ञान करवाने का साधन है। चेतना से ही मनुष्य चिन्तन मनन करता है। चेतना से प्रेरित होकर ही मानव देखता, सुनता, समझता और अनेक विषयों पर विचार प्रकट करता है। अतः यह कहना अनुचित न होगा कि चेतना के अभाव में व्यक्ति कोई भी ऐसा कार्य कर सकता है, जो उसकी मृत्यु का कारण भी बन सकता है। चेतना मन की वह शक्ति है जो मनोजगत् के सूक्ष्म भावों एवं विचारों के साथ–साथ बाह्य जगत् के पदार्थों, विषयों और व्यवहारों का ज्ञान करवाती है। चेतन शक्ति द्वारा मनुष्य समाज में अपने सम्बन्ध स्थापित करता है। चेतना निरन्तर परिवर्तनशील होती है। समाज के विकास के साथ–साथ मनुष्य की चेतना में भी परिवर्तन होते रहते है। चेतना व्यक्ति में एक ऐसी आवश्यक वृत्ति है जिसके आधार पर वह महत्त्वपूर्ण निर्णय लेता है। चेतना मनुष्य में सदैव क्रियाशील रहती है और उसे आस–पास के वातावरण को समझने की शक्ति प्रदान करती है। चेतना के द्वारा ही मनुष्य को समस्त प्रकार की अनुभूतियाँ प्राप्त होती हैं।

3.2 सामाजिक चेतना : अर्थ एवं परिभाषा :–

सामाजिक चेतना वह अपरिभाषेय समझ है, जो अपने से भिन्न अन्य पदार्थों का ज्ञान या संवेदनाओं को ग्रहण कर सके। सामान्य तौर पर सामाजिक चेतना का तात्पर्य सामाजिक जागरण, विकास एवं उन्नति की भावना से है।[4]

सामाजिक चेतना को अंग्रेजी में सोसियोकॉन्सनेस (Sosiyokaainsanes) कहते हैं। हिन्दी में यह दो शब्दों 'समाज और चेतना' के मेल से बना है। 'सामाजिक चेतना' से तात्पर्य सामाजिक जागरूकता से है। समाज की परिस्थितियों और समस्याओं के प्रति मानव की जागृति ही सामाजिक चेतना कहलाती है। सामाजिक चेतना जागरूक वातावरण के सम्पर्क से ही विकसित होती है। अतः यह सामाजिक जागरण के बाद की ही स्थिति है, क्योंकि जागरण से पहले वह अवचेतन की अवस्था में अर्थात् ज्ञानशून्य की स्थिति में रहती है। 'मानव जब किसी घटना या किसी बात के प्रभाव से जाग जायेगा या उसमें जागरण पैदा होगा तभी इसमें चेतना अर्थात् ज्ञानत्व मनोवृत्ति का विकास होगा।'[5]

सामाजिक चेतना को लेकर 'रत्नाकर पाण्डेय' लिखते हैं, – ''पशुओं से भिन्न अर्थात् जनसमूह अथवा जन समाज की ज्ञानात्मक मनोवृत्ति का नाम सामाजिक चेतना है।''[6] ''सामाजिक चेतना अभावात्मक या नकारात्मक नहीं होती। यह प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान रहती है, परन्तु रूढ़ि, अशिक्षा, अभाव के कारण दुष्प्रभावित व कुण्ठित हो जाती है। इस दुष्प्रभाव से मुक्त रहना और कुण्ठा को अपनी अन्तर्वृत्ति से तिरोहित बनाए रखना ही सामाजिक चेतना है।''[7]

अतः आदिकाल से समाज में चली आ रही पुरानी परम्पराएँ, रूढ़ियाँ और संस्कारों आदि के प्रति कुण्ठाग्रस्त जनता के जीवन में आशा, प्रेरणा, आस्था और स्फूर्ति का संचार जागृत कर उन्हें नया पथ–प्रदर्शित करना सामाजिक चेतना का कार्य है। इस तरह 'सामाजिक चेतना' समाज में व्याप्त वैषम्य को समाप्त करके उसे जड़ सहित उखाड़ फेंकने में सहायता करती है। समाज के बदलते जीवन मूल्यों और परिस्थितियों का निराकरण कर, समाज को नवीन स्वरूप प्रदान करना भी इसी सामाजिक चेतना का महत्त्वपूर्ण कार्य है। आज जो कुछ समाज में परिवर्तन, सुधार, विकास, प्रगति आदि हम देख रहे हैं वह सब सामाजिक चेतना के ही परिणामस्वरूप हुआ है। इस प्रकार सामाजिक चेतना **''न यह केवल समूह के सामाजिक नियन्त्रण से सम्बन्धित है अपितु समूह के सदस्यों के पारस्परिक व्यवहार पर भी प्रकाश डालती है।''**[8]

डॉ. कुँवरपाल सिंह का विचार है कि –''सामाजिक चेतना सरित प्रवाह की तरह विकसित होती चलती है, यह चेतना विच्छिन्न नहीं होती, बल्कि भिन्न–भिन्न सामाजिक समस्याओं, राजनीतिक गतिविधियों, धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विषमताओं से सम्बन्धित नागरिक जीवन की समानतामूलक विकासात्मक भावना ही सामाजिक चेतना है।''[9]

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी ने इस पर अपना विचार इस प्रकार दिया–सामाजिक चेतना व्यक्ति की भी हो सकती है और समाज की भी। व्यष्टि चेतना जब समष्टि पर छा जाती है, तब वह सामाजिक चेतना बन जाती है। अतः ''वैयक्तिक एवं आत्मनिष्ठ चेतना की तुलना में सामाजिक चेतना अधिक मूल्यवान है।''[10]

देवराज पथिक का मानना है –''मानव के मन में चेतना का अस्तित्व विद्यमान है, परन्तु रूढ़ि, परम्परा, अशिक्षा और अभावों के परिणामस्वरूप यह मृतप्रायः या कुण्ठित हो जाती है। इस दुष्प्रभाव एवं कुण्ठा से मुक्ति का स्वरूप ही सामाजिक चेतना है।''[11]

सामाजिक चेतना से मनुष्य को आवश्यक ज्ञान संस्कृति और विचारधारा के प्रति जागृति का आभास होता है जिसके कारण व्यक्ति चैतन्य होकर जीवन पर्यन्त विकास के पथ पर दिशा भ्रमित नहीं होता।

अंततः सामाजिक चेतना एक निरन्तर विकासमान प्रक्रिया है जिसका साहित्यिक वहन विभिन्न विधाओं के रूप में प्रकट होता है। सामाजिक चेतना मानव एवं उनकी व्यक्तिगत चेतना द्वारा विकसित तथा समृद्ध होती है। व्यक्तिगत चेतना सामाजिक चेतना के विकास का साधन है। इसीलिए उस पर व्यक्तियों का प्रभाव रहता है जिन्होंने उसके निर्माण में योगदान दिया है। कह सकते है कि व्यक्तिगत चेतना में यथार्थ का जो स्वरूप उभरता है उसमें वह सामाजिक चेतना से प्रभावित रहता है। सामाजिक चेतना समाजगत होने के साथ–साथ उसके धर्म एवं आर्थिक परिस्थितियों से प्रेरित हो सकती है। वस्तुतः सामाजिक चेतना अत्यन्त जटिल है और उसे केवल अर्थ व्यवस्था का ही पर्याय नहीं माना जा सकता। व्यक्ति की चेतना विकास होने के कारण प्रत्येक युग में

बदलती रहती है। समाज के बाह्य–जगत का और प्रकृति का अभिव्यक्त अनुभव वस्तुतः साहित्य की अन्तर्निहित चेतना का तत्त्व है। इसीलिए सम्पूर्ण मानव समाज में साहित्यकार को अधिक सजग, सचेत, चेतन, विद्रोही और आन्दोलनकारी माना जाता है।

चेतन मन ही समाज में सूझ–बूझ से भले–बुरे का भाव समझ कर मनुष्य के रूप में आगे बढ़ता रहता है। सकारात्मक चेतन मन विकास की ओर अग्रसित करता है। नकारात्मक चेतन, मन की सोच को पथ भ्रष्ट भी करता है। जो कल्याण एवं मंगल करने की बजाए विकास की गति में बाधक होता है।

3.3 सामाजिक चेतना का स्वरूप :–

सामाजिक चेतना का स्वरूप विस्तृत एवं व्यापक है। सामाजिक संदर्भ में सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति शाश्वत, मांगलिक और सर्वग्राहा है। इस चेतना के अंतर्गत मानव मन में उत्पन्न ज्ञानात्मक, भावनात्मक एवं क्रियात्मक सामाजिक परिवर्तनों की संपूर्ण मानवतावादी भावना समाहित हो जाती है। सामाजिक चेतना और मानव के सामाजिक चरित्र में मौलिक सम्बन्ध होता है। सामाजिक चेतना के कारण ही हरेक व्यक्ति सामाजिक प्रतिष्ठामूलक कार्य संपादित करता है। सामाजिक चेतना व्यक्ति को जीवित रखती है और उसके चरित्र के बल पर सामाजिक संगठन को दृढ़ बनाती है। जिस संगठन के द्वारा समाज की वास्तविकता व्यक्त होती है। सामाजिक चेतना के द्वारा प्रत्येक सामाजिक प्राणी सोचता, समझता और कार्य करता है।[12]

सामाजिक चेतना किसी भी सामाजिक व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए जरूरी भाव है। सामाजिक चेतना मात्र समझ ही नहीं देती बल्कि वह सामाजिक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए तथा आगे बढ़ने के लिए प्रेरणा भी देती है। कुण्ठाग्रस्त जीवन में आशा और विश्वास जागृत करके इन्हें एक सूत्र में पिरोना ही सामाजिक चेतना का स्वरूप है।

सामाजिक चेतना व्यक्तिमूलक और समाजमूलक दोनों रूपों में रहती है। व्यक्ति–चेतना, सामाजिक चेतना का एक रूप है। व्यक्तिमूलक सामाजिक चेतना व्यक्ति के दो छोरों को प्रकट करती है। एक छोर उसके क्षुद्र व्यक्तित्व का है और दूसरे छोर पर वह विराट व्यक्तित्व धारण कर सकता है।

व्यक्ति जितने अंशों में सामाजिक चेतना को ग्रहण करता है उतना ही उसका जीवन समाज–सापेक्ष होता है। जब व्यक्ति स्व–चेतना में केन्द्रित होकर समाज के स्वार्थ के विपरीत होता है, तब समाज–विरोधी स्थिति रहती है। व्यक्ति–चेतना जब अति व्यक्तिवादी होती है तब समाज का बाह्य व्यक्तित्व उभरता है।[13]

सामाजिक चेतना लोगों के सामाजिक चरित्र की अभिव्यक्ति है। लोगों का सामाजिक जीवन दार्शनिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक तथा कलात्मक आदि पहलुओं से प्रभावित

एवं संचालित होता है। समाज में रहने वाले लोगों के व्यवहार, स्वभाव, विचार एवं सिद्धान्त से ही लोगों का सामाजिक चरित्र बनता है। इसलिए सामाजिक चेतना सामाजिक चरित्र का ही परिणाम होती है। महान विचारक **'मेघ'** ने सामाजिक चेतना के स्वरूप को स्पष्ट किया है, ''**मनुष्य अपने तात्कालिक अनुभवों का अतिक्रमण करने पर ही चेतना प्राप्त करता है। यही चेतना समाज के इतिहास तथा मानवता के इतिहास के नियमों से समृद्ध होकर सामाजिक चेतना बनती है।**''[14]

सामाजिक चेतना के निर्माण एवं विकास में समय लगता है। किसी भी सुधार को समाज शीघ्र नहीं स्वीकार करता। पर जब अनेक मत उससे प्रभावित होते है तो धीरे–धीरे विरोध की स्थिति कम हो जाती है और सामाजिक चेतना के रूप में वह स्वीकार कर ली जाती है। उदाहरण के लिए 19 वीं शताब्दी में विधवा विवाह का समर्थन करना भी दुस्साहस समझा जाता था। लेकिन बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक तक आते–आते इसे एक ज्वलंत समस्या का रूप मिला और वह स्थिति बनी कि यह समस्या कोई समस्या नहीं रही। समय के साथ ही सामाजिक मान्यताएँ भी परिवर्तित होती रहती है और मान्यताएँ जब स्वीकार कर ली जाती हैं तो वे युग चेतना के अभिन्न अगं बन जाती है।

सन् 1857 की क्रांति से भारत की सामाजिक चेतना ने एक नया मोड लिया। **राजा राममोहनराय** ने सामाजिक चेतना के विकास के लिए सती–प्रथा का विरोध किया। **दयानन्द सरस्वती** ने आर्य–समाज की स्थापना के द्वारा वैदिक स्मृतियों को सारे देश में प्रतिष्ठित किया। **विवेकानन्द** ने भारत की समग्र चेतना को आध्यात्मिक और भौतिक, दोनों शक्तियों को संतुलित रूप प्रदान किया। इस प्रकार सामाजिक चेतना में परिवर्तन, व्यक्ति की संपूर्ण विचारधारा को प्रभावित करता है।[15]

विश्व में कई प्रकार की क्रांतियाँ हुई है – औद्योगिक क्रांति, प्रौद्योगिक क्रांति, आर्थिक क्रांति, सांस्कृतिक क्रांति आदि। सभी क्रांतियों का आधार एक सशक्त वैचारिक शक्ति है। विभिन्न राष्ट्रीय आंदोलनों, दास प्रथा, जाति प्रथा, आर्थिक विषमता, भ्रष्टाचार या किसी भी असमानता के खिलाफ चल रहे अभियान व उन अभियानों की सफलता ही सामाजिक चेतना की अवस्था को परिलक्षित करते है। सामाजिक चेतना पर **'विनोबा भावे जी** का विचार है – परमेश्वर की यही इच्छा है कि मानव समाज सदा चिंतनशील रहे। इसलिए नयी–नयी समस्याएँ मानव के सामने खड़ी होती है और उसे नये–नये आंदोलन करने पड़ते है। नयी–नयी समस्याएँ खड़ी होना, यही मानव की चेतना का लक्षण है। यदि समस्त समस्याएँ खत्म हो जाए तो समझ ले मानव जड़ बन जाएगा। जड़ पत्थर के सामने कोई समस्याएँ नहीं होती पर मानव चेतन है, इसलिए उसके समक्ष सदा समस्याएँ रहेगी।'[16]

नागार्जुन जी के सामाजिक चेतना पर विचार है – 'सामाजिक चेतना विच्छिन्न न होकर बहते हुए जल की भाँति लगातार विकसित होती चली जाती है तथा भिन्न–भिन्न व्यक्तियों से अपना संपर्क बनाती हुई अपने पथ पर बढ़ती जाती है। मानव समाज की सामाजिक समस्याओं, राजनीतिक उठा–पटक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक असमानताओं से सम्बन्धित नागरिक जीवन की समानतामूलक विकास की ओर अग्रसर भावना ही सामाजिक चेतना कहलाती है।'[17] 'उसे मानव समाज की ज्ञानात्मक वृत्ति मानते है, जिसमें समाज जनता के आकस्मिक जमावड़े या समूह को नहीं कहा जा सकता अपितु उन एकत्रित लोगों का एक निश्चित उद्देश्य या लक्ष्य होता है जिसके लिए वे मिलकर काम करते है। मानव समाज कई बार विभिन्न धर्मों एवं भाषाओं में विभाजित होने के कारण पतन की अवस्था में आ जाता है, तब ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों में जो प्रतिभा–ज्योति समाज का मार्गदर्शन करती है, वही सामाजिक चेतना का वाहक कहलाती है।'[18]

इस प्रकार सामाजिक चेतना ही सामाजिक विषमताओं को निर्मूल कर, समाज के नये रूप के निर्माण में सहायक होती है। सामाजिक चेतना को जागृत करने के लिए कभी–कभी प्राणों का उत्सर्ग भी करना पड़ सकता है। सामाजिक चेतना वह शक्ति है, जो युग–विशेष के उत्थान–पतन, उन्नति–अवनति, प्रगति–अप्रगति, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय, आर्थिक और सामाजिक जड़ परंपराओं, रूढ़ रीति–रिवाजों, मान्यताओं के प्रति मनुष्यों की, समाज की रुचि–अरुचि को प्रकट करती है। चेतना ही समाज में मानवीय भावनाओं को जागृत करने में भी सहायक होती है। चेतना का विकास मनुष्य, समाज और परिस्थितियों की सापेक्षता में ही संभव है। सामाजिक चेतना के बिना मनुष्य का जीवन निराधार होता है। अतः कहा जा सकता है कि समाज को सही दिशा की ओर ले जाना तथा समाज की उन्नति का कार्य सामाजिक चेतना पर ही निर्भर करता है।

3.4 'जगमग दीपज्योति' में चित्रित विविध विधाओं में अभिव्यक्त सामाजिक समस्याएँ (सन् 2004 से 2014 तक) :–

समाज मनुष्य के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि समाज ही मनुष्य का रक्षक है। मनुष्य आवश्यकताओं का पुँज है यदि उसकी प्रमुख आवश्यकताएँ पूरी न हो तो जीवन सुरक्षित न रहे। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह अन्य व्यक्तियों से सम्बन्ध स्थापित करता है और उनका सहयोग प्राप्त करके अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह हर प्रकार के कार्य करने को तैयार रहते है चाहे वे कार्य समाज के लिए हानिकारक ही क्यों ना हो, इन कार्यों की वजह से समाज में कई समस्याएँ उत्पन्न होने लगती है जो समाज के लिए बहुत अधिक विनाश्कारी साबित होती है। इनको ध्यान में रखते हुए मैं, **'जगमग दीपज्योति'** पत्रिका के माध्यम से विभिन्न साहित्यकारों ने अपनी विभिन्न विधाओं में सामाजिक समस्याओं को लेकर अपने

जो–जो विचार प्रस्तुत किये है, उन समस्याओं पर प्रकाश डालकर उनके द्वारा बताये गये सुझाओं का अध्ययन कर समाज में एक नयी चेतना जागृत करने का प्रयास करूँगा। यही मेरे शोध कार्य का मुख्य लक्ष्य होगा। पत्रिका में अभिव्यक्त प्रमुख समस्याएँ निम्न प्रकार से है।

3.4.1 नारी से सम्बन्धित समस्याएँ

नारी पर हो रहा अत्याचार | नारी शिक्षा | बलात्कार | भ्रूण हत्या | लिंग–भेद

3.4.1.1 नारी पर हो रहा अत्याचार :–

'जगमग दीपज्योति' मासिक पत्रिका अपने लेखक एवं लेखिकाओं के माध्यम से सामाजिक चेतना के विभिन्न पहलुओं पर विचार विमर्श समाज के सामने रखती आई है जिसमें एक पहलू है **''नारी समस्या''** का। चूँकि नारी समस्याओं में नारी अत्याचार का प्रतिशत बहुत बड़ा है, अतः कुछ लेखकों एवं लेखिकाओं ने इसी सामाजिक कुरीति को दमदार आवाज देने की कोशिश की है। जिनमे प्रमुख लेखक एवं लेखिकाओं के नाम निम्न है –

<u>कथा</u>	<u>काव्य</u>
➢ नीलिमा टिक्कू–अंधविश्वास की आड़ में ➢ श्रीमती विनोदिनी गोयनका–आत्मनिर्भर ➢ श्रीमती मोहिनी राजदान–स्वाभिमानी कमला ➢ सावित्री चौधरी–आखिर क्यों	➢ डॉ. राम बहादुर 'व्यथित'–अग्नि परीक्षा ➢ प्रो. डॉ. तारा लक्ष्मण गहलोत–तब से...कब तक... ➢ डॉ. श्रीमती अनीता सकलेचा–नारी व्यथा ➢ आशा वर्मा–नारी ➢ पुष्पा शर्मा 'आलोक'–नारी विडम्बना ➢ सुकीर्ति भटनागर–नारी व्यथा
<u>लेख</u>	<u>स्थाई स्तंभ</u>
➢ डॉ. वर्षा पुनवटकर–नारी की व्यथा ➢ डॉ. रेणु शाह–मानवाधिकार और साहित्य में नारी लेखन ➢ डॉ. तारालक्ष्मण गहलोत–नारी जीवन अन्दर का सच ➢ हीरालाल जैन–नर–नारी समता और भारत ➢ अमृता जोशी–नारी की स्थिति ➢ अंजु दुआ 'जैमिनी'–आधुनिकता की दौड़ में पीछे भारतीय नारी ➢ श्रीमती मिथलेश जैन–कब होगी महिलाओं की हिंसा से मुक्ति ➢ कमल कपूर–बदल रहें हे हवाओं के रुख	➢ सुमतिकुमार जैन– मेरी बात ➢ प्रो. डॉ. तारालक्ष्मण गहलोत–अतिथि संपादक की कलम से ➢ प्रो. श्यामलाल कौशल–महिला होना गुनाह है क्या ? ➢ प्रभा जैन–बोलो मैंने क्या गुनाह किया ➢ आयोजिका डॉ. रचना गौड 'भारती'–शिक्षित कामकाजी महिलाओं का शोषण : क्यों और कब तक?

कथाओं में नारी पर हो रहा अत्याचार :–

नीलिमा टिक्कू अपनी कथा **'अंधविश्वास की आड़ में'** के माध्यम से बता रही है कि बिन माँ–बाप की एक लड़की से उसके चाचा–चाची घर का सारा काम करवाते है और अगर उसमे थोड़ी भी देरी हो जाती है तो वे उसे जानवरों की तरह मारते हैं और गालियाँ देते हुए उसे डायन जैसे असभ्य शब्दों का प्रयोग करते है। उसकी शादी के लिए लड़का भी योग्य नहीं देखते और उसकी शादी कर देते है परिणाम स्वरूप वह ससुराल में भी अपने जेठ–जेठानी द्वारा प्रताड़ित होती है। जब उसका पति टी.बी. के कारण मर जाता है तो उसके ससुराल वाले उसे डायन बताकर उसको पीटते है, उस पर कई तरह से अत्याचार करते है और अन्त में अवसर देख कर उसे कुएं में फेककर मार डालते है।[19]

श्रीमती विनोदिनी गोयनकाअपनी कथा **'आत्मनिर्भर'** में कहती है कि जब किसी लड़की की शादी होती है तो वह कई सपने सजाती है। मगर ससुराल में जाते ही वह सब चूर–चूर हो जाते है। विवाह के कुछ समय पश्चात ही उस पर टोका–टोकी शुरू हो जाती है, हर काम पर पाबन्दियाँ लगादी जाती है। अगर वह सभी बंधन मानने से इंकार कर दे तो उस पर जुल्म और बढ़ने लगते है। सास–ससुर की मार सहनी पड़ती है, खाना–पीना बंद कर दिया जाता है तथा अपने माता–पिता के घर जाने के लिए ताने दिये जाते है। जब वह मानसिक तथा शारीरिक यातनाओं से तंग आकर अपने माता–पिता के घर जाती है तो उसे समाज की दुहाई देकर व बदनामी के ढ़र से वापस ससुराल भेज दिया जाता है। वापस ससुराल जाने के बाद तो उस पर अत्याचार और अधिक बढ़ जाते है जब वह इसका विरोध करती है तो उसके हाथ–पैर बाँधकर कमरे में बंद करके उस पर केरोसिन डालकर उसे जलाने की कोशिस करते है मगर वह किसी तरह वहाँ से बचकर पुलिस के पास चली जाती है और अपनी जान बचाती है तथा पुलिस वालों से आग्रह करती है कि वे उसकि रक्षा करे तथा अपने ससुराल वालों को सजा दिलवाएँ जिससे समाज में लोग अपनी बहुओं या पत्नियों पर मानसिक तथा शारीरिक अत्याचार करने से डरें।[20]

अपनी कथा **'स्वाभिमानी कमला'** में **मोहिनी राजदान** कहती है कि एक पिता आर्थिक रूप से सक्षम न होने के कारण अपनी बेटी की शादी उच्च परिवार में नहीं कर पाता और मजबूरन ऐसे परिवार में अपनी बेटी की शादी करता है जहाँ उसका पति पहले से ही शादीशुदा था तथा उसकी पत्नी मर चुकी थी। शादी होने के बाद जब कमला का गर्भ टहरता है तो भ्रूण परीक्षण से पता चलता है कि उसके गर्भ में लड़की है तब उसके ससुराल वाले गर्भपात कराने के लिए कहते है जब वह इसके लिए राजी नहीं होती और उनका विरोध करती है तो उसके ससुराल वाले उसे कई प्रकार की यातनाएँ देते है, उसके साथ नौकरों से भी बुरा व्यवहार किया जाता है। घर का सारा मुश्किल से मुश्किल काम उससे ही करवाया जाता है, आधे से ज्यादा समय उसे भूखा रखा

जाता है, सीढ़ियों से धकेला जाता है ताकि उसके पेट में पल रही बच्ची को नुकसान पहुँचे और वह जन्म से पहले ही मर जाए। इन सबसे भी वह नहीं मानती तो उस पर जेवर चुराने का झूठा आरोप लगा कर जेल में बन्द करवा देते है। तब उसे वहाँ भी पुलिसवालों की यातनाएँ सहनी पड़ती है। अंत में उसके पिता उसको अपने साथ ले जाते है पर वहाँ पर भी उसकी भाभियाँ उससे ईर्ष्या करती है और हर बात पर उसे ताने सुनाती रहती है। तब वह निणर्य करती है कि वह अपने पैरों पर खड़ी होगी और काम करेगी। इस तरह वह अपनी बेटी को जन्म देती है और उसे पढ़ा–लिखा कर आई.ए.एस. बनाती है।[21]

सावित्री चौधरी अपनी कथा **'आखिर क्यों?'** में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहती है कि आज समाज में औरत हर तरह से प्रताड़ित की जाती है हर बात पर उसे अपमानित होना पड़ता है। इसी तरह जब आभा बिना दहेज के अपनी पसंद के लड़के से शादी कर लेती है तो उसके ससुराल वाले उसे खरी–खोटी सुनाते है और सास, ननद बात–बात पर उसे ताने देती है। जब उसके पहला बच्चा लड़की होती है तो घर वालों के ताने व अत्याचार और अधिक बड़ जाते है, उसका पति भी उसको अपमानित करता है और उसकी नौकरी छुड़वा देता है। इस तरह के मन–संताप और क्लेश, दुखों से घबराकर एक दिन वह मरने की ठान लेती है मगर जब वह अपनी बेटी को देखती है तो उसका मन पिघल जाता है और वह अपनी बेटी को लेकर अपनी माँ के पास पहुँच जाती है और चेन की साँस लेती है।[22]

काव्य में नारी पर हो रहा अत्याचार :–

डॉ. राम बहादूर 'व्यथित' अपने काव्य **'अग्नि परीक्षा'** में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते है कि नारी तो भगवान की सुन्दरतम सृष्टि है प्रेम, शृंगार और करुणा की समष्ठि है वह तो जीवन भर अमृत बाँटती रहती है मगर बदले में उसे तिरस्कार, उत्पीड़न, अनाचार, दुराचार ही मिलता है। कभी उसे सती बनाकर जीवित ही जला दिया जाता है तो कभी स्टोव से जला दिया जाता है, कभी उसे दाँव पर लगा दिया जाता है, कभी चौराहे पर घसीटा जाता है, कभी अपने पति की ठोकरें खाती है तो कभी मयखानों में बेच दी जाती है। इस तरह उस पर अत्याचार किये जाते है आगे वह कहते हैं–

> विषमता का यह अंतदहि समाज को कब तक छलता रहेगा,
> द्रोपदी करती रहेगी आर्तनाद दुःशासन चीर हरता रहेगा?
> मूक सीता देती रहेगी अग्नि परीक्षा पुरुष का संदेह बढ़ता रहेगा।[23]

प्रो. डॉ. तारालक्ष्मण गहलोत का अपने काव्य **'तब से...कब तक...'** में मानना है कि नारी जब से पृथ्वी पर आई है तब से लेकर आज तक शोषित होती रही है, उत्पीड़न सहती रही है, कभी बहू, बेटी, पत्नी तो कभी माँ बनकर वह सबके लिए जीती

रही है। वह सदा छली गई, ठगी गई, आंचल में दूध और आँखों में आँसू लेकर सभी अत्याचारों को सहती रही है इसलिए वह कहती है–

कब तक सहोगी, छली जाती रहोगी,
कब तक ठगी जाओगी? आँसू बहाओगी?
उठो! जागो! अपनी शक्ति को पहचानों
सबला बनकर, सशक्त बनकर, शोषण मुक्त समाज का निर्माण करो।[24]

डॉ. श्रीमती अनीता सकलेचा अपने काव्य **'नारी व्यथा'** के माध्यम से कह रही है कि नारी सदा घुटी–घुटी सी रहती है, तड़प–तड़प कर जीती है, आँखों में आँसू बहते रहते है फिर भी किसी से कुछ नहीं कहती। वह सदा अपमान सहती है, मर–मर कर भी जीती रहती है कई बार तो वह आत्महत्या भी करने को मजबूर हो जाती है इस प्रकार वह अपने आप से भी डरती रहती है। वह सदा मर्यादा में रहती है, अग्नि परीक्षा देती है फिर भी दहेज की बलि चढ़ाई जाती है तथा अत्याचारों को चुप चाप सहती रहती है। अंत में वह कहती है–

वह देश भी उन्नत क्या होगा,
जिस देश में बहुएँ जलती है।[25]

आशा वर्मा अपने काव्य **'नारी'** के माध्यम से कहती है कि नारी की व्यथा बहुत ही दर्दनाक है अत्याचार की आग में वह सदियों से झुलस रही है वह चलती फिरती लाश के रूप में तड़प रही है। क्योंकि कभी उसे जमीन पर रेंगती चींटी समझकर पैरों तले रौंद दिया, कभी गुलाब का फूल समझकर बेदर्दी से तोड़ दिया तो कभी पानी समझकर जलती चिता पर फेंक दिया गया। औरत को दहेज की खातिर जलाया गया तो कभी पानी में डूबाकर मारा गया कभी फांसी पर झूला दिया गया। इस प्रकार कल कोई और मरी थी, आज कोई और मरी है, कल किसी और की बारी होगी, इसी प्रकार नारी पुरुष के अत्याचारों से मरती रहेगी। अन्त में वह अपनी पंक्तियों में कहती है–

इतना ना सताओ नारी को, कि वो कली से कलिका बन जाये
इतना ना जलाओ नारी को, कि वो आग से अंगारा बन जाये
इतना ना जकड़ों नारी को, कि वो फूल से शूल बन जाये
इतना ना रूलाओं नारी को, कि वो चंदन से चिंगारी बन जाये।26

अपने काव्य **'नारी विडम्बना'** में **श्रीमती पुष्पा शर्मा 'आलोक'** अपने विचारों के माध्यम से कहती है कि बेटी, बहन, माँ, पत्नी सभी रूपों में सदा नारी शोषण का शिकार होती रही है। उसके नारीत्व और स्वाभिमान को नियंत्रित, प्रतिबंधित करने के लिए सदा उसे मर्यादा में रखा गया। झूठी शान और मर्दानगी की आड में पुरुष ने कभी नारी को जीने नहीं दिया कभी उस पर तेजाब डाला गया तो कभी दहेज की आड में

बली चढ़ाई गई। कहने को तो संविधान ने नारी को समानता और सशक्तिकरण के ढ़ेरो अधिकार दिये है परन्तु जब भी उसने कानून की दुहाई दी तभी उसको शोषण का शिकार बनना पड़ा। इस प्रकार बाल्यकाल से जवानी तक, बालिका से माँ, दादी, नानी बनने तक और पढ़–लिख कर जीवन संगिनी बनने तक नारी शोषित होती रही है इसी कारण वे अन्त में कहती है–

नारी के आगे बढ़ने से ही देश आगे बढ़ेगा
नारी के पीछे हटने से देश पीछे हटेगा
नारी देश की शान है, जिसके हम भाई बेटे पति हैं
वह हमारा गौरव और अभिमान है
संस्कार संस्कृति नारी का वरदान है।[27]

सुकीर्ति भटनागर अपने काव्य **'नारी व्यथा'** में अपने विचार व्यक्त करती हुई कहती है कि समय बदल गया है पर अब तक नारी की स्थिति नहीं बदली अज्ञान, अशिक्षा के भंवर जाल में वह आज भी उलझी हुई है। वह जीवन यापन के लिए खेतों में काम करती है, कूड़ा बीनती है, बोझ उठाती है, रोड़ी कूटा करती है मालिक के अपशब्द सुनती है। परिजनों की सेवा करती है चुल्हा, चौका करती है मगर फिर भी उसका पति गाली–गलौच करने का मौका ढूँढ ही लेता है और उस पर रौब जमाकर उसके सारे पैसे हड़प लेता है तथा उस पर हाथ उठाता है। फिर वह कह रही है कि इस समाज में नारी हर काम पुरुष के समान करती है फिर भी उसे अपमान क्यों झेलना पढ़ता है। अतः–

देश वही है शिखर चूमता, नित करता है उत्थान।
मिलता जहाँ सदा नारी को, निज जीवन में सम्मान।।[28]

लेखों में नारी पर हो रहा अत्याचार :–

डॉ. वर्षा पुनवटकर अपने लेख **'नारी की व्यथा'** के माध्यम से कहती है कि आज का आंकलन करने हेतु अगर हम इतिहास के उन पन्नों को पलटे तो पाते हैं कि वैदिक काल के आरंभ से ही नारी की स्थिति दयनीय रही है। देश आजाद हुआ नारी के विकास में आजाद भारत ने नारी के लिए शिक्षा का मार्ग खोल दिया और दिया संविधान में बराबरी का दर्जा, मताधिकार एवं नारियों को दयनीयता से उबारने हेतु बने अनेक कानून। मगर परंपरा से लेकर आधुनिक युग तक का निष्कर्ष यह है कि स्त्रियाँ कहीं भी सुरक्षित नहीं है। मानसिक स्तर पर छल और शोषण होता रहा है। स्त्रियों के संरक्षण में बनाए गए कानून की सरे आम धज्जियाँ उड़ाई जा रही है। आज जो स्वच्छंदता या आधुनिकता के नाम पर सरकारी और गैरसरकारी संस्थानों में स्त्रियों के साथ जो यौन शोषण और अत्याचार चल रहा है। इसका मुख्य कारण है लम्पट और धूर्त किस्म के परुष सहकर्मी या अफसर।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपार्ट के अनुसार कामकाजी महिलाएँ हर जगह उत्पीड़न व अत्याचार का शिकार है। फ्रांस, अमेरिका, हंगरी जैसे देशों में तो महिलाएँ तंग आकर आत्महत्या तक के मार्ग का अवलम्बन करती है। ये तो हुई विश्व की बात किन्तु हमारे देश में अलग किस्म का सामाजिक ढांचा व मापदण्ड तथा वर्जनाएँ कुछ ज्यादा ही घटित होती है।[29]

डॉ. रेणु शाह अपने लेख **'मानवाधिकार एवं साहित्य में नारी लेखन'** में अपने विचार कुछ इस प्रकार व्यक्त करती है। उनके अनुसार नारी की दासता का इतिहास उत्तरवैदिक काल से शुरू हुआ था। मध्य युग में उसकी स्थिति अधिक दयनीय बनी। विदेश आक्रमणकारियों के अत्याचारों से वह उत्तरोत्तर अधिक से अधिक दासता के बंधन में जकड़ती गई और आज के इस वैज्ञानिक युग में भी नारी एक हद तक उपेक्षित ही है। इससे कभी गंभीर स्थिति सामंतवाद के दौर में बना दी गई। इस प्रकार भारतीय नारी **'आंचल में दूध और आँखों में पानी'** लिए पुरुष समाज के अत्याचारों से आक्रान्त रही। आज तक के विकसित कानून के बावजूद भी महिलाओं की प्रगति उनके शोषण और अन्याय की स्थिति में अंतर नहीं मिलता है। महिलाओं को जो भी मानवाधिकार दिए गए है उनमें अपराधिक अत्याचार जैसे बलात्कार–धारा 376, अपहरण–363 से 373, घरेलु अत्याचारों में दहेज–धारा 1961, मृत्यु–धारा 302/304, पत्नी की पिटाई, यौन दुराचार, विधवाओं/वृद्धाओं के साथ दुर्व्यवहार सामाजिक उत्पीड़न के संदर्भ में मादा भ्रूण की हत्या, गर्भ की जांच, संपत्ति के अधिकारों से वंचित रखना, दहेज प्रताड़ना तथा अपमान–धारा 294 से 354 आदि। काम–धंधे, नौकरी आदि में समानता के बावजूद भेदभाव, शिक्षा अधिकारों से वंचित रखना, महिलाओं का शोषण और उनके मानवाधिकारों को नकारना, समाज में उनके सम्मानपूर्ण स्थान की अनदेखी करना आदि। इन सारे मानवाधिकारों, संवैधानिक अधिनियमों के पारित होने के बावजूद आज भी नारी मानवी होने का गौरव प्राप्त नहीं कर पायी है। **महादेवी जी** के शब्दों में –**''जीने की कला नहीं आती इसीलिए वह शोषित होती आई है।''**[30]

'नारी जीवन अन्दर का सच' लेख में **प्रो. डॉ. तारालक्ष्मण गहलोत** का मानना है कि मानव समाज का इतिहास नारी की बदलती हुई परिस्थितियों और भूमिकाओं के इर्द–गिर्द ही बनता है। किसी समाज की प्रगति नापने का पैमाना भी उस समाज में नारी की स्थिति और उसके प्रति समाज के दृष्टिकोण से ही मापा जा सकता है, मानव विकास के इतिहास के आरम्भिक गलियारों, गुफायुग, पाषाण युग, आखेट युग, कृषि युग से लेकर आज के वैज्ञानिक विकासशील, अणु, परमाणु से कम्प्यूटर युग तक का कोई कालखण्ड़ क्यों न हो, नारी को अपने अस्तित्व हेतु सदा संघर्ष करना पड़ा है और करना पड़ रहा है। समाज और परिवार में पुरुष ने सदा नारी को दबा कर रखा है।

इतिहास के पन्नों पर दृष्टि डाले तो हमे लगता है कि सारी दुनिया में स्त्री की जाति केवल स्त्री ही है। आज भले ही समाज विकास का ढोल पीट–पीट कर हम

सामाजिक समानता, न्याय समान अधिकारों के साथ विश्व गाँव और जेन्डर इक्वालिटी की बात करते है, पर नारी आज भी भेदभाव व असमानता, शोषण व तिरस्कार का दंश झेल रही है और पूरे विश्व में उसकी पीड़ा एक ही प्रकार की है। देश काल व परिस्थितियों के अन्तर से उसकी पीड़ा का स्वरूप भले ही अलग–अलग हो पर उसकी भावनात्मक समस्याएँ गैर बराबरी के दर्जे की पीड़ा मूल रूप से एक ही है, सार्वभौमिक ही है। कालक्रम और देश भेद से समस्याओं का आकार प्रकार भले ही बदल जाय पर मूल में एक ही है। संसार में हर महिला कभी न कभी, किसी न किसी स्तर पर कुछ न कुछ दबाव जरूर झेलती है। वह अन्त में अपनी कविता '**शोषण का सच**' की पंक्तियों को उद्दत करते हुए कहती है कि नारी खुद अपनी ओर से अत्याचार का विरोध करे–

''नारी जागो मूक रहो मत, अब दुर्गा का रूप धरो तुम।
तुम्हें मारने हाथ ऊठे जो, उन्हें काट अब दूर करो तुम।।''[31]

'**नर–नारी समता और भारत**' लेख में **हीरालाल जैन** महिला वर्ग की हीन स्थिति का जिम्मेदार स्वयं महिला को मानते हुए कहते है कि बहू को जलाने की मुख्य गूनहगार महिला ही होती है। महिला ही महिला की सबसे बड़ी शत्रु होने का सदियों से रोल अदा करती आयी है। कहने को तो स्त्री परिवार की बराबर की भागीदार है पर हकीकत में स्त्री की घर परिवार में कोई सम्मानीय स्थिति नहीं है। पति प्रसन्न तो पटरानी, नहीं तो नौकरानी या दर–दर की भिखारी, पत्नी को पीटने का तो पति परमेश्वर को जन्म सिद्ध अधिकार हो गया। आज स्त्री पुरुष के पैर की जूती बनकर रह गई है जिसे वह जब चाहे बदल दे या फेंक दे। संतान पैदा करना ही उसका एक मात्र दायित्व रह गया है।[32]

'**नारी की स्थिति**' लेख में **अमृता जोशी** के विचार से आज भी नारी की स्थिति वहीं की वहीं है क्योंकि पहले भी उसके साथ अत्याचार होता था उसे शारीरिक, मानसिक, प्रताड़ना मिलती थी और आज भी ऐसा होता है, बदला है तो केवल उसका स्वरूप। इतने कानून बनने के बाद भी दहेज को लेकर नारी को प्रताड़ित किया जाता है। आज भी नारी पुरुषों की कुदृष्टि का शिकार होती है। नारी जहाँ थी आज भी वहीं हैं आज भी उसका शोषण होता है। पहले नारी देवदासी, मुजरेवाली थी, तो आज कॉल गर्ल, होटलों की डांसर है। इन सबके लिए जिम्मेदार कौन है पुरुष समाज या फिर स्वयं नारी? उस पर अत्याचार का ग्राफ ऊपर उठता जा रहा है, जिसका अर्थ सीधे–सीधे यही निकलता है नारी कल भी भोग्या थी आज भी भोग्या है।[33]

अंजु दुआ 'जैमिनी' अपने लेख '**आधुनिकता की दौड़ में पीछे भारतीय नारी**' में कहती है कि भारतीय समाज में स्त्रियों के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता है। आज नारी पुरुष के साथ बराबरी के हक के लिए लड़ रही है। कम्प्यूटर युग में जहाँ एक दूसरे के साथ संपर्क साधना बेहद आसान हो गया है वहीं आन्तरिक ग्रामीण अंचलों में

अभी भी पत्नी अपने पति के सामने सिर व चेहरे पर पर्दा डालकर रखती है। आज भी स्त्री का अपनी कोख पर अधिकार नहीं है। उसे अपनी छाया स्त्री को जन्म देने का अधिकार नहीं है। उसे मनपसंद जीवनसाथी चुनने का अधिकार नहीं है। उसे घरेलू मामलों में निर्णय लेने का अधिकार नहीं है। उसे वस्त्रों के चुनाव का अधिकार नहीं है। उसे अपने कमाए रुपयों को खर्च करने का अधिकार नहीं है। उसे बलात्कृत हो जाने पर बलात्कारी को सजा दिलवाने का अधिकार नहीं है। आज भी लड़की की इज्जत की पवित्रता पर लोगों की निगाहें रहती है। समाज की भारतीय स्त्रियाँ किस कोने से आधुनिक है? आधुनिकता का अर्थ समझकर उसे अपनाकर ही भारतीय स्त्रियाँ आधुनिक बन पाएगी।[34]

'कब होगी महिलाओं की हिंसा से मुक्ति?' लेख में **श्रीमती मिथलेश जैन** का मानना है कि आज के सभ्य समाज में महिला हिंसा से अधिक प्रांसगिक विषय हो ही नहीं सकता। विश्व के समस्त देश आज नारी उत्थान एवं महिला सशक्तिकरण की बात करते हैं पर क्या वास्तव में समाज में महिला एवं पुरुष का भेदभाव समाप्त हो गया है? वास्तविकता यह है कि आज भी महिला वर्ग उपेक्षा, प्रताड़ना, उत्पीड़न व हिंसा की शिकार हैं और यह प्रवृत्ति दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड्स ब्यूरो की वर्ष 2006 की रिपोर्ट के आंकड़े भयावह तस्वीर पेश करते हैं। वर्ष 2006 में महिलाओं के प्रति अपराध के कुल एक लाख 64 हजार 765 मामले दर्ज किए गए जिसमें 36617 बदसलूकी के मामले, 19348 बलात्कार, 17414 अपहरण, 7618 दहेज से जुड़े मामलों में मौतें और 63128 प्रताड़ना के मामले हैं। वर्ष 2005 में महिलाओं के प्रति अपराध के कुल 155553 मामले दर्ज हुए यानी वर्ष 2005 के मुकाबले 2006 में 5.9 फीसदी वृद्धि हुई। अतः वास्तविक परिप्रेक्ष्य में देखें तो घरेलू हिंसा रोकने के लिए महिलाओं के प्रति पुरुष के पारम्परिक दृष्टिकोण में परिवर्तन होना अति आवश्यक है। जब तक समाज पुरुष प्रधान रहेगा और महिलाओं को द्वितीय श्रेणी का नागरिक माना जाएगा, कोई भी कानून चाहे जितना भी सख्त हो बेमाईने ही रहेगा।[35]

कमल कपूर अपने लेख **'बदल रहें हे हवाओं के रूख'** में अपने विचार प्रकट करते हुए कहती है कि विगत चंद बरसों से एक प्रश्न कई उपप्रश्नों के साथ हर देश के, हर वर्ग की नारी के समक्ष कठघरे में खड़ा हो कर उत्तर मांग रहा है कि आखिर नारी किससे मुक्त होना चाहती है और यह नारी–मुक्ति–आंदोलन क्या है? क्यों है? और इसका उद्देश्य क्या है? और औचित्य क्या है? अपने अनुभव और अध्ययन के आधार पर इनके जवाब देती हुई कहती है कि पाश्चात्य–नारी और भारतीय नारी में धरा–अंबर का फर्क है। पश्चिम की नारी को अपनी शारीरिक सीमाओं की परवाह नहीं और न ही मातृत्व उसकी महत्वाकांक्षाओं के आड़े आते है। वह अपने पति से मुक्ति चाहती है मगर भारतीय नारी अपनी शारीरिक सीमाओं की परवाह करती है और अपने पति से मुक्ति नहीं चाहती बल्कि वह मुक्त होना चाहती है असुरक्षा की भावना से। उसे आज तक अबला अर्थात् बलहीन समझा जाता रहा है इस अबला छवि से मुक्ति चाहती

है और केवल श्रद्धा के दायरे से बाहर आना चाहती है। इसके अतिरिक्त पुरुष से नहीं उसके द्वारा दी जाने वाली शारीरिक और मानसिक प्रताड़नाओं से छुटकारा पाना चाहती है। उसके आक्षेपों से जबरन थोपे बंधनों से, उसके द्वारा लगाये जाने वाले मिथ्या दुश्चरित्रता के चाबुकों से मुक्त हो कर साँस लेना चाहती है। पुरुष के पशुवत शोषण या हिंसक प्रवृत्तियों और परोक्षतः सामाजिक आडंबरो और कुरीतियों, कुप्रथाओं की बीमारियों से मुक्त होना आज की नारी का लक्ष्य है। उस समूचे पुरुष–समाज से मुक्त होना चाहती है जो उसे उसके अधिकार देने से हिचक रहा है। वह मुक्ति चाहती है पुरुष के स्वार्थी वर्चस्व और उसकी सामंतशाही, अन्यायपूर्ण पुरुष–सत्तात्मक व्यवस्था से और रूढ़ियों से।[36]

स्थाई स्तंभ में नारी पर हो रहा अत्याचार :–

सुमतिकुमार जैन जी ने प्रत्येक वर्ष की जनवरी माह की पत्रिकाओं में स्त्री सम्बन्धी अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते है कि आज के तेजी से बदलते समय में भी भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति चिंतनीय हो गई है। स्त्री का बचपन हो या किशोरावस्था, यौवन हो या प्रौढ़ावस्था, वैवाहिक जीवन हो या वृद्धावस्था, स्त्री को कदम–कदम पर संघर्षरत रहना पड़ रहा है, स्त्री जन्मना आसान है पर जीना नहीं। त्रासदी भरे जीवन में अधिकतर स्त्रियाँ दुःख में जी रही है। वे किसी न किसी रूप में गरल पीने को मजबूर है। वर्तमान स्थिती में नारी के प्यार, समर्पण, ममता, सहनशीलता के स्थान पर कुण्ठाओं, शोषण, सामाजिक विसंगतियाँ, विकृत मानसिकता के स्वर सर्वत्र सुनाई देते है। आस–पास घटित होते दिखाई देते है और इससे आस्था, विश्वास और आत्मीयता के सूत्रों की धज्जिया उड़ती नजर आने लगी है। यद्यपि आज के वातावरण में महिला मुक्ति आंदोलन या नर–नारी समता की मुहिम भी चल पड़ी। नारी के लिये शिक्षा मंदिर के द्वार भी खुल गये। महात्मा गाँधी ने स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं को जोड़कर देश की पराधीनता की बेड़ियाँ काटने के साथ ही नारी को पुरुष समाज की दासता की बेड़ियाँ, दीवारें तोड़कर मुक्त वातावरण में साँस लेने का संयोग प्रदान कर दिया।[37]

प्रो. डॉ. तारालक्ष्मण गहलोत 'महिला विशेषांक' में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कहती हैं कि आज के अति विकसित वैज्ञानिक कम्प्यूटर युग, ग्लोबलाईजेशन, ग्लोबल विलेज तक की तीथिया पार करते हुए हम भले ही इक्कीसवी सदी का एक दश पार कर चुके हैं। पर नारी को अपने अस्तित्व को बनाये रखने हेतु सदैव संघर्ष करना पड़ा है। हर समाज ने नारी को दोयम दर्जे और पुरुष से कम और नीचे ही आंका है। पुरुष ने नारी को सदैव अपने अधिपत्य व स्वामित्व में रखा है और अपने आधीन समझा है। नारी पर अत्याचारों की दासता आज भी जारी है। हम आज कितने ही जेन्डर इक्वैलिटी की बात करें पर वह पुरुष की पैर की जुती ही समझी जाती रही है। कैसा ही पुरुष हो वह अपने को घर का स्वामी ही क्या चक्रवती सम्राट समझता है और नारी पर हर तरह से अत्याचार, तिरस्कार व शोषण करता है। आज भी नारी दहेज

के लिए पति के शराब के नशे की शिकार होकर, बलात्कार का जहर पीकर, नैतिकता के दोहरे मापदंड में पिसती, कभी परम्परा के बहाने तो कभी पारिवारिक प्रतिष्ठा को बनाये रखने हेतु लोक लाज से पुरुषों के अत्याचारों को सह रही है। आज वह कहीं भी सुरक्षित नहीं है।[38]

प्रो. श्यामलाल कौशल अपने लेख **'महिला होना गुनाह है क्या?'** में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कहती है कि भारतीय समाज सदा पुरुष प्रधान रहा है। हमारे देश के साधुओं, संतों, दार्शनिकों तथा विचारकों की सोच सदा पुरुषों के पक्ष में तथा स्त्रियों के खिलाफ रही है। आज भी दक्षिण भारत में कुछ मंदिर है जहाँ महिलाओं का प्रवेश विषेध है। सच पूछा जाये तो भारत में महिला के तौर पर जन्म लेना, न माफ किये जाने लायक जुर्म है। आज भारत जैसे देश में लगभग 60 प्रतिशत महिलाओं की अपने क्रूर पति परमेश्वरों द्वारा पिटाई होती है। कहीं दहेज के नाम पर उनको जला दिया जाता है या वे आत्महत्या करने को मजबूर हो जाती है। यहाँ कार्यालयों, शिक्षा संस्थानों आदि में उनका यौन–शोषण होता है वहाँ उनके अपने घरों में ही उनके जन्मदाता पिता या ससुराल में उनके ससुर, देवर या जेठ भी उनकी इज्जत आबरू को तार–तार करने में लगे हैं। पुराने समय की तरह इक्सवीं सदी के भारत में महिलाओं को पशु–पक्षियों की तरह खरीदा तथा बेचा जाना जारी है। पैदा होने पर पिता के नियन्त्रण में रहती है, जवान होने पर पति उस पर हुक्म चलाता है, बूढ़ा होने पर वह बेटों की गुलामी सहती है? ऐसे में अगर सृष्टि चक्र चलाने वाला विधाता उसे मिल जाये तो वह उससे यह प्रश्न जरूर पूछेगी 'मुझे क्यों पैदा किया?।'[39]

स्थाई स्तंभ में **प्रभा जैन** अपनी कथा **'बोलो मैंने क्या गुनाह किया?'** में अपने विचार अभिव्यक्त करती हुई कहती है कि जब पुनीत और उसकी पत्नी घूमने के लिए बाहर जाते है तो वहाँ कुछ आवारा लोग गाड़ी में आते है और उनसे छेड़खानी करने लगते है जब वह इसका विरोध करती है तो वो उसे गाड़ी में पटक कर ले जाते है मगर वह उनके चुंगल से किसी प्रकार अपनी इज्जत बचाकर भाग आती है और अपने घर चली जाती है। मगर वहाँ जाने पर उसे एहसास होता है कि अब उसके पति की नजरों में वह गिर गई है और अब उसकी स्थिति वह नहीं रही जो पहले थी। उसके सास–ससुर व अन्य घर वाले भी उसे घृणा की नजरों से देखते है और उसे भला–बुरा कहते हुए उस पर अत्याचार करते है तथा घर से लिकालने का प्रयास करते है। तब वह हिम्मत बाँध कर उनका विरोध करती है अपने ऊपर उछाले गये कीचड़ को गलत बताती है पर उसकी कोई नहीं सुनता। तब वह अन्त में निर्णय करती है कि वो उनसे अलग रहकर अपना जीवन यापन करेगी और समाज में एक इज्जत की जिंदगी जीऐगी।[40]

डॉ. रचना गौड 'भारती' के आयोजन में महिलाओं पर एक परिचर्चा की गई जिसका विषय है **'शिक्षित कामकाजी महिलाओं का शोषण : क्यों और कब तक?'** जिसमे प्रमुख लेखक एवं लेखिकाओं के विचार इस प्रकार है।

डॉ. श्रीमती कंचना सक्सेना के विचारों के आधार पर इक्कीसवीं सदी में यदि कुछ नहीं बदला तो वह है भारतीय पुरुष मानसिकता। आवश्यकता है इस मानसिकता में परिवर्तन की। कहने को तो भारत स्वतंत्र है, इक्कीसवीं सदी में महिला सशक्तिकरण का डंका है किन्तु यथार्थ में क्या महिला सशक्त है? शिक्षा प्राप्त कामकाजी महिला को भी उत्पीड़न का शिकार होना पड़ता है। कार्यालय हो अथवा घर सारे कार्य तो महिलाओं को ही करने है। कार्यालय में उसे अपने सहकर्मियों के ताने, तो कभी बॉस की हवस का शिकार होना पड़ता है। इस उपेक्षा, उपालम्भ तथा तिरस्कार के परिणामस्वरूप महिला डिप्रेशन का भी शिकार हो जाती है। किसी ने ठीक ही लिखा है–**'कल पति के साथ जली थी, आज पति के हाथ जलेगी, बन गयी जीवित जलाने की प्रथा औरत।'**

डॉ. श्रीमती प्रेम जैन का मानना है कि शिक्षित महिला नौकरी करे अथवा न करे शोषण तो उसका होना ही है, घर में भी और बाहर भी शोषण के दोनों पक्ष शारीरिक व मानसिक की वह भोक्ता है। पुरुष को दुनिया–जहान की शक्तियाँ और सम्मान अनादिकाल से प्राप्त है, जबकि नारी अर्थोपार्जन के पश्चात भी दोयम दर्जे पर टिकी हुई है। शिक्षित महिला नौकरी करके भले ही अपने अहम को तुष्ट कर ले, नारी–स्वातन्त्र्य की मुहिम में शामिल हो जाये, पर अपेक्षित सम्मान न घर में प्राप्त है, न संस्था में। घर पर उसके साथ आम घरेलू महिला की भाँति व्यवहार होता है, तो संस्थान में भी उस पर अनेक प्रकार के मिथ्या आरोप लगाए जाते है। भले ही वो पुरुषों की तुलना में अधिक गंभीरता और सावधानी पूर्वक कार्य करे। यह शोषण तब तक चलता रहेगा जब तक कि पुरुष वर्ग नारी के सत्य और तथ्य को स्वीकार नहीं कर लेता।

डॉ. गीता सक्सेना लिखती है कि आज नारी जीवन के हर क्षेत्र में दमन का शिकार हो रही है। अशिक्षित महिला के उत्पीड़न के लिए तो मुख्य कारण उसकी अशिक्षा है किन्तु शिक्षित महिलाओं का भी मानसिक, शारीरिक, आर्थिक शोषण किया जाना गहरा सामाजिक दंश और नियति का क्रूर मजाक है। अब प्रश्न उठता है कि शोषण आखिर कब तक? यह सिलसिला चलता तब तक रहेगा जब तक कि शिक्षित कामकाजी महिला आत्मविश्वास से लेकर, अन्याय के प्रतिकार की भावना से ओत–प्रोत, निड़रता से परिस्थितियों का सामना और जटिलताओं में संघर्ष की स्थिति नहीं बनाएगी। शोषण से मुक्ति के लिए उसे अपनी जीवन–शैली को भी अनुशासित करना होगा। अपनी दिनचर्या में उसे वक्त निकालकर स्व–चिंतन के अवसर भी देने होंगे।

उपसंहार – 'कामकाजी महिलाओं का शोषण क्यूं और कब तक' विषय पर आयोजित परिचर्चा में पुरुष वर्ग और महिला वर्ग ने अपने–अपने विचार प्रस्तुत करते हुए स्पष्ट

किया है कि जब तक पुरुष, महिला के विचार एक–दूसरे को महत्त्व देने, एक–दूसरे का सम्मान करने, एक–दूसरे में समर्पण के रूप में नहीं होंगे तब तक यह शोषण क्रम चलता ही रहेगा। ऐसे में समाज को, पुरुष वर्ग को विशेष रूप से जागृत होना होगा, पुरुष प्रधान समाज में नारी को अपनी सामाजिक स्थिति एवं सही व्यवस्थानुसार न्यायोचित तथा योग्य स्थान देना होगा। नारी जाति के अधिकारों के प्रति विषमता को दूर करना होगा। साथ ही महिलाओं को भी अपने अधिकार, कार्यों के प्रति सजग रहना होगा। उसे अपने आपके प्रति सतर्क, लाज–लज्जा, शील, सहनशील, संवेदना शील, कोमल हृदय रूपी गुणों के अनुरूप कार्य करने होंगे। आज उसकी छवि क्रूर और दुश्चरित्र के रूप में गढ़ी जा रही है जिससे स्त्री विरोधी अपराध बढ़ रहे हैं, को भी बदलना होगा। समाज द्वारा (पुरुष वर्ग) यथोचित सम्मान, महिलाओं को अपने व्यक्तित्व के अनुसार कार्य यदि एक साथ रहे तो निश्चित है कि यह शोषण रुक पाएगा। तभी महिला की यश–प्रतिष्ठा में अधिक वृद्धि, सृजन की बेल सदा पल्लवित एवं पुष्पित रह सकेगी। विचारों की एकता, कार्यक्षेत्र एवं लक्ष्य साम्य, अच्छे मित्र के रूप में रहकर मनसा, वाचा, कर्मणा, अपने चरित्र में सामंजस्य उत्पन्न कर पाएंगे तो ही समझें हम (महिला) उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहे हैं। आज जो स्त्री को वर्ग बनाकर उसके वर्ग के लिए एक निश्चित निर्धारित सीमा रेखा तय कर दी गई है, स्त्री को मनुष्य मात्र की इकाई न मानकर वर्ग विशेष की इकाई माने जाने को बदलकर मनुष्य के रूप में स्थापित करना होगा।[41]

कारण :–

- मेरे ख्याल से औरतों पर अत्याचार का सबसे बड़ा कारण औरतों का अपने आपको कमजोर समझना है।
- आज जो स्वच्छंदता या आधुनिकता के नाम पर सरकारी और गैरसरकारी संस्थानों में स्त्रियों के साथ जो यौन शोषण और अत्याचार चल रहा है। इसका मुख्य कारण है, लम्पट और धूर्त किस्म के पुरुष सहकर्मी या अफसर।
- वर्तमान समय में स्वयं महिलाएँ भी महिलाओं पर अत्याचार का कारण बन रही है।
- स्त्री–पुरुष में भेदभाव भी नारी अत्याचार का कारण है।
- भारतीय समाज में स्त्रियों के साथ किया जाने वाला दोयम दर्जे का व्यवहार महिला अत्याचार का कारण बनता है।
- किसी महिला द्वारा कन्या को जन्म देने के कारण उनपर अत्याचार बढ़ता है।
- आज दहेज जैसी कुप्रथाओं के बढ़ने के कारण भी महिलाओं पर अत्याचार हो रहे है।
- पुरुष वर्ग द्वारा मद्यपान महिला अत्याचार को बढ़ाता है।

- स्त्रियों का पुरुष पर आश्रित होने के कारण पुरुष वर्ग के लोगों द्वारा महिलाओं पर अत्याचार बढ़ता है।
- स्त्रियों का अशिक्षित होने के कारण।
- विभिन्न प्रकार की सामाजिक कुप्रथाएँ भी महिला अत्याचार को जन्म देती है।

सुझाव :—

- महिलाएँ स्वयं महिलाओं को प्रताड़ित करती है। यदि सासुओं और बहुओं की मनोवृत्तियाँ सही दिशा की ओर काम करने लगे तो निशचित रूप से ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण घटनाएँ देखने में नहीं आयेगी।
- आज आवश्यकता है कि नारी को सशक्त, सबल व शिक्षित बनाने हेतु ऐसे अवसर पैदा करने की जिसमें वह खुद एक स्वतन्त्र, सशक्त व सबल बन कर आत्मगौरव युक्त मानवीय गरिमा से जीवन यापन कर सके।
- नारी के प्रति समाज को दृष्टिकोण बदलना होगा, व्यवहार में भी समानता व सामाजिक न्याय का पालन करना होगा।
- स्त्रियों के प्रति अपराधों को रोकने जैसे कानूनों को यदि व्यवहारिक प्रथामिकता दी जाए तो ऐसे मामलों को सर्वोच्च रखकर तीव्रता से उनका निपटारा किया जा सकता है।
- पर्दा—प्रथा, बाल—विवाह, दहेज—प्रथा जैसी कुरीतियों को जड़ से उखाड़ फेकने के कुछ नये उपाय खोजने की आवश्यकता है।
- ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुषों के वर्चस्व के कारण स्त्रियों का शोषण अधिक होता है। ऐसे स्थान पर समाज कल्याण व नारी कल्याण जैसी संस्थाओं को अपना केन्द्र चलाने के लिए आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए ताकि इस प्रकार के शोषण को कम किया जा सके।
- महिलाओं को शिक्षित करने की जो प्रक्रिया है उसको और तीव्र किया जाना चाहिए जिससे वह अपने अधिकारों और शारीरिक रक्षा के प्रति जागरूक हो सके।
- महिलाओं का महिला के प्रति भेद भाव और षडयंत्रपूर्ण व्यवहार बदलना अत्यंत आवश्यक है।
- महिलाओं के उत्पीड़न, यौन शोषण के विरुद्ध जन आन्दोलन चलाना होगा जिससे पूरे समाज की संकुचित मानसिकता बदल सके।
- पुरुष और स्त्री दोनों ही एक—दूसरे की भावनाओं को सही परिप्रेक्ष्य में समझते हुए परस्पर सहयोग प्रदान करें।

3.4.1.2 नारी शिक्षा :—

नारी शिक्षा से सम्बन्धित समस्या के प्रमुख लेखक एवं लेखिकाओं के नाम निम्न है —

<u>कथा</u>

- डॉ. जयश्री शर्मा—सुमति
- नवनीत ठक्कर—रफता—रफता

<u>स्थाई स्तंभ</u>

- डॉ. श्रीमती तारासिंह—प्राचीन काल में नारी

कथाओं में नारी शिक्षा :—

डॉ. जयश्री शर्मा अपनी कथा **'सुमति'** के माध्यम से कहते है कि सुमति एक गाँव की लड़की थी जो बचपन से ही पढ़ाई में तेज थी इस बात का अहसास सबसे पहले उसके पिता रामकरण को हुआ। आठवीं तक वह अपने गाँव में ही पढ़ी। आगे पढ़ने की जिद्द करने पर उसे दस किलोमीटर दूर सीनियर स्कूल में भर्ती कराना पड़ा। वह प्रथम श्रेणी से बारहवीं पास हो गई तब उसके पिता ने साफ शब्दों में कह दिया कि बस अब और नहीं क्योंकि रिश्तेदारों का उस पर भारी दबाव पड़ रहा था कि वह आगे की पढ़ाई के बजाए उसके रिश्ते के बारे में सोचे। उसका पिता उसकी योग्यता से प्रभावित था। वह आगे पढ़े यह भी मन से चाहता था लेकिन शिक्षा—दीक्षा के अलावा जगत व्यवहार भी कोई चीज है। ऐसा वैसा कुछ घटित हो जाए इससे वह डरता था इसिलिए वह बेटी की शादी करना चाहता था। मगर अपनी पत्नी के समझाने पर वह उसे आगे पढ़ाता है और वह भी पढ़—लिख कर अच्छी नौकरी प्राप्त करती है। जब उसकी शादी होती है तो उसे पता चलता है कि उसका पति शराब पीता है तो वह उससे शादी करने से इन्कार कर देती है और बारात को वापस भेज देती है तब गाँव वाले उसे अपनी बेइज्जती समझ कर उन्हें भला—बुरा कहते हैं जिससे उसके पिता मर जाते है और वह अपनी माँ को लेकर शहर आ जाती है और अपनी एक नयी जिन्दगी की सुरूआत करती है।[42]

नवनीत ठक्कर अपनी कथा **'रफता—रफता'** में नारी शिक्षा पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहते है कि जब प्रो. संजय की शादी की बात चलती है तो उसके लिए एक सातवीं कक्षा तक पढ़ी—लिखी लड़की को चुनते है जो प्रो. संजय के पिता मरने से पहले उसके लिए देख कर जाते है और लड़की के घर वालों को वचन दे जाते है उसी वचन की खातिर मजबूरी में वह उससे शादी कर लेता है और शादी के बाद रंजना को कहता है कि **"वैसे मैं तुम्हारे साथ शादी करने को राजी नहीं था लेकिन मेरे पिताजी ने तुम्हारे बाप से वादा किया था उसे निभाने के लिए मैंने तुम्हारे साथ ब्याह रचाया है। मैं मृतक पिताजी की आत्मा को दुःख पहुँचाना नहीं चाहता था और न ही अपनी माँ के**

दिल को ठेस।'' यह सब सुनकर मानो उस पर बिजली गिर पड़ी हो वह अन्दर से टूट गई मगर उसके पैर लड़खड़ाये नहीं तथा उसने निणर्य किया कि **''मैं अपने आपको अबला सिद्ध नहीं होने दूँगी। मैं इसे भाग्य का खेल मानकर कोने में बैठी आँसू नहीं बहाती रहूँगी।''** शादी के बाद उसका पति उसे हर बात पर ताने सुनाता तथा उसे गॅवार, अनफढ़ आदि अशब्द कहता और वह चुपचाप सब सुनती रहती और उस दिन का इन्तजार करती जिस दिन सब सही हो जाऐगा। मगर शादी के पाँच साल बीतने पर भी कुछ नहीं बदला वह उसे गॅवार तथा कम पढ़ी–लिखी ही मानते थे। क्योंकि वह स्वयं एक प्रोफेसर थे और अपनी एक पत्रिका भी प्रकाशित करते थे। जब उसकी पत्नी पत्रिका के लिए कुछ लिखती तो वह उसे फाड़कर रद्दी की टोकरी में डाल देते थे। जब किसी कारण से नायक का एक्सीडेन्ट हो जाता है तो सब दोस्त तथा विश्वविद्यालय उसका धीरे–धीरे साथ छोड़ देते है तब उसकी पत्नी ही उसकी सेवा करती है और उसके सम्पादन में छपने वाली पत्रिका को सम्भालती है तब उसे अपनी गलती पर पछतावा होता है और वह अपनी पत्नी से माफी मांगता है।[43]

स्थाई स्तंभ में नारी शिक्षा :–

डॉ. श्रीमती तारा सिंह स्थाई स्तंभ में अभिव्यक्त अपने लेख **'प्राचीन काल में नारी'** में अपने विचार व्यक्त करती हुई कहती है कि ईसा से पांच सौ साल पूर्व नारी वेद अध्ययन करती थी तथा स्तोत्रों की रचना करती थी जो ब्रह्म वादिनी कही जाती थी। पंतजली में तो नारी के लिए 'शक्ति' शब्द का प्रयोग किया गया है। उस जमाने में उच्च शिक्षा पाने के लिए स्त्रियों को नन (भिक्षुणी) का जीवन व्यतीत करना होता था। मुसलमानों में परदे की प्रथा होने के कारण औरतें मर्द के बगैर घर से बाहर न निकलने की जबरन प्रथा से भारतीय समाज की मुस्लिम नारी की शिक्षा लगभग समाप्त हो गई थी। हिन्दुओं में बाल–विवाह और सती प्रथा नारी जीवन का अभिशाप बन गया था। होश संभालने के पहले ही बेटियों को शादी के खूंटे से एक गाय की भांति बांध दिया जाता था। यह परम्परा आज भी है, उसमें भी जी नहीं भरा तो चालाक नर सती प्रथा को लागू कर हिन्दु स्त्रियों की शिक्षा, मुस्लिम औरतों की भांति लगभग समाप्त कर दी। आज समय की पुकार का नारी को शिक्षित बनाने की दिशा में काफी योगदान रहा जिससे नारी की स्थिति में थोड़ा सुधार आना शुरू हुआ फिर भी हर धर्म, हर जाति वर्ग की औरत की पीड़ा आज भी कहीं न कहीं एक जैसी ही है। जिसे हम सुधार कहते है अभी भी यह नाकाफी है। औरत के प्रति जो धार्मिक रुगन्ताएँ है, उससे भी औरत, मर्द के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने में खुद को असमर्थ पाती है।[44]

कारण :–

- गाँवों में स्कूलों के अभाव के कारण लड़कियाँ उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाती है।

- माता–पिता के द्वारा अपनी बेटी की इज्जत के डर से दूर पढ़ने ना भेजने के कारण लड़कियाँ शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाती है।
- मुसलमानों में परदे की प्रथा होने के कारण मुस्लिम नारी को शिक्षा का अभाव है।
- बाल–विवाह के कारण भी लड़कियाँ अशिक्षित रह जाती है।
- सती प्रथा के कारण भी अशिक्षित रह जाती है।
- लिंग–भेद के कारण भी लड़कियों में शिक्षा का अभाव पाया जाता है।
- माता–पिता के लालच के कारण भी लड़कियाँ शिक्षा वंचित रह जाती है।
- लड़कियों के द्वारा घर का काम करवाये जाने के कारण भी उनको शिक्षा से वंचित रखा जाता है।

सुझाव :–

- गाँवों में उच्च स्तर तक के स्कूलों का निर्माण करवाया जाना चाहिए ताकि लड़कियों को शिक्षा प्राप्त करने में सुविधा हो सके।
- नारी की रक्षा के लिए कड़े कानूनों का निर्माण होना चाहिए।
- बाल–विवाह को समाप्त करने के लिए और अधिक कड़े कानून बनाए जाने चाहिए।
- लिंग–भेद को समाप्त कर स्त्री–पुरुष दोनों को बराबर का दर्जा दिया जाना चाहिए।
- शिक्षा का प्रचार–प्रसार कर सभी को शिक्षित बनाया जाना चाहिए।

3.4.1.3 बलात्कार :–

बलात्कार से सम्बन्धित समस्या के प्रमुख लेखक एवं लेखिकाओं के नाम निम्न है –

कथा	काव्य
➢ डॉ. लतीफ अकबरावादी–मंजिल	➢ आशमा कौल–औरत होने का दर्द
➢ डॉ. सरला अग्रवाल–आत्मविश्वास	➢ अशोक 'आनन'–आत्म ग्लानि
➢ डॉ. अनिल सुदर्शन–देवी	
➢ आनन्द बिल्थरे–एक बार कह दो	**लेख**
➢ दिनेश कुमार छाजेड़–पीड़ा	➢ सावित्री जगदीश चोरसिया–दुष्कर्म क्यों?
➢ आनन्द बिल्थरे–विष और अमृत	

कथाओं में बलात्कार :–

डॉ. लतीफ अकबरावादी अपनी कथा **'मंजिल'** के माध्यम से कहते है कि जब विवेक को अपनी बेटी के बलात्कार का पता चलता है तो वह गुस्से में अपनी पत्नी से कहता है **'मैं तुमसे पहले ही कह रहा था कि अपनी बेटी पर नजर रखो और इसे इतनी आजादी मत दो कि यह सारी सीमाएँ ही लाँघ जाए! लेकिन तुम तो आधुनिकता के नशे में चूर और पश्चिमी संस्कृति की दीवानी थी! तुमने मेरी एक न सुनी! नित नए फैशन के साथ इसका कॉलेज जाना, सुबह से शाम तक तेरे मेरे घर के दरवाजे गिनना और आए दिन पार्टियाँ अटेण्ड करना मुझे बार–बार किसी खतरे का अहसास करा रहा था।'** अब भी समझा दो इसे कि जो कालिख पुतनी थी पुत चुकी अब इस घटना की चर्चा किसी से न करें वर्ना हम समाज में किसी को मुँह दिखाने के काबिल न रहेंगे, न इस **'फूटी मटकी'** को कोई ले जाने के लिए तैयार होगा। तब उसकी बेटी उसका विरोध करती हुई कहती है **'बदनामी...बदनामी...बदनामी! बस यही खौफ तो है जिसने सदियों से नारी को पुरुष का हर जुल्म सहने पर मजबूर कर रखा है। लेकिन मैं ऐसा नहीं होने दूंगी। अगर एक दुकानदार ने अपनी दुकान को कीमती सामान के बावजूद खुली छोड़ दी है तो यह उसकी भल मनसाहत है और इन्सानों पर किये जाने वाले विश्वास की पराकाष्ठा।'** मैं मानती हूँ कि खुलापन और सुरक्षा के प्रति उदासीनता लोगों को कुछ कर गुजरने का निमन्त्रण देती है और इसमें गलती दोनों ही तरफ से है फिर भी अधिक दोषी तो अनधिकृत चेष्टा करने वाले ही होंगे न। जो कुछ भी हो लेकिन मेरा फैसला अटल है मैं उनको सजा दिलाकर रहूँगी। मैं पहले वकील के पास, फिर पुलिस स्टेशन और उसके बाद अदालत की शरण में बस यही मेरी राह और यही मेरी मंजिल है।[45]

अपनी कथा **'आत्मविश्वास'** में **डॉ. सरला अग्रवाल** कह रही है कि एक तेरह वर्षीय बालिका आठवीं कक्षा में पढ़ रही थी। वह बस से ही स्कूल आती–जाती थी। एक दिन बस ना मिलने के कारण वह लेट हो गई और वही बैठ गई तभी तीन व्यक्ति कार में उसके पास आकर उसे घर छोड़ने के लिए कहते है मगर वह मना कर देती है तो वह उसे जबरदस्ती पकड़ कर कार में पटक लेते है और अपने प्लाट में ले जाते है। जैसे ही वह उसके साथ जोर–जबर दस्ती करते है वह उन्हें मार कर वहाँ से भाग जाती है और अपनी रक्षा करती है। इस प्रकार वह अपना साहस व आत्मविश्वास दिखाती हुई उनका सामना करती है। वह वहाँ से पुलिस स्टेशन जाकर सारी घटना सुनाती है और पुलिस की मदद से उन तीनों को सजा दिलवाती है।[46]

डॉ. अनिल सुदर्शन ने अपनी कथा **'देवी'** में बताया कि जब नंदिनी और नवीन शादी से वापस घर जाते है तो कुछ मवालि उन्हें घेर लेते है और गहने छीनकर नंदिनी को जकड़ लेते है तथा नवीन की गर्दन पर चाकू रखकर धमकाते है और कहते है कि हमारे साथ चल वरना तेरे पति को मार देंगे। वह पतिव्रता मौन क्रन्दन करते हुए अपने सुहाग की रक्षा के लिये खुद को दाव पर लगाने के लिए चली जाती है। लुटी–पिटी

इज्जत लेकर वह पति के घर पहूँचती है तो वह उसे देवी बताकर अन्दर ले लेता है और उसे अपना लेता है। **'मगर कुछ ही दिनों में वह देवी घर से निष्कासित कर दी गई क्योंकि देवियों की पूजा की जाती है। उनके साथ घर नहीं बसाये जाते।'** घर बसाने के लिये नई पत्नी आ गयी थी जो शायद कभी देवी बना दी जाये।[47]

आनन्द बिल्थरे अपनी कथा **'एक बार कह दो'** में अपने विचारों को अभिव्यक्त करते हुए कहते है कि शादी के एक साल बाद जब जेबा व उसका पति पार्क में घूमने गये तो अचानक कुछ लोगों ने हमला किया और उसके पति को बेहोश कर जेबा को उठा ले गये। जब जेबा के पति को होश आया तो वह उसे पागलों की तरह पार्क में ढूँढने लगा मगर वह नहीं मिली तब उसने पुलिस में रिपोर्ट करवाई। दूसरे दिन उसे पता चला कि उसकी पत्नी नाजुक हालत में अस्पताल में पड़ी है। वह जब उसको देखता है तो पता चलता है कि कई लोगों ने मिलकर उसके चेहरे से लेकर पूरे शरीर पर बेशुमार दाँत और नाखूनों के निशान कर रखे थे। एक सप्ताह बाद उसे अस्पताल से छुट्टी मिल गई मगर अब वह बेहद गुमसुम रहने लगी थी। उसकी हालत दिनों दिन गिरती जा रही थी। अचानक एक शाम उसने अपने पति से कहा मैं तलाक चाहती हूँ और कहा कि अगर तलाक नहीं दिया तो मैं जहर खाकर मर जाऊँगी। वह तलाक लेकर वहाँ से चली जाती है। कई दिनों के बाद नायक को पता चलता है कि उसकी पत्नी अस्पताल में है। वह उसके पास अस्पताल जाता है तो उसे पता चलता है कि उसकी पत्नी का एच. आई. बी. पाजिटिव है। अन्त में उसकी पत्नी माफी मांगती है और अपनी अन्तिम श्वास लेती है।[48]

दिनेश कुमार छाजेड़ अपनी कथा **'पीड़ा'** के माध्यम से कह रहे है कि जब शर्मा जी को पता चलता है कि उसकी लड़की कॉलेज से घर नहीं लोटी है और पड़ोस में रहने वाली बदनाम औरत फूलवती भी गायब है तो उनहें उसकी चिन्ता होती है तभी घर के बाहर ऑटो से बदहवास हालत में उसकी बेटी उतरती है और रोते हुए कहती है कि जल्दी अस्पताल चलो आंटी की हालत खराब है कुछ गुण्डे मेरा अपहरण कर के ले जा रहे थे। तभी आंटी मेरी रक्षा करने हेतु अकेले ही गुण्डों से भिड़ गई। उनका बहुत खून बह रहा है। तब सभी अस्पताल उनके पास जाते हैं और उनका शुक्रिया अदा करते है तब वह कहती है कि मैंने तो अपना फर्ज अदा किया है आप लोगों ने मुझे मोहल्ले में रहने दिया। अगर मुझे किसी ने उस वक्त बचाया होता तो मैं भी बदनाम नहीं रहती और किसी के घर की बहू होती, मेरा भी परिवार होता।49

आनन्द बिल्थरे ने अपनी कथा **'विष और अमृत'** में अपने विचार रखते हुए कहा है कि जब एक प्रेमी युगल घर से भागकर दूसरे शहर में आते है तो उन्हें कुछ कॉलेज के लड़के नशे में पकड़ लेते है और लड़की के साथ ऐसा करते है कि जिसे देखकर चाँद भी बादलों की ओट में छिप गया हो, उस वक्त उनका पशु जीत गया और इन्सानियत रो पड़ी। उसे जब होश आया तो उसके बदन के कपड़े तार–तार हो गये थे। साहस बटोरकर वह थाने गई, पलक झपकते ही इस घटना की चर्चा पूरे शहर में फैल गई।

काफी परेशानी, चिल्लाहट, पैसा और राजनैतिक दबाव की वजह से मामला किसी तरह रफा, दफा हुआ। पुलिस ने लड़की को उसके माँ–बाप को सौंप दिया। विवश होकर उसने आत्महत्या करने की कोशिस की मगर एक डॉक्टर ने उसे बचा लिया और अपने साथ लेजाकर उसे नर्सिंग की ट्रेनिग दी और उसे नर्स बनाया। एक दिन वह एक मरिज को देखने के लिए उसी के घर चली जाती है। जिसने उसका बलात्कार किया था वह उसे वहाँ देखकर घबरा जाती है। मगर फिर भी वह अपना फर्ज निभाते हुऐ उसके पिता की सेवा करती है तब उस लड़के को अपनी गलती पर पश्चाताप होता है और वह अपने पिता से सारी सच्चाई बता देता है। तब उसके पिता सजा के तोर पर उसे उस लड़की से शादी करने के लिए कहते है और उस लड़की से क्षमा माँगकर उससे शादी के लिए आग्रह करते है वह इसके लिए हाँ कर देती है और उसके पिता जी उनकी शादी करवा देते है और इस प्रकार उसे समाज में इज्जत का दर्जा दिलवाते है।[50]

काव्य में बलात्कार :–

आशमा कौल अपने काव्य **'औरत होने का दर्द'** में अपने विचार प्रकट करती हुई कह रही है कि जब एक औरत के साथ कुछ लोग जबरदस्ती कर उसके साथ दुष्कर्म करते है तो वह चीखती है, गिड़गिड़ाती है, आँसू बहाती है और तड़पती हुई उन्हें माँ, बहन की दुहाई देकर छोड़ने की फरियाद करती है मगर हैवानियत के उन पुतलों से जो किसी भी रिश्ते में यकीन नहीं करते, जो किसी की भी फरियाद नहीं सुनते, उन पर उसका कोई असर नहीं पड़ता है तथा–

वह बदहवास सी दर्द में तड़पती रही
आबरू बचाने की लड़ाई में आखरी सांसे लेती रही
उन हैवानों के सामने जिनकी सिर्फ शक्ल ही इंसानों जैसी है
जो हर बार यह दुष्कर्म करके अपनी माँ की कोख पर मारते है लात
हर बार उसी के समरूप की लूट कर अस्मिता
मरने के लिए छोड़ देते है उसे बार–बार।51

अशोक 'आनन' अपने काव्य **'आत्म–ग्लानि'** में एक माँ के दुःख को अभिव्यक्त करते हुए कहते है कि एक माँ अपने बेटे के दुष्कर्म के कारण समाज में किसी को अपना मुँह दिखाने लायक भी नहीं रही थी। वह कहती है कि मेरे बेटे ने जो दुष्कर्म किया उसके लिए दुनिया की हर सजा कम थी। कानून चाहे उसे माँफ कर दे लेकिन दुनिया का कोई भी कानून उस बेटी की इज्जत नहीं लौटा सकता जो उस रात उसके बेटे ने लूटी थी। इसीलिए वह कहती है कि–

काश! उस रात
धरती की छाती फट जाती
और उसमें वह समा जाती।[52]

लेखों में बलात्कार :–

सावित्री जगदीश चौरसिया अपने लेख **'दुष्कर्म क्यों'** में अपने विचारों के माध्यम से कहती है कि आज के समय को प्रगति का समय कहा जा रहा है। इसमें कोई संदेह नहीं की हम भौतिक विकास तो कर रहे है पर हमारी आध्यात्मिक चेतना लुप्त होती जा रही है। हममें निहित चेतना जो अच्छे–बुरे का विश्लेषण करती है हमें सत्कर्म के मार्ग पर चलने को प्रेरित करती है, वह विलुप्त हो रही है। दानवत्व की राह बिना किसी भय के दुष्कर्म जैसे कृत्य हाहाकार मचा रहा है। इस दानवत्व का कारण जानना ही चाहिये। इसका सबसे बड़ा कारण नैतिक पतन है। आज हमारे देश में सभी स्तर पर शराब की दुकाने है। बड़ी से बड़ी लाईसेन्स प्राप्त मधुशाला से लेकर गाँव में बनने वाली कच्ची शराब से आज देश का युवा मदमस्त है। इस मद को मन्दाध करने वाली, आज की ग्लैमर की दुनिया भी है। अश्लील बनती फिल्म, द्वीअर्थी डायलाग, फिल्म को मसाला मूवी बनाने की चाहत में खोज–खोजकर ऐसे–ऐसे अपराध के तरीके भर देते है कि अपरिपक्व व अधकचरा दिमाग उसी में डूबने उतरने लगते है, रही सही कसर आइटम डांस व अर्धनग्नता से भरी अश्लील फिल्म व विज्ञापन पूरी कर रहे हैं, जिसके परिणाम स्वरूप देश में बलात्कार जैसी घटनाये बढ़ रही है। आत्मा कॉप रही है कि ये क्या हो रहा है? दुष्कर्म क्यों बढ़ते जा रहे है? मानव दृष्टि में ऐसा क्या बदलाव हो गया है कि वह इतनी क्रूर हो उठी है और उसकी क्रूरता का शिकार कन्याएँ हो रही है? वे कन्याएँ जिन्हें देश देवी के रूप में पूजता है। वे ही राक्षसी कृत्य की शिकार हो रही है। आज की हर दुर्गति का जिम्मेदार हर एक व्यक्ति है अतः आवश्यकता है सबसे पहले अपने को सुधारो। जब आप सुधरेंगे तो आपका घर सुधरेगा तब परिवार और समाज सुधरेगा। यह समझना ही होगा कि नारी देवी का रूप है, संसार को गति देने वाली नारी माता–बहिन–बेटी के रूप में पूजनीय है।[53]

कारण :–

- आधुनिकता का नशा और पश्चिमी संस्कृति के कारण नित नए फैशन के साथ कॉलेज जाना, रात को पार्टियाँ अटेण्ड करना बलात्कार का कारण बनते है।
- समाज में किसी को मुँह न दिखाने व बदनामी के डर से रिपोर्ट न करवाना भी बलात्कार को बढ़ावा देता है।
- हमारे समाज की न्याय व्यवस्था ऐसी है कि बलात्कारी को दंड देने में कई वर्ष लग जाते है जिससे वह समाज में आसानी से घूमता रहता है और फिर से यह अपराध करता है।
- खुलापन और सुरक्षा के प्रति उदासीनता भी बलात्कार को निमन्त्रण देती है।
- कई प्रकार के नशे करने के कारण भी बलात्कार की स्थिति उत्पन्न होती है।
- दुष्कर्म की बढ़ती घटनाओं के पीछे अपराधी की हीन भावना से उपजी कुंठा के साथ–साथ शराबखोरी व पोर्नोग्राफी का भी बड़ा हाथ है।

- अश्लील बनती फिल्म व उन्हें मसाला मूवी बनाने के लिए अपराध के तरीके भरना, आइटम डांस व अर्धनग्नता से भरे विज्ञापन भी बलात्कार को बढ़ावा देते है।

सुझाव :–

- दुष्कर्म के अपराधियों के लिए कड़ी से कड़ी सजा सुनिश्चित की जानी चाहिए व महिलाओं को त्वरित न्याय मिलना चाहिए।
- दुष्कर्म की शिकार महिलाओं के प्रति समाज को नकारात्मक रूख छोड़कर उन्हें सदमें से उबरने में सहायता करनी चाहिए।
- समाज को भी अपने स्तर पर महिलाओं के प्रति स्वस्थ सोच को विकसित करने के लिए सक्रियता दिखानी चाहिए।
- पूरे देश में नैतिक शिक्षा दि जानी चाहिए एवं लड़कियों के लिए आत्म रक्षा की शिक्षा अनिवार्य रूप से लागू की जानी चाहिए।
- महिला अपने साथ होने वाले शोषण के प्रति खामोश न रहे। आज हर परिस्थिति का मुकाबला उनको स्वयं ही करना होगा।
- आज आवश्यकता है सबसे पहले अपने को सुधारो। जब आप सुधरेंगे तो आपका घर सुधरेगा तब परिवार और समाज सुधरेगा। यह समझना ही होगा कि नारी देवी का रूप है, संसार को गति देने वाली नारी माता–बहिन–बेटी के रूप में पूजनीय है।

3.4.1.4 भ्रूण हत्या :–

भ्रूण हत्या से सम्बन्धित समस्या के प्रमुख लेखक एवं लेखिकाओं के नाम निम्न है –

कथा	स्थाई स्तंभ
➢ डॉ. रामसिंह यादव–सही निर्णय ➢ डॉ. इन्दु गुप्ता–नन्हीं जरूर जन्मेगी ➢ डॉ. कविता किरण–भ्रूण हत्या ➢ नयन कुमार राठी–अनहोनी ➢ सुनील कुमार अग्रवाल–कुल ज्योति ➢ शैलजा गुप्ता–ममता की छाँव ➢ मीनाक्षी हल्दानिया–अग्नि रथ ➢ किशन लाल शर्मा–सजा ➢ आचार्य भगवान देव 'चैतन्य'–कन्या पूजन ➢ श्रीमती विनोदिनी गोयनका–उपहार ➢ श्रीमती मंजुला गुप्ता–अब और नहीं ➢ आकांक्षा यादव–अधूरी इच्छा	➢ डॉ. शीला चौधरी–भ्रूण हत्या क्यों? ➢ प्रो. डॉ. तारालक्ष्मण गहलोत–अजन्मी बेटी री अरदास ➢ श्रीमती प्रभा पांडे–माँ से अजन्मी बेटी की शिकायत ➢ श्रीमती नीलिमा टिक्कू, आयोजक–कन्या का जन्मःखुशी या गम

<u>लेख</u>	<u>काव्य</u>
➢ डॉ. भरत मिश्र 'प्राची'–कन्या भ्रूण हत्या का परिवेश सृष्टि के लिए चुनौती ➢ डॉ. संध्या जैन 'श्रुति'–घटती कन्याएं बढ़ता लिंग भेद एवं मानव अधिकार ➢ प्रो. डॉ. तारालक्ष्मण गहलोत–कन्या भ्रूणहत्या का सच एक समाज शास्त्रीय विश्लेषण ➢ डॉ. सीमा शाहजी–कन्याभ्रूणों की हत्या से नष्ट होता सांस्कृतिक पर्यावरण ➢ कपूर चन्द्र जैन 'बंसल'–गर्भस्थ बालिका का वात्सल्यमयी अपनी माँ को अलिखित भावपूर्ण पत्र ➢ रितेन्द्र अग्रवाल–भ्रूण की गुहार माँ से ➢ सुधा गोयल–औरत की कोख का बाजारीकरण ➢ दिलीप भाटिया–कन्या भ्रूण हत्या कुछ प्रश्न ➢ श्रीमती प्रेम कोमल बूंलिया–कोंख या कब्रगाह ➢ मिथलेश जैन–गुम होती बेटियाँ जिम्मेदार हम और आप ➢ मार्ग मालती–कन्या भ्रूण हत्या दोषी कौन ? ➢ भुवनेश्वरी मालोत–संकल्प ले कन्या भ्रूण हत्या नहीं करेंगे ➢ सुरजीत सिंह साहनी–अभिशप्त कन्या भ्रूण हत्या–कारण एवं निवारण	➢ डॉ. राम शर्मा–बेटी का दर्द ➢ डॉ. खटका राजस्थानी–बेटी की पुकार ➢ डॉ. उषा यादव–अजन्मी बच्ची का दुःख ➢ डॉ. अजय जनमेजय–जन्म लेना चाहती हूँ ➢ विनोद कुमारी किरण–बेटी ➢ सुमन भण्डारी–बेटी के उदगार ➢ शारदा श्रोत्रिय–बेटी ➢ इन्दिरा अग्रवाल–भ्रूण का अभिशाप ➢ अंजुमन मंसूरी 'आरजू'–अस्मिता ➢ डॉ. कमलेश शर्मा–जो कन्या न होती ➢ डॉ. सुश्री लीला मोदी–भ्रूण हत्या ➢ डॉ. मालती शर्मा–मानव वंश चलेगा कैसे ➢ श्रीमती मोहिनी राजदान–भ्रूण हत्या के लिए पत्नी का विरोध ➢ राष्ट्रसंत श्री गणेश मुनि शास्त्री–भ्रूण परीक्षण नहीं कराऊंगी ➢ सुषमा अग्रवाल–बेटियाँ ➢ अखिलेश निगम 'अखिल'–आदिम युग फिर लौट आया है ➢ अशोक जोशी–भ्रूण हत्या करते हो ➢ अखिलेश निगम 'अखिल'–क्यों तुमको लाज न आती है ➢ श्री गणेशमुनि शास्त्री–आँगन की तुलसी ➢ गीता भट्टाचार्या–इन्साफ ➢ मंजुला गुप्ता–कन्या हत्यारे ➢ ज्ञान दिवाकर राष्ट्रसंत प्रवर्तक श्री गणेशमुनि शास्त्री–खिलवाड

कथाओं में भ्रूण हत्या :–

भ्रूण हत्या की समस्या पर **डॉ. रामसिंह यादव** अपनी कथा **'सही निर्णय'** के माध्यम से कहते है कि पुराने जमाने के लोग पुरानी विचारधारा, रूढ़िवादी, वंशानुगत सामाजिकता के भंवर में फंसे होने के कारण वे अपनी लाभ–हानि और मानवीयता को भूल जाते है। इन विचारों को कहानी के माध्यम से अभिव्यक्त करते हुए लेखक कहता है कि अनीता की सास अपने जिद्दी स्वभाव के कारण तथा बेटे को अधिक महत्व देते हुए बहू के गर्भवती हो जाने पर दो बार उसका गर्भ परीक्षण करवाकर गर्भपात करवा

देती है और इस प्रकार अजन्मी बच्ची को मरवा देती है। सहन शक्ति की पराकाष्ठा हो जाने पर नायिका समझदारी से तीसरी बार गर्भ ठहरने पर ना तो सास के कहे अनुसार परीक्षण करवाती है और न ही गर्भपात होने देती है। इसी प्रकार भ्रूण हत्या जैसी कुरीति को सुधारने के लिए वह अपना पहला कदम उठाते हुए इन शब्दों में सासु को अपना निर्णय सुनाती है –"**बहुत हो चुका माँ जी! मैंने दो बार आपकी इच्छाओं का सम्मान करते हुए भ्रूण हत्या कर कन्या हत्या का पाप ओढ़ लिया। आप और कितनी कन्याओं की हत्या मुझसे करवाना चाहती हो पुत्र की चाह में? कितनी कन्याएँ पुत्र की चाह में जन्म लेने के पूर्व ही मार डाली जावेगी? भ्रूण हत्या का घोर अपराध पाप अब मैं नहीं करूंगी और यह मेरा अन्तिम निर्णय है।**" इस तरह वह अन्त में भ्रूण हत्या के विरुद्ध एक सही निर्णय लेती है और उसका विरोध कर अपनी अजन्मी बच्ची को बचाती है।[54]

डॉ. इन्दु गुप्ता अपनी कथा '**नन्हीं जरूर जन्मेगी**' में अपने विचार लिखते हुए कहती है कि शादी के बाद पहली बार जब रेशमा गर्भ धारण करती है तो उसके परिवार वाले, सास–ससुर, पति आदि सभी मिलकर भ्रूण परीक्षण करवाकर उसका ग्रभपात करवाने पर जोर देते है। रेशमा द्वारा मना करने पर वे उसके सामने कई समस्याएँ रखते हुए कहते है "**आज के गन्दे सामाजिक वातावरण में लड़कियों का खर्चा, शिक्षा, इज्जत–आबरु की सुरक्षा, दहेज की चिन्ता आसान काम नहीं है, लड़कियों का बोझझेलने और छाती पर एक और पत्थर बाँधने के लिए वे मानसिक, आर्थिक, सामाजिक तौर पर कतई तैयार नहीं है इसलिए तुम्हें अपना गर्भपात करवाना ही होगा।**" इस प्रकार उसपर जोर डाला जाता है और उसे इस काम के लिए राजी किया जाता है। मगर एक रात वही कन्या उसके सपने में आकर कहती है–

माँ तेरा ही तो अंश हूँ मैं, मुझे कोख में न तू मार,
दे के जन्म तू दे दे मुझे जीने का अधिकार,
मातृत्व का बीज हूँ मैं रचती सकल संसार,
बेटी, बहन, पत्नी, माँ बनकर बांटती जग में प्यार।

उसकी इन बातो ने उसका विचार बदल दिया, अब वह निर्णय लेती है कि वह इस नन्हीं बच्ची को जन्म जरूर देगी।[55]

डॉ. कविता 'किरण' अपनी कथा '**भ्रूण–हत्या**' में अपने विचार रखते हुए कहती है बेटे की आस में ऊषा ने पाँच–पाँच बेटियों को जन्म दे दिया था मगर उन्हें बेटा प्राप्त नहीं हुआ जब वह छठी बार गर्भधारण करती है तो अपने बच्चे का भ्रूण परीक्षण करवाती है। रिपोर्ट के अनुसार गर्भ में कन्या होने पर राजेश एवं ऊषा गर्भपात कराने का निश्चय करते है। इस पर उसकी सासु माँ उसे समझाती है कि "**देख बहू इस बार जो होता है सो होने दे। भ्रूण हत्या का पाप मत कर। इस बच्चे के जन्म के बाद भले ही ऑपरेशन करवा लेना। मैं नहीं रोकूंगी पता नहीं क्यों मुझे लग रहा है कि इस बार तू बेटे को ही**

जन्म देगी। वो लोहे की मशीन भला क्या बताएगी। भगवान पर भरोसा रख और मेरी बात मान इस बार जाने दे बहू।'' मगर ऊषा उनकी बात नहीं मानती और कहती है कि ये महंगी–महंगी मशीने गलत नहीं बता सकती और वह गर्भपात करवा लेती है। मगर वह लड़की नहीं बल्कि लड़का होता है तब ऊषा को बहुत पछतावा होता है और वह सोचती है कि 'संभवतया ईश्वर ने मुझे भ्रूण–हत्या का दंड दे दिया है।'[56]

नयन कुमार राठी द्वारा लिखित कहानी **'अनहोनी'** में कुछ इस प्रकार की घटना से परिचित करवाया जाता है यथा – जब नीता का पाँव भारी होता है तो उसके ससुराल वाले और मायके वाले बहुत खुश होते हैं और सोचते हैं कि चाँद सा बेटा हमारे घर–आँगन को किलकारियों से गुंजायमान करेगा। इसी उम्मीद से कि बेटा हो वह नीता को भ्रूण परीक्षण करवाने के लिए अस्पताल ले जाते है मगर परीक्षण से पता चलता है कि आने वाला लड़का नहीं लड़की है तो नीता को दुःख होता है और वह निर्णय लेती है कि वह गर्भपात करवा लेगी मगर उसकी सासु माँ के समझाने पर कि यह करना गलत है, भ्रूण हत्या जघन्य अपराध है, यह नहीं करना चाहिए। तब वह समझ जाती है और कन्या भ्रूण हत्या करवाने के पाप से बच जाती है।[57]

सुनील कुमार अग्रवाल अपनी कथा **'कुल ज्योति'** के माध्यम से बताते है कि कैसे दो सहेलियाँ बचपन से लेकर शादी तक एक दूसरे का साथ निभाती रही और शादी होने के बाद भी सुख–दुःख में साथ रही। मगर जब दोनों गर्भधारण करती है तो अपना भ्रूण परीक्षण करवाती है जिससे उन्हें पता चलता है कि एक के लड़का है और दूसरी के लड़की है। तब वह अपनी लड़की का गर्भपात करवाना चाहती है मगर उसके पति द्वारा समझाने पर वह समझ जाती है और दोनों अपने बच्चों को जन्म देती है। पहली सहेली का लड़का आवारा व बिगड़ा हुआ निकलता है और पैसों की खातिर अपने पिता को मारता है जिसके कारण वह सदमे से मर जाते है। वहीं दूसरी सहेली की लड़की सुन्दर–सुशील, बुद्धि कुशाग्र, प्रतिभा की धनी व संस्कारों वाली होती है उसने अपने माता–पिता की खूब सेवा की व उनकी इच्छा से ही शादी करके अपना जीवन आगे बढ़ाया तब उसे अपने निर्णय पर गर्व होता है और सोचती है कि मैने कुल दीपक को नहीं वरन कुल ज्योति को पाया है।[58]

शैलजा गुप्ता भी अपनी कथा **'ममता की छाँव'** में बताती है कि जब सुधा को पता चलता है कि वह गर्भवती है तो वह बहुत खुश होती है और अपने पति को यह समाचार सुनाती है तथा लिंग परीक्षण के लिए आग्रह करती है। परीक्षण से जब लड़की होने का परिणाम ज्ञात होता है तो वह पति से गर्भपात करने के लिए जिद्द करती है। उस समय उसका पति समझदारी से समझाते हुए यह कहता है कि– सुनो यह तुम्हारा तीसरा बच्चा है और यही हाल रहा तो तुम्हारी जान को खतरा हो जायेगा। सुधा तुम्हारी अगर यही जिद रही तो तुम्हारा क्या होगा, मैं नहीं जानता, परन्तु मैं अब अपनी निर्दोष बच्चियों की इस तरह अपने ही होथों से निर्मम हत्या नहीं देख सकता। दुनिया

कहाँ से कहाँ पहुँच गई है और तुम आज भी वही लड़का–लड़की का भेद करती हो। वह उसे रानी लक्ष्मीबाई, रानी अहिल्याबाई की फोटो दिखा कर कहता है कि क्या हमारी बेटी इनसे कम होगी? वह समझ जाती है और मुस्कुरा देती है।[59]

मीनाक्षी हल्दानिया अपनी कथा **'अग्नि रथ'** में अपने विचार रखते हुये बताती है कि किस प्रकार एक औरत अपने पति के विरोध करने पर भी गर्भपात नहीं करवाती और अपनी दो बेटियों को जन्म देती है परिणाम स्वरूप उसका पति उसे तलाक दे देता है और दूसरी शादी कर लेता है। दूसरी पत्नी से उसे दो बेटे प्राप्त होते है जो जवानी के सोपान पर आवारगी की गर्दिश में खो जाते है। वही उसकी पहली पत्नी अपनी दोनों बेटियों को पढ़ा–लिखा कर डॉक्टर व इन्जीनियर बनाकर काबिल बनाती है। दूसरी तरफ उसकी दूसरी पत्नी के बेटे शादी के बाद अपने पिता को मार–पिटकर घर से निकाल देते है। तब उसकी वही दो बेटियाँ उसका सहारा बनती है जिनको वह भ्रूण हत्या करके मार डालना चाहता था।[60]

किशन लाल शर्मा अपनी कथा **'सजा'** में कहते है कि जब नीरज को डॉक्टर द्वारा पता चला कि उसकी पत्नी कभी माँ नहीं बन सकती तो उसे बहुत दुःख हुआ और अपनी गलती पे पश्चाताप हुआ क्योंकि उसे अपनी गर्भवती पत्नी का परीक्षण कराने से पता चला कि उसकी पहली संतान लड़की है तो उसने डॉक्टर के मना करने के बाद भी एक दाई की सहायता से अपनी पत्नी का गर्भपात करा दिया परिणामस्वरूप भ्रूण के कुछ कण गर्भ में रह जाने के कारण वह पुनः माँ नही बन पायी और वह दुःखी होकर कुछ इस प्रकार सोचने लगा कि **''यह अजन्मी बेटी की हत्या का ही पाप था जिसने मेरी पत्नी की मातृत्व क्षमता छीन ली थी। मैं बेटा चाहता था लेकिन अब मैं कभी बाप नहीं बन सकता यही मेरी सजा है।''**[61]

आचार्य भगवान देव 'चैतन्य' अपनी कथा **'कन्या पूजन'** में अपने विचार रखते हुए बताते है कि कुछ लोगों की भ्रूण हत्या के सम्बन्ध में इस तरह की भी मानसिकता है जो इस कथा के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। जब विनोद के घर लड़का होता है तो सब बहुत प्रसन्न होते है और शुद्धि–यज्ञ तथा कन्या–पूजन का आयोजन करते है। इस अवसर पर सह–भोज के लिए सभी सम्बन्धियों एवं परिचितों को भी बुलाते है। जब सम्बन्धी उन्हें बधाई देते हुए कहते है कि आपके घर पहला बच्चा ही बेटा हुआ है आप बहुत भाग्यशाली है तो वो कहते है कि नहीं–नहीं इससे पहले भी कई बार उसकी पत्नी गर्भ से हुई थी मगर हमने भ्रूण परीक्षण करवाकर गर्भपात करवा लिया था। जब इस बार परीक्षण से पता चला कि यह लड़का है तब जाके हमने यह बेटा जन्म दिया है। इस पर उसके सम्बन्धी बोलते है **''अरे तुम ये क्या जघन्य–पाप करते हो। इस प्रकार उन मासूमों की हत्या करते हुए तुम्हें जरा सा भी रहम नहीं आया? क्या उन हत्याओं की प्रसन्नता में तुम ये बधाइयाँ ले रहे हो? सहभोज दे रहे हो? धर्म निभाने का पाखण्ड़ कर रहे हो? राम! राम!''**[62]

श्रीमतीविनोदिनी गोयनकाअपनी कथा **'उपहार'** में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहती है कि एक सुबह अस्पताल के बाहर झाड़ू देते समय एक दाई को कूड़े के डब्बे में एक रोती हुई बच्ची मिली वह उसे डॉक्टर के पास ले गई तथा पता लगवाया कि यह बच्ची किसकी है और वह क्यों इसे कूड़े में फेक गया? तब उसे तुरन्त बुलाकर इसका कारण पूछा तो उसे पता चला कि उनके दो बेटियाँ पहले से ही है तथा यह तीसरी बेटी है जिसे उसके घरवाले ले जाने को भी तैयार नहीं है। इसीलिये लाचार होकर हृदय पर पत्थर रख उस बच्ची को त्यागने पर वह विवश हो गई। अन्त में डॉ. ने उसे व उसके पति को समझाते हुए कहा **''देखो लड़कियाँ तो लक्ष्मी होती है अपना भाग्य साथ लाती है और आजकल पढ़–लिख कर कमाती भी है। माता–पिता की सेवा देखभाल बेटों से भी अधिक बेटियाँ ही करती हैं यह प्रायः देखा जा रहा है।''** इस तरह वह उन्हें समझाकर उनकी बच्ची उनकी गोद में ड़ाल देती है जिससे उनकी आँखों से पश्चाताप तथा आनंद की जलधारा बह निकलती है।[63]

श्रमती मंजुला गुप्ता अपनी कथा **'अब और नहीं'** में भ्रूण हत्या का जिम्मेदार सासु को मानती हुई कहती है कि वह एक पोते की आस में पूजा पाठ करवाती है, बहू को तावीज बांधती है, मन्नते माँगती है, और उसका भ्रूण परीक्षण करवाती है। भ्रूण परीक्षण में अगर लड़की का पता चलता है तो वह उसे गर्भपात करने को मजबूर करती है। इसी तरह उसने भी अपनी बहू का तीन बार गर्भपात करवाया था क्योंकि उसके चार बेटियाँ पहले से ही थी। मगर इस बार टेस्टिंग मशीन में गलती हो जाने के कारण उसे लड़की की जगह लड़का बता दिया जाता है। मगर होती लड़की है जिससे उसकी सासु अपनी बहू को भला–बुरा कहती है तब एक महिला उसकी बहू को समझाते हुए कहती है कि **''बेटी को पढ़ा–लिखा कर लड़को की तरह योग्य बनाओं। फिर देखो लड़को से किसी बात में कम ठहरती हैं क्या? लड़के–लड़के के चक्कर में फौज इकट्ठा करने से क्या फायदा?।''** तब वह अन्त में निर्णय लेती है कि अब वह और बच्चे नहीं होने देगी वह ऑपरेशन करवा लेगी।[64]

'अधूरी इच्छा' नामक अपनी कथा में **आकांक्षा यादव** कुछ इस प्रकार कहती है उमा अस्पताल की कुर्सी पर बैठी हुई रोती रहती है और अपनी गलती पर पछताती है कि काश जब उसे पहली बार पता चला था कि उसके गर्भ में लड़की है तो वो उसका गर्भपात ना करवाती। अपने पति व डॉक्टर के समझाने पर वह समझ जाती है, मगर तब तक बहुत देर हो चुकी थी। डॉ. ने चेक–अप करके बताया कि अब वह कभी माँ नहीं बन सकती। तब वह सोचती है **''अगर उस दिन यह भारी भूल न की होती तो आज मैं भी माँ बन चुकी होती, लेकिन अब तो ताउम्र यह बाँझपन मेरे साथ रहेगा।''** उसने सिसकते हुए यही कहा था कि **''डॉक्टर साहिबा, मेरी आपसे एक विनती है कि अब आपसे कोई भी माँ अबार्शन के लिए कहे तो उसे मेरी ये दास्तां जरूर सुनाना। हो**

सकता है मेरी ये दुर्दशा समाज को आइना दिखा सके और उसके हाथों होने वाले पाप से वह मुक्त हो जाये।''[65]

काव्य में भ्रूण हत्या :–

कन्याभ्रूण हत्या की समस्या पर **डॉ. राम शर्मा, डॉ. खटका राजस्थानी, डॉ. उषा यादव, डॉ. अजय जनमेजय, विनोद कुमारी 'किरण', सुमन भण्डारी, शारदा श्रोत्रिय, इन्दिरा अग्रवाल, अंजुमन मंसूरी 'आरजू'** ने अपने एक जैसे विचार व्यक्त करते हुए एक अजन्मी बेटी के दर्द को विविध रूपों में व्यक्त किया है वह बताना चाह रहे है कि एक बेटी अपनी माँ से अपने जन्म लेने के लिए क्या–क्या कहती है।

एक बेटी अपनी माँ से कहती है कि माँ में भी तो तुम्हारा ही अंश हूँ, मुझे भी तो इस सुन्दर संसार को देखने का अधिकार है।

''मुझे इनसे वंचित न करो,
हे माँ ! मुझे अपनी कोख में ही न मारों।'' (बेटी का दर्द)[66]

अजन्मी बेटी अपनी माँ से प्रश्न करती हुई कहती है कि अगर तुम्हारी माँ ने तुझको भी गर्भ में ही जान लिया होता तो क्या तुम जन्म ले पाती? क्या में इस जग में आने का सपना लेती? मुझको दाग समझकर क्यों दामन से उतार रही हो? क्या मेरा दोष यही है कि मैं एक लड़की हूँ? या सास के ताने सुन–सुन कर ऐसा कर रही हो? माँ तुम लड़का–लड़की को बराबर प्यार करो। माँ मैं तेरा मान बढ़ाऊँगी, धरती से लेकर अंतरिक्ष तक तेरी शान बढ़ाऊँगी, मैं जहाँ भी रहूँगी माँ तेरा ही सौरभ फैलाऊँगी। फिर वह कहती है –

बहुत कह दिया मैंने मुझको छोड़ बात को जाने दे
मुझे गर्भ में मार न माता इस धरती पर आने दे
इस जग में आकर के मुझको अपनी कला दिखाने दे
अपने चमन में इक तितली को माता तू मंडराने दे
इस भारत की बेटी भू पर नहीं कभी भी भार रही
क्या भूल हुई है मुझसे माता जो तू मुझको मार रही। (बेटी की पुकार)[67]

एक अजन्मी बेटी अपना दुःख सुनाते हुए कह रही है कि जिसे मुझे जीवन देने का अधिकार था उसीने मेरे खून से अपने हाथ रंग लिए मैं भी कभी अपने हाथों से एक घरौंदा बनाती, एक इतिहास रचती मगर तुम्हारे एक गलत निर्णय से बच न सकी, फिर वह कहती है कि –

जैसा तुमने किया, वही यदि करने लगें सभी तो क्या हो?
कन्या कहाँ मिलेगी, खुश हो जिससे अपना बेटा ब्याहो

लड़के ही क्या तब डालेंगे, एक दूसरे के संग फेरे?
सुन न सकोगी तुम दुःख मेरे। (अजन्मी बच्ची का दुःख)[68]

यहाँ एक बेटी जन्म लेने की इच्छा प्रकट करते हुए अपनी माँ से कह रही है कि माँ मैं तुम्हारी कोख से जन्म लेना चाहती हूँ, तम्हारी गोद में सोकर लोरी सुनना चाहती हूँ, बस मेरा यही निवेदन है कि मुझको स्वीकार करना और जन्म देने से इन्कार नहीं करना क्योंकि –

अंश तेरा, वंश तेरा, मैं तुम्हारा रूप हूँ माँ
गीत गाती गुनगुनाती, गुनगुनी सी धूप हूँ माँ
आपका प्रतिबिम्ब हूँ, निज बिम्ब को स्वीकार करना
जंग ये लम्बी चलेगी, खुद को माँ तैयार रखना। (जन्म लेना चाहती हूँ)[69]

एक बेटी अपने माता–पिता से कह रही है कि आप मेरी बात को समझो मैं आपकी ही बेटी हूँ, आपके ही रक्त से बनी हूँ। माना कि पराया होना मेरी नियति है, पर इतनी पराई भी मत समझो कि मुझे हमेशा के लिए विदा कर मुक्ति पा लो और अपने समस्त कर्त्तव्यों से दूर हो जाओं। यदि फिर भी नहीं समझ सकते तो मुझे अजन्मी ही रहने दो, मुझे गर्भ में ही समाप्त कर दो। फिर वह कह रही है कि –

क्या सार्थकता है मेरे जन्म की?
क्या फर्क पड़ता है, क्या आवश्यकता है मेरी?
पर सोच लो क्या सचमुच फर्क नहीं पड़ेगा?
फर्क तो पड़ ही जाएगा
बेटी का नाश होते ही, वंश का भी नाश हो जाएगा। (बेटी)[70]

यहाँ एक बेटी समाज के लोगों से कह रही है कि मैं भगवान का दिया हुआ प्रसाद हूँ, प्रेम का स्वरूप हूँ, फिर क्यूँ मुझसे प्यार नहीं करते? क्यों मेरा तिरस्कार करते हो? मैं भी तो एक आत्मा रूपा हूँ, कोई गुनहगार तो नहीं। फिर वह समाज के लोगों से कहती है कि –

इन्सां दया, धर्म की बात है करता, फिर क्यों मैं स्वीकार नहीं?
जन्म मेरा मातम सा, क्यों मैं त्यौहार नहीं?
मेरे मिटने से पहले सोचो, प्रेम हूँ मैं, व्यापार नहीं
अपने स्वार्थ से बढ़कर शायद आपके कोई संस्कार नहीं
ईश्वर की देन मिटाते, क्या यह अत्याचार नहीं। (बेटी के उदगार)[71]

इस कविता में एक बेटी अपने जन्म लेने की इच्छा प्रकट करते हुए समाज के लालची लोगों से कह रही है कि मुझे जन्म लेने दो, मुझे इस दुनियाँ में आने दो, मैंने भी एक सपना सजाया है कि –

मैं, डॉक्टर बन, इंजीनियर बनकर देश की सेवा कर दिखलाऊँगी,
मैं, वकील, जज बनकर अपराधियों को दण्ड़ दिलवाऊँगी
मैं, एक पत्नी बनकर समृद्ध और सुसंस्कृत परिवार बनाऊँगी
मैं, एक माँ बनकर मानव जाति का वंश बढ़ाऊँगी
मैं, एक बेटी बनकर वृद्धजन माता–पिता की सेवा कर ज्ञान की
ज्योति जगाऊँगी। (बेटी)[72]

इस कविता में एक बेटी अपनी माँ से खुद को बचाने के लिए प्रार्थना करती हुई कह रही है कि हे कलियुगी माँ! मुझे इन सफेदपोश किराए के हत्यारों से बचा ले, मुझे बाहर की दुनिया में आने दे, मैं तेरे किसी भी बेटे का अधिकार नहीं छीनूँगी। फिर वह कह रही है क्या मैं तेरी अय्याशी का प्रतिफल हूँ? या कुंवारे बाप के कुकृत्य का परिणाम हूँ? कुछ भी हूँ, पर हूँ तो तेरा ही अंश न। हे माँ! अपने कुकर्मो की सजा मुझे क्यों दे रही हो? इसमें मेरा क्या दोष है? मेरी चीत्कार का तुझपर कोई असर नहीं है ना, माँ तो सुन...

तू अब कभी माँ नहीं बनेगी
दूसरों के बच्चों को देखकर नाच–गा सकती है
तालियाँ बजा सकती है, परन्तु तू कभी माँ नहीं बन सकती
यही मेरा अभिशाप है! अभिशाप है। (भ्रूण का अभिशाप)[73]

यहाँ एक बेटी अपनी माँ से अपने लिए कुछ समय मांगती हुई कह रही है कि माँ जब तुम्हारा जन्म हुआ था तब सोनोग्राफी की मशीन नहीं थी इसीलिए आपका जन्म हो गया मगर आज जन्म से पहले भ्रूण में ही लिंग का पता कर लेते है और भ्रूण में ही उसकी हत्या कर देते है। मगर हे माँ आप मुझे अपने पेट में पलने का वक्त दो दूध पिलाकर मुझे अपना आंचल उढ़ाओं और मेरी आँखों में प्यार से काजल लगाओं। आगे वह कहती है –

मुझे बस एक बार चुमकर देखो,
मेरी तरफ प्यार से घूमकर देखो।
जिन्दगी दे दो मुझे बस दो दिन की,
सच्ची हकदार हूँ मैं जिसकी।
और तब मेरी जान लेना तो दूर,
एक पल दिल से न कर पाओगी दूर। (अस्मिता)[74]

कन्या भ्रूण हत्या पर **डॉ. कमलेश शर्मा, डॉ. (सुश्री) लीला मोदी व डॉ. मालती शर्मा** ने अपनी एक जैसी विचारधारा व्यक्त की है और अपनी कविताओं के माध्यम से यह बताना चाह रहे है कि अगर इस धरती पर कन्या न रही तो उसके क्या–क्या बुरे परिणाम हमे देखने को मिलेंगे।

डॉ. कमलेश शर्मा भ्रूण परीक्षण के विरूद्ध अपने विचारों को अभिव्यक्त करते हुए कहते है कि कन्या दो कुलों की शान है अतः अपनी जन्म देने वाली माँ भी तब पैदा नहीं होती फिर तुम्हारा जन्म कैसे होता, फिर वह कहती है–

दुनिया कैसे आगे बढ़ती,
जो कन्या न होती?। (जो कन्या न होती...?)[75]

डॉ. (सुश्री) लीला मोदी कहते है कि इस धरती पर लड़कियाँ संस्कृति का बीज मानी जाती है मगर फिर भी रोज उन्हें भ्रूण में ही मार दिया जाता है। लक्ष्मीबाई, इन्दिरा, मीरा सभी की आत्मा स्वर्ग से हमें ताने देती होगी तथा घटते नारी आंकड़ों से हमारी हँसी उड़ायी जा रही है। इसी तरह वे हमारी ज्ञान की खिड़कियाँ खोलने की बात कहकर कहते है कि –

समाज संस्कृति की कड़ी टूट जाएगी
नारी छाया तक यहाँ से रूठ जाएगी
घर समाज राज देश होंगे फिर यहाँ
तरसोगे देखने को भी नारी की झलकियाँ
इस धरा पे संस्कृति का बीज लड़कियाँ। (भ्रूण हत्या)[76]

डॉ. मालती शर्मा जी अपने विचार व्यक्त करते हुए कहती है कि अगर अभी भी इसी तरह बेटी की भ्रूण में ही हत्या करते रहे तो वो दिन दूर नहीं जब सृष्टि का क्रम रूक जाएगा, राखी, तीज सूनी रहेगी, बेटों के माथे भी सूने रहेंगे और सूना रहेगा तुम्हारा घर आंगन तब मानव वंश कैसे चलेगा? अतः बेटी को बचाकर एक नया इतिहास रचो नयी क्रान्ति खड़ी करो और घर में बेटी रूपी सूरजमुखी खिलाओं। अंत में वह प्रश्न करती हुई कहती है कि –

तुम बेटे किससे ब्याहोगी?
बहुए कहाँ से लाओगी?
पोते कहाँ से पाओगी?
ओ बेटी भ्रूण हत्यारी माँओं
कन्या भ्रूण हत्यारी दादियों। (मानव वंश चलेगा कैसे?)[77]

मोहिनी राजदान व राष्ट्रसंत श्री गणेश मुनि शास्त्री बेटी भ्रूण हत्या पर अपनी कविता के माध्यम से बताना चाह रहे है कि अगर एक माँ भ्रूण हत्या का विरोध करे तो दुनिया की कोई ताकत नहीं जो भ्रूण हत्या कर सके इसी तरह वह उसे जन्म देकर सम्मान दिला सकती है।

श्रीमती मोहिनी राजदान अपनी कविता के माध्यम से यह बता रही है कि किस प्रकार एक माँ भ्रूण हत्या का विरोध करते हुए कह रही है कि माना बीज तुमने बोया है

पर उसे सींचा तो मैंने है। मैं अब तुम्हारा साथ नहीं दूँगी और इसे संसार में लाकर रहूँगी तथा जिसकी यह हकदार है वो अधिकार दिलाकर रहूँगी। अंत में वह अपने पति से जवाब मांगती हुई पूछती है–

क्यों बेटे के जन्म पर खुशी और बेटी के जन्म पर उदासी
क्यों सारे आराम बेटा पाए? और बेटी इन सब से वंचित रह जाए
बेटे को रोज नया पहनावा, बेटी पुराने पहन रह जाए
बेटा घूमे स्वतंत्र रूप से, बेटी परदे में घुट जाए
बेटा खाए भरपूर थाली, बेटी का पेट आधा खाली
बेटी न होती तुम कहाँ होते, यह संसार कहाँ होता।
(भ्रूण हत्या के लिए पत्नी का विरोध)[78]

राष्ट्रसंत श्री गणेश मुनि शास्त्री अपनी कविता में कहते है कि शादी के बाद जब सास, बहू से कहती है कि मुझे पोते का मुँह देखना है और अगर पोती हुई तो तुम्हें पछताना पड़ेगा। तब बहू उसका विरोध करती हुई कहती है कि माँ जी आप भी किसी की बेटी है इस बात पर ध्यान दीजिए मेरी ममता की कसौटी का परीक्षण मत लीजिए। यह कहती हुई वह कहती है –

बेटी तो लक्ष्मी का रूप होती है,
मैं तो उसे भी प्यार से सीने लगाऊँगी,
मगर भूलकर भी भ्रूण परीक्षण नहीं कराऊँगी। (भ्रूण परीक्षण नहीं कराऊँगी)[79]

सुषमा अग्रवाल अपने काव्य **'बेटियाँ'** में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहती है कि बेटे की चाह में खुद अपने माता–पिता के हाथों ही अपनी बेटी की भ्रूण में ही हत्या करवायी जा रही है इसीलिए वह कहती है –

न माँ की ममता मचलती
न बाप का ह्रदय पसीजता
और दादी के तो तन में
पोते का सपना हिलोरे भरता।[80]

अखिलेश निगम 'अखिल' अपने काव्य **आदिम युग फिर लौट आया है'** में अपने विचार कुछ इस प्रकार से व्यक्त करते है वह कह रहे है कि आज पुराना युग फिर से लौट आया है बस फर्क सिर्फ इतना सा है कि पुराने समय में जन्म लेने के बाद नवजात शिशु की हत्या होती थी और आज जन्म लेने से पहले गर्भ में ही उसकी हत्या कर दी जाती है। इसीलिए वह कहते है –

हाँ हम जी रहे हैं
जा रहे हैं हम नयी सदी की ओर या
मुड़ गये हैं हमारे कदम फिर आदिम युग की ओर।[81]

अशोक जोशी अपने काव्य **'भ्रूण हत्या करते हो?'** में कहते है जिसे हम माँ, माया, देवी, लक्ष्मी कहते है और नारी का सम्मान करते है उसी की हत्या क्यों करते है? हम बेटे–बेटी के बीच अन्तर क्यों करते है? नारी को एक खिलौने की तरह तोड़–मरोड़ कर उसका क्रय–विक्रय क्यों करते है? और क्यों उसे मारा जाता है? इन सबके लिए एक बेटी पूछ रही है कि

पूछ रही बीज में से बेटी, लिये जन्म की आश
कब्र में बोली जैसे लाश, भला तुम मुझसे भी डरते हो
क्या तुम भ्रूण हत्या करते हो?।[82]

अखिलेश निगम 'अखिल' अपने काव्य **'क्यों तुमको लाज न आती है ?'** में बेटे को कन्या का दुश्मन बताते हुए कह रहे है कि एक कन्या अपने माता–पिता व ससुराल का घर, आंगन, उपवन सब हरपल महकाती रहती है फिर भी पुत्र को वंश वृद्धि का आधार बताकर लड़का–लड़की में भेद–भाव करके माता–पिता ही कसाई बनकर कन्या का वध करते है। इसीलिए वह कन्या की रक्षा करने का संकल्प लेने के लिए इन पंक्तियों के माध्यम से कह रहे है –

औरत और प्रकृति का पोषण शुभ संदेश हमारा है
नारी नर का, नर नारी का शाश्वत सत्य सहारा है
उठो मनुज अब उठो जागो, माँ ममतायमी बुलाती है
कन्या का वध करने में क्यों तुमको लाज न आती है।[83]

श्री गणेश मुनि शास्त्री अपने काव्य **'आंगन की तुलसी'** में अपने विचारों से एक कन्या के अरमानों को लेकर कह रहे है जन्म की आश में एक कन्या कई अरमान लगाए है, नन्हीं आँखों में कई सुनहरे स्वपन सजाती है, लबों पर मधुर गीत लाती है और कभी इधर कभी उधर डोलती सी रहती है और बाहर आकर कुछ कर गुजरने की सोचती रहती है। मगर होता उसके साथ यह है –

सहसा अंग–अंग पर पड़ता है कृत्रिम प्रकाश
होता है उसे झुलसने का एहसास
माता की मूरत माँ बन जाती है हैवान
तार–तार हो जाते है उसके अरमान।[84]

गीता भट्टाचार्य अपनी कविता **'इन्साफ'** में अपने विचार व्यक्त करती हुई कह रही है जिस प्रकार एक कृषक फल पाने की आशा में अपनी धरती पर बीज बोता है

उसी प्रकार माता–पिता भी संतान पाने की आशा में बीज बोते है फिर चाहे वह बेटी हो या बेटा, है तो उनका ही अंश मगर फिर क्यों बेटे के लिए बेटी को गुनहगार बनाते है। बेटी तो चंद दिनों बाद पति के संग चली जाती है फिर बेटा ही तो रहता है जो शादी के बाद माता–पिता को घर से निकालकर वृद्धाश्रम जाने पर मजबूर करता है तब बेटी ही उनका सहारा बनती है तब माता–पिता दुःखी होकर सोचते है –

कहाँ गया वो वंश का वारिस ?
खून से जिसको सींचा था ?
आखिर बेटी ही काम आई,
जब जीवन अस्ताचल को था।[85]

मंजुला गुप्ता अपनी कविता **'कन्या हत्यारे'** में कन्या के हत्यारों को संबोधन करते हुए कह रही है कि जिस कन्या का पुतला लेकर माँ फूट–फूट कर रोती है जिसे वह कभी चूम–चूम कर कलेजे का टुकड़ा कहती थी उसके हत्यारे को दुनिया का कोई भी विधाता माफ नहीं करेगा, वे एक दिन फुटपाथों पर ही तड़प–तड़प के दम तोडेंगे या फिर अपनी अंतिम सांसे वृद्ध आश्रम में दया का पात्र बन बिताएंगे क्योंकि –

कुदरत रखती न कभी उधार,
इस धरा पर कभी किसी का।
लौटाती प्रतिदान शत गूना,
करनी का फल उसका।[86]

ज्ञान दिवाकर राष्ट्रसंत प्रवर्तक श्री गणेशमुनि शास्त्री अपने काव्य **'खिलवाड़'** में एक फिल्म के माध्यम से अपने विचार व्यक्त करते हुए बता रहे है कि उन्होने एक फिल्म में ऐसा दृश्य देखा जिसमे एक नायिका जब भ्रूण परीक्षण के बारे में सोचती है तो उसकी कोख में पल रही कन्या अपने नन्हें हाथों से उसके पेट की आंतडिया नौचती है और जब वह अपनी विचारधारा बदलती है तो उसी नन्हीं कन्या के नौचने वाले हाथ क्रूर से कोमल बन जाते है और माँ को निश्छल प्यार से आनंद का स्पर्श देते है।87

लेखों में भ्रूण हत्या :–

डॉ. भरत मिश्र प्राची अपने लेख **'कन्या भ्रूण हत्या का परिवेश सृष्टि के लिये चुनौती'** में कन्या भ्रूण का जिम्मेवार नारी को मानते हुए कह रहे है कि आज इस आधुनिक अर्थयुग में देवी स्वरूप नारी की जो दुर्दशा हो रही है उसकी जिम्मेवार स्वयं नारी ही है। जहाँ नारी को नारी द्वारा प्रताड़ित किये जाने के अनके प्रसंग उल्लेखित है। अगर हम कन्या भ्रूण हत्या के प्रसंग को ले लें तो इसकी पहल की बुनियाद में नारी की भूमिका सर्वप्रथम परिलक्षित होती है। पुत्र प्राप्ति की अभिलाषा, दहेज दानव का विकृत रूप एवं पराया धन समझे जाने की प्रासंगिकता आदि में समाहित स्वार्थ की भावना में

पुरुष के साथ–साथ नारी की उभरती पृष्ठभूमि को आसानी से देखा जा सकता है। पुत्र जन्म पर थाली बजाने तथा पुत्री जन्म पर मन मारने की प्राचीन परम्परा सदियों से चलती आ रही है और आज बदलते इस वैज्ञानिक युग में यह प्रक्रिया कन्या भ्रूण हत्या का स्वरूप ले चुकी है। घर में पुत्री जन्म पर सबसे पहले ताने के स्वर सास या ननद के ही गूंजते है। कन्या भ्रूण हत्या के प्रसंग में इसी तरह की नारी की भूमिका कहीं न कहीं आसानी से देखी जा सकती है जिससे नित प्रतिदिन की हत्या का प्रतिशत बढ़ता ही जा रहा है।[88]

डॉ. संध्या जैन 'श्रुति' अपने लेख **'घटती कन्याएँ बढ़ता लिंग भेद एवं मानवाधिकार'** में कहती है कि प्रत्येक जीव को जीवन जीने का अधिकार है पर इससे बड़ा मानव अधिकार का हनन क्या होगा कि मानवीय प्राणी को ही दुनिया में न आने दिया जाए। बालिकाओं की संख्या निरन्तर कम क्यों हो रही है? कहीं पुरुष को यह भय तो नहीं कि नारी की शक्ति, क्षमताओं के आगे उसे कभी घुटने न टेकने पड़े। कही नारी नर पर भारी न हो जाए, इसीलिए शायद कन्याओं को भ्रूण में ही नष्ट कर दिया जाता है।[89]

प्रो. डॉ. तारा लक्ष्मण गहलोत अपने लेख **'कन्या भ्रूण हत्या का सच एक समाज शास्त्रीय विश्लेषण'** में कन्या भ्रूण हत्या का मूल कारण कन्या के प्रति समाज की मानसिकता, दृष्टिकोण व सोच को मानती है। उनका मानना है कि पितृसत्तात्मक समाज में पुत्र को सदा महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। उसे वंशवाहक, पितृों का मुक्तिदाता व तर्पण करने वाला और माता–पिता के बुढ़ापे की लाठी माना गया है। कथा सरित्सागर का यह श्लोक **'शोककन्दः क्व कन्या हि क्वानन्दः कायवान सुतः'** स्पष्ट करता है, कहाँ तो शोक का मूल कन्या और कहाँ शरीरधारी आनन्द के रूप में पुत्र? यह ओछी व दूषित मान्यतायें आज भी प्रभावी रूप से समाज को अपने शिकंजे में कसे हुए है। इन मान्यताओं के चलते आज भी कन्या को शोक का मूल, पराया धन व पाँव की जूती माना जाता है। जहाँ तक माँ की ममता व संवेदनशीलता का प्रश्न है, अधिकांश घटनाओं में कन्या भ्रूण हत्या का निर्णय माँ का स्वतन्त्र निर्णय न होकर दबाव व मजबूरी की बाध्यता है माँ बेचारी को कौन पूछता है? उसकी कहाँ चलती है? उसकी किसे परवाह है? उसका ममत्व व संवेदना कौन समझता है। परिवार के सदस्यों के सामूहिक दबाव में उसे अपनी ममता का गला घोटना पड़ता हैं पैदा होने वाली कन्या के भविष्य के जीवन में आने वाली उपेक्षा, अपमान, तिरस्कार, प्रताड़ना व शोषण में घुट–घुट कर जीने की मजबूरी से बचाने हेतु अजन्मी को ही समाप्त कर दिया जाय। यह एक माँ की त्रासदी है कि होने वाली कन्या को इन सब से मुक्ति दिलाने हेतु गर्भ में ही समाप्त करने की मजबूरी में कदम उठाना यह एक कड़वा सत्य है।[90]

'कन्या भ्रूणों की हत्या से नष्ट होता सांस्कृतिक पर्यावरण' लेख में **डॉ. सीमा शाहजी** का कहना है कि भ्रूण हत्याएँ समाज में महिलाओं की दयनीय स्थिति बयाँ करती

है। दहेज की कुप्रथा के दबाव तथा अधिकांश मामलों में माताओं की इच्छा के विपरीत भ्रूण हत्याएँ की जा रही है। हमारी सरकार ने भ्रूण हत्याओं के लिए कानून बनाकर गंभीर अपराध घोषित कर दिया है किंतु क्या केवल कानून बना देने से यह अपराध रूक सकता है? कन्या भ्रूणों की हत्या का अपराध केवल महानगरों–शहरों तक ही सीमित नहीं है। यह महामारी ग्रामीण क्षेत्रों तक फैली हुई है। गाँव और छोटे–छोटे कस्बों में दाइयाँ बहुत कम पैसों में कन्या भ्रूणों की हत्या कर देती है। कई राज्यों में कुछ विशेष स्थितियाँ पैदा होने पर गर्भ–परीक्षण की छूट अनुमति शासन द्वारा दी गई है। गर्भवती महिला के स्वास्थ्य का खतरा या असामान्य भ्रूण की स्थिति में इस तकनीक को अपनाया जा सकता है लेकिन कानून द्वारा दी गई इस छूट का निर्लज्जता पूर्वक लाभ उठाया जा रहा है। कई भ्रूण हत्याएँ इसी छूट की आड़ में की जा रही है।[91]

कपूर चन्द्र जैन 'बंसल' अपने लेख **'गर्भस्थ बालिका का वात्सल्यमयी अपनी माँ को अलिखित भावपूर्ण पत्र'** में एक अजन्मी बेटी के विचारों के माध्यम से कहना चाहते है कि जब माता–पिता को यह पता चलता है कि गर्भ में कन्या है तो उसका गर्भपात कराने की सोचते है तब एक बेटी अपनी माँ से कहती है कि माँ आप अपना गर्भपात कराकर मेरे जीवन का अन्त ना करो। यदि जन्म से पहले ही आपने मेरी हत्या कर दी तो न मैं आपको, अपने पिता एवं परिवार को देख सकूँगी और न परिवार जनों को और न आप मुझे देख पायेंगे इससे बढ़कर मेरा दुर्भाग्य और क्या हो सकता है? माँ जरा सोचो यदि आपकी माता जी भी जब आप उनके गर्भ में रही होगी यदि वह गर्भपात करा लेती तो फिर आप इस संसार में कहाँ होती? संसार की सभी माताएँ जब गर्भवती हो और उनके गर्भ में बालिका हो और वे सब गर्भपात कराने लग जाए तो क्या संसार की वृद्धि बढ़ेगी, कभी नहीं। अतः माँ आप पिताजी को समझाइये कि वे भ्रूण हत्या जैसे महान पाप कराने के लिये उद्यत न हो और न मेरे जन्म लेने पर परेशान हो।[92] **रितेन्द्र अग्रवाल** भी अपने लेख **'भ्रूण की गुहार माँ से'** में एक अजन्मी बेटी के माध्यम से यही कह रहे है कि एक बेटी अपनी माँ से कहती है कि मुझे क्यों नष्ट करना चाह रही हो क्योंकि मैं लड़की हूँ। माँ तू भी तो लड़की थी तुझे भी तो किसी ने जन्म दिया, फिर क्यों तू नहीं बचा रही मुझको? मेरी फरियाद सुनों मुझे बचाओं। मैं सिर्फ तुम पर ही भरोसा कर रही हूँ क्योंकि तुम माँ हो। अगर आज यह क्रूर कत्ल न रोका गया तो क्या यह संभव होगा कि कल कोई कौशल्या, सुमित्रा, द्रोपदी, सीता आदि पैदा होगीं? कभी नहीं। फिर वह कहती है माँ मुझे मत मारो मुझे भी खुला संसार पाने दो आँखे खोलने दो, मुझे विश्वास है मेरी फरियाद तू अवश्य सुनेगी।[93]

सुधा गोयल अपने लेख **'औरत की कोख का बाजारीकरण'** में कह रही है कि पहले के समय में गर्भ में लड़का है या लड़की यह तो जन्म के बाद ही पता चलता था। हालांकि लड़कियों को जन्मते ही मारने की प्रथा रजवाड़ों में खूब रही। लेकिन आज अल्ट्रासाउण्ड ने औरत के पेट में छिपे राज को राज नहीं रहने दिया। जिसका परिचय

जन्म के बाद मिलना था उसकी जानकारी पहले ही मिल जाती है। आज विज्ञान ने अपनी तरक्की से एक गुनाह को जन्म दिया है। लगभग तीन दशक पहले परिवार नियोजन की आँधी आई **'हम दो हमारे दो'** का नारा आया। इस आँधी और नारे ने बेटियों को हाशिए पर खिसका दिया। समस्या उठी परिवार नियोजन में कैसे और किसे आसानी से हटाया जा सकता है, तब बेटे को वंश बढ़ाने वाला, घर की बागड़ोर संभालने वाला, कुल दीपक माना गया और बेटी को जन्म से लेकर विवाह तक झंझट ही झंझट माना तब से बेटियाँ आँख की किरकिरी बन गई और वह कोख में ही घटने लगी, घर के वृक्ष में बेटी नाम की कोंपल फूटने ही नहीं दी गई। एक बेटी के बाद डॉक्टर स्वयं अल्ट्रासाउण्ड कराने की सलाह देने लगे और यही से कोख का बाजारीकरण शुरू हो गया।[94]

दिलीप भाटिया अपने लेख **'कन्या भ्रूण हत्या कुछ प्रश्न'** में कहते है कि कन्या भ्रूण हत्याओं के कारण लड़कियों की बहुत कमी हो गई है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या अब एक इंजीनियर पुत्र के लिए योग्य वधू मिल पायेगी? क्या वह पुत्र कुंआरा रह जाएगा? क्या रक्षा बंधन के दिन उसकी कलाई सुनी ही रहेगी? नवरात्रि में नौ दिन के उपवास के बाद कुंवारी कन्याओं को खाना खिलाने के लिए कन्याएँ कहाँ से लाएँगे? नए मकान के गृह प्रवेश पर आरती के लिए बहन–बेटी चाहिए तब बहन–बेटी कहा से लाएँगे? जब एक औरत ससुराल वालो की इच्छा के विरूद्ध गर्भपात नहीं कराने का निर्णय लेती है तो क्या ससुराल वाले उसे स्वीकार करेंगे? क्या उसकी बेटी आजन्म अपमान एवं पीड़ा झेलती रहेगी? हमारे आधुनिक, सुसंस्कृत, शिक्षित समाज में उभर कर आ रहे इन जैसे अनेक प्रश्नों का क्या कोई उत्तर आपके पास है?।[95]

'कोंख या कब्रगाह' में **श्रीमती प्रेम कोमल बूलिया** कह रही है कि नारी सम्मान, अधिकारों और अस्मिता की लड़ाई इस देश में खूब लड़ी गई। बड़ी–बड़ी संस्थाएँ और थोथे कानून बनाकर बड़े–बड़े बैनरों तले नारी के गुणगान भी खूब हुए लेकिन नतीजा वही ढ़ाक के तीन पात रहा। नारी अस्मिता पर मंडराता खतरा और घरेलू हिंसा में कोई बदलाव नहीं हो पाया क्योंकि यह समाज नारी को दूसरे दर्जे पर रखता है। शुरू से नारी अनेक संकटो से जुझती रही है। वैज्ञानिक प्रगति ने उसके सम्मुख एक संकट और खड़ा कर दिया है। कोंख में कत्ल कर देने का संकट। विज्ञान ने तो स्वास्थ्य की जांच के लिए एक स्वस्थ परम्परा की नींव डाली लेकिन हमने उसमें भी अपना स्वार्थ तलाश लिया जिस कोंख से हमने जन्म लिया उसे ही कब्रगाह बना डाला। आज हजारों कन्याओं को कोंख में कत्ल किया जा रहा है जिसे न समाज रोक पा रहा है न सरकार। जितने कानून बनते है उतने ही तोड़ने के रास्ते भी निकल आते है।[96]

श्रीमती मिथलेश जैन अपने लेख **'गुम होती बेटियाँ : जिम्मेदार हम और आप'** में कहती है कि आज आधुनिक माँ की असीमित इच्छाएँ है वह अधिकांशतः कैरियर औरिन्टेड है और ऐसी स्थिति में वह बेटी की परवरिश को अपने विकास मार्ग में रोड़ा

मानने लगी है। साथ ही समाज में व्याप्त दहेज प्रथा की कुरीतियों के चलते वरपक्ष की बढ़ती मांग की पूर्ति में लड़की के परिवार की आर्थिक मजबूरी, असमर्थता और बेटी की दहेज बलि से भयभीत निम्न व मध्यमवर्गीय परिवार बेटी को जन्म लेने से पूर्व ही कोख में हत्या करने से नहीं हिचकिचाते है। अशिक्षा के कारण माँ का अपनी बेटी के अस्तित्व के लिए अपने अधिकारों से अनभिज्ञ होना व पोषण का प्रतिकार न कर पाना भी एक मुख्य कारण है। कदाचित संपन्नता व अत्याधुनिक चिकित्सीय प्रौद्योगिकी की अपवित्र संधि भी कन्या भ्रूण हत्या का मुख्य कारण बन गई है। अंत में वे एक सर्वेक्षण के द्वारा बता रही है कि संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट के अनुसार भारत में प्रतिदिन अवैध तरीके से कन्या भ्रूण के लगभग दो हजार मामले हो रहे है। एक शोध के अनुसार बीते बीस सालों में भारत में लिंग चयन व गर्भपात के कारण एक करोड़ से अधिक कन्या भ्रूण हत्या हो चुकी है। बी.बी.सी. के अनुसार भारत में जन्म पूर्व लिंग निर्धारण के कारण पांच लाख लड़कियाँ प्रतिवर्ष मिट रही है। विश्व के अधिकांश देशों में प्रति हजार लड़कों पर 1005 लडकियाँ होती है। मगर हमारे देश में जनगणना 2001 के अनुसार प्रति एक हजार लड़कों पर 927 ही है। अतः यह विश्लेषण किया जाना आवश्यक है कि घटते लिंग अनुपात व बढ़ती हुई कन्या भ्रूण हत्या के पीछे क्या कारण है?।[97]

'कन्या भ्रूण हत्या दोषी कोन' में **मार्ग मालती** का मानना है कि यहाँ का व्यक्ति मानसिक रूप से घोर रूढ़िवादी और सामंती मानसिकता के दलदल में फंसा हुआ है। इसी कारण बेटे को स्वर्ग का सोपान और कन्या को नरक का द्वार कहा जाता है। कन्याओं को जन्म देने वाली माता की स्थिति सुरक्षित या सम्मानजनक नहीं है। सारे व्रत, अनुष्ठान, जप–तप, पूजन–वन्दन, गंडे–ताबीज, यंत्र–मंत्र और शास्त्रवाक्य कि **'पुत्रवती भव'** केवल और केवल कन्या को नकारने, धिक्कारने और पुत्रों के प्रोत्साहन हेतु है। अतः धर्म–शास्त्र, सामाजिक रूढ़ियाँ, संकीर्ण मानसिकता और पूरा समाज गुनहगार है। बेटियों की हत्या के परिप्रेक्ष्य में।[98]

भुवनेश्वरी मालोत ने अपने लेख **'संकल्प ले कन्या भ्रूण हत्या नहीं करेंगे'** में कन्या भ्रूण हत्या का कारण लोगों की कुंठित मानसिकता को माना है और कहा है कि यदि हम कन्या भ्रूण की हत्या करते रहे तो इस समाज का, परिवार का, देश का रूप कैसा होगा? हमारा वंश आगे कैसे बढ़ेगा? जब इस पृथ्वी पर बेटियाँ ही नहीं रहेंगी तो कहाँ से आयेगी, आपके बेटे के लिए सुंदर सुशील बहू?। अतः बेटा बाप का नाम रोशन करेगा, वंश वृद्धि करेगा, ऐसी कुंठित मानसिकता को खत्म कर कन्या भ्रूण हत्या जैसे जघन्य अपराध को रोकना होगा और बेटियों को भ्रूण में ही बचाना होगा।[99]

'अभिशप्त कन्या भ्रूण हत्या कारण एवं निवारण' में **सुरजीत सिंह साहनी** का कहना है कि सदियों से चली आ रही सामाजिक कुरीतियों एवं अंधविश्वास ही कन्या भ्रूण हत्या का प्रमुख कारण है जैसे लोभी दहेज–प्रथा, मिथ्या रूढ़ि वादिता, लड़के से वंशवृद्धि का मिथ्यावाद, मरणोपरांत मोक्ष प्राप्ति के लिए पुत्र की कामना अथवा वृद्धावस्था

में पुत्र के सहारा बनने की इच्छा इत्यादि है किन्तु बलि तो सदैव कन्या की ही होती रही है। आश्चर्य है कि कन्या के जन्म से पूर्व ही अन्याय का क्रम उस पर टूट पड़ता है जो आगे थमने का नाम ही नहीं लेता किन्तु यह प्रमाणित सत्य है कि कई परिवारों में पुत्रियाँ ही माता–पिता की सेवा करते हुए आदर्श प्रस्तुत कर उनके बुढ़ापे का सहारा बनती आई है क्योंकि लड़कों की अपेक्षा लड़कियाँ स्वभाव से अधिक भावुक, संवेदनशील, कोमल एवं सेवाभावी होती है।[100]

स्थाई स्थंभ में भ्रूण हत्याः–

डॉ. शीला चौधरी स्थाई स्थंभ में अभिव्यक्त अपने लेख'**भ्रूण हत्या क्यों?**' में अपने विचार व्यक्त करती हुई कहती है कि आये दिन अखबारों में, पत्रिकाओं और टेलीविजन पर भ्रूणहत्या के बारे में चर्चा होती रहती है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि भ्रूण हत्या एक जघन्य अपराध है, जहाँ लड़की को पैदा होने के पहले ही मार दिया जाता है। इसका मतलब ये हुआ कि माँ की कोख भी लड़की के लिये सुरक्षित नहीं है और उसे पैदा होने का भी अधिकार नहीं है। गौर तलब है कि इसके लिये माँ स्वयं भी तैयार हो जाती है। इसके लिये कानून भी बनाया गया है। परन्तु सोचने की बात है कि क्या कानून बनाने से ही इस समस्या का हल निकाला जा सकता है? ऐसी क्या मजबूरियाँ या भावना है जो कि नारी को अपने ही अंश को समाप्त करने के लिये प्रेरित करती है? क्या निकट भविष्य में इस दिशा में कुछ सकारात्मक हल निकल पायेगा?

डॉ. शीला चौधरी जी ने बहुत सी महिलाओं से जो लिंग परीक्षण की इच्छुक होती हैं, उनसे सीधा सवाल किया कि लड़के की इतनी अहमियत हमारे देश में क्यों है, तो जो बातें उन्होंने बताई वो ये हैं –

– पुत्र वंश को आगे बढ़ाता है।
– पुत्र बुढ़ापे में हमारी परवरिश करेगा।
– पुत्र का मुखाग्नि देना आवश्यक है क्योंकि स्वर्ग की प्राप्ति तभी हो सकेगी, ऐसी हमारी पारम्परिक सोच है।
– पुत्र प्राप्ति से एक आन्तरिक सुख की प्राप्ति होती है।
– ग्रामीण अंचल में लोगों की धारणा है कि खेती का काम लड़के ही कर सकते हैं लड़कियाँ नहीं।
– लड़की पैदा होना एक आर्थिक बोझ समझा जाता है, उसी दिन से माँ–बाप को बचत शुरू करनी पड़ती है, जिससे विवाह आदि किया जा सके।
– लड़की के विवाह में दहेज एक दैत्याकार समस्या है, जो दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है हांलाकि इस पर भी कानून बनाया जा चुका है।

वे सभी बातों को जानकर सोचने को मजबूर हुई हैं कि क्या वास्तव में लड़की हमारे समाज में सिर्फ बोझ ही है? सबसे बड़ा कारण जो उनहें लगता है वो आर्थिक ही है। यदि हमारे देश में विवाह की संस्था को कुछ व्यवस्थित कर दिया जाये, तो आधी से ज्यादा समस्या का हल हो सकता है। दूसरे देशों में यानि पश्चिम के देशों में शादी की जिम्मेदारी लड़का और लड़की की होती है, माता–पिता की नहीं। शादी वो अपने आप ही तय करते हैं और बहुत ही सीधे–सादे ढंग से होती है। ऐसी स्थिति में लड़की को बोझ समझने का सवाल ही नहीं उठता है। हमारे देश में भी कई जगह पर जैसे केरल और कुछ पूर्वी राज्यों में, विरासत में संपत्ति लड़कियों को ही मिलती है तो वहाँ भ्रूण हत्या क्यों होगी? दूसरे देशों में तो साधारण सोनोग्राफी कराने पर बच्चे का लिंग बता दिया जाता है, परन्तु वहाँ सिर्फ इसलिये कि गर्भ में लड़की है गर्भपात कोई नहीं कराता है।

इस समस्या को दूर करने के लिये उसे जड़ से उखाड़ना पड़ेगा। सिर्फ ऊपर से लीपापोती करने से कुछ भी नहीं होगा। हमारी मानसिकता को बदलना होगा और सम्पूर्ण समाज को नारी के प्रति अपना दृष्टिकोण सकारात्मक करना होगा। भ्रूण हत्या पर शोर मचाने वाले, लेख लिखने वालों और कानून बनाने वालों, और बड़े–बड़े भाषण देने वालों से उनका ये कहना है कि जब तक समाज का नजरिया नहीं बदलेगा तब तक यदि गर्भ में लड़कियों की हत्या नहीं हुई तो उन्हें पैदा होने के बाद में मार दिया जायेगा या बड़ी होने पर दहेज के लिये जला दिया जायेगा।[101]

प्रो. डॉ. तारालक्ष्मण गहलोत स्थाई स्तंभ में अपनी कविता '**अजन्मी बेटी री अरदास**' में कन्या भ्रूण हत्या पर अपने विचार एक बेटी की अरदास के रूप में व्यक्त करते हुए कहती है – एक बेटी अपनी माँ से कह रही है कि माँ मुझे जन्म दे, शिक्षा दे,मगर मुझे गर्भ में ही ना मार। अगर मारना ही हैं तो दहेज के लोभीयों को मार, जो जीवित बहुओं को जलाते हैं, आत्महत्या के लिए मजबूर करते हैं, परिवार पर उन्हें बोझ समझते है और घरेलु हिंसा के जुलम सहने पर मजबूर करते है तु उनको जड़ से ही उखाड़ फेक माँ। इस सृष्टि का आदि भी मैं ही हूँ और अंत भी, दया, त्याग, साहस, परिश्रम की साक्षात मूरत हूँ में, मुझे जग में आने दे, मैं ना तो देवी बनूंगी और ना पैरो की जूती, मैं तो युगो–युगो की संस्कृति की मिसाल बनूंगी। माँ मैं भी तो एक मानव हूँ, जननी हूँ, शक्ति हूँ। माँ तु सबको बोल दे की मैं तो इसको जनम दूंगी और ना दहेज लूंगी ना ही दूंगी। इसको पढ़ा–लिखा कर सशक्त, सबल बनाऊंगी और इसको अपने पैरो पर खड़ी करुंगी। तथा वर्तमान कुरीतियों में एक नया कमल खिलाऊंगी जो एक नये समाज का निर्माण करेगी जहाँ समता, न्याय शोषणमुक्त, शान्ति, प्रेम से परिपूर्ण एक नये समाज का उद्भव होगा।[102]

श्रीमती प्रभा पांडे स्थाई स्तंभ में अपनी कविता '**माँ से अजन्मी बेटी की शिकायत**' में एक बेटी द्वारा अपनी माँ से कही हुई बाते इस कविता के माध्यम से बताती हुई कहती है –

माँ मैं तेरे गर्भ के भीतर नन्हीं सी कोपल हूँ,
तेरे हृदय कमल पर शोभित एक पराग हूँ।

इस कविता के माध्यम से लेखिका एक बेटी के मन की बात कहती है जो अपनी माँ से कह रही है कि–माँ मैं तो तेरे गर्भ के भीतर एक नन्हीं सी कोपल हूँ, तेरे हृदय कमल पर शोभित एक पराग दल हूँ। मैंने सुना है कि तुम मुझे मार देना चाहती हो, अगर मुझे जग में लाना ही नहीं था तो संरक्षण देकर सिंचित क्यों किया? एक तुम्हारे कहने पर ही मुझ पर शस्त्र चलेंगे, और मैं धरती पर पड़ी तड़पूंगी, मैंरे शरीर के टुकड़े यहाँ वहाँ बिखरे पड़े होंगे, जिसे कुत्ता, बिल्ली नोच–नोच कर खायेंगे। अगर माँ मेरे लिए दूध नहीं है तो में सूखी रोटी खा लूंगी पर तुमसे शिकायत नहीं करुंगी और वह कहती है कि मैं दीदी की फ्राक पहन लूंगी और भैया की किताबे लेकर पढ़ लूंगी पर तुम्हारा खर्चा नहीं बढ़ाउंगी ये मैं वादा करती हूँ और वृद्धावस्था में तुम्हारी खूब सेवा करुँगी, मगर मुझे मत मारो माँ मुझे भी इस संसार में आने दो मैं भी तो तुम्हारे गर्भ की ही कोपल हूँ।[103]

श्रीमती नीलिमा टिक्कू ने **'कन्या का जन्म : खुशी या गम'** विषय पर एक परिचर्चा कर विभिन्न लेखक–लेखिकाओं के कन्या जन्म पर उनके विचार जाने जो इस प्रकार से है– परिचर्चा में सहभागिता लेते हुए **श्रीमती ज्योति झाबक** का कहना है कि वर्तमान समय में नित नवीन आविष्कारों, भौतिक संसाधनों की अभिवृद्धि के कारण आज मानव जन्म से पूर्व यह जान लेता है कि बच्चा लड़का है या लड़की। पहले मानव ऐसे साधनों से वंचित था तब तक तो इसे परमात्मा की देन ही माना जाता था। भले ही रूढ़िवादी समाज जन्म के पश्चात 'स्त्री' को विभिन्न प्रकार के तानों से छेदता रहे। पर आज बेटी के जन्म पर खुशी नहीं बनाई जाती बल्कि गम का माहोल होता है। अतः आज आवश्यकता है सोच बदलने की, जन्में को संस्कारित करने की, न की बेटा–बेटी में भेदभाव की।

डॉ. तारा लक्ष्मण गहलोत का भी यही मानना है कि कन्या भ्रूण हत्या का मूल कारण दहेज, ससुराल में उपेक्षा, उत्पीड़न, तिरस्कार, प्रताड़ना, हिंसा व घरेलू अत्याचार, दहेज हत्याएँ, मार–पीट कर घर से निष्कासित, शोषण के दुष्परिणाम उसे कलंकित करते है। इन सभी मानसिकताओं से कन्या जन्म को गम के रूप में देंखा जाता है। पितृसत्तात्मक समाज में पुत्र को सदा महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। उसे खुशी लाने वाला, वंश वाहक, पितृों का मुक्तिदाता व तर्पण करने वाला, बुढ़ापे की लाठी, वैतरणी नदी पार कराकर स्वर्ग में ले जाने वाला माना गया है। वहीं पुत्री को परिवार में शोक लाने वाली, दुःखों का मूल, पराया धन व ससुराल में पांव की जूती समझा जाता है। कन्या का घर में पैदा होना ही पिता को नरक में पटकना है। इसी मानसिकता के चलते आज भी लड़की के जन्म पर **'भाटो आयो'** कहकर आह भरकर गम का इजहार किया जाता है।

श्रीमती सुकीर्ति भटनागर इस विषय पर अपने विचार देती हुई कहती है विवेच्य दुष्टि से देखें तो कई कारणों फलस्वरूप कन्या का जन्म लेना बोझिल और दुःख माना जाता है। पुरातनपंथी लोगों की विचारधारा भी अधिक सक्रिय है। लड़के के जन्म पर परिवार यह सोचकर सुख–सागर में डूब जाता है कि वंश–बेल को आगे बढ़ाने वाला उत्तराधिकारी, बुढ़ापे का सहारा, अंतिम संस्कार होने से स्वर्ग प्राप्त होगा वहीं बेटियों की सत्ता को उनके भविष्य को दान–दहेज पर अनेक प्रकार की समस्याएँ मुह बाए खड़ी रहती है। एक सच है कि नारी ही नारी की सबसे बड़ी दुश्मन होती है। घरों की सासें पोता पाने की आशा में अनेक बार बहू के कन्या भ्रूण की हत्या करवा देती है। अंत में वे कहती है –

है घर का कुलदीपक बेटा, तो ज्योति बेटियाँ।
न नोंच–नोंच फेंको पंखुड़ियाँ, हाय! रोती बेटियाँ।।

इन सब लेखक–लेखिकाओं की तरह ही **डॉ. उषा यादव, डॉ. कृष्ण रावत, डॉ. आशा मेहता, श्रीमती प्रेम कोमल बूलियां, सुश्री करूणा श्रीवास्तव, श्रीमती अलका मित्तल, श्रीमती सत्यवती चतुर्वेदी, श्रीमती प्रज्ञा गुप्ता, श्रीमती कोकिला जैन** का मानना है कि कन्या भ्रूण हत्या का मुख्य कारण समाज में वंश परम्परा आदि रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों के कारण परिजनों के लिए बेटी का जन्म दुःख का कारण बन जाता है। रूढ़िवादी समाज ने इंसान की सोच को इतना संकीर्ण बना दिया है कि उन्हें लगता है कि पुत्र ही कुल तारक है, वंश वृद्धि कारक है, क्रिया कर्म और तर्पण का अधिकारी है। वे सोचते है कि बेटा ही बुढ़ापे में उनका सहारा बनेगा, नाम रोशन करेगा, वंश को आगे बढ़ायेगा। वही कन्या का जन्म अशुभ माना जाता है। कन्या का जन्म होते ही उसे मार दिया जाता है या अत्यधिक दुःख मनाया जाता है। न केवल कन्या अपितु उसे जन्म देने वाली माँ को भी सारा परिवार कोसता ही रहता है। इन सबका मुख्य कारण है दहेज प्रथा, समाज में फैला व्याभिचार, अशिक्षा, गरीबी, सुरक्षा जिम्मेदारी और हमारे समाज की रूढ़िवादिता है। यह भी मान्यता है कि बेटी तो पराया धन है। अतः आवश्यकता है समाज को चाहिए कि इस भेदभाव को मिटा अपनी सोच में बदलाव लाकर बेटे–बेटी के प्रति समभाव रखे। पुत्री का ढ़ोल और नगाड़ों से स्वागत करे।

परिचर्चा कन्या का जन्म : खुशी या गम पर हर वर्ग की महिलाओं के विचार जानने के बाद यही निष्कर्ष निकला है कि कन्या के जन्म पर हमारी व्यक्तिगत मानसिकता ही 'खुशी' या 'गम' निर्धारित करती है। हमारी भारतीय दहेज परम्परा कन्या पैदा होने की खुशी में सबसे बड़ी बाधक बनकर उभरी है। जिस तरह से अशिक्षित–शिक्षित सभी वर्गों में दहेज अधिक देने–लेने की होड़ मची है उससे कन्या जन्म की खुशी घबराहट में परिवर्तित हो जाती है। नई और पुरानी पीढ़ी को दहेज लेना और देना अभिशाप मानकर उसका पुरजोर विरोध करना होगा, खासतौर से युवक यदि दृढ़ता से विवाह में दहेज लेने से इंकार कर दें तो इस समस्या का समाधान स्वतः हो

सकता है। पुत्र से ही वंश चलता है इस मानसिकता से निजात पाना होगा। पुत्र को जन्म भी एक माँ ही देती है और वो भी किसी की कन्या होती है। पुत्र के स्थान पर संतान द्वारा मुखाग्नि को सही मानने की जरूरत है। महिलाएँ आज किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से कमतर नहीं है। जरूरत है तो अपनी कन्याओं को शिक्षित व स्वावलम्बी बनाने की। आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों में कन्या जन्म से लेकर उसके शिक्षण तथा विवाह तक के लिए हमारी सरकार ने आर्थिक सहायता सम्बन्धी अनेक योजनाएँ बनाई हैं ऐसे में कन्या का जन्म खुशियाँ लेने वाला होना चाहिए। आज प्रगतिशील व शिक्षित दम्पति पुरानी पीढ़ी की मानसिकता में बदलाव लाकर कन्या जन्म को खुशी–महोत्सव में बदल सकते है। इस तरह का रूझान नई पीढ़ी के महिला पुरुषों में दिखाई दे रहा है, आशा कर सकते है कि भविष्य में कन्या जन्म पर भी थाली बजाने की रस्म शुरू होगी।[104]

निष्कर्ष :–

पत्रिका में अभिव्यक्त सभी प्रकार की कन्या भ्रूण हत्या से सम्बन्धित विविध प्रकार की समस्याओं का अध्ययन करने के पश्चात हम निष्कर्षतः यह कह सकते है कि आज कन्या भ्रूण हत्या के चलते देश में लड़कियों की संख्या में पिछले एक दशक में भारी गिरावट आई है। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार प्रति हजार पुरुषों के मुकाबले औरतों की संख्या 940 ही रह गई है। संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट के अनुसार भारत में प्रतिदिन अवैध तरीके से कन्या भ्रूण के लगभग दो हजार मामले हो रहे है। बी.बी.सी. या ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कॉर्पोरेशन (ब्रिटिश प्रसारण निगम) के अनुसार भारत में जन्म से पूर्व लिंग निर्धारण के कारण पांच लाख लड़कियाँ प्रतिवर्ष मारी जा रही है। अतः यह एक विराट समस्या बनती जा रही है जो समाज के लिए चिन्तनीय विषय है वर्तमान में कई कारणों से भ्रूण हत्याएँ की जा रही है जिनमे मुख्य कारण निम्न है–

- सदियों से चली आ रही कुंठित मानसिकता व रूढ़िवादिता कन्या भ्रूण हत्या का मुख्य कारण है।
- सामाजिक कुरीतियाँ एवं अंधविश्वास भी इसका कारण है।
- दहेज प्रथा भी कन्या भ्रूण हत्या का मुख्य कारण मानी जाती है।
- लड़की पैदा होने को एक आर्थिक बोझ समझे जाने के कारण।
- कन्या के प्रति समाज की मानसिकता, दृष्टिकोण व सोच।
- ओछी व दूषित मान्यताओं के कारण भी भ्रूण हत्याएँ की जाती है।
- अशिक्षा के कारण समझ के अभाव में भ्रूण हत्या हो रही है।
- लड़का–लड़की में भेदभाव के कारण।
- गरीबी के कारण कुछ माता–पिता मजबूरी में भ्रूण हत्या करने पर विवश हो जाते है।

- लोगों का मानना है कि पुत्र का मुखाग्नि देना आवश्यक है क्योंकि स्वर्ग की प्राप्ति तभी हो सकेगी, ऐसी उनकी पारम्परिक सोच है।
- ग्रामीण अंचल में लोगों की धारणा है कि खेती का काम लड़के ही कर सकते है लड़कियाँ नहीं।
- आजकी आधुनिक माँ की असीमित इच्छाएँ भी भ्रूण हत्या को बढ़ावा दे रही है।
- अत्याधुनिक चिकित्सीय प्रौद्योगिकी की अपवित्रता के कारण।
- डॉक्टरों का लालच भी भ्रूण हत्या का कारण बनता है।

इन सब बिन्दुओं के आधार पर हम कह सकते है कि कन्या भ्रूण हत्या के कई कारण आज समाज में व्याप्त है जिसकी वजह से मासुम कन्याओं को जन्म से पहले भ्रूण में ही मार दिया जाता है। इन कारणों के साथ–साथ लेखकों ने इनके समाधान भी बताएँ है जिनसे भ्रूण हत्याएँ रोकी जा सकती है जो निम्न है –

- प्रसवपूर्व जांच निषेध अधिनियम (पी.एन.डी.टी. एक्ट 1994) का खुला उल्लंघन है गर्भ में लिंग की पहचान व कन्या भ्रूण हत्या। इस हेतु दोषी डॉक्टरों, किलनिकों, माता–पिता तथा इस काम में सहयोग करने वाले अन्य सहयोगियों को कठोर दंड दिया जाये।
- समाज शास्त्रियों, लेखकों, साहित्यकारों, मीडिया व पूरे प्रबुद्ध समाज को इसके समर्थन में सामने आना होगा।
- कन्या भ्रूण हत्या के पीछे की मानसिकता को, उसे घोषित करने वाली समाज की मान्यताओं, धार्मिक निर्योग्यताओं को समाप्त करने की आवश्यकता है।
- सामाजिक व धार्मिक अंधविश्वासों को जड़ से उखाड़ फैकना चाहिए।
- दहेज जैसी कुप्रथा को समाप्त कर देना चाहिए।
- लड़कियों के जन्म पर माता–पिता को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया जाये। सुविधायें व प्रोत्साहन देने के साथ ही 'पुत्री विरोधी मानसिकता' रोकने में जन चेतना जगाने हेतु लोक–शिक्षण की अति आवश्यकता है।
- माता–पिता को लिंग–समानता अर्थात लड़के–लड़की में भेद–भाव न बरतने का पाठ पढ़ाया जाये।
- लड़कियों को शिक्षित करने हेतु हर स्तर पर, हर प्रकार की मुफ्त शिक्षा सुविधा दी जाये।
- महिला सशक्तिकरण व सबलीकरण हेतु विशेष प्रयास किया जाये।
- कन्या भ्रूण हत्या रोकने हेतु आध्यात्मिक गुरुओं से भी अभियान चलाने का आग्रह करना चाहिए।
- घर–घर जाकर भ्रूण हत्या के प्रति लोगों में चेतना जाग्रत करनी चाहिए।

- पुरानी घिसी–पिटी मानसिकताओं, परम्पराओं, रूढ़ियों को समाप्त कर एक नई विचारधारा की शुरुआत करनी चाहिए।
- 'बेटी बचाओं बेटी पढ़ाओं' जैसे अभियानों और अधिक तीव्रकर समाज में उनको उच्च दर्जा दिलाना होगा।

3.4.1.5 लिंग–भेद :–

लिंग–भेद से सम्बन्धित समस्या के प्रमुख लेखक एवं लेखिकाओं के नाम निम्न है –

कथा	लेख
➢ डॉ. सरला अग्रवाल–नव संदेश ➢ पवन चौहान–साथ ➢ पुष्पलता कश्चप–संतान ➢ रंजना फतेपुरकर–अनुराधा ➢ अनु. लक्ष्मी रूपल–गुड्डी **काव्य** ➢ शिबली हसन 'शैली'–क्योंकि तुम लड़की हो ➢ श्रीमती विजय माथुर–आचंल में छिपा लो मुझे माँ	➢ डॉ. संगीता सक्सेना–लोक रंगों में बिटिया ➢ यशी–बेटियाँ भी कम नहीं बेटों से ➢ शकुंतला सोनी 'शकुन'–लिंग भेद असंतुलन जिम्मेदार कौन ➢ कृष्णा भटनागर–बेटियाँ अनमोल रत्न अथवा अगले जनम मोहे बिटिया ही दीजो **स्थाई स्तंभ** ➢ बसन्ती पंवार 'विष्णु'–बेटा–बेटी

कथाओं में लिंग–भेद :–

डॉ. सरला अग्रवाल अपनी कथा **'नव संदेश'** के माध्यम से एक माँ द्वारा अपने बेटे–बेटी में किये जाने वाले भेद–भाव को प्रकट करते हुए कह रही है कि एक माँ घर में अपने बेटे को ज्यादा महत्त्व देती है और उसे पढ़ाने के लिए हर सम्भव प्रयास करती है। वह उसे अच्छी स्कूल में पढ़ाती है तथा जरूरत के सभी सामान उपलब्ध करवाती है और घर का काम न करना पड़े इसके लिए विशेष आवास की व्यवस्था करके डॉक्टरी की पढ़ाई करवाती है। इसके विपरित वह अपनी बेटी को ज्यादा पढ़ाने पर ऐतराज करती है और उसकी पढ़ाई को लेकर अपने पति के पास उसका विरोध करती है तथा घर का सारा काम करवाती है व उसकी शादी करने पर जोर देती है। इन सबके अतिरिक्त वह उसे अपने भाई की बराबरी न करने को कहकर ताने देती है। मगर अपने पिता के सहयोग से वह आगे की पढ़ाई करती है और बिना किसी कोचिंग की सहायता के वह एक अच्छी डॉक्टर बन जाती है तथा उसका भाई पूरी सुख–सुविधा प्राप्त होने पर भी डॉक्टर नहीं बन पाता। अन्त में जब उसके पिता की तबियत खराब होती है तो वही बेटी उनका इलाज करती है जिसका उसकी माँ पढ़ाने का विरोध करती थी और

ताने देती थी। अन्त में उसकी माँ को अपने द्वारा किये गये भेद–भाव पर पछतावा होता है और वह अपनी बेटी से माफ़ी माँगते हुए उसके गले लग जाती है।[105]

पवन चौहान अपनी कथा **'साथ'** के माध्यम से कहते है कि वर्तमान में समाज के हर परिवार में लिंग भेद की समस्या व्याप्त दिखाई दे रही है यही कारण है कि एक बहन का अपने भाइयों से पढ़ने में अव्वल रहने के बावजूद भी भाई को प्राइवेट स्कूल में पढ़ाया गया और जब बहन का प्राइवेट स्कूल में दाखिले का वक्त आया तो आर्थिक मजबूरी सामने आ खड़ी हो गई। उससे सुबह–शाम खाना बनवाया जाता था। वह अपने भाइयों के मुकाबले कई गुना ज्यादा काम करती थी मगर फिर भी माँ–बाप की आँखों का तारा तो उनका लड़का ही था। इतना करने के बावजूद भी लड़की होने की मानसिकता किसी न किसी रूप में बार–बार उसके सामने आ जाती थी। जब उनके माता–पिता के द्वारा नया घर बनवाया जाता है तो भाई अपना–अपना कमरा संभाल लेते है मगर बहन के लिए उस घर में कमरा होना या न होना कोई मायने नहीं रखता क्योंकि वह जानती थी कि वह उस घर में एक मेहमान की तरह है। उसके घर वाले उसकी इच्छा के विरूद्ध न चाहते हुए भी उसकी शादी कर देते है और उसकी पढ़ाई बीच में ही छुड़वा देते है। मगर उसकी आगे पढ़ने की इच्छा रहती है इसी कारण वह शादी के बाद अपने पति से अपने मन की बात बताती है और आगे पढ़ने की इच्छा जाहिर करती है। उसका पति उसकी भावनाओं को समझता है और मान जाता है तथा उसे आगे पढ़ाता भी है इस प्रकार वह अपने अधूरे सपनों को पूरा करती है।[106]

पुष्पलता कश्चप अपनी कथा **'संतान'** के माध्यम से कह रही है कि तरसेमलाल और उसकी पत्नी विनोद कौर जीवन की सांझ में आज तन्हा है क्योंकि उनका प्रतिभाशाली बेटा डॉक्टरी पास करके अमेरिका चला गया और वहीं का होकर रह गया। उनकी एक लड़की भी है जिसे उन्होंने पढ़ाना इसलिए जरूरी नहीं समझा क्योंकि बेटे की पढ़ाई पर इतना खर्चा था कि बेटी के लिए कोई गुंजाइश नहीं बचती थी। उन्होंने अपना सब कुछ बेटे की पढ़ाई पर लगा दिया था। क्योंकि बेटा उनका कुल दीपक था और बेटी तो पराई अमानत थी तथा उसे एक कर्ज के रूप में देखा गया था। बेटे के जन्म पर थाली बजी थी, मंगल गीत गाये गये, बधाइयाँ दी गई और मिठाई बाँटी गई मगर बेटी के जन्म को एक बोझ, एक जिम्मेदारी समझकर स्वीकारा गया था। कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण लड़की की शादी अपनी आयु से अधिक आयु वाले लड़के से कर दी जाती है। विडम्बना देखिये, आज वह बेटी ही अपने माता–पिता की देखभाल और सेवा करती है जिसे वह कभी बोझ समझते थे।[107]

रंजना फतेपुरकर भी अपनी कथा **'अनुराधा'** में बेटी के साथ किये जाने वाले भेद–भाव को लेकर कह रही है कि जब राधिका दूसरी बार माँ बनती है तो वह कई सपने सजाती हुई सोचती है कि इस बार भी मेरे बेटा होगा और मैं दो–दो बेटों की माँ बन जाऊँगी तथा खुब धन लेकर आऊँगी और आराम से बैठकर राज करूँगी मगर

भगवान को कुछ और ही मंजूर था उसके दूसरी संतान लड़की हुई। लड़की की खबर सुनते ही उसके माता–पिता ने उससे मुँह मोड़ लिया। उन्होंने अपने बेटे का दाखिला शहर के सबसे महँगे स्कूल में कराया था। पर जब बेटी स्कूल जाने लायक हो गई तो उसे एक साधारण से स्कूल में दाखिल कराया गया क्योंकि उन पर दकियानूसी सोच हावी थी कि लड़कियों पर ज्यादा व्यय करना व्यर्थ है। उन्होंने अपने बेटे को पढ़ाने के लिए अपना घर गिरवी रख कर उसे अमेरिका भेज दिया। वहाँ जाने के बाद वह वहीं जॉब करने लग गया और वहीं की लड़की से शादी कर ली। यह खबर सुनते ही उसके पिता को दिल का दोरा पड़ गया और वे बीमार रहने लगे अब उनके लिए घर का खर्चा चलाना बहुत मुशिकिल हो गया था ऊपर से अपनी बेटी की शादी की जिम्मेदारी थी। मगर बेटी ने ट्यूशन्स लेकर अपने खर्चे से अपनी पढ़ाई पूरी की और एक अच्छी जॉब करने लग गई तथा अपने माता–पिता की देखभाल भी करती। बीमारी की वजह से उसके पिता का देहान्त हो गया तब बेटी ने ही एक बेटे का फर्ज निभाते हुए उसका अन्तिम संस्कार किया और अन्त में शादी करके भी वह अपनी माँ को अपने साथ रखने लगी तब उसकी माँ को अपने द्वारा किये गये व्यवहार पर पछतावा होता है और वह भगवान से दुआ करती है कि उसकी जैसी बेटी हर किसी को मिले।[108]

भोजपुरी भाषा में मूल लेखिका –**विणा सिन्हा** की कथा का **लक्ष्मी रूपल** ने हिन्दी अनुवाद कर अपनी कथा **'गुड्डी'** के माध्यम से बताया कि श्याम बाबू और सुधा मिश्र के जब पहली सन्तान लड़की हुई तो घर में सबके चेहरे लटक गये थे तथा जन्म के प्रोग्राम की खानापूर्ति मात्र कर दी गई लेकिन जब दूसरी सन्तान लड़का हुआ तो घर में बहुत बड़ी और भव्य पार्टी दी गई क्योंकि उनका मानना था कि बेटियाँ तो दहेज में लाखों रुपये लेकर अपने माँ–बाप का घर खाली करके चली जाती हैं दूसरे का घर भरने। घर भर में न गुड्डी (बेटी) को देखकर कोई खुश होता था और न किसी को उसकी चिन्ता थी। सोनू (बेटे) के लिए तो ढेर सारे खिलौने, कपड़े और तरह–तरह के उपहार लाये जाते थे और बेटी को इन सबसे वंचित रखा जाता था अगर वह उन खिलोनों से खेलने की कोशिश भी करती तो उसे माँ की गालियाँ सुननी पड़ती थी। बेटे को रोज तरह–तरह के फल, मिठाई, फलों का रस मिलता था और बेटी को रूखा–सूखा खाना खा के ही शान्त रहना पड़ता था। बेटी के पढ़ने पर भी पाबन्दियाँ लगा दी गई तथा बेटे को खूब पढ़ाया गया। बेटी की जल्दी ही शादी कर उसे विदा कर दिया और जब वह बेटी माँ बनने वाली होती है तो उसकी माँ उसे भ्रूण परीक्षण करवाने के लिए कहती है मगर वह ऐसा न करके अपने बच्चे को जन्म देने का निर्णय करती है। इस प्रकार अपने साथ हुए व्यवहार को सकारात्मक मोड़ देकर वह अपने बच्चों में लिंग–भेद न रखने का संकल्प लेती है।[109]

काव्य में लिंग–भेद :–

शिबली हसन 'शैली' के काव्य **'क्योंकि तुम लड़की हो'** में एक लड़की अपनी व्यथा व्यक्त करते हुए कह रही है कि जब मैंने अपनी माँ की कोख से जन्म लिया और इस जमाने में आई तब मैंने अपने लिए एक बूढ़ी औरत के गुस्से से कहे अल्फाज सुने। अपनी माँ के चेहरे पर चिन्ता की अनगिनत रेखायें देखी और अपने पिता के कन्धों पर एक बोझ का अहसास देखा तब मैंने सोचा की मेरे जन्म पर कोई खुशी क्यों नहीं तभी मेरे कानों में आवाज आई–

क्योंकि तुम लड़की हो
लड़का नहीं ![110]

श्रीमती विजय माथुर के काव्य **'आंचल में छिपा लो मुझे माँ'** में एक लड़की समाज के लोगों से प्रश्न करती हुई कह रही है कि क्या मेरा लड़की होना भगवान की भूल है? जो मेरे पैदा होते ही सबको अखर जाती हूँ जैसे घर के कोने में नागफनी या बबूल का पेड़ उग आया हो। मुझे देखते ही सबके चेहरे क्यों उतर जाते है? क्यों मेरे नामकरण संस्कार पर वो सब नहीं होता जो भैया के आने पर होता है? क्यों सब मुझे पराया धन कहकर चिढ़ाते है? क्या मैं अपना धन नहीं हो सकती? भैया की तरह होनहार, डॉक्टर, इंजीनियर, कलक्टर नहीं हो सकती? फिर अन्त में वह अपनी माँ से कहती है–

माँ !मैं सब कुछ हो सकती हूँ
मुझे पराया कहकर न चिढ़ाओ
इंग्लिश स्कूल में मुझे भी पढ़ाओ
कुछ मनसूबे मेरे लिए भी बनाओ।[111]

लेखों में लिंग–भेद :–

डॉ. संगीता सक्सेना अपने लेख **'लोकरंगों में बिटिया'** के माध्यम से कह रही कि काई एक दिन में नहीं जमा करती। नागफनी पलक झपकते नहीं फैला करती। इसी प्रकार लोकमानस में कन्या विरोधी भावों का जमावड़ा कोई एक या दो दिन की बात नहीं है। यह विचार परतदार चट्टानों की भाँति शनैः–शनैः दृढ़ और मजबूत आकार लेते गये। लोकमानस में भावनाओं व विचारधारा के संवाहक होते है मुहावरें व लोकोक्तियां। यह किसी विशेष घटना, चिंतन, कार्य व सुदीर्घ अनुभव पर आधारित होते हैं और जनभाषा में बहुतायता से उपयोग में आने के कारण जनमानस को भीतर तक प्रभावित करते है। पीड़ा की बात यह है कि हमारे मुहावरों लाकोक्तियों में भी बेटी अथवा कन्या को दोयम दर्जे का ही माना गया है। उनसे सम्बन्धित अधिकांश मुहावरे या लोकोक्तियां नकारात्मक अर्थ वाली है– 1. **ऊबी आऊं लेटी जाऊं** (मृत्यु कामना) 2. **डोली आती है अर्थी ही निकलती है** (मृत्यु कामना) 3. **लड़कियाँ–लड़कियाँ भुर्जी की भाड़ में लड़के**

चांदी की चौपाल में (कन्या जीवन की सार्थकता को नकारात्मक शब्द) 4. **लड़का मरे कमबख्त का, लड़की मरे भाग्यवान की** (पाली पोसी लड़की जिसकी मर जाए वह तक भाग्यवान होता है) 5. **काम करेगी बेटी सुख से खायेगी रोटी** (अनर्थक श्रम की सीख) 6. **क्वांरी खाय रोटियां, ब्याही खाय बोटियां** (मात्र व्यय का ही माध्यम मानकर भर्त्सना) 7. **बेटी का धर्म निभाना, आते भी रूलाये, जाते भी रूलाये** (कन्या जन्म पर ही रोने की बात) इसके ठीक विपरीत बालक–बालक जन्म और बालक महत्त्व से जुड़े अधिकांश मुहावरें व लोकोक्तियां सकारात्मक और धनात्मक अर्थवत्ता युक्त है– 1. **एक सपूत की सिंहनी भी निर्भय सोती है** (एक सुपुत्र की माँ होने पर भी सिंहनी के समान शक्तिशाली होने का भाव) 2. **क्या सौ की धनवती, क्या एक से पुत्रवती** (एक से अधिक पुत्रों की कामना) 3. **जिसके चार भैया, मार धौल, ले छीन रुपैया** (चार भाई होने पर बात ही क्या? धौल–धौंस सब चलती है) 4. **पूतन की रात दुर्लभ** (सौभाग्य से ही पुत्र की प्राप्ति होना बताया है) 5. **पूत आपनौ सबको प्यारों** (अपना पुत्र कैसा भी हो प्रिय होता है) 6. **अपना काना बेटा भी सुन्दर** (पुत्र की कमियां भी गुण बन जाती है) अतः आज आवश्यकता है नए लोकगीतों, नए मुहावरों, लोकोक्तियों, मानकों, परम्पराओं, रिवाजों को गढ़ने की ताकि एक सुदृढ़ समाज हम अपनी पीढ़ी को सौंप पाएँ।[112]

यशी अपने लेख **बेटियाँ भी कम नहीं बेटों से**' में अपने विचार प्रकट करते हुए कह रही है कि वर्तमान समय में जहाँ हर एक को शिक्षित करने का बीड़ा उठाया जा रहा है, वहीं बेटी–बेटे की शिक्षा में भेद कम नहीं हो पा रहा है। बहुधा घरों में बेटियों को बस इतना ही पढ़ाते है जितना जरूरी हो, लेकिन बेटों की पढ़ाई पर ज्यादा ध्यान देते हैं। ऐसा क्यों? देखा जाये तो आज के समय में जमाना कहाँ से कहाँ पहुँच रहा है। परन्तु कुछ लोग अभी भी पिछड़े हुये है। महिलायें वर्तमान समय में कहाँ से कहाँ तक पहुँच रही है। फिर भी बेटे–बेटियों में अंतर क्यों? बेटी के जन्म पर ज्यादा खुशी नहीं। परन्तु बेटे के जन्म पर इतनी खुशियाँ क्यों? कुछेक घरों में भी बेटियों को अधिक पढ़ा न पाना भी उनकी मजबूरी होती है। परन्तु ऐसे में वह अपनी बेटियों को प्राइवेट शिक्षा भी दिला सकते है और उनकी बेटियाँ पढ़–लिखकर अपने पैरों पर खड़ी हो सकती है। लेकिन यह तभी संभव है जब वह बेटे–बेटी को समान अधिकार दें। बेटी को बेटे से कम न समझे, उसे खूब पढ़ायें, उसे अपने पैरों पर खड़ा होने दें साथ ही कोई अगर बेटे–बेटी में अन्तर समझे तो उन्हें समझायें शिक्षा का मूल्य समझायें तभी बेटियाँ आगे बढ़ सकेंगी और वह भी गर्व से कह सकेंगी। बेटियाँ भी कम नहीं बेटों से।[113]

'लिंग भेद असंतुलन–जिम्मेदार कौन?' लेख में **श्रीमती शकुंतला सोनी 'शकुन'** अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कह रही है कि कुछ वर्षों से विशेषतः भारत सहित कुछ विकासशील देशों में स्त्री–पुरुष अनुपात में भारी असंतुलन आया है। इस असंतुलन में सबसे बड़ा हाथ भ्रूण हत्या का है। आज शिक्षा और सशक्तिकरण बढ़ने के बावजूद महिलाओं के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार लिंग भेद असंतुलन का कारण बन रहा हैं।

महिला प्रताड़नाएँ, यौन शोषण, बाल विवाह, दहेज, मातृ मृत्यु दर व घरेलू हिंसा से देश के कुल 35 राज्यों व केन्द्र प्रशासित प्रदेशों में से 29 राज्यों में स्त्री लिंगानुपात गड़बड़ाया है। 16 राज्यों में यह गिरावट पचास प्रतिशत से ज्यादा है। 1901 में 1000 पुरुषों पर 972 महिलाएँ थी, वहीं 1991 में घटकर 927 रह गई। 2001 की गणना के अनुसार केरल, उत्तारंचल और लक्ष्यद्वीप प्रान्त में ही लिंगानुपात संतोषजनक है, शेष राज्यों में हालत खराब है। लड़के–लड़कियों के आंकड़े व समाज में कुँवारे लड़कों की बहुतायत स्वयंसिद्ध तथ्य है। इसके लिए जिम्मेदार हैं हम सब, हमारा पूरा मानव समाज, हमारी मान्याताएँ, रीति–रिवाज, हमारी सोच, जिनके तहत हम बेटी के साथ जन्म से ही दोयम दर्जे का व्यवहार करते है। हम दिखावें के तौर पर चाहे आधुनिक कहे जाएं पर अपने अंतर्तम में झाँके तो क्या है? यदि यही स्थिति रही तो आने वाले कल की भयावहता का अंदाजा लगाया जा सकता है। कब रुकेगा ये सिलसिला? आखिर कब तक...? अब तो सासू माँ को भी **'दूधो नहाओ पुत्री फलो'** का आशीर्वाद देना होगा।[114]

कृष्णा भटनागर अपने लेख **'बेटियाँ अनमोल रत्न अथवा अगले जनम मोहे बिटिया ही दीजो'** में कहती है कि जब तक हम बेटी के जन्म का भी वैसे ही स्वागत नहीं करते जितना बेटे के जन्म का तब तक हमें समझना चाहिए कि भारत विकलांग रहेगा। हमारे समाज में लड़कियाँ पैदा होना इतना नापसंद है कि लाखों लड़कियों को जन्म से पहले ही गर्भ में या जन्म लेते ही जान से मार दिया जाता है और यदि जो लड़कियाँ बच जाती हैं तो उनका बचपन दुःख और जुल्मों का सामना करने में ही निकल जाता है। पुरुष–प्रधान इस समाज में प्यार की भागीदार लड़कियाँ नहीं वरन् लड़के है। बचपन में उन्हें भाई से कम आदर मिलता है और ससुराल में बहू के रूप में भी उन्हें अधिक आदर नहीं मिलता। यद्यपि समय ने करवट ली है लड़कियों को अधिकार दिए जा रहे हैं पर हमारी मनोवृत्ती अब भी नहीं बदली है। हमें हमेशा ही बेटे का मोह रहा है। नए जमाने की शिक्षा के बावजूद भी यह इच्छा नहीं बदली वह है हमारी जड़ों में बसी बेटे की चाह। हम सभी की ये भावना है कि बेटे वंश को आगे बढ़ाते है, इसके विपरीत बेटियाँ बोझ मानी जाती है, वे पराया धन होती है आर्थिक बोझ भी होती है क्योंकि उनके विवाह में दहेज देना पड़ता है। यह सब हमारी दूषित मानसिकता का फल है, हमारे संकीर्ण विचारों का परिणाम है। इन सब संकटों से छुटकारा पाने का एक मात्र उपाय यही है कि हम स्वयं अपनी प्रवृत्ति को बदलें।[115]

स्थाई स्तंभ में लिंग–भेद :–

बसन्ती पंवार 'विष्णु' स्थाई स्तंभ में चित्रित अपने काव्य **'बेटा–बेटी'** के माध्यम से कहती है कि जब नायिका दूसरी बार गर्भ धारण करती है तो नायक कहता है कि मुझे इस बार भी लड़का ही चाहिए अगर ऐसा नहीं हुआ तो उसके लिए इस घर में कोई जगह नहीं है। मगर दुर्भाग्यवश उसके दूसरी संतान लड़की ही हुई तब उसके पिता ने उसे रखने से मना कर दिया और उसे घर न लाने का आदेश दे दिया माँ

बिचारी अपना पति धर्म निभाते हुए अपनी बेटी को अपनी माँ के पास छोड़ देती है। वह जिस बेटे को लेकर सपने देखते है वह बेटा बड़ा होकर पसन्द से शादी कर लेता है और अलग रहने लगता है। परिणाम स्वरूप उसके माता–पिता कि स्तिथि खराब हो जाती है और वह बुढ़ापे में बिना सेवा के परेशान होते है तब वही बेटी हिम्मत करके उनके पास आती है जिसको जन्म के समय पिता ने रखने के लिए मना कर दिया था। वह पिता अपनी बेटी से आँखें मिलाता है और अपनी गलती पर पश्चाताप करता हुआ आँसू बहाता है।[116]

कारण :–

- जनमानस में सदियों से चली आ रही कुप्रथाओं के कारण उनमें भेद–भाव किया जाता है।
- हमारी दूषित मानसिकता तथा अंधविश्वास के कारण।
- इसके लिए जिम्मेदार है हम सब, हमारा पूरा मानव समाज, हमारी मान्याताएँ, रीति–रिवाज, हमारी सोच, जिनके तहत हम बेटी के साथ जन्म से ही दोयम दर्जे का व्यवहार करते है।
- सभी को लड़के की चाह तथा बेटी को पराई अमानत समझने की भूल के कारण ही पालन–पोषण में भेद–भाव करते है।
- शादी में दहेज के खर्च के डर के कारण भी उनमें भेदभाव किया जाता है।
- बेटे द्वारा धन कमाने के लालच के कारण।
- पुरानी दकियानूसी सोच कि लड़कियों पर ज्यादा व्यय करना व्यर्थ है के कारण भेद–भाव होता है।

सुझाव :–

- हमें आज नए लोकगीतों, नए मुहावरों, लोकोक्तियों, मानकों, परम्पराओं, रिवाजों को गढ़ने की आवश्यकता है ताकि यह भेद–भाव रहित समाज अपनी पीढ़ी को सौंप सके।
- परिवार में बेटे व बेटी को समान प्यार, समान इज्जत और समान शिक्षा का अवसर देना चाहिए।
- इस भेद–भाव को मिटाने के लिए हमे स्वयं अपनी प्रवृत्ति को बदलना होगा।
- हम सभी को अपने अंधविश्वास और मान्यताएँ बदलनी होगी अपनी गलत धारणाएँ बदलनी होगी।
- दहेज जैसी कुप्रथा को समाप्त करना होगा।
- लिंग–भेद के विरुद्ध लोगों को शिक्षित कर उनमे जागरुकता लाने का प्रयास करना चाहिए।

3.4.2 पारिवारिक समस्याएँ

टूटते व बिखरते परिवार	वृद्धावस्था

3.4.2.1 टूटते व बिखरते परिवार :–

टूटते व बिखरते परिवारों से सम्बन्धित समस्या के प्रमुख लेखक एवं लेखिकाओं के नाम निम्न है –

कथा	लेख
➢ विनोदिनी गोयनका–आत्म–संतोष ➢ पदम चन्द गान्धी–टूटते रिश्ते **स्थाई स्तंभ** ➢ श्रीमती नीलमरानी सहगल–क्यों होता है पारिवारिक तनाव?	➢ डॉ. अखिलेश्वर तिवारी–सामाजिक प्राणी–एक प्रश्नचिन्ह ➢ महावीर राज जैन–साधन–साधन के सामने छोटे ➢ श्रीमती अलका मित्तल–टूटते रिश्ते बिखरते परिवार

कथाओं में टूटते व बिखरते परिवार :–

विनोदिनी गोयनका अपनी कथा **'आत्म–संतोष'** के माध्यम से कह रही है कि डॉ. परमानन्द के पिता बिहार के एक छोटे से गाँव में जमींदार थे। उनका परिवार सुखी तथा धन–दौलत से भरपूर था। वह भाई बहनों में सबसे छोटे थे तथा पढ़ने में तेज थे इसीलिए बचपन से ही पटना होस्टल में रहकर डॉक्टरी की पढ़ाई की और एक अच्छे डॉक्टर बन गये। पिता जी के मरने के बाद उसके भाई ने पिताजी की सारी संपत्ति पर कब्जा कर लिया। इस कारण डॉ. परमानन्द जी पटना जाकर वहीं अपना दवाखाना खोल लेते है। कुछ समय पश्चात उनका विवाह लक्ष्मी से हो जाता है और वे बहुत बड़े डॉक्टर बन जाते है। उनके दो लड़के भी हो जाते है मगर लड़की की चाहत में दो और लड़के पैदा हो गये थे तब कहीं पाँचवी संतान एक प्यारी सी बिटिया हुई थी। सब बहुत खुश थे कि उनके चार–चार लड़के व एक लड़की है। डॉ. साहब ने अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दी तथा बड़े बेटे को इन्जीनियर बनाया, दूसरे बेटे को वकील बनाया और दो बेटों को डॉक्टर बनाया तथा बेटी को बी.ए. तक पढ़ाकर उसकी शादी कर दी। बेटों के बड़े होने पर उनके लिए एक घर बनवाया तथा उनकी अलग–अलग जगह शादी भी कर दी। घर गृहस्थी में सब सुख शान्ति थी। परन्तु धीरे–धीरे अलग–अलग वातावरण तथा संस्कार लेकर आई बहुओं ने घर में कलह आरम्भ कर दिया। आपस में बच्चों को लेकर तथा अन्य छोटी–छोटी बातों को लेकर कहासुनी होने लगी। यहाँ तक देवी स्वरूप सास लक्ष्मी को भी नहीं छोड़ा। बहुऐं बेटों के कान भरती, तब भाइयों में

मन–मुटाव होने लगा। एक दिन घर में जब अधिक महाभारत मची तब लक्ष्मी को दिल का दौरा पड़ गया और वह चलबसी। लक्ष्मी के मरने पर बहुओं ने झूठ–मूठ के आँसू बहाए और कुछ दिनों बाद अपने–अपने कमरे में चूल्हा जला लिया। धीरे–धीरे लड़के, बहुओं में लड़ाई–झगड़े बढ़ने लगे। आपस में बेटे बहुओं में इतना वैमनस्य हो गया कि एक दूसरे से बातचीत तक बन्द हो गई। तब चारों लड़के रात में डॉ. साहब के पास गये तथा अपना फैसला सुना दिया। जो ये था–इस प्रमुख बड़े घर के चार हिस्से कर चारों बेटों ने बाँट लिया। उनके दवाखाने को दोनों डॉक्टर बेटों ने आधा–आधा ले लिया। उसके बदले बाकी दोनों भाईयों ने अग्रवाल मार्केट से आधा–आधा भाग ले लिया बाकी की अन्य जमीनें यहाँ तक कि उनके शेयर, फिक्स डिपाजिट और माँ के गहनो का भी हिस्सा बाँट लिया। बहन के लिये भी कुछ नहीं छोड़ा। डॉ. साहब के लिए एक कमरा छोड़ दिया तथा चारों बेटों ने तीन–तीन महीने खाना खिलाने का निर्णय लिया मगर वो भी ढंग से ना खिला सके इसी कारण एक रात चुपचाप थोड़ा सा जरुरत का सामान तथा अपनी डॉक्टरी बैग लेकर हरिद्वार चले गये और वही पर एक आश्रम में रहकर आश्रम के लोगों की सेवा करने लगे।[117]

पदम चन्द गान्धी अपनी कथा **'टूटते रिश्ते'** में बताते है कि सुदूरपूर्व में बसा एक छोटा सा गाँव जहाँ पर केवल दस–पन्द्रह मकानों की बस्ती थी। उस बस्ती में शंकर तथा उसका परिवार भी रहता था। शंकर के पिता जब तक जिन्दा थे उन्हें कोई परेशानी नहीं थी मगर उनको मरने के बाद शंकर के बड़े भाइयों ने शंकर से नफरत करना शुरू कर दिया अब तो हर बात पर उसकी भाभियाँ व भाइयों ने उस पर ताने कसने चालू कर दिये थे। जब वह कालेज में फर्स्ट आया तो भी उसके भाइयों को खुशी नहीं हुई बल्कि वह उससे और अधिक जलने लगे, बस एक रामूकाका ही थे जो शंकर को अपना मानते थे। रामूकाका के समझाने पर शंकर शहर में नौकरी करने चला जाता है और वहाँ अपनी मित्र प्रीति के पास ठहरता है। प्रीति अपने पापा से कहकर उसे नौकरी लगवा देती है। मालिक एवं स्टाफ उसकी मेहनत, ईमानदारी एवं उसके संबंधो से बेहद प्रसन्न होते है और उसे मैनेजर के स्थान पर नियुक्त करते है धीरे–धीरे उसके नाम के चर्चे पूरे शहर में हो जाते है। शंकर एवं प्रीति की दोस्ती भी धीरे–धीरे एक नया रूप ले लेती है। दोनों एक दूसरे के बहुत करीब हो जाते है। प्रीति के पिता यह देख दोनों की शादी कर देते है। शादी बाद जब शंकर और प्रीति अपने गाँव अपने भाइयों के पास आशीर्वाद लेने जाते है तो घर की चौखट पर कदम रखते ही बड़ी भाभियाँ छींटाकसी करना शुरू कर देती है और प्रीति को बहुत कुछ भला–बुरा कहती है। दोनों अपना अपमान समझकर रामूकाका के घर पर गये, जहाँ पर उनको पूर्ण सम्मान और अपनापन प्राप्त हुआ। यह देख शंकर की आँखें डबडबा गई, और वह कहने लगा "**काका आज किसका रिश्ता है? क्या खून का रिश्ता ऐसा होता है? जो भाई को भाई न माने। क्या परिवार यह है जो अपने को अलग करे? क्या भाइयों में**

इतना स्वार्थ है कि सब को भूल गये? आखिर काका ये सब क्या है?'' तब काका कहते है शंकर यह संसार है। समय पर रिश्ते टूट जाते हैं, भाई बिछुड़ जाते है अपने पराये हो जाते है।[118]

लेखों में टूटते व बिखरते परिवार :–

अपने लेख **'सामाजिक प्राणी–एक प्रश्नचिन्ह'** में **डॉ. अखिलेश्वर तिवारी** कहते है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी था, है, तथा सम्भवतः भविष्य में भी रहेगा। लेकिन सामाजिक प्राणी शब्द पर संकिर्णता का प्रकोप निरंतर बढ़ रहा है। सामाजिक प्राणी होने के पीछे जो एक महान एवं संवेदनशील गरिमा थी उसमें दिन प्रतिदिन ह्रास हो रहा है। व्यक्ति की विचारधारा में सामाजिक उत्तरदायित्व का जो आभूषण टंकित था, वह वर्तमान परिवेश में शनैः शनैः कलुषित हो रहा है। पहले परिवार का दायरा बड़ा होता था तथा उसका मुखिया या प्रधान परिवार का सबसे बड़ा या बुजुर्ग होता था। धनोपार्जन करने वाला, खेती करने वाला एवं बेरोजगार भी परिवार में एक समान एवं बराबर होते थे। परिणामस्वरूप परिवार के सभी सदस्यों की देखभाल एवं परवरिश एक समान होती थी। लेकिन आज के बदले परिवेश में तो दो सगे भाइयों के बीच ही आर्थिक असंतुलन के कारण रहन–सहन में भारी अंतर दिखाई पड़ता है। यहाँ तक कि आर्थिक सम्पन्न पुत्रों को बुजुर्ग माता–पिता की देखभाल करने में भी धनाभाव महसूस होता है। आर्थिक तंगी में रह रहे भाई–बहन की मदद करना तो दूर की बात हो गई है। जब मनुष्य में अपने परिवार के लोगों की मदद करने की भावना नहीं है तो उससे सामाजिक उत्तरदायित्व के बारे में कितनी आशा की जा सकती है। पहले संबंधी एवं मित्र से मिलकर अपार खुशी होती थी। गाँव में किसी भी घर में कोई संबंधी आता तो लोग उससे मिलने जाते तथा अन्य सम्बन्धियों के बारे में जानकारी लेते उसका कुशलक्षेम पूछते एवं बीती बातों घटनाओं को ताजा करते। मगर आज समयाभाव एवं बढ़ रही आवश्यकताओं की पूर्ति में बैचेन रह रहे लोगों में अपनापन, प्रेम एवं उत्साह का अभाव हो गया है। आज शहरों में रहने वालों को अपने पड़ोसी के बारे में ही पता नहीं होता। वर्ष में शायद वे यदा–कदा मिल पाते होंगे। पड़ोसी किस अवस्था में है, किसी को मतलब नहीं। आँख के सामने हत्याएँ हो रही हैं, अपहरण हो रहे है, कोई किसी को मार रहा है, कोई सहायता के लिए चित्कार रहा है, मगर किसी को कोई मतलब नहीं।[119]

महावीर राज जैन अपने लेख **'साधन–साधन के सामने छोटे'** के माध्यम से कह रहे है कि आज का मानव इस भौतिक युग में दानवता की ओर बढ़ रहा है। सच्चे ज्ञान को छोड़कर अज्ञानता की दौड़ में भाग ले रहा है। प्रकाश पुंज को छोड़कर अंधकार और दुख मय संसार में छलांग लगा रहा है। पहले घर, परिवार और समाज की चिन्ता थी। एक भाई दूसरे भाई की सभी तरह से सहायता करता था। इतिहास इस बात का साक्षी देता है। श्री राम और भरत का भी जीवन था और एक हमारा जीवन है कि दो सगे भाई एक साथ रह नहीं सकते। इस भारतीय संस्कृति से जो अलग होता गया वह

तनाओं और निराशाओं का ताना–बाना बुनता गया। परिवार बिखरते गये, समाज टूटता गया। देश में विभिन्न प्रकार की विसंगतियाँ उपस्थित होने लगी। उस समय को हम याद करते है, जिसमे कोई तनाव नहीं था। परिवार, समाज और देश में बड़ी शान्ति थी। जीवन में स्वार्थ नहीं था जब जीवन में स्वार्थ की गंध महकती है तो शान्ति रूपी बगीचा उजड़ जाता है। आप देखिये पति–पत्नी जीवन के दो साथी माने जाते है मगर आज वह रिश्ता भी घर की दरारों के समान बिखरता दिखाई देता है। एक माँ–बेटी का, पिता–पुत्र का कितना घनिष्ट सम्बन्ध था। इस दानव वृत्ति ने हमारे जीवन को खाद जैसा बना दिया। अनेक प्रकार की अशान्तियाँ, विपत्तियों एवं समस्याओं की हमारे समक्ष बाढ़–सी आ गई। अगर हमारे जीवन में साधन, धर्म क्रिया के प्रति आस्था होती तो आज हमें ये दुर्दिन देखने को नहीं मिलते।[120]

अलका मित्तल अपने लेख **'टूटते रिश्ते बिखरते परिवार'** में अपने विचार अभिव्यक्त करती हुई कहती है कि वक्त बदलता है मायने नहीं। सच को स्वीकार कर जीवन को आगे बढ़ाना यही परम्परा है लेकिन आज तो जैसे सब कुछ बदल गया सब कुछ पराया सा लगने लगा है। आज की पीढ़ी तो जैसे मनमानी करने पर उतारू है बड़ों का सम्मान, संस्कार, नैतिकता, लिहाज, शर्म का तो सर्वथा अभाव दिखाई पड़ता हैं। शिक्षित होना, स्वावलंबी होना ये अच्छा कदम है, समय की माँग है, जागरूकता है लेकिन मर्यादा में रहकर कर्तव्यों का पालन करना ये उससे भी ज्यादा आवश्यक है। पहले लड़की ससुराल को ही अपना घर समझती थी क्यूँकि बचपन से ही उसे अच्छे संस्कार मिलते थे। वो रिश्तों को दिल से अपनाती थी। लेकिन आज तो आते ही ससुराल पहुँचने से पहले ही न जाने कितनी हिदायते माँ बेटी को दे डालती हैं। यहाँ तक कि पल–पल की खबर लेना, उल्टे सीधे पाठ पढ़ाना जिसे सुन कर लड़की का मन ससुराल में लग ही नहीं पाता वह ससुराल से जुड ही नहीं पाती। सिर्फ पति को ही अपना समझती है बाकी का उसकी नजर में कोई महत्त्व नहीं होता। माता–पिता के सपने चकनाचूर हो जाते हैं बेटे की शादी के बाद घर स्वर्ग बन जायेगा, खूब रौनक रहेगी का स्वप्न टूट जाता है। परिचित रिश्तेदार तिल का ताड़ बनाते हैं। जरा सा कुछ सुनने को मिले, कहानी तो वो स्वयं गढ़ लेंगे। प्यार, सर्मपण, सद्विचार, सद्भावनाओं से जुड़कर मिलजुल कर हर दुख–सुख में एक दूसरे का साथ देना ये थी परिवार की परिभाषा। लेकिन आज इसका स्थान ले रही है कड़वाहट, द्वेषभाव, कटुता, ईर्ष्या, एक दूसरे को नीचा दिखाना, कमियाँ ढूंढना, मनुष्य का स्वभाव बन गया है। दो सगे भाई भी एक दूसरे को अपना प्रतिद्वंद्वी समझते है। परिवार सिर्फ पति पत्नी व बच्चों तक सीमित रह गए है। आज खून के रिश्ते भी बेमाने हो गये हैं। परिवारों में माता–पिता का अंकुश नहीं है। परिवारों के अहम फैसले जो पहले घर के बड़े लिया करते थे आज बच्चों पर छोड़ दिये जाते है। महत्त्व खोते रिश्तों व परिवारों का विघटन एक सोचनीय विषय है।[121]

स्थाई स्तंभ में टूटते व बिखरते परिवार :–

श्रीमती नीलमरानी सहगल स्थाई स्तंभ में अभिव्यक्त अपने लेख **'क्यों होता है पारिवारिक तनाव?'** में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहती है कि शिक्षा प्रसार के बढ़ते लड़कियाँ और लड़के जितने शिक्षित हो रहे हैं उतनी ही समस्याएँ आज के दैनिक जीवन में बढ़ रही है परिवार विभाजित हो रहे हैं। छोटी–छोटी समस्याएँ भयंकर रूप धारण कर लेती है। आज बहू का दृष्टिकोण यह है कि मैंने विवाह किया है मैं किसी की पराधीन नहीं। मैं काम काजी महिला हूँ। मुझे अपना कैरियर देखना है। सास–ससुर के साथ रहने का ठेका नहीं ले रखा आदि प्रश्नों ने अहमता ले ली है। आजकल की बहू, बेटी सुबह अपना काम किया, बच्चे को गोद में उठाया और चल दी घूमने। शाम को पति के आते ही घर में आएंगी। ऐसे में जीवन में स्नेह, प्यार की जगह द्वेष ही बढ़ता है और परिवार विघटन का कारण बनते है। अतः बेटी का जीवन सुख और शांति की शीतल छाया में व्यतीत हो इसके लिए उसके माता–पिता धीरज और संयम की शिक्षा देकर शांति और प्रेम की शीतल छाया से सुखी रहने की शिक्षा दें। असहिष्णुता तथा आवेश एवं आक्रोश के आवेगों को वायु देकर उसके हृदय को महाभारत का कुरूक्षेत्र न बनाएँ लड़की सन्तोषी, क्षमावान्, उदार हृदय वाली और मनोविज्ञान में निपुण हो। शिक्षित और कामकाजी होना उसके निजिगुण हैं। व्यवहारिक और पारिवारिक होना दूसरी बात। विवाहिता के माता–पिता को अपना निजि सुख छोड़कर अपनी बेटी के हित की बात सोचनी चाहिए।[122]

कारण :–

- परिवार में लोगों की लालची प्रवृत्ति के कारण परिवार टूट रहे है।
- भाइयों में आपसी मन–मुटाव व ईर्ष्या प्रवृत्ति के कारण।
- लेगों की अपनी स्वार्थ प्रवृत्ति के कारण।
- भाइयों के बीच आर्थिक असंतुलन के कारण रहन–सहन में भारी अन्तर आ जाता है।
- समयाभाव एवं बढ़ रही आवश्यकताओं की पूर्ति में लगे रहने से लोगों में अपनापन, प्रेम एवं उत्साह का अभाव हो गया है।
- वर्तमान पीढ़ी में बड़ों का सम्मान, संस्कार, नैतिकता, शर्म के अभाव के कारण परिवार बिखर रहे है।
- वर्तमान में एकल परिवार की मनोवृत्ति परिवार विघटन का मुख्य कारण बन गयी है।
- बहुओं के गलत दृष्टिकोण के कारण भी परिवार टूट रहे है।

सुझाव :–

- अपने बच्चों को उचित शिक्षा के साथ–साथ अच्छे संस्कार भी देने चाहिए जिससे वह परिवार के महत्त्व को समझ सके।

- आपसी मन–मुटाव छोड़कर एक दूसरे का साथ देना चाहिए जिससे परिवार टूटने से बच सके।
- भाइयों को आर्थिक असंतुलन को मिटाने के लिए एक–दूसरे का सहयोग करना होगा।
- अपनी दैनिक दिनचर्या से कुछ समय निकालकर अपने परिवार को देना चाहिए।
- बहू–बेटी को अपने सास–ससुर का आदर–सम्मान कर उनकी सेवा करनी चाहिए।
- अपने अन्दर के लालच को खत्म करना होगा।
- एकल परिवार की मनोवृत्ति को बदल कर सयुक्त परिवार की मनोवृत्ति को अपनाना होगा।

3.4.2.2 वृद्धावस्था :–

वृद्धावस्था से सम्बन्धित समस्या के प्रमुख लेखक एवं लेखिकाओं के नाम निम्न है –

कथा	काव्य
➢ डॉ. वर्षा पुनवटकर 'बरखा'–बोझिल रिश्तें...	➢ साध्वी प्रियदर्शन 'प्रियदा'–माता–पिता के उपकार
➢ डॉ. पूरन सिंह–तारकोल	➢ राजेन्द्र प्रसाद जोशी–बोझ समझकर
➢ डॉ. मंजु सिंह–अम्मा	➢ जगदीश पंडित–कविता भी रोती है
➢ डॉ. चांदकौर जोशी–नई दिशा	**लेख**
➢ डॉ. श्रीमती संतोष सांघी–समाधान	➢ सुधा गोयल–कौन पोछेगा इनके आँसू
➢ पुष्पलता कश्यप–एक लरजती जिंदगी	➢ प्रेम कोमल बूंलिया–क्यों करते हैं माँ–बाप का बंटवारा
➢ चरण सिंह चौहान–वृद्ध आश्रम	➢ भारती शर्मा–बेटों के कंधे का बोझ
➢ आनन्द बिलथरे–सिर का बोझ	➢ घनश्याम मेठी–पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव ने माँ–बाप को किया तिरस्कृत
➢ नवनीत ठक्कर–अहसान	➢ अब्बास खान संगदिल–पूत कपूत तो क्या धन संचय
➢ श्रीमती चन्द्रकला गंगवाल–बॉय बॉय वृद्धाश्रम	
➢ विनोदिनी गोयनका–पश्चाताप के आँसू	
➢ उषा यादव–आलौकिक सुख	
➢ ब्रजभूषण भटनागर–राह का पत्थर	

कथाओं में वृद्धावस्था :–

डॉ. वर्षा पुनवटकर 'बरखा' अपनी कथा **'बोझिल रिश्तें...'** में कहती है कि रामपाल की पत्नी की तबियत अचानक बिगड़ जाने के कारण वह उसे लेकर अस्पताल जाता है। डॉक्टर ने रामपाल की पत्नी की हालत देख तुरन्त उपचार शुरू कर दिया और कुछ दवाइयाँ लिख कर तुरन्त लाने को कहा। रामपाल यह सुनते ही बहुत घबरा

गया उसे कुछ सूझ नहीं रहा था कि क्या करे क्या नहीं। वह बेचारा लाचार बाप था, जिसके दोनों बेटे सरकारी दफ्तरों में अफसर थे, उनका अपना अच्छा सामाजिक स्तर था। पैसों की कोई कमी नहीं थी। केवल कर्तव्य के नाम पर अपने बूढ़े माता–पिता को झेल रहे थे। इसलिए ही वे उन्हें खाने के नाम पर दो वक्त का भोजन, जरूरत के कपड़े और रहने के लिए एक कमरा देकर अपने आप को कर्तव्य से मुक्त समझ रहे थे। माँ को अस्पताल में भर्ती कराने पर भी कर्तव्य के नाम पर नौकर द्वारा भोजन भिजवा दिया जाता था और कभी कभार मिलने आया करते थे। जब रामपाल के पास पैसे खत्म हो जाते है तो वह अपने बड़े बेटे को फोन करता है और कहता है **''माँ की तबीयत ज्यादा बिगड़ गई है जल्दी आओ।''** तुरन्त उत्तर मिला **''वह किसी मीटिंग के सिलसिले में बाहर गये है दो दिन तक नहीं आ सकते।''** छोटे बेटे को फोन करने पर उत्तर मिला कि **''वे यहाँ नहीं है पता नहीं कब आएँगे।''** आखिर में वह अपनी पत्नी के गले का मंगलसूत्र उतार कर ले जाता है मगर जब तक वह उसके इलाज के लिए पैसों की व्यवस्था कर पाता उसकी पत्नी इस संसार को छोड़कर जा चुकी थी। अत्यंत दुःखी मन से अपनी पत्नी का अंतिम संस्कार कर वह अपने गाँव लौट गया। जब दो दिन बाद बच्चे अपने कर्तव्य पुर्ति हेतु अस्पताल पहुँचते है तो उन्हें अपने पिता का एक पत्र मिलता है जिसमें लिख था–**''तुम्हारे अति महत्त्वपूर्ण कार्यों के बीच में माँ के अन्तिम संस्कार जैसा तुच्छ कार्य सौंप कर तुम्हारे कामों में बाधा उत्पन्न नहीं करना चाहता था, इसलिए तुम से यह अधिकार मैं वापस ले रहा हूँ। मैं तुम्हे कभी माफ नहीं कर सकता। ध्यान रहे तुम्हारे अपने भी बेटे हैं, जैसा बोओगे वैसा ही काटोगे।''**[123]

डॉ. पूरन सिंह अपनी कथा **'तारकोल'** में एक बूढ़ी माँ के दर्द को व्यक्त करते हुए बताते है कि एक बूढ़ी माँ तेज धूप मूें सड़क पर तारकोल बिछा रही थी तभी अचानक तारकोल उसके पैर पर गिर गया और वह तिलमिलाने लगी। यह देख वहाँ से गुजर रही बैंक में काम करने वाली पिंकी ने उसे सम्भाला और पानी पिलाया, जब उसका दर्द कम हुआ तो पिंकी ने पूछा क्या अम्मा आप भी इतनी उम्र हो जाने के बाद भी काम करती हो। आपका बेटा–बेटी कोई नहीं है। तब बूढ़ी माँ ने पिंकी को प्यार से पुचकारते हुए कहा कि मेरा एक बेटा था उसके पैदा होते ही उसका बाप मर गया। मैंने घास खोदकर भट्ठों में काम करके, लोगों के घरों में झाडू पौंछा करके, उसे पाला, बड़ा किया और पढ़ाया लिखाया भी। मैं उसे बड़ा आदमी बनाना चाहती थी। वह मेहनत से पढ़ता और जगह–जगह नौकरी के लिए जाता था। एक दिन वह रेलवे की नौकरी के लिए गया सो आज तक लौटकर नहीं आया। बहुत दिनों बाद उसकी एक चिठ्टी आई। मैंने किसी से पढ़वायी थी उसमें लिखा था, माँ मैं एक मंदिर में पुजारी बन गया हूँ, दुर्गा माँ का मंदिर है। रोज हजारों रुपये की चढ़ावन आती है, मंदिर का पुजारी मर गया और अब मैं ही इन सब का मालिक हूँ। मैं डिप्टी–कलैक्टर तो बन नहीं पाया लेकिन पैसे के अम्बार लगे है कोई कमी नहीं है। मैं यहाँ जाति छिपाकर रहता हूँ सभी

लोग मुझे चौबे जी कहते है। मैं अपना फोटो भी भेज रहा हूँ पता नहीं लिख रहा हूँ तुम्हारा क्या भरोसा कब आ धमको फिर भी मैं बहुत खुश हूँ मेरा बेटा बड़ा आदमी बन गया। दुख तो इस बात का है कि देखों मैं सड़कें बनाती हूँ लेकिन इनमें से कोई सड़क मेरे बेटे तक नहीं जाती। तब पिंकी उससे कहती है कि आप यह काम छोड़ दो और मेरे साथ चलो आप मेरे साथ रहना मेरे घर में नौकर–चाकर है आपको कोई परेशानी नहीं होगी। माँ ने मना करते हुए कहा नहीं मेरी लाड़ो मैं नहीं चल सकती इस ठेकेदार के बडे एहसान है मेरे ऊपर। मेरा बेटा जब छोड़कर चला गया था तब इसी ने मुझे सहारा दिया था। आज भी मेरा ध्यान रखता है। मैं एहसान फरामोश नहीं बनना चाहती। इतना कहकर वह माँ पूरी ताकत लगाकर रोने लगी थी और तड़पने लगी थी।[124]

डॉ. मंजु सिंह अपनी कथा **'अम्मा'** में बताती है कि अम्मा के एक बेटा है लाला जिसने घर से भागकर अंतर्जातीय विवाह कर लिया था और विवाह के बाद शहर में ही रहने लग गया। पिता जी की मृत्यु पर भी वह घर नहीं आया था। पिता जी को मरने के बाद अम्मा अकेली ही रहती थी। कई वर्षों बाद आखिर कार उसके बेटे का खत आता है उसमें लिखा होता है कि वह घर छोड़कर शहर उसके पास आ जाये। यह पढ़ कर अम्मा सोचती है कि आखिर इतने वर्षों के बाद उसको अपनी अम्मा की याद कैसे आ गई मगर वह अपना घर नहीं छोड़ना चाहती थी क्योंकि उसमें उसकी पुरानी यादे बसी हुई थी। फिर भी वह अपने बेटे के लिए अपना घर छोड़कर शहर चली जाती है वहाँ जाने पर वह देखती है कि उसकी बहू भी नौकरी करती है और बेटा भी तथा बेटा घर के काम भी करता है यह सब देख अम्मा को अजीब लगता है तो वह अपने बेटे से कहती है कि तुम काम करते हो तो बहू को क्या जरुरत है काम करने की इस पर बेटा कहता है कि माँ आज के समय में अकेले के कमाने से घर नहीं चलता यह सुन अम्मा शांत हो जाती है और अपने कमरे में जाकर सौ जाती है। कुछ दिन तो अम्मा को खाना पिना सब मिल जाता है मगर कछ दिनों बाद बेटा व बहू उनसे थोड़ा–थोड़ा काम करवाने लगते है जब अम्मा बिना किसी विरोद्ध के काम करने लगती है तो वह अपनी नोकरानी को काम से हटा देती है। अब बर्तन धोने और झाडू–पोंछा का काम भी अम्मा के ऊपर आ गया। अब तो पूरे दिन अम्मा को काम से फुर्सत नहीं मिलती थी। थकान होने से वह गाँव जाने के लिए सोचने लगती है। इसी बीच खुशखबरी मिली कि अनु माँ बनने वाली है। अनु ने एक सुन्दर बेटे को जन्म दिया। सब बहुत खुश थे। मगर अम्मा को उस बच्चे को गोद में खिलाने की या चुम्बन लेने की अनुमती नहीं थी जिससे वह बहुत दुःखी थी। एक दिन जब अम्मा अपने बेटे के लिए चाय बनाकर उसके कमरे में जा रही थी तो उनको एक आवाज सुनाई दी बेटा व बहू बाते कर रहे थे बहू अम्मा पर इल्जाम लगा रही थी कि अम्मा सारा दूध पी जाती है बच्चे के लिए कुछ नहीं छोड़ती तो बेटा कहता है कि बेचारी अम्मा एक साल से तुम्हारे यहाँ काम कर रही है तुमने आज तक एक साड़ी भी नहीं दी। तो बहू कहती है कि मैंने उनका ठेका नहीं

लिया है जैसे पिताजी के मरने का गम सह लिया उसी तरह अम्मा को भूल जाओ। बढे अम्मा वाले बने थे लाकर हमारे सिर मढ़ दिया। यह सुन अम्मा अपना सामान समेट लेती है और अपने बेटे से स्टेशन छोड़ आने के लिए कहती है बेटा समझ गया था कि अम्मा ने सब सुन लिया है मगर वह कुछ न कह सका और अम्मा को स्टेशन छोड़ आया। अम्मा गाँव वापस आकर अपने को आजाद महसूस करती है और घर पहूँचकर फूट–फूट कर रोती है।[125]

अपनी कथा **'नई दिशा'** में **डॉ. चांदकौर जोशी** एक बेटे द्वारा अपनी माँ से किये गये धोखे को दर्शाती हुई कह रही है कि दो घण्टे प्रतीक्षा के बाद गायत्री जब फ्लाइट का पता लगाने गई तो उसे पता चला कि लंदन वाली फ्लाइट तो कभी की उड़ान भर चुकी थी। उसने अपने बेटों के बारे में पूछा कि मेरे बेटे मुझे भी अपने साथ लेकर जा रहे थे, टिकट वाले ने सारे टिकट चेक कर बताया कि वो दोनों तो कब के जा चुके है और उन्होंने आपकी कोई सीट बुक नहीं करवाई है। यह सुन माँ को बहुत दुख हुआ और उसने सोचा कि माँ के साथ ही इतना बड़ा धोखा। तब गायत्री ने वहाँ खड़े गार्ड से उसे टैक्सी में छोड़ आने को कहा और वह उसे बाहर तक छोड़ आता है वहाँ पर उसे सुनीता व अनिल मिलते है वह भी गायत्री के घर की तरफ जा रहे थे तो उन्होंने गायत्री को अपने साथ बिठा लिया और वहाँ से निकल गये। बातों ही बातों में सुनीता ने गायत्री से उसके दुख का कारण पूछा तो गायत्री ने अपना दुख सुनाते हुए कहा कि मेरे दो बेटे है और दोनों 10 साल से बाहर पढ़ रहे है तथा वहीं शादी भी कर ली और अब वहीं बस गये। वह मुझे आज लेने आये थे मगर यही छोड़ गये। यह सुन सुनीता को भी बहुत दुख हुआ। वह जब गायत्री के घर पहुँचते हैं तो देखते है कि वहाँ कोई और आ गया था उनसे वहाँ रहने का कारण पूछा तो पता चला कि गायत्री के बेटों ने वह घर उनको बेच दिया। यह सुन गायत्री को गहरा सदमा लगा और हार्ट अटेक आ गया तब डॉक्टर को बुलाकर उसका इलाज करवाया गया तथा कुछ दिन उसे अपने घर में ही रहने दिया जब वह सही हो गई तो अनिल उन्हें अपने साथ अपने घर ले गये और कहा कि आप हमारे साथ रहो मेरे कोई माँ नहीं है आप मेरी माँ बनकर यहाँ रहो मगर गायत्री ने रहने से मना कर दिया और अपना गहना, कपड़े, सब कुछ अनिल को देकर वद्धाश्रम चली गई और कहा कि बेटा अब मेरे बेटे तुम ही हो तुम मेरा विश्वास नहीं तोड़ोगे। अनिल ने भी अपना फर्ज निभाया और माँ को वृद्धाश्रम में छोड़ आया। गायत्री ने अपने पति के पैसों से दो बड़े कमरे बनवाये, कमरों के पास स्वयं खडी होकर फोटू खिचवाई और बेटों को अन्तिम पत्र लिखा और कहा कि **"जिस आश्रम की मुझे बुढ़ापे में जरूरत पड़ी है शायद तुम्हें भी पड़ सकती है। मैं तो अपने वतन में अपने लोगों के बीच रहती हूँ, अब भी रह रही हूँ। तुम पराये मुल्क में, पराये लोगों के बीच में रह रहे हों, वहाँ तुम्हारा अपना कोई नहीं। न पत्नी न बच्वें। सब जगह से**

धिक्कारे जावो तब यहाँ चले आना। तुम्हारे वृद्ध होने पर यह वृद्धाश्रम तुम्हारा इन्तजार करेगा।[126]

डॉ. श्रीमती संतोष सांघी अपनी कथा **'समाधान'** के माध्यम से कहती है कि दस वर्ष पूर्व आनन्द बाबू की पत्नी की मृत्यु के पश्चात उन्होंने अनगिनत तकलीफें झेली। दिनेश उस समय 17 वर्ष का था दिनेश की पढ़ाई पूर्ण होने के पश्चात उसकी कृषि विभाग मे नौकरी लग गई और शादी भी हो गई थी। मगर शादी के बाद दिनेश अपनी पत्नी में इतना रम गया कि पिता को बिल्कुल ही भूल गया। बहू की दृष्टि में तो मेरी परिवार में गिनती ही नहीं थी। उसकी तो परिभाषा ही अलग थी **''मैं और मेरा पति।''** बहू पिताजी को खूब ताने मारती थी और अपने दोनों बच्चों को उनके पास फटकने भी नहीं देती थी। एक दिन दिनेश ने पापा से कहा कि हमने आपके लिए गैरेज वाला कमरा ठीक करा दिया है और आपकी जरूरत की सब चीजें भी वही रख दी है। अब आप वही रहोगे क्योंकि घर में बच्चों को परेशानी होती है। आनन्द बाबू मजबूर होकर वहाँ रहने लग जाते है, एक दिन जब वह पानी पीने के लिए उठे तो उनको बहू की आवाज सुनाई दी वह दिनेश से कह रही थी–**''बुढ्डा संजीवनी बूटी खाकर आया है न मालूम कब पीछा छूटेगा?''** तब बेटे ने कहा अभी तो हम घूमने जा रहे है वापस आकर इनको वृद्धाश्रम में शिफ्ट कर देंगे। यह सुन आनन्द बाबू ने निर्णय किया कि वह अपना घर बेच देगा और उसने अपना घर बेच दिया और एक होटल में रहने लगे। जब बेटा–बहू छुट्टिीयां मनाकर वापस आते है तो उन्हें पता चलता है कि पिताजी ने घर बेच दिया है इस बात पर वह गुस्सा होकर अपने पिता जी के पास जाते है और इसका कारण पूछते है तो वह बताते है कि तुम मुझे घर से निकाल कर वृद्धाश्रम भेज रहे थे तो मैं स्वयं ही तुम्हारी जिन्दगी से दूर हो गया हूँ। मैंने बहुत दिन अपमान व जिल्लत की जिन्दगी झेली है मैं तुम्हारे पास एक कबाड़ में पड़े फनीचर की जिन्दगी जी रहा था। तुमने मुझे जितने आँसू रुलाएं है न, एक–एक आँसू के सौ–सौ आँसू बनकर निकलेंगे, यह मेरा श्राप है। मैं यहा बहुत खुश हूँ मुझे यहा सब समय पर मिल जाता है और हाँ एक बात और मैंने अपनी वसीयत में लिख दिया है कि मेरी मृत्यु के पश्चात मेरी सम्पत्ति मेरे दोनों पोतों को मिले और वो भी 25 वर्ष पूर्ण करने पर। दिनेश व बहू के चेहरे लटके हुए थे, आँखे अपराध बोध से ऊपर नहीं उठ रही थी।[127]

पुष्पलता कश्यप अपनी कथा **'एक लरजती जिंदगी'** में अपने विचार अभिव्यक्त करती हुई कहती है कि राहुल को अपने दादा से बेहद प्यार और लगाव था। दादाजी को पहले घर में समुचित आदर और महत्त्व मिलता था। लेकिन जैसे–जैसे वे बूढ़े होते गये उत्तरोत्तर उपेक्षित और तिरस्कृत होते चले गये। स्थिति यहाँ तक पहूँची कि वे घर में असह्य हो गये। पहले घर में पिताजी की चलती थी उनका दबदबा था उस समय दादाजी को एक पिता, घर के बुजुर्ग को मिलने वाला सम्मान मिलता था। परन्तु पिताजी के उमरदराज होते–होते सत्ता हस्तांतरित होकर माताजी के हाथों में केन्द्रित हो

चली थी। माँ अब बदले निकाल रही थी। बुढ़ापे और बीमारी का चोली–दामन का रिश्ता है। बुढ़ापे के साथ हर बीमारी और लाचारी बिना बुलाये दबे पांव चली आती है। दादाजी का भी यही हाल था घुटनों के बढ़ते दर्द से पीड़ित दादाजी धीरे–धीरे पांव उठाते, घसीटते, लड़खड़ाहट के साथ चलते थे। पिताजी सहारे के लिए उनका हाथ पकड़ते मगर कभी–कभी वे झुंझला जाते और गुस्से से भरकर उन्हें झिड़क बैठते। कहते बूढ़े ने परेशान करके रखा है, मरे तो पीछा छोड़े! इस तरह वे दादाजी को कोसते। कभी–कभी तो वे उन्हें धक्का भी दे देते थे। माँ तो बात–बात पर दादाजी को झिड़क बेठती। वह इसके लिए मौके ढूंढती थी। दादाजी अंदर ही अंदर कट कर रह जाते थे। अपनी बेबसी पर उनकी आँखें सजल हो छलछला जाती थी। कालांतर में एक समय ऐसा भी आया जब दादाजी को रद्दी सामान की तरह बाहर की एक कोठरी में, जिसमें बकरी बंधती थी, एक टुटी माची पर डाल दिया गया था। उसी अस्वस्थकर वातावरण में उनका रहना, सोना, खाना–पीना सब कुछ होता था। दादाजी भिखारी की तरह हो गये थे। हर चीज के लिए तरसते रहते। माँ के सामने वे गिड़गिड़ाते लेकिन माँ उन्हें दुत्कार देती। माँ के साथ पिताजी का भी मन अपने बाप की तरफ से फिर गया था। बुढ़ापे, बीमारी और गंदगी के कारण दादाजी की चमड़ी गल गई थी। इस प्रकार अपने अंतिम दिनों में उन्होंने नरक भुगता था और उसी अवस्था में दादाजी ने अपने प्राण छोड़ दिये थे। इस बात का राहुल को बहुत पछतावा था मगर वह अपने दादाजी के लिए कुछ न कर सका, इसका पश्चतावा राहुल को आज भी है।[128]

चरण सिंह चौहान अपनी कथा **'वृद्ध–आश्रम'** के माध्यम से कह रहे है कि विकास कुछ झिझकते हुए अपने पिता से कहता है, बाबू जी इस छोटे से फ्लैट में आपको तकलीफ होती है, चुन्नू–मुन्नू भी आपको कुछ अधिक परेशान करते हैं यही सोचकर मैं आपके लिए बैकुण्ठ आश्रम की व्यवस्था देख आया हूँ वहाँ सभी प्रकार की अच्छी व्यवस्था है, कल सुबह चलना हैं। यह सब सुनकर बाबू जी कहते कि मुझे घर में कोई तकलीफ नहीं है, चुन्नू–मुन्नू के साथ मुझे शुकुन मिलता है मुझे वृद्ध आश्रम नहीं जाना। बाबू जी ने साफ मना कर दिया। तब विकास के समर्थन में प्रज्ञा बोलती है कि आश्रम में आपके हम उमर के लोग मिलेंगे, वहाँ मन्दिर है, दानों समय सत्संग होता है, परलोक भी सुधरेगा फिर हम रविवार को आते रहेंगे। तब बाबूजी कहते है कि मैं चुन्नू–मुन्नू के बिना नहीं रह सकता और मेरे परलोक की चिन्ता मत करो मैं अपना परलोक स्वयं सुधार लुँगा। इस प्रकार वह वृद्ध आश्रम जाने के लिए मना तो कर देते है परन्तु विकास, प्रज्ञा के निर्णय पर उन्हें भारी क्षोभ था उन्हें सारी रात नींद नहीं आयी थी। अब उन्होंने उत्पन्न परिस्थितियों से मन ही मन समझौता कर लिय था और बैकुण्ठ आश्रम जाने के लिए जरूरी चीजें एक बैग में डाल सुबह होने की प्रतीक्षा कर रहे थे।[129]

अपनी कथा **'सिर का बोझ'** में **आनन्द बिल्थरे** कहते है कि हर माँ–बाप को अपने बच्चों से उम्मीद होती है इसी उम्मीद पर वे उसे बड़ा करते हैं, पढ़ाते हैं, गलत

राह पर चलने से रोकते हैं। मगर रमेश शादी के बाद बदल गया था अब वह अपनी पत्नी रागिनी की बाते मानने लगा था वह अपनी माँ व पिता का कहना नहीं करता व उनके जरूरत का सामान भी नहीं लाकर देता पूछने पर पैसों की तंगी का बहाना बना लेता और स्वयं बपनी पत्नी के साथ पिक्चर देखता बाहर खाना खाता। जब रमेश अपनी माँ के लिए दवाई लेने की सोचता है तो रागिनी उसे दवाई लेने से मना कर देती है और कहती कि कुछ नहीं होगा बुढ़िया को बड़ी सख्त जान है फिर रागिनी कहती है कि तुम अपने माता–पिता को बड़े भाई के यहाँ छोड़ आओं तो रमेश कहता है पिताजी को भेज देता किन्तु फिर पेंशन के पैसे कम हो जायेंगे और अगर माँ को भेज दिया तो रसोई और घर की देखभाल कौन करेगा? तब रागिनी कहती है कि–**"तुम्हारे माता–पिता तो अब सिर का बोझ बन गये हैं न उतारते बनता है न रखते।"** उनकी यह सब बाते द्वार पर खड़ी माँ सुन लेती है और दोनों सुबह होते ही अपना सामान बांध कर स्टेशन चले जाते है। उनको जाने के बाद रमेश व रागिनी की हालत खराब हो जाती है बेटा बंटी भी रह–रहकर अपने दादा–दादी को याद कर रहा था। घर का सारा काम अस्त–व्यस्त हो गया था। कुछ दिनों बाद जब रागिनी व रमेश काम पर से घर लोटते है तो घर का सारा सामान, गहने–जैवरात सब चौरी हो चुके थे तब उनको अपने माता–पिता की याद आती है तथा अपनी गलती पर पछतावा होता है और उन्हें ढूंढ़ने की कौशिश करते है मगर वह नहीं मिलते। एक दिन उनके पिता का फोन आता है और वे अपने बेटे से कहते है–बेटे तुम्हारे घर से चले आने का हमें बेहद अफसोस है। हम कहाँ जायेंगे यह कहना तो मुश्किल है लेकिन जहाँ भी जायेंगे तुम्हारी कुशलता की कामना करते रहेंगे।[130]

नवनीत ठक्कर की कथा **'अहसान'** में एक पिता अपने बेटे से कहते है कि बेटा मेरे पेट में कुछ गड़बड़ है क्या डॉक्टर के पास ले जाओंगे तो बेटा कहता है कि मुझे अभी तो दफ्तर जाना है शाम को ले जाऊँगा। शाम को बहू ने पिताजी से पूछा पिताजी क्या आप मुन्ने को कोचिंग से ले आएेंगे? उनका फोन आया है कि शाम को फिल्म देखने जाएँगे। पिताजी ने कहा टिक है मैं मुन्ना को ले आऊँगा। रात को जब पति–पत्नी फिल्म देखकर लोटे तो पिताजी पेट के दर्द के मारे छटपटा रहे थे। पड़ोसी इकट्ठे हो गए थे। यह देख बेटा उबल पड़ा पिताजी! आप क्यों हमें इस तरह परेशान करते हैं? इतना दर्द था तो पहले से कहना चाहिए न पड़ोस वालो के आगे हमें क्यों बेइज्जत करते हैं? हमारी भूल थी कि आपके दूसरे बेटे आपको घर में घुसने नहीं देते फिर भी हमने आपको रखा है। तब पिताजी कहते है **"हाँ बेटा! तुम मुझ पर बहुत बड़ा अहसान कर रहे हो। यह बात अलग है कि मैंने भी तुम्हे पाल पोसकर बड़ा किया है।"** यह सुन बेटा कहता है **"इसमें आपने मुझ पर कोई अहसान नहीं किया। वह तो आपका फर्ज था पैदा कर दिया था तो परवरिश करने का दायित्व तो उठाना ही पड़ता हैं।"**[131]

श्रीमती चन्द्रकला गंगवाल अपनी कथा **'बाय...बाय...वृद्धाश्रम'** में कहती है कि राधा और शर्मा जी के तीन बेटे थे जो उन्हें बड़ी मिन्नतों मनुहारों से मिले थे। शर्मा जी ने अपने तीनों बेटों को पढ़ा–लिखा कर बहुत अच्छे ओहदों पर लगा दिया था। मगर बुढ़ापे में जब माँ–बाप को अपने बच्चों की जरूरत पड़ी तो उन्होंने अपना हाथ छुड़ा लिया और अपनी गाड़ी से लाकर वृद्धाश्रम में छोड़ गये। शुरू–शुरू में हमें बहुत बुरा लगता था। हम यही सोचते कि शायद कोई मिलने आ जाए, चिट्ठी या तार आ जाए। हो सकता है किसी एक को कुछ लगे और आकर ले जाए। मगर ऐसा कुछ नहीं हुआ। इसी इंतजार में छः साल बीत गये। एक दिन शर्मा जी ने विज्ञापन बनाया **''वृद्ध दंपति को तलाश है, एक ऐसे बेटे की जो उन्हें अपने माँ–बाप का प्यार देकर रख सके।''** जब शर्मा जी ने अपनी पत्नी को यह बात बताई तो उसे थोडा अजीब लगा और उसने कहा कि कहि हमारे साथ धोखा हो गया तो तब शर्मा जी ने अपनी पत्नी को समझाया और राजी कर लिया। अब धीरे–धीरे शर्मा जी के पास सात–आठ पत्र कुछ लिफाफे आये। उनमें से कुछ पत्रों ने शर्मा जी को आकर्षित किया उनमें से भी एक पत्र रवि का उन्हें अच्छा लगा और वो रवि से मिलते है तथा उसके साथ घर जाने के लिए तेयार हो जाते है। जाने से पहले वह वृद्धाश्रम में छोटी सी पार्टी करते है और सब लोग उन्हें सलाह देते है। फिर वह रवि के साथ घर चले जाते है घर में रवि की पत्नी व एक छोटी बच्ची खुशी थी जो उन्हें देखकर बहुत खुश होती है। रवि ने उनको अपना कमरा दिखाया तथा आराम करने के लिए कहा और कहा कि कल घर में छोटी सी पार्टी है आपके आने की खुशी में सबको घर बुलाया है आपसे मिलने के लिए। दूसरे दिन सबसे उनका परिचय करवाया तथा उनका पूरा कमरा बच्चों की चहचहाहट से भर गया। तब उनका दिल खुशियों से झूमने लगा था।[132]

विनोदिनी गोयनका अपनी कथा **'पश्चाताप के आँसू'** में बताती है कि गायत्री देवी व रजनीकान्त बाबू के तीन बेटे व एक बेटी है। रजनीकान्त बाबू ने अपने तीन बेटों व एक बेटी का लालन–पालन, शिक्षा–दीक्षा सभी कुछ कुशलता से किया था। अपना तन–मन काट कर बच्चों को पढ़ा–लिखा कर योग्य बनाया, नौकरी दिलवाई और सब बच्चों की शादियाँ सामर्थ्य के अनुसार उनकी पसन्द की लड़कियों से सादगी पूर्वक करवा दी गयी। घर में दोनों को अपने बेटे–बहूओं द्वारा पूरा मान सम्मान मिलता था मगर एक रात अचानक रजनीकान्त बाबू हृदय–गति रूकने के कारण सोते ही रह गये। सभी बच्चे एकत्रित हुए और सब श्रद्ध–कर्म सम्पन्न किया। अब धीरे–धीरे सबका रवैया बदलने लगा वह बहू जो पहले ससुर के सम्मुख सास का इतना सम्मान करती थी अब शेरनी बन गई है। वे घर के एक कौने में कूड़ें की तरह पड़ी रहती। केवल बेटे ही समय समय पर उनके सुख–दुःख पूछते। एक दिन मझला बेटा एक प्रस्ताव लेकर आया और कहने लगा कि यहाँ शहर के पास ही बहुत अच्छा वृद्धाश्रम शान्ति निवास है जहाँ दान पर नहीं खर्च देकर सम्मान पूर्वक वृद्ध–जन रह सकता है, बारह सौ रुपये प्रति

माह खर्च लगेगा। हम चारों सन्तान तीन–तीन सौ रुपये दे दे तो माँ वहाँ आराम से रह सकेंगी। इस प्रकार गायत्री को वृद्धाश्रम भेज देते है जहाँ बेटे कभी–कभार मिल आते है। आश्रम में गायत्री की मुलाकात एक औरत से होती है जिसका बेटा उसे आश्रम में छोड़ कर अमेरिका रहता था तथा कभी मिलने भी नहीं आया था। एक दिन उसकी मृत्यु हो जाती है तो गायत्री वापस अकेली पड़ जाती है। तब वह अपने बेटों को खत लिखती है कि मुझे यहाँ से ले जाओं, मुझे बच्चों की और घर की बहुत याद आती है मगर बीवियों के डर से वह बेटे अपनी माँ को नहीं ले जा पाते और छटपटा कर रह जोते है। कुछ दिनों बाद आश्रम से फोन आया कि आपकी माताजी को रात में दिल का दौरा पड़ गया है उनकी हालत खराब है उन्हें अस्पताल में भर्ती करवाना है। दोनों भाई पश्चाताप के आँसू बहाते हुए दौड़े, मझले ने शीघ्र ही अस्पताल में उपचार का प्रबन्ध करा दिया। तब बेटे रोते–रोते कह रहे थे माँ हमें छोड़कर आप नहीं जा सकती है हम आपको हृदय से लगाकर अपने पास घर में ही रखेंगे अन्यथा हम जीवन भर पश्चाताप की अग्नि में जलते रहेंगे और कभी भी अपने आपको हम क्षमा नहीं कर सकेंगे।[133]

उषा यादव अपनी कथा **'आलौकिक सुख'** में कहती है कि जब माँ का पेट खराब हो जाता है तो बहू ने अपने पति से वैद्यजी के यहाँ से दवा की पुड़िया लाने को कहा इस बात पर बेटा भड़क जाता है और माँ को डाटते हुए उसके खाने पर नियन्त्रण रखने को कहता है तब वह माँ सोचती है कि बेटा तो मेरे खाने से अनजान है पर बहू तो सच्चाई जानती है दो बासी रोटियों के साथ चाय का गिलास वही तो उन्हें रोज थमाती है। रसोई में पकते व्यंजनों की सिर्फ सुगन्ध से ही अनुमान लगाती हूँ। वह बचपन के दिन भूल गया जब आर्थिक तंगी के चलते घर में तीज–त्योहार पर भी नपी–तुली मिठाई आती थी तो मैं अपनी निगाह हटा कर अपने बच्चों के लिए मिठाई रखती थी, वहीं माँ आज चटोरी हो गई? आज घर में उसका कोई स्थान न रहा। बच्चे तो हमेशा लैपटॉप में व्यस्त रहते है उनमे तो इतनी भी सामाजिकता नहीं है कि कभी भूलकर ही दादी के कमरे में झाक लें या औपचारिकतावश ही सुख–दुख पूछ ले। माँ को रोज एक ही समय खाना मिलता है वो भी दो बासी रोटीयाँ अगर कभी वह गलती से दिन में कुछ खा लेती है तो बहू उस पर कई तरह के इल्जाम लगा देती है। यह सब देख माँ ने उपवास का मन बना लिया मगर उसकी तबियत खराब होते ही जा रही थी डॉक्टर को दिखाने पर पता चला कि माँ को कैंसर है यह सुन माँ ने अपने बेटे से कहा कि वह आज बहुत खुश है क्योंकि अब मेरी वजह से तुम्हे कोई परेशानी नहीं होगी और ना ही मेरे खाने पर तुम्हे नियन्त्रण रखना पड़ेगा यह सुन बेटे की आँखों में आँसू उबल पड़े और उसने आगे बढ़कर माँ का जर्जर हाथ थामते हुए कहा कि माँ आपको कुछ नहीं होगा मैं आपका इलाज अच्छे अस्पताल में कराऊँगा, मगर अब माँ जीवनमुक्त अवस्था पा चुकी थी।[134]

अपनी कथा **'राह का पत्थर'** में **ब्रजभूषण भटनागर** बताते है कि त्रिभुवन के दो पुत्र है दोनों अलग–अलग रहते है। त्रिभुवन एक कम्पनी में जॉब करते थे मगर उनको जॉब से रिटायर होने के बाद वह घर पर ही अपने बड़े बेटे के पास रहने लगे उनके एक पोती थी जो त्रिभुवन को बहुत प्यार करती थी मगर बहू हर बात पे उन्हें ताने मारती रहती तथा अपने पति को भी बड़काती रहती थी। धीरे–धीरे बहू का अत्याचार त्रिभुवन पर बड़ता गया तो उन्होंने निर्णय किया कि वह अपने छोटे बेटे के पास जाकर रहेगा और अपना सामान समेटकर छोटे बेटे के घर चला गया घर जाते ही बहू ने दरवाजा खोला तो बोल पड़ी अरे आप यहाँ क्या पूरा घर समेट कर ले आए और कहा कि आप जानते है हमारे पास दो ही कमरे है आपको ड्राईंग रूम में ही रहना पडेगा, त्रिभुवन बोल उठे बहू कुछ दिन की बात है मैं यहाँ से चला जाऊँगा। शाम को जब छोटा बेटा आता है तो अपने पिता को देख बोल पड़ा अरे आप बिना खबर किए ही चले आए। इतने में त्रिभुवन समझ गये और सुबह बिना किसी को बोले वो वहाँ से चले गये। कुछ दिनों बाद उसे याद आया कि मेरी पोती का आज जन्मदिन है तो वह उसके लिए गिफ्ट खरीदकर घर जाते है वहाँ जाने पर पता चला कि घर वाले बेटी का जन्मदिन मनाने के लिए ताज हॉटल गये है वह वहाँ गये और सीढ़ियो से चढ़ने लगे तभी लाइट चली गई और गहरा अंधेरा छा गया अंधेरे के कारण उनका पैर फिसल गया और वो लुढ़कते हुए नीचे जा पड़े बस एक कराह उनसे लिकली। जब अनिमेष और रंजना वापस नीचे आ रहे थे तो रंजना को अंधरे में ठोकर लगी, देखने के लिए उन्होंने टोर्च जलाई तो देखा की बाबा नीचे पड़े है और उनके पास गिफ्ट पड़ा है अनिमेष ने बाबा को उठाने की बहुत कोशिश कि मगर बाबा अब दुनिया छोड़ कर जा चुके थे। अनिमेष के नेत्र भीगे थे और उसको अपनी गलती पर पछतावा हो रहा था।[135]

काव्यों में वृद्धावस्था :–

साध्वी प्रियदर्शना 'प्रियदा' अपने काव्य **'माता–पिता के उपकार'** में कहती है कि जो माता–पिता पूज्य है तुम उनको क्यों ठुकराते हो?, जिन्होंने तुमको पाला–पोसा और बड़ा किया आज उनको ही तुम अकड़ दिखा रहे हो। बचपन में जब तुम रोते थे तो माँ तुम्हें गोद में उठा लेती थी और अगर तुम थोड़े भी दुःखी होते थे तो तुम्हें पुचकार कर प्यार करती थी। उन्होंने तुम पर जो उपकार किये आज उनको तुम भूल गए और निर्लज बनकर उन पर रोब जमाते हो। उन्होंने स्वयं भूखे रहकर भी तुम्हें भरपेट खिलाया, खुद गीले में सोई मगर तुम्हें सूखे में सुलाया था। आज तुम्हारी नस–नस में उसी माँ का दूध प्रवाहित हो रहा है, जिसे तुम कलंकित करते हो। माता–पिता ने हमेशा तुम्हारे लिए फूल बिछाए है मगर तुम उनके लिए कांटे बिछाते हो। अतः यदि इनकी सेवा करके तुम इनको संतुष्ट नहीं रख सकते तो तुम्हारे ऐसे जीवन पर धिक्कार है। इसलिए इनका हृदय न दुखाकर इनकी दुआएँ लो, इनके प्रति कटुता मत रखो। इसी प्रकार वह आगे कहती है कि–

क्यों अकड़ अकड़ कर दुर्वचनों से, इनका मन छलनी करते हो,
तुम उदासीन रहकर इनसे, यदि दुःखी करोगे तो सुनलो,
कई गुना कष्ट निज पुत्रों से, तुम भी पाओगे यह लिख लो,
तुम भी दुत्कारे जाओगे, यदि इन्हें नहीं अपनाते हो।136

राजेन्द्र प्रसाद जोशी अपने काव्य **'बोझ समझकर'** में अपने विचारों के माध्यम से एक माता–पिता के दुःख को अभिव्यक्त करते हुए कह रहे है कि हमने जिन बच्चों को कभी जान से भी बढ़कर पाला था वही बच्चे आज हमें बोझ समझकर सम्भाल रहे है। हम स्वयं भूखे रहकर भी उनका पेट भरते थे, सारी रात जागकर उनको लोरिया सुनाया करते थे। मगर अब वही बच्चे हमें पानी भी झुंझलाकर पिलाते है। हम अपनी परवाह किये बिना उनकी चिन्ता करते थे, उनके उज्ज्वल भविष्य के सपने संजोया करते थे, मगर आज मानों हम उन पर भार बनकर जी रहे है। जब हम उनको कहते है कि तुम्हें बड़ी मुश्किल से पाला है तो वे प्रत्युत्तर में कहते है कि ये तो आपका फर्ज था। अन्त में कह रहे है कि–

जीवन निर्वाह के लिये उन्होंने हमें बांट लिया,
इस पर वे कहते क्या नहीं हमने किया,
अब वो बंटवारा चाह रहे हैं अपना हक मानकर,
वे अब हमें सम्भाल रहे हैं बोझ समझकर।[137]

जगदीश पंडित अपने काव्य **'कविता भी रोती है'** के माध्यम से बता रहे है कि मोहल्ले की विशाल हवेली में बड़ी चहल–पहल हुआ करती थी आदमी और गाड़ियों की आवाजाही लगी रहती थी। लाला जी की मुख्य बाजार में बड़ी सी दुकान थी वह अपनी बग्गी से आते जाते थे और राहगीरों से राम–राम किया करते थे। मगर धीरे–धीरे उनके दोनों बेटे अपनी आलीशान गाड़ियों में चलने लगे, राम–राम तो दूर लोग उनकी सूरत देखने को भी तरसने लगे। लालाजी दुकान से बेदखल होकर हवेली में सिमट गये, तथा धीरे–धीरे एक कमरे से दूसरे कमरे में खिसकाए गये और फिर अन्त में हवेली के बाहर एक छोटी सी कोठरी में ढाल दिये। वे कभी गर्मी में तड़पते तो कभी सर्दी में दांत कटकटाते, कभी खांसते तो कभी बेहोश हो जाते, रोते झींकते पर किसी के पास उनकी सुध लेने का समय नहीं था। परन्तु आज हवेली के मुख्य हॉल में बर्फ की सिल्लियों के ऊपर वे लिटाए गये है, कई कीमती शोलें भी उनको उढाइ गयी है, चारों ओर फूलों व अगरबत्तियों की सुगंध फैल रही है साथ ही कुछ दबी सिसकियाँ गूंज रही है ऐसा प्रेम और सम्मान आम जनों को कहाँ नसीब होता है वे कम ही होते है जिनका ऐसा सत्कार होता है। तब वह सोचते हुए कहते है कि–

समझ में नहीं आ रहा है
कि रूकें रहें या लौट जाएं
या फिर स्वयं भी
लाला जी के बगल में लेट जाएं।[138]

लेखों में वृद्धावस्था :–

सुधा गोयल अपने लेख **'कौन पोछेगा इनके आँसू'** में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कहती है कि आज घर–घर में बुजुर्गों की स्थिति किसी से छिपी नहीं है। अपने ही परिवार में अपनों द्वारा दी गई मानसिक आर्थिक और शारीरिक यन्त्रणा को भोगने के लिए विवश ये बुजुर्ग किसके आगे फरियाद करें? कौन सुनेगा इनकी? कहाँ हैं मानवाधिकार आयोग? पीछा छुड़ाने के लिए गंगा स्नान, कुम्भ स्नान के बहाने बेटे वृद्ध माँ–बाप को हरिद्वार, इलाहबाद या नासिक जैसे तीर्थों पर ले जाते हैं। भीड़ में हाथ छुड़ाकर लौट आते हैं और उन्हें सड़कों पर भीख मांगने के लिए छोड़ आते हैं। जिस उम्र में मानसिक सहारे की अधिक आवश्यकता होती है उसी उम्र में प्यार और अपनत्व के दो बोल सुनने को तरस जाते हैं। बेटों की शक्ल कई–कई दिन तक दिखाई नहीं पड़ती, बहू अपनी सहेलियों और किटी पार्टी में व्यस्त रहती है, बच्चे टी.वी., कम्प्यूटर या विडियोगेम में व्यस्त। टूटी ऐनक बनवा कर लाने वाला कोई नहीं, खांसी, जुकाम, सर्दी की दवा दिलाने वाला कोई नहीं। इस प्रकार बुजुर्गों के लिए अपने ही घर यातना ग्रह बन गए हैं। जिनका कोई निदान नहीं हुआ था रिश्तों की एक गरिमा थी। बेशक परिवार बड़े थे, लेकिन परिवार में बुजुर्ग सदस्यों को पूरा सम्मान मिलता था। सब मिल जुलकर बीमार की सेवा कर लेते थे। परिवार में किसी व्यक्ति का सुख–दुख उसका अपना सुख–दुख नहीं था सब कुछ साझा था। मगर आज बुजुर्ग माँ–बाप को बेटे तो देखते ही नहीं, बेटियाँ भी नहीं देखती। वे भी सुख–सुविधा भोगी हैं। माँ बाप जब तक बुलाकर ससम्मान ले देकर विदा करते रहते हैं माँ–बाप रहते है उसके बाद माँ–बाप पुरानी गठरी मात्र रह जाते हैं जिन्हें ठोकर मारी जा सकती है। आज आधुनिक युवा पीढ़ी बेहद सुविधा भोगी और स्वार्थी हो गई है। रिश्तों का अवमूल्यन हो रहा है, चरित्र का नैतिक पतन हो रहा है, भोगवादी संस्कृति बढ़ रही है।[139]

अपने लेख **क्यों करते हैं माँ–बाप का बंटवारा?'** में **प्रेम कोमल बूंलिया** कह रही है कि सामूहिक परिवार भारतीय संस्कृति का मुख्य गुण और सामाजिक आधार है। घर में बुजुर्ग घर के मुखिया होते थे जिनका आदेश सभी सहर्ष मानते थे। बुजुर्ग भी निःस्वार्थ भाव से सबको स्नेह लुटाते बड़ी शान से गृहस्थी की गाड़ी दूर तक खींच ले जाते थे। आज तो ये सब बीते जमाने की बातें हो गई। आज हम दो हमारा एक बस यही परिवार रह गया है। पाश्चात्य सभ्यता की आंधी ने हमारी परम्परागत व्यवस्था को तहस–नहस करके रख दिया। माँ–बाप, भाई–बहन सभी परिवार के बाहर के लोग हो गए। आज घर में ऐसा एक भी कोना नहीं होता जहाँ माँ–बाप रह सकें। माँ–बाप बुढ़ापे के मारे पड़े रहते हैं बरामदे में या स्टोर रूम में। जिस माँ–बाप ने आपको जन्म देकर पाल–पोसकर इस लायक बनाया है कि आप समाज में इज्जत पाएँ फिर वे ही माँ–बाप बेकार की चीज कैसे हो जाते है। कहीं–कहीं तो माँ–बाप का बंटवारा कर दिया जाता है। माँ को एक भाई रखेगा, बाप को दूसरा भाई जैसे हाडमांस के माँ–बाप न हुए कोई

वस्तु हो गई जो बराबर बाँट ली जाती है। एक माँ–बाप मिलकर आठ–आठ बच्चों को पाल सकते हैं, उन्हें खिला–पिला सकते हैं, पढ़ा–लिखा कर अच्छा इंसान बना सकते हैं लेकिन आठ बच्चे मिलकर भी एक माँ–बाप को नहीं पाल सकते हैं? बुढ़ापा अपने आप में एक त्रासदी है ऐसे में मानसिक संबल ही जीवनदायिनी होता है। जीवन की भाग–दौड़ में एक बुढ़ापा ही ऐसा वक्त होता है जहाँ मिल बैठकर बतियाया जावे, दुःख–सुख बांटा जावे। सिर्फ एक–दूसरे के लिए जीने का जब वक्त आता है, आप उन्हें एक–दूसरे से अलग कर देते हैं। यह उनके लिए आजीवन कारावास से भी बड़ी सजा है। अतः इस लगाव को आप अपनी अंतर्आत्मा से महसूस करके फैसला कीजिए कि माँ–बाप का बंटवारा जायज है? यही वह उम्र होती है जहाँ एक–दूसरे की जरूरत बड़ी शिद्धत से महसूस की जाती है। ऐसे में उनका बंटवारा करके उनका जीवन नरकीय मत बनाइए।[140]

भारती शर्मा अपने लेख **'बेटों के कंधे का बोझ'** में कहती है कि संजय और नीलेश की माँ सरस्वती नौकरों की तरह घर का सारा काम करती थी फिर भी अगर गलती से कोई भूल हो जाती थी तो बहुएँ उसे भला–बुरा कहती थी। वह बिचारी बिना कुछ खाये पीये अपने छोटे से कमरे में जाकर सो जाती थी। सरस्वती की बेटी पूर्णिमा अपने दोनों भाइयों में सबसे छोटी थी और अपनी माँ को बहुत चाहती थी। उसके दोनों भाई माँ को बारी–बारी अपने पास रखते थे। एक दिन नीलेश के पदोन्नत होने की खुशी में दावत रखी गयी। सुबह से दावत की तैयारियाँ हो रही थी नीलेश का भाई और भाभी भी इस खुशी में शामिल होने आये थे। वृद्ध सरस्वती घर के काम में इतनी व्यस्त थी कि उसे खाना खाने का समय नहीं मिला जिसके कारण उसे अचानक चक्कर आ गया, उसके हाथ से कॉफी की ट्रे गिर गयी। यह देख उसकी दोनों बहुएँ उसे बाहर खींचकर लायी और कहा यदि आप हमारी इज्जत रखना चाहती है तो जब तक दावत चल रही है तब तक कृपा कर आप बाहर ही रहें। बाहर ठण्डी होने से वह ठिठुर रही थी और अन्दर अलाव लगाया गया था। बिचारी वह दूर किसी टूटे छप्पर के नीचे फटी शाल लपेट अपने बटों की आने की राह देखते हुए बैठी थी सर्दी के कारण वह अचेत हो गई। प्रातः जब उसकी बेटी पूर्णिमा घर आती है तो रास्ते में अचेत माँ को देखकर किसी के सहारे घर तक ले आयी थी। दोनों बहुएँ और बेटे माँ को इस हालत में देख निगाहें चुरा रहे थे और किसी तरह बहाना बनाकर माँ से पीछा छुड़वाकर वहाँ से चले गये और दबे स्वर में पूर्णिमा से कह गये कि तुम माँ को डॉक्टर के पास ले जाना हमे जरूरी काम है। पूर्णिमा आँखों में आँसू लिए माँ के हाथों तथा पैरों के तलवों पर मालिश करती रही और डॉक्टर को बुलाया मगर तब तक बहुत देर हो गयी थी। वह अपने अंतिम समय में कह गयी–**''आज मेरे बेटों के कंधों का बोझ हल्का हो जाएगा, भगवान उन्हें तरक्की दे।''**[141]

अपने लेख **'पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव ने माँ–बाप को किया तिरस्कृत'** के माध्यम से **घनश्याम मेठी** कहते है कि भारतीय संस्कृति की सबसे बडी धरोहर थी

संयुक्त परिवार में हिलमिल कर रहना। संयुक्त परिवार में माँ–बाप, परिवार के सभी सदस्य सामूहिक रूप से एक–दूसरे का आदर करते हुए बड़े ही प्रेम और सौहाद्र से रहते थे, पर जैसे ही पाश्चात्य व भोगवादी संस्कृति ने अपने पैर जमाना शुरू किया भारतीय संस्कृति की जड़े हिल गई। इसका ज्यादा प्रभाव युवा पीढ़ी पर व छोटे बच्चों पर पड़ा। परिणामस्वरूप माँ–बाप के प्रति जो आदर भाव था वह धीरे–धीरे विलुप्त होने लगा। आज जो नई पीढ़ी तैयार हो रही है, वह पढ़–लिखकर नौकरियाँ प्राप्त कर, पढ़ी–लिखी बीवी प्राप्त कर अपनी नई दुनिया बसाने की सोच का शिकार है, उनके दृष्टिकोण से बीवी बच्चे तक ही परिवार रह गया है तथा वृद्ध माँ–बाप को साथ रखना उनके लिए भारी समस्या हो गई है। अगर माँ–बाप के चार बेटे या दो बेटे हैं तो पहली समस्या तो यह खड़ी होती है कि वृद्ध व बीमार माँ–बाप को कौन रखे? परिणाम माँ–बाप समय में बटने लगे। यहाँ तक कि एक दिन भी ज्यादा रखना तकलीफदेय होता है। यही नहीं वे अपने घरों में चैन–अमन से नहीं रह पाते, उनको पिछवाड़े में गाड़ी का गैराज या कोई स्टोर का कमरा खाली करके एक तरफ डाल देते है ताकि उनके आने–जाने वाले पति के दोस्त व पत्नी की सहेलियों को माँ–बाप दिखाई न पडें। खर्चे के नाम से रोटी–सब्जी के अलावा बहुत कम वो भी बेरूखी, अनमने मन से मजबूरी व समाज के लोकलाज के भय से थोड़ा बहुत दे देते है। किसी की हिम्मत नहीं कि वह उनका खर्च उठाले, चाहे वह कितना ही धनवान क्यों न हो। अगर माँ–बाप को अच्छी पेंशन मिलती है तो उसमें भी रकम हर माह चूट लेते है। वृद्ध माँ–बाप उपेक्षित जीवन जीने को मजबूर होते है, कुछ बेटे–बहू माँ–बाप को छोड़कर हमेशा के लिए दूर हो जाते है और माँ–बाप अपने बेटे–बहू, पोते–पोतियों के दर्शन तक को तरसते है। सोचिए जिस माँ–बाप ने आपको इस योग्य बनाया, आपको पालपोस कर बड़ा किया था, खुद दूध नहीं पीकर आपको पिलया, बाहर पढ़ने भेजा तो अपने आपको तंगी में रखकर आपके लिये पूर्ण साधन जुटाए। उनके साथ आप कैसा व्यवहार कर रहे हैं? आवश्यकता है इन सब पहलुओं पर गहन चिंतन की।[142]

अब्बास खान संगदिल अपने लेख **'पूत कपूत तो क्या धन संचय'** में अपने विचारों के माध्यम से कह रहे है कि रिटायरमेंट से मिले रुपये और पेंशन बेचकर रघुबीर ने शहर में अपने एकलौते पुत्र, बहू और नाती के लिए मकान बनवाया था। यहाँ आये रघुबीर को वर्ष भर भी नहीं हुआ था कि साधारण सी बीमारी में उसका देहान्त हो गया। उसने अपनी जिंदगी में कई उतार–चढ़ाव देखे थे इसलिए मृत्यु के दो दिन पूर्व उसने मकान, प्लाट, पेंशन के कागज अपनी पत्नी को सौंपते हुये कहा ''**शैलेष की माँ इन कागजों को अपने पास सुरक्षित रखना ये तुम्हें जिन्दा रखने के सुरक्षा कवच है। किसी के बहकावे में आकर इन्हें नहीं देना, समय देखकर इनका उपयोग करना, वरना पछताओंगी...?**'' कुछ दिन सब ठीक चला, फिर बहू के अहम के आगे सब कुछ बदलने लगा, बेटे की चुप्पी साधने के कारण बहू पंख लगाकर उड़ने लगी। उसने माँ का कमरा

खाली कराकर किराये पर दे दिया और माँ के लिए घर की दहलान में व्यवस्था कर दी। शैलेष की माँ दहलान में सोने लगी और एक दिन अचानक शैलेष ने माँ से कहा कि माँ हमने तुम्हारे लिए वृद्धाश्रम में अच्छी व्यवस्था कर दी है तुम यहाँ परेशान हो जाती हो इसलिए शाम को वृद्धाश्रम चलना है। माँ अपना सामान समेटकर जाने के लिए तैयार हो गई और ऑटो से वृद्धाश्रम चली गई वहाँ जाने के बाद शैलेष कभी कबार माँ से मिलने जाता था मगर धारे–धीरे वह भी बन्द कर दिया। अचानक एक दिन पोस्टमेन शैलेष के घर रजिस्टर्ड़ लिफाफा लेकर पहुँचा जिसे पढ़कर उसके होश उड़ गये। वसीयत वृद्धाश्रम समिति ने भिजवायी थी। जिसमे लिखा था ''**मैं राधिकारानी पति स्व. श्री रघुबीर अपने पति व मेरे नाम से (संयुक्त) मकान, प्लाट, पेंशन की बैंक में जमा राशि वृद्धाश्रम को स्वेच्छा से दान करती हूँ। इस पर मात्र वृद्धाश्रम का कब्जा रहेगा और इसकी आय बेसहारा, बहुओं, संतानों के द्वारा सताये गये वृद्धजनों के उपयोग में आयेगी।**''[143]

कारण :–

- पति का अपनी पत्नी की बातों में आ जाने के कारण वह अपने माता–पिता को वृद्धाश्रम भेज देता है।
- एकल परिवार के कारण माता–पिता की घर में जगह नहीं बच पाती और उन्हें वृद्धाश्रम जाना पड़ता है।
- पैसों के अभाव के कारण बेटा अपने माता–पिता को साथ नहीं रख पाता।
- बेटे–बहू की लालची प्रवृत्ति के कारण उन पर अत्याचार किया जाता है।
- बच्चों का अपने माता–पिता के प्रति अपना कर्त्तव्य भूल जाने के कारण भी माता–पिता को परेशानियों को सामना करना पड़ता है।
- माता–पिता को बोझ समझने की संकुचित सोच के कारण उन पर अत्याचार किया जाता है एवं उन्हें वृद्धाश्रम छोड़ दिया जाता है।
- बच्चों की विदेश में नौकरी लगने के कारण वह अपने माता–पिता की देखभाल नहीं कर पाते और उन्हें वृद्धाश्रम छोड़ आते है।
- माता–पिता को व्यर्थ समझकर उनसे घर का अधिक काम करवाने के लिए उन पर अत्याचार करते है।
- कुछ–कुछ बहुएँ घर में अपना राज समझती है और अपने सास–ससुर पर अत्याचार करती है।
- आज की युवा पीढ़ी बेहद सुविधा भोगी और स्वार्थी हो गई है जिसके कारण उनहें वृद्ध माता–पिता का साथ रहना पसन्द नहीं है।
- रिश्तों का अवमूल्यन, चरित्र का नैतिक पतन व भौगवादी संस्कृति के बढ़ जाने के कारण आज बुजुर्गों को यातनाएँ सहनी पढ़ रही है।

- पाश्चात्य सभ्यता की आँधी ने हमारी परम्परागत व्यवस्था को तहस–नहस करके रख दिया है।
- बच्चों पर गृहस्थी की जिम्मेदारियाँ है, घरबार के काम है, अर्थ उपार्जन का बोझ है ऐसे में बच्चे माँ–बाप को समय नहीं दे पाते है।
- आज जो नई पीढ़ी तैयार हो रही है, वह पढ़–लिखकर नौकरियाँ प्राप्त कर, पढ़ी–लिखी बीवी प्राप्त कर अपनी नई दुनिया बसाने की सोच का शिकार है।

सुझाव :–

- बच्चों को अपने माता–पिता की उम्मीदों पर खरा उतरना होगा तथा उनकी बताई राह पर चलना होगा।
- बच्चों को अपने माता–पिता के प्रति अपनी सोच बदलनी होगी तथा उनकी भावनाओं को समझना होगा।
- बहुओं को अपने सास–ससुर को माता–पिता के रूप में देखना चाहिए तथा उन्हें पूरा सम्मान देना चाहिए।
- अनाथ बेटों को माता–पिता की कमी पूरी करने के लिए वृद्धाश्रम से माता–पिता गोद लेने चाहिए।
- अपनी बेटी को अच्छे संस्कार प्रधान करने चाहिए ताकि वह शादी के बाद अपने ससुराल में सबको सम्मान दे सके।
- आज की नई पीढ़ी को बुजुर्ग पीढ़ी के प्रति सहृदय होने के लिए तैयार करना पड़ेगा।
- समाज शास्त्रियों व धार्मिक संस्थाओं को इस विषय पर गम्भीरता से सोचना चाहिए।
- मानवाधिकार आयोग को इस मुद्दे पर कड़े कदम उठाने होंगे।
- हमें अपनी भाग–दौड़ से समय निकाल कर कुछ क्षण उनके साथ बैठकर बिताना चाहिए।
- हमारी सरकारों को भी बुजुर्गों के हित संवर्धन हेतु राष्ट्रीय नीति को विकसित कर सुदृढ़ करना होगा।

3.4.2 निम्न वर्ग के परिवारों की समस्याएँ

गरीबी   बाल–मजदूरी   भीख मांगना

3.4.3.1 गरीबी :–

गरीबी से सम्बन्धित समस्या के प्रमुख लेखक एवं लेखिकाओं के नाम निम्न है –

<u>कथा</u>	<u>काव्य</u>
➢ डॉ. सरला अग्रवाल–वह सुबह–वह शाम	➢ प्रो. मुहम्मद सुलेमान–फुटपाथ का बालक
➢ मंजु सिंह–मधु	
➢ जयंत–माता देवी	<u>स्थाई स्तंभ</u>
➢ सरला मनूचा–रिक्शावाला	➢ रितेन्द्र अग्रवाल–श्रमिक तेरी जय हो
➢ विनोद कुमारी किरण–भूख	
➢ मधु हातेकर–थोड़ा है थोड़े की जरूरत है	

कथाओं में गरीबी :–

डॉ. सरला अग्रवाल अपनी कथा **'वह सुबह–वह शाम'** में गरीबी पर अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कहती है कि गाँव के कुछ लोग गरीबी के कारण अपने परिवार के साथ शहर में मजदूरी करने के लिए आते है और मजदूरी के अभाव में विवश होकर सड़क पर ही अपना गुजारा करते हैं तो लेखिका उन्हें देखकर उनसे इसका कारण पूछती है कि वह इतनी सर्दी में यहाँ क्यों आये है और कहाँ से आये हैं? तब वह कहते है कि हम यहाँ मजदूरी के लिए आये है। हम गाँव में खेती बाड़ी करते है मगर इस बार बारिश ना होने की वजह से सूखा पड़ गया है। वहाँ पर मजदूरी का काम नहीं मिलता इसलिए यहाँ आना पड़ा। मगर अभी तक यहाँ काम नहीं मिला, पता नहीं कितने लोगों को काम मिल सकेगा और कितने लोग यूं ही बैरंग चिट्ठी जैसे रह जायेंगे यह सब देखकर लेखिका दुःखी होती है और घर आ जाती है। जब शाम को वह एक शादी में जाती है तो वहाँ शादी का विशाल भव्य आयोजन देखती है चारों तरफ सर्दी से बचने के लिए हिटर लगाये गये थे और तरह–तरह के खाने कि व्यवस्था कि गई थी। जब वहाँ गरीब बच्चे बिना किसी से पूछे खाने की आश में घुस आये थे तो लोगों ने उन्हें बड़ी बेरहमी से पीटा। यह देख लेखिका को लगा कि लाखों रुपया पानी की भाँति बहाया जा रहा है... किसके लिए? उन लोगों के लिए जिनके शरीर पर पहले ही पर्याप्त ऊनी वस्त्र लदे थे। यह सोचते–सोचते वह उदास हो गई और घर की ओर वापस चल पड़ी।[144]

मंजु सिंह अपनी कथा **'मधु'** के माध्यम से यह बताती है कि जब किसी घटना के कारण एक उच्च परिवार की आर्थिक स्थिति खराब हो जाती है तो किस प्रकार से उसके सगे–सम्बन्धी उनकी गरीब स्थिति के कारण उनसे रिस्ता तोड़कर दूर हो जाते है और उस परिवार को आर्थिक रूप से कोई सहारा नहीं देते है। अपनी कथा में वह इस समस्या पर प्रकाश डालते हुए बताती है कि जब घनश्याम बाबू की फैक्ट्री में आग लग जाती है तो वह बरबाद हो जाता है और उसकी आर्थिक स्थिति खराब हो जाती

है। जिसे देख उसकी बेटी मधु के ससुराल वाले उसकी शादी तोड़ देते है। मजबुरी में उन्हें अपनी बेटी मधु की शादी एक गरीब परिवार में करनी पड़ती है जहाँ गरीबी के कारण मधु से कोई सहेली बात नहीं करती। जब मधु के दो बच्चे हो जाते है तो उसका भाई जो अमेरिका में रहता है उससे मिलने उसके घर आता है तो उसकी गरीबी देखकर बिना चाय–पानी पिये बाहर से ही लोट जाता है। तब मधु सोचती है कि ''**क्या गरीबी इतनी बुरी चीज है? जो अपने भी पहचानने से इन्कार कर दे। क्या अमीरी और गरीबी के बीच की दूरी दिन पर दिन बढ़ती जाएगी? कौन तोड़ेगा यह दीवार। कितना बड़ा इन्सान क्यों न हो यदि वह गरीबी की चादर में लिपटा हुआ हो तो लोग उस पर थूकते है कोई उसकी कदर नहीं करता इज्जत नहीं करता। यदि एक बुरा इन्सान अमीर हो तो लोग उसकी पूजा करते है क्यों? आखिर क्यों?।**'' जब उसके पति का एक्सिडेन्ट हो जाता है तो इलाज के लिए पैसे ना होने के कारण डॉक्टर मधु को अपना शरीर गिरवी रखने के लिए कहता है और बदले में विशाल का इलाज करने की बात करता है। विशाल ऐसा नहीं चाहता था इस कारण उसने अपने प्राण त्याग दिये। अब मधु अकेली रह गई अतः वह गरीबी से तंग आकर अपने बच्चों के साथ खाने में जहर मिलाकर खा लेती है और हमेशा के लिए सो जाती है। अगले दिन अखबार में मोटे–मोटे अक्षरों में छपा आत है ''**भूख से तंग आकर बच्चों सहित माँ ने आत्महत्या की।**[145]

अपनी कथा '**माता देवी**' के माध्यम से **जयंत** बताते है कि आज देश में कई ऐसे परिवार है, कई ऐसे गाँव है जहाँ गरीबी के कारण कोई जाना पसन्द नहीं करता और ना ही उनके लिए कोई सुविधा उपलब्ध करवाते है जिसकी वजह से वह गरीबी में ही अपना जीवन यापन करते है। इस समस्या पर प्रकाश डालते हुए वह कहते है कि सरकार के आदेश पर जब रामनाथ बाबू गाँव में जनगणना करने जाते है तो उन्हें पता चलता है कि गाँव के बाहर चार–पाँच घर है मगर वहाँ कोई नहीं जाता क्योंकि वह एक गरीबों की बस्ती है और ना ही उन पर कोई ध्यान देता है। जब रामनाथ बाबू वहाँ जाते है तो देखते है कि ज्यादातर पुरुष और स्त्रियाँ काम पर गये हुए थे और जो बचे थे वह बाहर खेल रहे थे मगर लड़कियाँ घर के अन्दर थी पूछने पर उनकों पता चलता है कि ''**उनके पास पहनने के लिए एक ही जोड़ी कपड़ा है जिसे पहनकर माँ काम पर जाती है और बेटी कपड़ों के अभाव में माँ के वापस आने तक घर के अन्दर ही रहती है।**'' रामनाथ बाबू दुःखी हो अपना शर्ट खोलकर उस गरीब बेटी के लिए दे देते है और अपनी जनगणना समाप्त कर अपने घर आ जाते है।[146]

सरला मनूचा अपनी कथा '**रिक्शावाला**' में एक रिक्शे वाले व्यक्ति के माध्यम से बताती है कि किस प्रकार एक गरीब रिक्शा वाला अपना व अपने परिवार का खर्चा चलाने के लिए मजदूरी करके रिक्शा चलाता है और बदले में उसे कितनी यातनाएँ सहनी पड़ती है। वह अलगू रिक्शा वाले के माध्यम से बताती है कि अलगू एक गरीब रिक्शा वाला है और उसने किराये पर एक रिक्शा ले रखा है वह रिक्शे से ही अपनी

बीमार माँ और घर का खर्च चला रहा था तथा 15 रुपये रिक्शे का किराया भी दे रहा था। अधिक काम करने से उसकी तबियत बिगड़ती जा रही थी डॉक्टर ने भी उसे ज्यादा मेहनत न करने की सलाह दी थी मगर वह जानता था कि वह रिक्शा चलायेगा तब ही उसका घर चलेगा। इसलिए हिम्मत करके वह रिक्शा चला रहा था मगर जब एक दिन दोपहर की तेज धूप में वह रिक्शा चला रहा था तो बीमारी कि वजह से उसका साँस फूलने लगा मगर फिर भी वह रिक्शा अपनी पूरी ताकत के साथ खींच रहा था। खाँसते–खाँसते उसका चेहरा लाल की जगह पीला पड़ गया और उसे एक उल्टी हुई शायद मुँह से खून निकला था वह असहाय होकर गिर पडा। तब वह अस्पताल में पड़ा–पड़ा सोच रहा था कैसे पालन होगा परिवार का? परिवार की तस्वीर उसके आगे खड़ी थी मूक होकर।[147]

विनोद कुमारी 'किरन' अपनी कथा **'भूख'** के माध्यम से एक गरीब माता–पिता की दशा का वर्णन करते हुए बताती है कि वह किस प्रकार गरीबी व भूख से तंग आकर शहर में आते है और खाने की आशा में अपने बच्चों को किसी अन्जान के घर के बाहर छोड़ देते है। इसी पर वह कहती है कि जब चमनलाल को पता चला कि उसके घर के बाहर कोई दो बच्चे छोड़ गया तो वह पुलिस को फोन कर इसकी सूचना देता है। पुलिस वालों के पूछने पर बच्चे बताते है कि **"उन्हें यहाँ आए हुए चार दिन हो गये है वह एक रात स्टेशन पर सोए, एक रात दूकान के बरामदे में फिर सड़क पर और आज उनके अम्माँ बाबूजी उन्हें यहाँ छोड़कर खाना लेने गये है।"** वह बच्चे पुलिस वालों के साथ नहीं जाते क्योंकि उनको उनसे डर लगता है। मगर तभी उनके अम्माँ–बाबूजी वहाँ आ जाते है और पुलिस के पूछने पर बताते है कि **"साहब हम सादड़ी गाँव के है। तीन बरस हो गए अकाल की मार झेलते–झेलते खेती बाड़ी सूख गई। बनिया से उधार लिया, चुका नहीं पाए वह हमारे ढोर डंगर खोल कर ले गया अनाज के लाले पड़ गए। भूखे मरने की नौबत आ गई। इसलिए हमने सोचा कि शहर चल कर कोई काम कर लेंगे पर यहाँ भी काम नहीं मिल रहा और भीख मांगने के लिए हम हाथ फैलाना नहीं चाहते।"** सुबह से बिना काम के कारण वह भूखे थे इसलिए उन्होंने अपने बच्चों को घर के बाहर छोड़ा कि सायद कोई तरस खा कर इनको खाना दे देगा। यह सब सुन भीड़ में सन्नाटा छा गया। अन्त में चमनलाल उन पर दया करके उन्हें अपने घर में चौकीदार और पत्नी को घर का काम करने के लिए रख लेता है तथा उनको रहने के लिए अलग कमरा भी दे देता है।[148]

अपनी कथा **थोड़ा है थोड़े की जरूरत है** में **मधु हातेकर** बताती है कि एक शिक्षित युवक बेरोजगारी के कारण गरीबी से तंग आकर मजबूरी में किस प्रकार फुटपात पर सोने के लिए व मजदूरी करने के लिए मजबूर हो जाता है। वह इस पर अपनी कथा में बताती है कि लेखक व उसका मित्र ऑफिस जाते समय रोज एक हाथ गाड़ी वाले युवक को देखते है जो रोज सुबह–सुबह इड़ली, सांबर, वड़ा और ढौसा बेचता

साथ में चाय–काफी भी। उसकी पत्नी इस काम में उसकी मदद करती थी। लेखक भी कभी–कभी उसके पास कुछ खाते थे। एक दिन रात को घर लोटते वक्त लेखक ने देखा कि वह व्यक्ति फुटपाथ पर सोया हुआ है। दूसरे दिन लेखक ने उस व्यक्ति से इसका कारण पूछा तो उस व्यक्ति ने बताया कि **''हमारा घर बेंगलूर से बहुत दूर एक गाँव में है, गाँव में कोई काम–धन्धा नहीं था तो यहाँ आना पढ़ा। मैं स्नातक पास हूँ पर मेरे पास एक्सपीरियन्स और पैसे नहीं है इसलिए मुझे यहाँ पर नौकरी नहीं मिल पाई। मजबूरन मुझे इस थड़ी में काम करना पड़ा।''** अब यह गाड़ी ही उनका घर है, उसकी पत्नी अन्दर सोती है और वह बाहर फुटपात पर सोता है। अन्त में लेखक पूछता है कि क्या तुम इसमें खुश हो? तो वह कहता है **''हाँ बहुत खुश है साब आदमी को जीने के लिए, खाने–पीने, रहने और कपड़ा पहनने के सिवा और क्या चाहिए।''**[149]

काव्य में गरीबी :–

प्रो. मुहम्मद सुलेमान अपने काव्य **'फुटपाथ का बालक'** के माध्यम से कह रहे है कि आज स्वाधीनता, स्वतंत्रता और समानता का ऐसा छलावा है कि कई दिन बीत जाने पर भी इंसान बेआसरा पड़ा है। एक भयभीत–सी, शांत–सी नजरों के साथ एक बालक खड़ा है। उसी के पास पेड़ की आड़ में, उसकी बेसहारा बूढ़ी दादी का एक गंदा–सा, मैला–सा बिस्तर पड़ा है। उन्हीं के आगे खाली प्यालों में कुछ झूठन के चावल, कुछ मांगा हुआ राशन तथा सूखी रोटी का एक छोटा–टुकड़ा पड़ा है। उन्हें येसी हालत में सब आँखें खोलकर देखते है और आगे बढ़े चले जाते है। मैं पूछता हूँ क्या यह भारत का स्वराज का नागरिक नहीं है? फिर वह कहते है कि–

आओ भारत के नौजवानों
इस बालक के बाल सुधारें
इस बुढ़िया की आँखों में आस जगाएं
कितना बिखरा हमारा कर्त्तव्य पड़ा है
वह जो सड़क के किनारे फुटपाथ पर एक बालक खड़ा है।[150]

स्थाई स्तंभ में गरीबी :–

रितेन्द्र अग्रवाल स्थाई स्तंभ में अभिव्यक्त अपने लेख **'श्रमिक तेरी जय'** के माध्यम से कह रहे है कि 1 मई को मजदूर दिवस मनाया जाता है एक दिन व्यवसायी, नेता, मजदूर नेता मजदूर की प्रशंसा व सम्मान में भाषण के साथ–साथ तारीफ के पुलन्दे बाँधता है। लेकिन अगले ही पल वह झूठा भाषण, दिखावा सामने आने लगता है। किसी गरीब मजदूर को मेहनताना देकर उसके पसीने की कीमत नहीं चुकायी जा सकती। उदहरणतः रिक्शे वाले को ले लों 1–2 रुपये के लिए उससे झिक–झिक कर लेते है वह गिड़गिड़ाता रहता है और हम कम पैसे देकर निकल जाते है। क्योंकि वह गरीब है, मजदूर है, विवश है। इसके विपरीत किसी टैक्सी वाले से ऐसा व्यवहार नहीं

करते क्योंकि एक तो वह सामर्थ्यवान है, साथ ही हमारी इज्जत आड़े आ जाती है। किसी साधारण ढ़ाबे की जरा सी कमी पर आसमान उठा लेते है और बेचारा गरीब ढ़ाबे वाला विवश हो हमारी बात मान लेता है। लेकिन कभी कोई पंच सितारा होटल में शिकायत दर्ज नहीं करता। क्योंकि वहाँ इज्जत स्टेटस का प्रश्न है। इससे स्पष्ट है कि चीखने–चिल्लाने के रूप में सामने आता है गरीब मजदूर। आज हर शख्स अपने से कमजोर का शोषण करने में लगा है। चाहे श्रमिक, महिला हो या पुरुष। सम्पन्न मालिक लोग अत्याचार करने, परेशान करने से बाज नहीं आते। देश को आजाद हुए 70 वर्ष के करीब हो गये, लेकिन श्रमिक का स्तर खान–पान वैसा ही है। साथ ही हमरी सोच भी वैसी ही बनी हुई है।[151]

कारण :–

- भारत में गरीबी का मुख्य कारण लगातार बढ़ती जनसंख्या दर है
- गाँवों में बारिश ना होने के कारण वहाँ पर सूखा पड़ जाता है और मजबुरन उन्हें मजदूरी के लिए शहरों में आकर भटकना पड़ता है।
- किसी दुर्घटना के कारण एक व्यक्ति का सब कुछ समाप्त हो जाता है और वह गरीबी रेखा में जीवन यापन करने को बाध्य हो जाता है।
- परिवार के मुखिया द्वारा शराब और गैर औरतों पर अधिक खर्चा करने से परिवार में गरीबी बढ़ती है।
- भ्रष्टाचार के कारण अमीर अधिक अमीर हो रहे है और गरीब अधिक गरीब होते जा रहे है।
- उच्च वर्ग के लोगों की निम्न वर्ग के लोगों के प्रति दूषित मानसिक सोच के कारण यह अमीरी–गरीबी की खाई बढ़ती जा रही है।
- अशिक्षा के कारण भी बेरोजगारी एवं गरीबी बढ़ रही है।

सुझाव :–

- लोगों को शादी में लाखों रुपया पानी की भॉती न बहाकर उन पैसों से गरीबों की मदद करनी चाहिए।
- देश के लोगों को बढ़ती जनसंख्या पर गम्भीरता से विचार करना चाहिए व इसे कम करने के उपाए खोजने चाहिए जिससे देश में गरीबी को कम किया जा सके।
- उच्च वर्ग के लोगों को निम्न वर्ग के लोगों के प्रति अपनी सोच, अपना नजरिया बदलना चाहिए और उनको सम्मान देना चाहिए ताकि वह अपनी गरीबी से लड़ सके।
- रिश्तेदारों, सगे–सम्बन्धियों को अपने गरीब रिश्तेदार की उसकी गरीबी से निकलने में सहायता करनी चाहिए।

- सरकार को भ्रष्टाचार मिटाने के लिए ठोस कदम उठाने चाहिए जिससे देश में गरीबी पर नियन्त्रण पाया जा सके।
- भारत सरकार ने गरीबी को मिटाने के लिए कई राहत कार्यक्रम एवं योजनाएँ चला रखी है बस आवश्यकता है उन्हें सुचारु रूप से क्रियान्वयन कर आम लोगों तक पहुँचाया जाऐ।

3.4.3.2 बाल–मजदूरी :–

बाल–मजदूरी से सम्बन्धित समस्या के प्रमुख लेखक एवं लेखिकाओं के नाम निम्न है –

लेख	कथा
➢ डॉ. रेणूका नैय्यर–नींव में काम आ गये बच्चे ➢ डॉ. शीला कौशिक–बाल श्रम ➢ डॉ. अमित शुक्ल–बाल श्रम की उभरती चुनौतियाँ एवं समाधान के उपाय ➢ दिलीप कुमार गुप्ता–बालश्रम एवं कानून ➢ आकांक्षा यादव–खो रहा है बचपन	➢ डॉ. आशा मेहता–ये कैसी मजबूरी ➢ शिवचन्द जैन–चंदन **स्थाई स्तंभ** ➢ मोनिका चौहान–बचपन बचाओं ➢ कमल कपूर–आओ खोज कर लायें कोई नया सूरज

कथाओं में बाल–मजदूरी :–

डॉ. आशा मेहता अपनी कथा **'ये कैसी मजबूरी'** में बताती है कि जब छोटे बच्चों के सिर से माता–पिता का सहारा हट जाता है तो वे किस प्रकार बजबूर होकर होटलों में काम करने लगते है और अपने सेठ का अत्याचार सहन करते है। इसी पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लेखिका कहती है कि जब लेखिका उसका पति व बेटा घूमन के लिए शहर जाते है तो रास्ते में एक ढ़ाबे पर खाना खाने के लिए रूकते है। उन्हें देखकर होटल का मालिक जोर से चिल्लाता है देबू ओ देबू कहाँ मर गया तू? जरा जल्दी से टेबल चमका पानी पिला और साब से पूछकर नास्ता लगा। वह लड़का दस–ग्यारह साल का था तथा मैले–कुचैले कपड़े पहने, बाल बिखरे हुए, डरी–सहमी आँखें, उदास चेहरा, हाथ में पोंछा लिए जल्दी–जल्दी काम कर रहा था। खाना खाकर लेखिका ने देबू से पूछा कि तुम्हारे माता–पिता क्या करते है? तो उसने बताया कि **''उसके माता–पिता बस एक्सीडेंट में मर गए और उसके मामा उसे दुकान पर छोड़ गए और बोला कि अब यही मेरा घर है।''** फिर लेखिका ने उससे पूछा कि क्या तुम पढ़ना चाहते हो? तो देबू ने कहा–हाँ चाहता हूँ, पर मुझे पढ़ाएगा कौन? उसकी इच्छा देखकर लेखिका ने होटल वाले से कहा कि भैया ये बच्चा आगे पढ़ना चाहता है आप इसे स्कूल जरूर भेजना। आश्चर्य और गुस्से से आँखें चौडी करके वह बोला बहनजी यदि मैं इसे स्कूल भेज दूंगा तो मेरे धंधे का क्या होगा? लेखिका मन मारकर बाहर आ

जाती है और सोचती है कि एक ओर तो हम मानते हैं कि बच्चे भगवान का रूप होते है और दूसरी ओर उन पर इतना अत्याचार क्यों?, क्या हमारे देश में बच्चों का बचपन यूँ ही बिलखता रहेगा? क्या बच्चों के लिए बनाये गए कानून दिखावे के लिए ही है? इन बच्चों की ये कैसी मजबूरी है जिसका लाभ ये स्वार्थी लोग उठा रहे है? वे बच्चों के बचपन को काम की चक्की में पीस–पीस कर अपनी तिजोरियां भरते जा रहे है।[152]

शिव चन्द जैन अपनी कथा **'चंदन'** के माध्यम से कह रहे है कि चंदन बिहार के दरभंगा जिले का एक आम हिन्दुस्तानी गरीब खेतीहार परिवार का बच्चा है। आम बिहारी बच्चों के माँ बापों की तरह उसे भी किसी बिहारी ने जो पहले से ही बिहार छोड़कर अन्य प्रान्त में रोजी रोटी कमा रहा था द्वारा घरेलू कार्य के लिए लाया गया और काम में लगा दिया गया। आज इस कच्ची उम्र में अपने घर और माँ–बाप से दूर दूसरों के घरों में काम कर रहा है। अपने नन्हें हाथों से स्वयं के लिए रोटी का जुगाड कर रहा है और माता–पिता की ना समझी से वो भाई–बहिनों की रोटी की व्यवस्था भी कर रहा है। पड़ोस की भाभी जी जब जरा सी गलती पर चंदन को डांटती फटकती है और टीवी देखने पर पाबन्दी लगाने की धमकी देती है तो मैं उसकी सूनी आँखें देखकर कप–कंपा जाता हूँ। मुझे लगता है कि इन सब चीजों का मैं ही कसूरवार हूँ। शायद हमारे देश में **'बाल श्रमिक विरोधी'** कानून है। पर मुझे इसकी क्रियान्विति का नमूना कहीं नजर नहीं आता। वरना हिन्दुस्तान की चाय की दुकानों, हलवाइयों की दुकानों पर तथा उच्च तथा मध्ययम वर्ग के परिवारों में ये बच्चे **'बाल श्रमिक विरोधी'** कानून का मजाक उड़ाते नजर नहीं आते। पर कानून भी क्या करे कानून का क्रियान्वन करने वाले नौकरशाह जिन के नाम के साथ ही शाह जुड गया है, वो ही शाही अंदाज में इस काम को क्रियान्वित करते है। कहने का तात्पर्य वे स्वंय चंदन जैसे बच्चों से काम करवाते है।[153]

लेखों में बाल–मजदूरी :–

डॉ. रेणुका नैयर अपने लेख **'नीव में काम आ गये बच्चे'** में बालश्रम पर शोध कर कहती है कि हाल ही में **'अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन'** द्वारा जारी एक रिपोर्ट देखकर सिर शर्म से झुक जाता है। इस रिपोर्ट में बताया गया है कि **विश्व में सबसे अधिक बाल श्रमिक भारत में है।** ऐसे बच्चों का अनुमान एक करोड़ दस लाख से अधिक है, जबकि 20 लाख बच्चे ऐसे उद्योगों में काम करते हैं जहाँ से बचपन से सीधा बुढ़ापे में पहुँच जाते हैं। स्वयं सरकार मानती है कि 1960 में निःशुल्क व अनिवार्य प्राइमरी शिक्षा का संवैधानिक लक्ष्य रखा गया था लेकिन आज पांच से 14 साल की आयु वाले एक करोड़ से अधिक बच्चे स्कूल नहीं जा रहे। भारत में 53 प्रतिशत बच्चे पौष्टिक भोजन से वंचित रहते हैं, फिर भी श्रम की भट्ठी में उन्हें झोंक दिया जाता है। इन बच्चों के सुनहरे भविष्य के लिए सरकार ने 1974 में बाल कल्याण के लिए **'राष्ट्रीय बाल नीति'** की घोषणा की। सन् 1990 में विश्व बाल सम्मेलन के तय लक्ष्यों का समर्थन किया। 1992 में बाल अधिकार कन्वेंशन की पुष्टि की। समेकित बाल विकास सेवाओं के अन्तर्गत उन्हें

पौष्टिक आहार, शिक्षा आदि देने की व्यवस्था की लेकिन समय–समय पर हुए अध्ययनों और सर्वेक्षणों ने इन उपलब्धियों को कागजी सिद्ध कर इनके खोखलेपन की पोल खोल दी। 1996 में यूनिसेफ की रिपोर्ट में बताया गया था कि लगभग दो करोड़ बच्चे ऐसे उद्योगों में कार्य कर रहे हैं जो उनके स्वास्थ्य और विकास के लिए खतरा साबित हो रहे हैं। इसी सन्दर्भ में 1906 में ही सुप्रीम कोर्ट ने भी यह फैसला दिया था कि खतरनाक उद्योगों में बाल मजदूरी पर पूरी तरह प्रतिबन्ध लगाया जाये और 14 वर्ष की आयु तक के बच्चों को निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा देने को कहा था। मगर अफसोस ऐसा कुछ नहीं हुआ ऐसा नहीं है कि बाल बजदूरी समाप्त करने के लिए हमारे देश में कानूनों की कमी है लेकिन समस्या उसे लागू करने की है।[154]

अपने लेख **'बाल–श्रम'** के माध्यम से **डॉ. शीला कौशिक** कहती है कि बाल के साथ श्रम का जुड़ना हास्यप्रद एवं चौकाने वाला है। पर यह सच है कि सदियों से चली आ रही शोषण की परम्परा व आधुनिक औद्योगिक सभ्यता ने इन बच्चे–बच्चियों का जमकर शोषण किया और इन्हें बाल श्रमिक बनने पर मजबूर किया है। अनेको उद्योगों, ईट भट्ठों, खादानों, घरों, होटलों, ढाबों व गली–कूंचों में अनाधिकृत रूप से चल रही असंख्य फैक्ट्रियों में यह बच्चे अपना जीवन होम कर रहे है। शिशुओं की देखभाल में लगी बच्चियाँ जिनकी खुद गुड़ियों के साथ खेलने की उम्र होती है उनके कन्धों पर महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी ड़ाल दी जाती है। छोटे–छोटे बच्चे गाय–भेस चराते है। खेतों में व घरेलु सहायक के रूप में दिन–रात काम करते है। समय–समय पर प्रकाशित रिपोर्ट व आंकड़े बताते हैं कि सबसे अधिक बाल–श्रमिक भारत में हैं। कुछ जागरूक लोगों व स्वयंसेवी संस्थाओं का ध्यान जब इन मासूमों की तरफ गया तब कुछ आवाजें उठी, जुलूस निकले तब जाकर सरकार कुम्भकर्णी नींद से जागी और **सन् 1986 में इस समस्या के समाधान हेतु पहली बार बाल–श्रम निरोधक कानून बना**। वर्ष 2006 में इस कानून में अनेक खामियों के रहते संशोधन किया गया। इन कानूनों के अनुसार दोषी पाए जाने पर तीन माह से एक साल तक की कैद और मात्र 10000 रुपये से 20000 रुपये तक का आर्थिक दण्ड का प्रावधान रखा गया है। जहाँ तक इस कानून के क्रियान्वयन का सवाल है तो सारे के सारे दावे धरे के धरे रह गए हैं। इसके अतिरिक्त हमारे संविधान में 6 वर्ष से 14 वर्ष तक के बच्चों का मुफ्त व अनिवार्य शिक्षा का कानून 1 अप्रैल 2010 से लागू हो गया है। जिससे करीब एक करोड़ बच्चे सीधे लाभान्वित होंगे, जो कि स्कूल जाने से वंचित है। परन्तु क्या यह शिक्षा इन बाल श्रमिकों का पेट भर सकेगी? कानून तो बन गए परन्तु अकेले कानून बनने से क्या बाल श्रम बन्द हो जाएगा? क्या हम सब अपने आस–पड़ोस में घरेलु नौकरों के रूप में ऐसे बच्चों को प्रतिदिन नहीं देखते है? क्या हम ढ़ाबे पर खाना परोसते, बर्तन धोते, रिक्शा चलाते, फेरी लगाकर सामान बेचते बाल श्रमिकों को नहीं देखते हैं? परन्तु खामोश हैं, अपने कर्त्तव्य को भूल जाते हैं। कौन इनके पचड़े में पड़े, बस यही भावना हावी रहती है। ऐसे में पहल कौन करेगा? अतः स्वयंसेवी संगठन, प्रशासन व हम सबकी यह

सामूहिक जिम्मेदारी है कि हम सच्ची भावना से आगे बढ़ें और कुछ **निदा फाजली** की गजल की इन पंक्तियों जैसा जज़्बा व जिगरा रख लें तो बात बन ही जाएगी।

घर से मस्जिद है बहुत दूर, चलो यू कर लें,
किसी रोते हुए बच्चे को हंसाया जाए।[155]

डॉ. अमित शुक्ल अपने लेख **'बाल श्रम की उभरती चुनौतियाँ एवं समाधान के उपाय'** के माध्यम से कहते है कि किसी भी राष्ट्र के विकास एवं प्रगति में बच्चों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है, क्योंकि जिस देश में बच्चों का कोई भविष्य नहीं होता उस देश का अपना भी कोई भविष्य नहीं होता। आज सारा विश्व बाल श्रम की समस्या से जूझ रहा है जहाँ तक भारत का प्रश्न है, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद निरन्तर किए जा रहे प्रयासों के बावजूद यह समस्या एक चुनौती बनी हुई है। विचारणीय प्रश्न यह भी है कि बाल श्रमिकों को कार्य स्थलों पर जिन परिस्थितियों में कार्य करना पड़ता है वे भयावह व चिंताजनक है। **श्रम मंत्रालय के एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत के हर तीसरे परिवार में एक बाल श्रमिक है तथा 5–15 वर्ष की आयु का प्रत्येक चौथा बालक बजदूर है।** कई स्थानों पर स्थिति इतनी गंभीर है कि कुछ कारखानों व उद्योगों पर 90 प्रतिशत तथा शहरों की चमक–दमक भरी जिन्दगी से आकर्षित होकर ग्रामीण क्षेत्रों के बाल मजदूरों का प्रवास शहरी क्षेत्रों की ओर निरन्तर हो रहा है। अतः बाल श्रम की उभरती समस्या के समाधान हेतु कुछ उपाय किए जाने आवश्यक है सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि बाल श्रमिकों को जन्म देने वाले मुख्य कारणों पर प्रहार किया जाए। बाल श्रम के कई कारण है लेकिन मुख्य कारण गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा है। अतः पारिवारिक व्यवसाय को बढ़ावा देने के लिए बाल श्रमिकों के परिवारों को प्रशिक्षण एवं स्थानीय ग्रामीण बैंको से ऋण दिलाकर उनकी स्थिति को मजबूत बनाया जाये। साथ ही बाल श्रमिकों के शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया जाये उन्हें शैक्षिक संस्थानों में रखा जाये और उसके लिए विशेष निवेश किया जाये तथा आवश्यकता पड़ने पर विद्यालयों की स्थापना की जाये। बाल श्रमिकों के पुनर्वास हेतु उन्हें शिक्षा, प्रशिक्षण, स्वरोजगार हेतु ऋण अथवा अनुदान आदि उपलब्ध कराया जाना चाहिए जिससे बच्चे आत्मनिर्भर बन सके और इनसे श्रम कार्य करवाने के लिए विवश न हों।[156]

अपने लेख **'बालश्रम एवं कानून'** में **दिलीप कुमार गुप्ता** बालश्रम पर सर्वे कर कहते है कि भारत में बालश्रम की समस्या काफी गंभीर है। यह तथ्य हाल में जारी भारत के बाल–शोषण 2007 शीर्षक रिपोर्ट से सामने आई है। केन्द्रीय महिला एवं बाल–विकास मंत्रालय की पहल पर यूनीसेफ (सेव दचिल्ड्रन) और गैर सरकारी संगठन (प्रयास) के सहयोग से तैयार इस रिपोर्ट के अनुसार 5 से 12 वर्ष की उम्र के 52.2 प्रतिशत बाल मजदूरों को सप्ताह में सातों दिन काम करना पड़ता है। घरेलु कामगारों के तौर पर 30 प्रतिशत बच्चों को दिन में बिल्कुल आराम नहीं मिलता है जबकि 41 प्रतिशत बच्चों को मात्र दो घंटे फुर्सत मिलती है साथ ही करीब 58.79 प्रतिशत कामगार

बच्चे शारीरिक प्रताड़ना के शिकार हैं। राजस्थान में इन बाल श्रमिकों की दर 84 प्रतिशत, सबसे ज्यादा है। रिपोर्ट के अनुसार 65 प्रतिशत बच्चों को मजदूरी करने के लिए उनके माँ–बाप भी जिम्मेदार है। बालश्रम के उन्मूलन के लिए बालश्रम (प्रतिषेधन एवं नियमन) अधिनियम 1986, प्रशिक्षु अधिनियम 1951, कारखाना अधिनियम 1948 एवं खदान अधिनियम 1952 बने हुए हैं जिसमें बाल–श्रमिकों को नियोजित करने पर प्रतिबंध है। उक्त अधिनियमों के कानूनों एवं नियमों का कड़ाई से पालन कराया जाना (सरकार द्वारा) नितांत आवश्यक है। बालश्रम की समस्या केवल कानून बनाकर दूर नहीं की जा सकती। इसकी जड़े गरीबी में छिपी हुई हैं। जब तक लोगों की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती तब–तक बालश्रम की समस्या समाप्त नहीं हो सकती है।[157]

आकांक्षा यादव अपने लेख **'खो रहा है बचपन'** में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कह रही है कि बालश्रम की बात करें तो भारत में फिलहाल लगभग पांच करोड़ बाल श्रमिक हैं। ऐसे बच्चे कहीं बाल–वैश्यावृत्ति में झोंके गए हैं या खतरनाक उद्योगों या सड़क के किनारे किसी ढ़ाबे में जूठे बर्तन धो रहे होते हैं या धार्मिक स्थलों व चौराहों पर भीख मांगते नजर आते हैं अथवा साहब लोगों के घरों में दासता का जीवन जी रहे होते हैं। अधिकतर स्वयंसेवी संस्थाएँ या पुलिस खतरनाक उद्योगों में कार्य कर रहे बच्चों को मुक्त तो करा लेती हैं पर उसके बाद उनकी जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ लेती हैं। नतीजन, ऐसे बच्चे किसी रोजगार या उचित पुनर्वास के अभाव में पुनः उसी दलदल में या अपराधियों की शरण में जाने को मजबूर होते हैं। सरकार का कर्त्तव्य केवल बधुआ मजदूरों को मुक्त करना ही नहीं वरन् उनके पुनर्वास की उचित व्यवस्था भी करना है। अनुच्छेद 24 चौदह वर्ष से कम उम्र के बालकों के कारखानों या किसी परिसंकटमय नियोजन में लगाने का प्रतिषेध करता है। नीति निदेशक तत्त्वों में अनुच्छेद 39 में स्पष्ट उल्लिखित है कि बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरूपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर उन्हें ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हो। इसी प्रकार बालकों को स्वतंत्र और गरिमामय वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधाएं दी जाये और बालकों की शोषण से तथा नैतिक व आर्थिक परित्याग से रक्षा की जाए। इतने संवैधानिक उपबंधों, नियमों–कानूनों, संधियों और आयोगों के बावजूद यदि बच्चों के अधिकारों का हनन हो रहा है, तो समाज भी अपनी जिम्मेदारी से नहीं बच सकता। कोई भी कानून स्थिति सुधारने का दावा नहीं कर सकता, वह तो मात्र एक राह दिखाता है। जरूरत है कि बच्चों को पूरा पारिवारिक–सामाजिक–नैतिक समर्थन दिया जाये, ताकि वे राष्ट्र की नींव मजबूत बनाने में अपना योगदान कर सकें। अन्त में वह अपनी पंक्तियों में कहती है कि–

ये दौलत भी ले लो, ये शोहरत भी ले लो
भले छीन लो मुझसे मेरी जवानी
मगर मुझको लौटा दो बचपन का सावन
वे कागज की कश्ती वो बारिश का पानी।158

स्थाई स्तंभ में बाल–मजदूरी :–

स्थाई स्तंभ में अभिव्यक्त अपने लेख **'बचपन बचाओं'** में **मोनिका चौहान** का कहना है कि शहर या फिर गाँवों की कितनी ऐसी तंग गलियाँ है जहाँ आज भी बचपन की कलियाँ ठीक से खिल नहीं पाई, न जाने कितने बच्चे कब अपना बचपन पीछे छोड़ चुके हैं, रह गया है मात्र दो वक्त का खाना और अपनी घरेलू जरूरतों की पूर्ति का जुनून। आज चर्चा में, बड़े–बड़े भाषणों में कहा जाता है कि बच्चों के बचपन को संस्कारित करो क्योंकि यही हमारे राष्ट्र के भविष्य हैं, मगर क्या आज हम उसे बचा पा रहे हैं? देश की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा बाल मजदूरी में लगा हुआ है, शोध से पता चला है कि 11 करोड़ बच्चे जो 9 वर्ष से 14 वर्ष की आयु के अन्तर्गत आते हैं वे बाल मजदूरी के जरिए अपने घर वालों का पेट पाल रहे हैं। पीपॅल इंस्टीटीयूट ऑफ रूलर डेवलपमेंट के अनुसार बाल मजदूरी खत्म करने के लिए एक मुहिम छेड़ी हुई हैं, ये शहर गाँवों में अपने कई प्रोजेक्टों की मदद से बालश्रम को खत्म करने में जुटे हुए हैं, कई प्रोजेक्ट बाल मजदूरी को जड़ से हटाने में मदद कर रहे हैं। ये केन्द्र आमतौर पर झुग्गी बस्ती या पिछड़े इलाकों में खोले गए हैं जो लोगों में व बच्चों में जन चेतना ला सके।

किरन बेदी ने जहाँ महिलाओं के उत्थान के लिए काफी काम किया है वहीं आज उनके साथ उनकी बेटी **सायना** मिलकर बाल मजदूरी को बन्द करने के प्रयास में काम कर रही है। किरन बेदी की संस्था **'प्रयास'** एक ऐसी संस्था है जिसने बड़े पैमाने पर बच्चों के विकास में काम किया है, साथ ही झुग्गी बस्तियों में अपने मुफ्त शिक्षा शिविर, नशा मुक्ती केन्द्र, महिलाओं के लिए केन्द्र खोले हुए है।

'बचपन बचाओं' आन्दोलन के मुख्य संस्थापक **सत्यार्थी जी** के अनुसार देश के बाल–मजदूरों की जनसंख्या में 68 प्रतिशत बच्चे ऐसे है जो गाँवों में खेतों में मजदूरी कर रहे हैं और 32 प्रतिशत ऐसे बच्चे है जो शहरों में चाय की दुकानों, ढ़ाबों, घरों में साफ सफाई करना, कॉच के कारखानों में काम करना दुकानों पर काम करना इत्यादि, वे ऐसे सस्ते मजदूर हैं जिसे हर कोई उपयोग में लाना चाहता है। आज जितने भी बाल मजदूर हैं उतने ही व्यस्क लोग बेरोजगार हैं और ये ओर कोई नहीं बल्कि उन्हीं बच्चों के माँ–बाप हैं, जो बाल मजदूरी कर रहे हैं, देश की जनसंख्या का इतना बड़ा हिस्सा यदि बेरोजगार रहेगा तो उस देश के विकास की कल्पना भी करना मुश्किल है।[159]

स्थाई स्तंभ में अतिथि संपादक **कमल कपूर** अपने विचार **'आओ खोज कर लायें कोई नया सूरज'** में अभिव्यक्त करते हुए कह रही है कि आज का बच्चा पहले की तरह सरल और सहज नहीं जी रहा बल्कि समस्याओं से घिरा जटिल बचपन जीने के लिये विवश है। दिनानुदिन बस्तों के बढ़ते बोझ और द्रोपदी के चीर से बढ़ती जायज–नाजायज मांगों जो पूर्ण न होने पर बगावत और हीनता बोध बन कर बच्चों के सुकोमल संसार को

ध्वस्त कर जाती हैं। सच कहा जाये तो यह कथित कहर सर्वाधिक निम्न मध्यमवर्गीय परिवारों के बच्चों पर टूट रहा है या गरीबी–रेखा के पार फटेहाली का जीवन जी रहे बुनियादी जरूरतों तक के लिये तरसते मासूम फरिश्तों पर। निरक्षरता इस वर्ग की सबसे बड़ी समस्या है और इसीसे जन्म होता है बाल–श्रम का। ईट–पत्थर–गारा ढ़ोते, ढ़ाबों–होटलों में बर्तन धोते और स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव ड़ालने वाले कल–कारखानों में अपने नन्हें–कोमल होथों से हाड़ तोड़ काम करते हमारे ये बाल–गोपाल। क्या यही है हमारे देश का उज्ज्वल भविष्य? आगे आइये, सहयोग करिये। जैसे कि हमारी माननीया राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल ने राष्ट्रपति भवन में कार्यरत श्रमिकों के बच्चों के लिये पालनाघर खोलने का फैसला किया है, जिसमें 2 से 10 वर्ष वर्ग के 25–30 बच्चों की विधिवत देखभाल होगी। अमेरिका के लंबे प्रवास के दौरान मैंने देखा कि वहाँ बच्चों को भगवान समझा जाता है और सरकार सहित अन्य तमाम संस्थाएँ उनकी सुख–सुविधा और स्वास्थ्य का ध्यान रखना अपनी अनकही जिम्मेदारी समझते है। काश! भारत में भी यह चलन शुरू हो जाये और हमारे बच्चों के चहरों पर भी गुलाब मुस्कुराएँ। अन्त में वह अपनी पंक्तियों में कहती है कि–

अभी आसमानों से रोशनी का कोई टुकड़ा नहीं उतरा,
नयी कोंपलों पर छाया यहाँ कोहरा घना है,
आओं खोज कर लायें कोई नया सूरज,
बचपन पर अंधेरे का शामियाना तना है। 160

कारण :–

- धंधे के स्वार्थ ने लोगों को इतना निर्मम बना दिया है कि वे बच्चों की मजबूरी का लाभ उठाकर उन्हें काम की चक्की में पीस–पीस कर अपनी तिजोरियां भरते जा रहे है।
- हमारे देश में बाल श्रमिक विरोधी कानून है मगर इसकी क्रियान्विति का नमूना कही नजर नहीं आता अर्थात ठोस स्तर की राज्य स्तरीय व राष्ट्रीय नियमो, कानूनों के अभाव के चलते बाल श्रम की समस्या बनी हुई है।
- अशिक्षा, असाक्षरता और इसके चलते अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता के अभाव की स्थितियों ने भी बाल श्रम को बढ़ावा दिया है।
- आर्थिक मजबूरी के कारण माता–पिता अपने बच्चों को कारखानों में काम करने के लिए अपने साथ ले जाते है क्योंकि वह गरीब है, वह लाचार है, उसके घर के हालात ठीक नहीं है। इसीलिए वह अपने बच्चों को बाल–श्रमिक बनने को बाध्य करते है।
- गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा के कारण बच्चे कम उम्र में बालश्रम करने को मजबूर होते है।

- बच्चों के अभिभावक तात्कालिक लालच में आकर अपने बच्चों को बालश्रम में झोंक देते है।
- मुख्य रूप से सम्पन्न और निर्धन लोगों के बीच बढ़ती खाई भी बालश्रम के लिए जिम्मेदार है।
- प्राकृतिक आपदाओं से उजड़े परिवारों के बच्चे भी बाल श्रमिक बन जाते है।
- कुछ माता–पिता जो ड्रग और शराब के आदि होते है, वे अपनी जरूरतों के लिए अपने बच्चों को बंधुआ मजदूर बना देते है।

सुझाव :–

- देश में बाल श्रमिक विरोधी कानून को दृढ़ता पूर्वक लागू किया जाना चाहिए व बाल श्रम करवाने वाले लोगों के खिलाफ कानूनी कार्यवाही करनी चाहिए।
- बालश्रम के उन्मूलन के लिए बालश्रम (प्रतिषेधन एवं नियमन) अधिनियम 1986, प्रशिक्षु अधिनियम 1951, कारखाना अधिनियम 1948 एवं खदान अधिनियम 1952 बने हुए है। अतः उक्त अधिनियमों के कानूनों एवं नियमों का कड़ाई से पालन कराया जाना (सरकार द्वारा) नितांत आवश्यक है।
- बाल मजदूरी रोकने का सबसे महत्त्वपूर्ण उपाय है बाल मजदूरी के खिलाफ जागरूकता फैलाना, ताकि लोग समझ सके की बाल मजदूरी देश के भविष्य के साथ खिलवाड़ है। उन्हें बताना होगा हक बाल बजदूरी के द्वारा भारत का भविष्य जो इन बच्चों में है वह मानसिक व शारीरिक रूप से कमजोर हो रहा है।
- जब तक लोगों की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती तब–तक बालश्रम की समस्या समाप्त नहीं हो सकती।
- इस समस्या के समाधान हेतु सभी पक्षों अर्थात् मालिकों, ट्रेड यूनियनों, स्वयंसेवी संस्थानों और जागरूक नागरिकों की सहभागिता अपरिहार्य है।
- उन अभिभावकों को जो कि तात्कालिक लालच में आकर अपने बच्चों को बालश्रम में झोंक देते है उनको इस सम्बन्ध में समझदारी का निर्वाह करना पड़ेगा कि बच्चों को शिक्षा रूपी उनके मूलाधिकार से वंचित नहीं किया जाना चाहिए बल्कि उन्हें बाल–श्रम के उन्मूलन के लिए प्रभावी जन जागरण अभियान चलाना होगा।
- एक सार्थक पहल के तहत फैक्ट्रियों के मालिकों, ठेकेदारों, गृह स्वामियों के हृदय परिवर्तन की राष्ट्रव्यापी योजना भी चलाई जाए ताकि वो अपने बच्चों की तरह इन्हें भी अपना बच्चा समझें।
- बाल श्रम के प्रमुख कारणों, गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा का समाधान जब तक न होगा तब तक यह समस्या ज्यों कि त्यों रहेगी।

3.4.3.3 भीख मांगना :–

भीख मांगने से सम्बन्धित समस्या के प्रमुख लेखक एवं लेखिकाओं के नाम निम्न है –

कथा

- अंजु दुआ जैमिनी–दिनेश की वापसी
- मृदुला झा–अन्तिम संस्कार

लेख

- डॉ. रामसिंह यादव–सब पढ़ें सब बढ़ें

कथाओं में भीख मांगना :–

अंजु दुआ जैमिनी अपनी कथा **'दिनेश की वापसी'** में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए बताती है कि परिवार में बच्चों से अपने माता–पिता का साया उठने पर उनके भैया–भाभी उन पर अत्याचार करते है तो वे परेशान होकर घर से भागने का गलत कदम उठा लेते है और शहर में जाने पर भूख के कारण मजबूरी में भीख मांगने पर विवश हो जाते है या किसी गुंडे की पकड़ में आकर गलत काम करने लगते है। इसी समस्या का उदाहरण देते हुए लेखिका कहती है कि गाँव में दिनेश, उसका भाई रमेश व बहन सविता और सुनयना चारों एक ही घर में रहते थे। इनके माता–पिता का देहान्त होने के बाद रमेश की पत्नी इन पर अत्याचार करती व घर का सारा काम करवाती और अगर वह काम ना करते तो उन्हें मारती थी। एक दिन जब दिनेश की भाभी उसकी बहन को मार रही थी तो दिनेश को गुस्सा आ जाता है और वह लाठी से भाभी को मारता है जिससे उसके मुंह से खून आने लगते है। यह देख दिनेश घबराकर घर छोड़कर शहर भाग जाता है। शहर में जाने पर उसे एक गिरोह पकड़ लेता है और उससे जबरदस्ती भीख मंगवाने लगता है। वह जेब काटना सिखाता है। मना करने पर उनका बोस उसे मारता है। मजबूर होकर वह अन्य बच्चों की तरह फुटपाथ पर ही सोता और भीख माँगता। उसे यहाँ भीख माँगना जेब काटना पसन्द नहीं था। वह वापस अपने घर जाना चाहता था लेकिन बॉस की मार के डर से नहीं जा सका। एक दिन बस में जेब काटते वक्त लोगों ने उसे पकड़ लिया और पुलिस स्टेशन ले गये। पुलिस वालों ने उसे बाल सुधार गृह में भेज दिया जहाँ पर वह पढ़ने लगा और खुश रहने लगा। अचानक एक दिन अखबार में वह देखता है कि बॉस की फोटो अखबार में छपी हुई है गिरोह के पकड़े जाने की खबर थी। उसी के अगले पेज पर उसके घर वालों का संदेश था जिसमे लिखा था–''**प्यारे दिनेश! तुम लौट आओ! यहाँ तुम्हें कोई कुछ नहीं कहेगा। हम सब तुम्हें बहुत याद करते है।**'' यह खबर वह अपने प्रबंधक को बताता है। प्रबंधक कुछ पैसे देकर उसे गाँव की ट्रेन में बिठा देते है और वह अपने गाँव पहुँच जाता है। घर पहुँचने पर सब उसे गले लगाते है तथा भाभी माफी मांगती

है। इस प्रकार सब एक साथ खुशी से रहने लगते है और दिनेश व उसके भाई–बहन स्कूल जाने लगते है।[161]

अपनी कथा **'अन्तिम संस्कार'** के माध्यम से **मृदुला झा** बताती है कि आज कई जगह सड़क के दोनों किनारे, कपड़ा बिछाए, भिखारियों की टोली हमें सहज ही देखने को मिल जाती है। जो गरीबी के कारण या घर वालों के अत्याचार के कारण वहाँ भीख मांगने को मजबूर होते है। ऐसी ही स्थिति मंगली की थी जो सड़क पर ठंड में फटी–चिथड़ी साड़ी से जबरन अपनी लाज को ढकने की कोशिश करते हुए भिखारियों की कतार में बैठी दाता–दानी की प्रतीक्षा करती रहती थी। मिसेज झा जब सुबह के समय घूमने निकलती है तो मंगली की बुरी हालत देख कर उन्हें दया आ जाती है और अपने घर जाकर उसके लिए एक साड़ी अपने पति के हाथों भिजवाती है। मिस्टर झा वह साड़ी उस मंगली भिखारिन को दे देते है। मगर जब दूसरे दिन मिसेज झा उस मंगली भिखारिन को देखती है तो वह वही फटी साड़ी पहने रहती है। उन्होंने मंगली से इसका कारण पूछा तो वह कहती है कि–**''मेमसाब, मैं अपना दुखड़ा आपको कैसे सुनाऊँ। जब मैं साड़ी लेकर घर गई तो मेरी बहू ने झपट कर मेरे हाथ से साड़ी छीनते हुए कहा कि अब ऐसी साड़ी पहनने की आपकी उम्र नहीं है। आपको फटी–पुरानी साड़ी पहननी चाहिए ताकि लोग आपकी हालत देखकर ज्यादा भीख दे। इतना ही नहीं भीख में मिला अनाज, रुपये–पैसे सब मुझसे जबरन छीन लेती है और मुझे भूखा ही छोड़ देती है।''** कुछ दिनों बाद जब मिसेज झा घूमने निकली तो उसी स्थान पर भीड़ इक्ट्ठी देखकर वहाँ पहुँचती है। उन्हें यह देखकर बहुत धक्का लगा कि मंगली का बेजान शरीर ऐंठा हुआ जमीन पर पड़ा था। वहाँ खड़े लोग तमाशा देख रहे थे। मिसेज झा मोबाइल से थाना इंचार्ज को फोन कर सारा हाल बताती है और लाश उठाने के लिए गाड़ी बुलाती है। पुलिस की गाड़ी आते ही भीड़ गायब हो जाती है। पुलिस के सिपाही स्टेचर पर लाद कर लाश को अंतिम संस्कार के लिए ले जाते है।[162]

लेखों में भीख मांगना :–

डॉ. रामसिंह यादव अपने लेख **'सब पढ़ें सब बढ़ें'** में उन बच्चों पर प्रकाश डाल रहे है जो किसी गिरहो की पकड़ में आ जाते है और वह लोग उन बच्चों से जबरदस्ती भीख मंगवाते है व उन पर अत्याचार करते है। इसी पर वह अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए बता रहे है कि जब राजेश, श्यामलाल, हीरालाल और लेखक मिष्ठान भंडार पर कुछ खाने जाते है तो वहाँ एक अनजान भिखमंगी औरत शनि महाराज की फोटो लिए पैसे मांगने आ जाती है। जिसकी बाजू आंचल में एक दूध पीता बच्चा लटका रहता है और वह भीख मांगे जा रही थी। बड़ी मुश्किल से उसका पीछा छुड़वाते है तभी उनके पाँवों के पास एक लड़का आ जाता है जिसके दोनों पाँव बेकार थे, वह खड़ा नहीं हो सकता था। वह उनके सामने गिड़गिड़ाने लगा–बाबूजी दो–चार रुपये दे दीजिए, भगवान आपका भला करेगा। वह औरत उस अपाहिज लड़के की कौन थी

मालूम नहीं, लेकिन उसके निर्देशन में वह लड़का रुपयों की माँग प्रत्येक व्यक्ति से कर रहा था। एक व्यक्ति ने उसे पैसे न देकर खाना खिलाना चाहा तो उसने मना कर दिया और पैसे माँगने लगा यह देख लेखक को गुस्सा आ जाता है और वह उसे डांट देता है तब वह खाना खाने के लिए तैयार हो जाता है। खाना खा कर वह फिर से रुपये मांगने लगता है। एक दिन वह लड़का एक दुकान वाले से कुछ खाने को माँग रहा था मगर उसने उसे कुछ नहीं दिया। तभी एक व्यक्ति आता है और उसे लात मारकर उसके सारे रुपये इकठ्ठा कर ले जाता है। वह लड़का रोता रह जाता है। लेखक ने यह देख उससे पूछा कि वह आदमी तुमसे पैसे क्यों छीनकर ले गया? तब लड़के ने बताया–''**वह मंगूदादा है और उसी के लिए उन्हें भीख माँगनी पड़ती है। वह उस जैसे बहुत से लड़के–लड़कियों से भीख मँगवाता है और जो उसे पैसा नहीं देता वह उसे बहुत मारता है, उसी ने मार–मार कर उसके दोनों पैर तोड़ दिये थे। वह किसी की आँखें फोड़ देता है तो किसी का हाथ तोड़ देता है ताकि लोग उन पर दया करके ज्यादा भीख दे।**'' यह सुन लेखक ने पूछा कि तुम पुलिस के पास क्यों नहीं जाते तो उसने कहा कि पुलिस उनसे मिली हुई है और वह पुलिस वालों को भीख माँगने का हफ्ता देता है। वह पुलिस वाले तो पैसो के लिए कुछ भी कर सकते है। यह सुन लेखक ने लड़के की मदद करने को कहा पर वह अपने सेठ के डर से मना कर देता है। तब लेखक ने उसे उस मंगूदादा से बचाने का आश्वासन दिया और उसे काम करने के लिए राजी किया वह राजी हो जाता है। अब वह चौराहे पर अखबार बेचता है। उसकी देखा–देखी में अन्य बाल भिखारी भी अब कोई प्रेस में, कोई अखबार बाँटने में और कोई अन्य कार्य में जुट गये है और सभी स्वावलंबी जीवन गुजारने लगे है।[163]

कारण :–

- गाँवों से जो बच्चे शहर आते है उन्हें गिरोह वाले पकड़ कर जबरदस्ती भीख माँगने पर मजबूर करते है।
- बेरोजगारी व भूख के कारण मजबूर होकर लोगों को भीख मांगने के लिए विवश होना पड़ता है।
- लालच के कारण बेटे–बहू अपने माता–पिता से भीख मंगवाते है।
- कुछ गुंडे–बदमाश लोग अपने लाभ के लिए बच्चों को अगवा कर उन्हें अपाहिज कर देते है ताकि उन्हें उन बच्चों से ज्यादा भीख प्राप्त हो सके।
- पुलिस की लापरवाही व लालच के कारण आज बहुत से बच्चे सड़को पर भीख माँग रहे है।

सुझाव :–

- पुलिस को भीख माँगने व उनसे भीख मंगवाने वाले लोगों के खिलाफ सख्त कदम उठाने चाहिए और इस पर पाबन्दी लगानी चाहिए।

- भारत के लोगों को उन भिखारियों के दर्द को समझना चाहिए और उनके कारणों का पता कर उनको दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।
- सरकार को चाहिए कि वह फुटपाथ पर भीख माँगने वाले बच्चों को पकड़ कर उन्हें बाल सुधार गृह में डाले ताकि वह पढ़–लिख कर एक अच्छा जीवन जी सके।
- भिक्षावृति पर एक ऐसा कानून बनाने की जरूरत है जो समाज के संवेदनशील वर्ग के पुनर्वास और सुधार पर जोर डालता हो, न कि इसे गैर कानूनी मानता हो।
- भारत सरकार द्वारा लागू किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल एवं संरक्षण) अधिनियम में संशोदन कर और अधिक सुदृढ़ करने की आवश्यकता है ताकि बाल भिखारियों को सहायता प्राप्त हो सके।

3.4.4 युवाओं से सम्बन्धित समस्याएँ

पथ–भ्रष्ट होते युवा	रुचि के विपरीत शिक्षा ग्रहण करने से मानसिक तनाव	मद्यपान

3.4.4.1 पथ–भ्रष्ट होते युवाः–

पथ–भ्रष्ट होते युवाओं से सम्बन्धित समस्या के प्रमुख लेखक एवं लेखिकाओं के नाम निम्न है –

<u>लेख</u>	<u>स्थाई स्तंभ</u>
➤ डॉ. राम बहादुर 'व्यथित'–क्या अभिमन्यु पथ से भटक रहा है ➤ डॉ. लल्लन ठाकुर–देश के युवावर्गःअपेक्षाएं एवं उपेक्षाएं ➤ डॉ. रेणु सिन्हा–युवा वर्गःदशा एवं दिशा ➤ डॉ. शकुन्तला तंवर–एक आह्वान युवाओं से ➤ डॉ. मेजर शक्तिराज–आज का युवक किधर जा रहा है ➤ प्रो. शामलाल कौशल–युवा वर्ग में भटकाव ➤ ललित नारायण उपाध्याय–वर्तमान विसंगतियों के लिए दोषी हम स्वयं भी है ➤ करुणा श्री–किशोर युवाओं को मेरा नमस्कार	➤ नीलिमा टिक्कू–बच्चे देश का भविष्य व युवा वर्ग वर्तमान है ➤ आयोजक–इन्द्र भंसाली 'अमर'–आज के युवा की दशा और दिशा

लेखों में पथ–भ्रष्ट होते युवा :–

डॉ. राम बहादुर 'व्यथित' अपने लेख **'क्या अभिमन्यु पथ से भटक रहा है'** में कहते है कि यौवन जीवन का वह सारपूर्ण अंश है जिसमें जीवन–शक्ति की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति होती है। यौवन ही देश की रीढ़ की हड्डी है, देश को प्रगति के शिखर पर पहुँचाने वाला सुदृढ़ सेतु है, जिस पर चलकर देश अपने निर्धारित लक्ष्य प्राप्त करता है। खेद! ब्रह्म मुहूर्त में चैतन्य शक्ति को जगाने वाला, प्राणायाम से जीवन–शक्ति का संचय करने वाला अष्टांग योग का अभ्यास करने वाला युवक आज डिस्को की इंगलिश धुनों से अपने दिन का शुभारम्भ करता है। माता–पिता के चरणों की रज अपने मस्तक पर लगाने वाला शिक्षार्थी आज डिस्को डान्स करते हुए, फिल्मी गाने गाते हुए, सिगरेट के कश वायुमण्डल में छोड़ते हुए विद्यालय में प्रवेश करता है। गुरुकुल के कठोर अनुशासन में रहने वाला, आचार्य के संकेत मात्र पर अपने प्राण निछावर करने वाला शिष्य आज प्रौढ़ हो गया है। वह नकल में अवरोध उपस्थित करने पर अपने ही गुरु के सिर पर लोहे के सरियों से प्रहार करने में नहीं चूकता। गुरु को डराना, धमकियाँ देना अथवा उसके प्रति अपशब्दों का प्रयोग तो विद्यालय परिसर की आम बात हो गई है। छात्रों की जेब में नाना प्रकार की तम्बाकू के पाउच उपलब्ध होते है। पीप थूककर विद्यालय की दीवारों को रंगना एक आम समस्या बन गयी है। दुर्भाग्य का विषय है कि छात्रों में स्मैक का सेवन तीव्र गति से बढ़ रहा है। विशविद्यालय–परिसर में केवल छात्र ही नहीं, छात्राऐं भी स्मैक का सेवन करके अपना जीवन नष्ट कर रही हैं। कुछ युवक पथ–भ्रष्ट होकर हिंसक भी बन जाते है। धन के अभाव में अपनी आकांक्षाओं को पूर्ण करने के लिए वे गुण्डागर्दी आरम्भ कर देते है। वस्तुतः यह समाज के पथ भ्रष्ट स्खलित युवा वर्ग का चित्रण है, जिसकी संख्या महानगरों में तेजी से बढ़ रही है।[164]

डॉ. लल्लन ठाकुर अपने लेख **'देश के युवावर्गःअपेक्षाएं और उपेक्षाएं'** में अपने विचार प्रकट करते हुए कहते है–आज का युग विज्ञान का पंख लगाकर उड़ने को तैयार है। युवावर्ग भी इस युग के विज्ञान से प्रभावित है। युवावर्ग से देश और समाज को रचनात्मक कार्य में सहयोग की आवश्यकता है। युवाशक्ति राष्ट्र की अपेक्षाओं के अनुकूल बने, उनके कार्य देश हित में और समाज हित में हो पर देखने में आ रहा है कि युवावर्ग महत्वाकांक्षी होता जा रहा है। उनका लक्ष्य है, किसी भी प्रकार इन्जीनियर, डॉक्टर, सी.ए., एम.बी.ए. जैसा कुछ बन जाये। चार–पाँच लाख सालाना या इससे अधिक पगार मिल जाये तो जीवन का अरमान पूरा हो जाये। मगर युवावर्ग जब पढ़ने–लिखने में अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाता तो वह अपनी क्षति पूर्ति के लिए किसी प्रकार धनार्जन की चेष्टा करता है। वह गुमराह हो अपराधियों के गिरोह में शामिल हो जाता है। पैसे के प्रलोभन दे उन्हें आतंकी फुसला लेते है। उन्हें आपराधिक प्रशिक्षण दे समाज की मुख्यधारा से निकाल कर उनसे आपराधिक कार्य कराने लगते हैं। आज के युवक–युवतियों को कुमार्ग से हटाने का प्रयास समाज के लिए सबसे बड़ी चुनौती है।

कतिपय असफल विद्यार्थी चोरी–ड़कैती, छिना–झपटी जैसे जघन्य अपराध में भी लिप्त पाये गये हैं। नशा शराब, अभक्ष्य भक्षण भी उन्हें अपराधों के नरक में ढेलता है। इस प्रकार युवाशक्ति से राष्ट्रीय जीवन में रचनात्मक लाभ नहीं, विध्वंसात्मक कार्य होने लगता है। इस देश का दुर्भाग्य है कि इतनी बड़ी युवाशक्ति का आज दुरुपयोग हो रहा है। युवाशक्ति का दुरुपयोग राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये भी किया जा रहा है। आवश्यक है कि हम युवाशक्ति के दुरुपयोग को रोके। इस पर सामाजिक और राजनीतिक दोनों दृष्टियों से खुली बहस हो तथा रोकने के सुझावों पर अमल हो।[165]

अपने लेख **'युवा वर्गःदशा एवं दिशा'** के माध्यम से **डॉ. रेणु सिन्हा** कहती है कि समय चक्र में पिसता हुआ दिशाहीन युवा वर्ग अपनी दशा पर अश्रु बहाता, जिसके कन्धों पर राष्ट्र का वर्तमान एवं भविष्य निहित है, इस इक्कीसवीं शताब्दी में लड़खड़ाता चल रहा है। वर्तमान भौतिकवादी, बाजारवादी, भूमंडलीकरण के युग में भारतीय युवावर्ग अपनी उच्च गौरवशाली सांस्कृतिक मूल्यों से विमुख हो गया है, कर्त्तव्यबोध कहीं दिखाई नहीं पड़ता। स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति इस प्रकार हावी है कि इस पीढ़ी को क्या गलत है, क्या सही, इसका ज्ञान ही नहीं रह गया है। वर्तमान में युवावर्ग में सांस्कृतिक मूल्यों का क्षय हुआ है, इन्हें न तो माता–पिता, घर–परिवार की कोई भावना न ही समाज–राष्ट्र की। आये दिन एक से बढ़कर एक अपराध को यह वर्ग अंजाम दे रहा है। नशा करना इस वर्ग के लिए फैशन का अंग बन चुका है। युवक हो या युवती शराब, सिगरेट, गांजा, अफीम, चरस आदि के नशे में धुत हैं। पूर्व में यह समस्या जहाँ महानगरों में देखी जाती थी, अब तो छोटे–छोटे शहरों, गाँवों तक में जानलेवा जहर के रूप में फैल चुकी है। युवावर्ग में धैर्य, विश्वास एवं बर्दाश्त की क्षमता अब न के बराबर है। जरा सी कोई बात हुई नहीं कि हत्या–आत्महत्या को अंजाम दिया जा रहा है। मुश्किल से दो–तीन फीसदी युवा शक्ति होगी जो अपने को सही दिशा में ले जाने के लिए तैयार है। आज जरूरत है परिवार से लेकर सरकार तक के लिए कि इस युवाशक्ति को सही संरक्षण एवं मार्गदर्शन करें।[166]

डॉ. शकुन्तला तंवर अपने लेख **'एक आह्वान युवाओं से'** में कह रही है कि युवावर्ग जिसे देश का भविष्य कहा जाता है और जिसके प्रति आँखें आशान्वित होती हैं, वही जब दिशाहीन और आदर्शहीन हो जाये तो किसी देश, परिवार, घर का अस्तित्व कैसे सुरक्षित माना जा सकता है? दोष केवल युवाओं का नहीं, वरन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व्यवस्था का है, जिसमें रहकर वह जीवन पाता है, जीता है। विश्व ग्राम की स्थितियों ने युवाओं को जो सोचने का फलक दिया है, वह कितना यथार्थ कितना काल्पनिक है, हम सभी जानते है। विश्व में वर्चस्व पूँजी का है। यह पूँजी औद्योगिकीकरण की देन है, इस पूँजी ने युवाओं को लालायित किया है, भोग संस्कृति में जीने के लिये। इस पूँजी ने ही उसे मनुष्य नहीं रहने दिया और घर–बार को छोड़कर कहीं भी रहने–जीने के लिए बाध्य किया। हमारे युवाओं को दिशाहीन बनाने में

मीडिया का भी बहुत बड़ा रोल है, वह जो कुछ दिखा रहा है, उसमें प्रेरणास्पद क्या है? भारतीय आदर्शों और मूल्यों से रहित सीरियल वर्षों चलते रहते हैं और दर्शक उसे मनोरंजन के नाम पर देखते रहते है। आज का युवा स्वयं को किस रूप में देखता है? सिनेमा जगत के कलाकार के रूप में या खेल जगत के खिलाड़ी के रूप में, आज की ग्लैमर्स दुनिया ही उसके अनुकरण का आधार है।[167]

अपने लेख **'आज का युवा किधर जा रहा है'** में **डॉ. मेजर शक्तिराज** अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कह रहे है कि आज का युवा जिस तरफ भी जा रहा है उसका उत्तरदायित्व पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक नेतृत्व पर है। स्पष्ट रूप से, निश्चित रूप से, संपूर्ण रूप से अर्थात आज का युवा वही बना है और उसी दिशा में अग्रसर है जिस दिशा में उपरोक्त नेतृत्व ने उसे ले जाना चाहा है। माता–पिता, परिवार और समाज ने उसे गढ़ा है और उसकी गति की दिशा व दशा के लिए यह पहली पीढ़ी ही उत्तरदायी है। भावनात्मक सोच के अन्तर से आज का युवा दिग्भ्रमित हुआ है तथा अपने बड़ों के विरोध में जाकर उलझ गया है। जनसंख्या बढ़ने से जीवन संघर्ष में अनैतिकता बढ़ी है, पाश्चात्य चिंतन से उपभोक्तावादी प्रवृत्ति अर्थात भौतिक संसाधनों का अधिकाधिक संग्रहण तथा उपभोग की प्रवृत्ति बढ़ी है जिससे मन की अशान्ति, क्रोध, नफरत, ईर्ष्या निरन्तर बढ़ रहे है। प्रेम, सहृदयता व संतुष्टि का अभाव हो गया है। निर्बल व असहायों के प्रति करूणा का भाव लुप्त हो गया है। आज के युवाओं में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार भी हावी हो गये है। मुख्य रूप से यह असर नजर आ रहा है नैतिक–अनैतिक साधन की स्वीकार्यता, गलाकाट प्रतियोगिता, बाल, महिला, वृद्धों, साधनहीन असहायों की उपेक्षा, उत्पीड़न, महिलाओं का भावनात्मक शोषण एवं यौन अपराधों में अतिशय वृद्धि, अधिकतम उपभोग का प्रदर्शन, विकिरण प्रदूषण, मानवतावादी भावनाओं में गिरावट, जीवन के प्रति असन्तुष्टि तथा झुंझलाहट, मादक द्रव्यों का बढ़ता प्रयोग, बढ़ता भ्रष्टाचार व भय। कहने का तात्पर्य हैं कि भारत के युवाओं की अधिकतर संख्या नकारात्मक नैतिक मूल्यों की दिशा की ओर अग्रसर है। आज के युवा मध्यम वर्ग में रहकर सुख–साधनों की प्राप्ति की होड़ में लगे हैं तथा अनैतिक साधनों के प्रयोग से तनिक भी परहेज नहीं करते विभिन्न तनावों के कारण वे आल्हादपूर्ण संतुष्ट जीवन नहीं जी पाते। आवश्यकता है जीवन को सही मार्ग पर लाने की।[168]

प्रो. शामलाल कौशल अपने लेख **'युवा वर्ग में भटकाव'** के माध्यम से कह रहे है कि युवा के शब्दकोष में कुछ भी असंभव शब्द नहीं होता। लेकिन आज जितना भटकाव युवा वर्ग में देखने को मिलता है वह इससे पहले कभी नहीं था। अधिकांश युवक तथा युवतियाँ क्रोधी, अहंकारी, हर काम में जल्दबाजी करने वाली, किसी बड़े छोटे की परवाह न करने वाले संस्कारहीन तथा अनुशासनहीन देखने को मिलते है। उन्हें जीवन में कोई उद्देश्य दिखलाई नहीं देता। बड़े बुजुर्गों तथा अध्यापकों की आज्ञा पालन करना वे अपना अनादर समझते है। आपराधिक प्रवृत्ति प्रबल होती जा रही है जिसके कारण वे

हत्या, हिंसा, बलात्कार, राहजनी, फिरौती आदि की तरफ ज्यादा आकर्षित हो रहे हैं। धूम्रपान, मद्यपान, आलस्य, झूठ, कपट आदि की दलदल में वे धंसे हुए दिखाई देते है। वे जल्दी–जल्दी समृद्ध बनकर ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। इसलिए आपराधिक गतिविधियों के द्वारा गैरकानूनी ढंग से धन कमाने की बात सुनने को मिलती है। यहाँ तक कि आतंकवादी गतिविधियों में भी शामिल होते नजर आते है। अतः देश तथा समाज का सुधार किया जाना है तो हमारे युवा वर्ग को सोचना पड़ेगा कि वह कहाँ जा रहे है। अच्छी बातों का अनुसरण करना, सदाचारी, संयमी, परिश्रमी, आज्ञाकारी, सर्वहितकारी, देशभक्त बनना होगा। उन्हें ऐसा कोई व्यवहार नहीं करना चाहिए जिससे उनके माता–पिता या देश को शर्मिन्दा होना पड़े। उन्हें आगे बढ़ना होगा, सही मार्ग दर्शन करना होगा।[169]

ललित नारायण उपाध्याय अपने लेख **'वर्तमान विसंगतियों के लिए दोषी हम स्वयं भी है'** में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कहते है–एक स्वर, एक बात खासकर बड़े शहरों में सर्वत्र सुनाई दे रही है कि नई पीढ़ी बिगड़ती जा रही है, चरित्रहीन होती जा रही है, उसके सामने कोई नैतिक आदर्श नहीं है, वह दिशाहीन है, अपने कर्त्तव्यों को नहीं जानती आदि–आदि। यह आरोप 1942–47 की पीढ़ी पर नहीं था वरन् उसने आजादी प्राप्ति के संघर्ष में भाग लिया था। वह अपने कर्त्तव्यों और दायित्वों को अच्छी तरह से समझती थी। अतः वह पीढ़ी इन आरोपों से मुक्त रही। उसके बाद दूसरी पीढ़ी का जन्म हुआ और चूँकि यह पीढ़ी 'आजाद भारत' में जन्मी थी, अतः स्वतंत्र भारत की इस पीढ़ी को बहुत ही अच्छा बनना था परन्तु इस पीढ़ी ने अपने निर्माण पर कोई ध्यान नहीं दिया। आजादी के बाद मानो यह पीढ़ी उल्टे बिगड़ गई। आजादी पाकर मानो वह अपने सारे दायित्वों को भूल गई। उसने अपने चारित्रिक गुणों का विकास नहीं किया वरन् ह्यस किया। आज किसी बच्चे से पूछ लीजिए वह आपके समक्ष पाँच या दस महापुरुषों के नाम नहीं गिना पाएगा। क्रांतिकारियों के नाम तो वे जानते ही नहीं। हाँ 8–10 फिल्मों के नाम आपको जरूर बता देगा। आज हमने अपने बच्चों के लिए सभी सुख–सुविधाएं तो जुटा दी है परन्तु उनके चारित्रिक विकास का कोई मार्ग अथवा उपाय नहीं खोजा है। न हम आज के किसी नेता का उन्हें उदाहरण दे सकते हैं कि अमुक से कुछ सीखो और न ही अपना खुद का उदाहरण दे सकते है कि हमसे सीखो। **कहा गया है कि यदि किसी देश को नष्ट करना हो तो उसकी युवा पीढ़ी को बिगाड़ दो, देश का भविष्य अपने आप तबाह हो जाएगा।** किसी समय पूरा चीन अफीम की गोद में आ गया था। यदि हम भी मौज करो और जियों का नारा यूं ही देते रहे तो हमारे बुरे दिन आना भी सुनिश्चित है।[170]

अपने लेख **'किशोर युवाओं को मेरा नमस्कार'** के माध्यम से **करुणा श्री** कह रही है–कैसी अनहोनी होती जा रही है विश्व में सभी गहरी गर्त में डूबते जा रहे है। न संस्कृति है, न संस्कार, न ही सभ्यता। विचलित–सा मन खो–सा जाता है। क्या होगा

इस वसुन्धरा का जिसने न जाने हमें क्या–क्या दिया। सभ्यताएँ दी, संस्कृति दी और सजा हुआ हिमालय, गंगा–यमुना–कावेरी और गोदावरी दी। जहाँ सभी अपने–अपने कर्म शुभ अशुभ धो सकें। फिर भी नहीं समझ सकें ये किशोर किस दिशा में जा रहे है। विश्व धरा पर विरजमान बुजुर्ग–प्रौढ़ों ने बार–बार समझाया। आदर करो, सत्कार करो, प्रेम–विश्वास करो, सभी को अपना समझो। लेकिन युवा किशोर नहीं समझ सका। अपनी मनमानी करता चला गया। हिंसा पर हिंसा करते हुये, भौतिक सम्पन्नता को पाने के लिए, न माँ को देखा, न बाप को, न ही पड़ौसी को देखा। बस देखा तो अपना स्वार्थ ही देखा। स्वार्थ में अन्धे होकर लाठी थामी। कभी इधर मारी कभी उधर मारी। दौलत को अंधी लाठी से कमाया। न मोल समझा, न बोल समझा। अपनी ही पागल सनक में चलता गया और बढ़ता गया। अपराधों की दुनिया में। कही डॉन बना तो कही राजा भैया बना और कही अबू सलेम। इन्हें ही अपना जीवन–दर्शन माना और चले अपना जीवन सँवारने। अरे! मैं पूछती हूँ क्या इन सब से जीवन उपवन खिलता है, या उजड़ता है? उत्तर में मिला–हमें अपना जीवन जीने दो हमें सब समझ है। नये जमाने के साथ चलना चाहिए, यहाँ ईसा, गाँधी, पैगेम्बर और संस्कारों, आदर्शों और नैतिकता की आज कोई कीमत नहीं। बस कीमत है तो विचारों की उत्तेजना की। क्षण में सब कुछ मिला देती है। ऐसी उत्तेजना जिसमें न रिश्तें हैं न खून का असर। बस असर है तो आतंकवादी प्रवृत्तियों के द्वारा जीवन को सँवारना।[171]

स्थाई स्तंभ में पथ–भ्रष्ट होते युवा :–

अतिथि संपादक **नीलिमा टिक्कू** स्थाई स्तंभ में अभिव्यक्त **'बच्चे देश का भविष्य व युवा वर्ग वर्तमान है'** में अपने विचार प्रकट करते हुए कहती है कि बच्चे देश का कर्णधार होते हैं, देश का भविष्य उनमें देखा जा सकता है, वहीं युवा देश के वर्तमान होते हैं। सुदृढ़ परिवार समाज व राष्ट्र के लिए बच्चों में संस्कारों की, नैतिक शिक्षा की नींव बालपन से ही रखी जाती है। हमारा पूर्व इतिहास इस बात का साक्षी रहा है कि इस देश की संतान अपने बालपन एवं युवा अवस्था में नैतिक मानवीय संस्कार पाकर महान विभूतियाँ बनकर अपने कृत्यों से न केवल देश को अपितु विश्व को आलोकित किया है। उनका नाम आज भी इतिहास के उजले पृष्ठों पर अंकित है, लेकिन यह भी कटु सत्य है कि उनकी संख्या बहुत कम है। आज बच्चे एकांगी प्रवृत्ति में आत्मकेन्द्रित होते जा रहे हैं, जिसके मूल में कई कारण है, जिनमें प्रमुख कारण एकल परिवार और उससे उपजती समस्याएँ है। आधुनिकता की चकाचौंध व पश्चिमी संस्कृति के अंधानुकरण में रत समाज में जिस तरह की प्रतिस्पर्धात्मिक आपाधापी मची है उसमें बाल व युवा वर्ग सबसे ज्सादा पिस रहा है। माता–पिता अपने बच्चों की शारीरिक व मानसिक क्षमता की अवहेलना कर उन्हें डॉक्टर, इंजीनियर, सी.ए., एम.बी.ए. कराने को लाभप्रद है। ऐसे में छोटी उम्र में अवसादग्रस्त बच्चे पलायनवादी रूख अपना लेते हैं। यौवन अवस्था में आते–आते बड़ी–बड़ी डिग्रियाँ लेने के बाद व इतना पैसा शिक्षा पर

खर्च करने के बाद भी उनके अनुकूल कार्य न मिलने के कारण वे निराश हो जाते है। उनका ख्वाब रातों रात अमीर बनने का शान–शौकत से रहने का, प्रतिस्पर्धा की होड़ में अपने आपको अव्वल बनाने के लिए वे ऐसे कार्यों में लिप्त हो जाते हैं जो उनके भविष्य को अंधकार में धकेल देता है। चोरी–चकारी, भ्रष्टाचार, फिरोती द्वारा पैसा वसूलना, आतंकी गतिविधियों में हिस्सा आदि से गलत राह पकड़ने को मजबूर हो जाते है, ऐसे में नेता व भ्रष्ट अफसरशाही आग में घी का काम करते है, रही–सही कसर टेलीविजन के भंडार, कम्प्यूटर के दुरुपयोग ने पूरी कर दी है। इस विषम वातावरण में माता–पिता, शिक्षक व समाज का कर्त्तव्य बनता है कि बच्चों में नैतिक मानवीय मूल्यों का प्रारम्भ से ही रोपण करें। बच्चों में परस्पर प्रेम, प्यार, सहयोग, समर्पण, नैतिक–चारित्रिक दृढ़ता, त्याग व सहिष्णुता के गुण देने का प्रयास करें।[172]

इन्द्र भंसाली 'अमर' के आयोजन में **'आज के युवा की दशा और दिशा'** पर एक परिचर्चा रखी गई जिसमे प्रमुख लेखक एवं लेखिकाओं के विचार इस प्रकार है–

इन्द्र भंसाली 'अमर' कहते है कि हमारे युवाओं ने परचम फहराया है, चाहे वह शिक्षा में हो, खेल में या अन्य किसी क्षेत्र में वे अपनी सकारात्मक सोच, मेहनत, प्रतिभा के बल पर सुर्खियों में है। पर एक वर्ग ऐसा भी है जो छूट कर ऐसे मार्ग पर भटक गया है जो आत्मघाती मार्ग पर जाता है, विनाश के मार्ग की तरफ जाता है। युवा शक्ति के एक बहुत बड़े वर्ग के लिये जिन्हें अपनी दिशाहीनता व दशा का भान नहीं है और वे अपने कृत्यों को निर्लज्ज विजय का प्रतीक मानते है। अपनी नकारात्कम सोच जो एक हद तक पोषित भी की जा रही है, के कारण शर्मनाक, घृणास्पद कृत्यों में लिप्त होते जा रहे हैं। लूटपाट, हत्या, चेन स्नेचिंग, महिलाओं एवं लड़कियों से छेड़छाड़ यहाँ तक कि बलात्कार, हत्या जैसे जघन्य अपराध से उन्हें एतराज नहीं होता। आज सारी संवेदनायें मर चुकी हैं। कुछ नेता, प्रभावशाली लोग युवाशक्ति को इतना दिशा भ्रमित कर देते हैं कि उन्हें जीवनभर अपनी सांस्कृतिक गहराइयों का ज्ञान ही नहीं हो पाता, भ्रमित करने वाले नेता या प्रभावशाली व्यक्ति उन्हें हथियारों की तरह इस्तेमाल करते है। कुछ युवावर्ग कुसंगति के कारण दिशाहीनता को प्राप्त होते हैं, कही अभाव, शोषण भी उन्हें अनचाहे रास्तों पर ला पटकता है, तो कुछ अपनी मौज–मस्ती के लिये अपराध का दामन थाम लेते है। जो ऐसे रास्तों पर ले जाती है, जहाँ से वापस आने के रास्ते बंद हो जाते है।

रश्मि अग्रवाल का कहना है कि–आज के बच्चों का पालन पोषण उनके माता–पिता के पास समय अभाव के कारण संस्कार विहीन रूप से नौकरों या होस्टलों के माध्यमों से हो रहा है, जहाँ बच्चे मित्रों की संगत या गलत साहित्य द्वारा कच्चा ज्ञान व प्रदूषित वातावरण से जो भी सीखते है उसी के अनुरूप जीवन के मापदण्ड भी निर्धारित करते है, पर जब उनके लक्ष्य व आवश्यकता अनुसार धन की पूर्ति नहीं हो पाती तब वो भटक जाते है और जब तक संभलते हैं तब तक जीवन नष्ट–भ्रष्ट हो

चुका होता है, इसलिए युवाओं को बाल्यावस्था से ही सुसंस्कारवान बनाए ताकि वो अपनी दशा व दिशा को अच्छी सोच व परिपक्व विचारों के साथ निर्धारित करें।

सरोज गुप्ता का मानना है कि किसी भी राष्ट्र की शक्ति उसका युवावर्ग ही होता है, वही भावी कर्णधार है, इसलिए उसको सही दिशा निर्देश मिलना जरूरी ही नहीं बल्कि अत्यावश्यक है। परन्तु आज के समय में ऐसा नहीं हो रहा है। विद्यालय, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय जो कभी अनुशासन सिखाने का स्थान माने जाते थे, वहाँ भी अनुशासनहीनता का तांडव हो रहा है। शिक्षण–संस्थानों में छात्रों का प्रवेश योग्यता के आधार पर न होकर पैसे के बल पर अथवा भाई–भतीजावाद और जातिवाद पर हो रहा है, जिससे युवावर्ग में असंतोष व्याप्त है, वो असामाजिक हरकतें करने पर उतारू हो जाते हैं। अपनी दिशा से भटक कर गलत मार्ग पर चल पड़ता है। आजकल माता–पिता के पास भी इतना समय नहीं है कि वो बचपन से ही अपनी संतान को उच्च आदर्श तथा अच्छे संस्कार सिखा सकें। इसके अभाव में बच्चे स्वतंत्र व उद्दण्ड हो जाते है तथा युवा होने पर अपनी मनमानी पर उतर आते है।

परिचर्चा में अपने विचार को व्यक्त करते हुए **श्री दिनेश छाजेड़** का मानना है कि आज का युवा चाहे युवक हो या युवती हो उसपर आधुनिकता का बहुत प्रभाव पड़ रहा है। वह परंपरागत ढांचे से हट कर कुछ अलग करने की कोशिश कर रहा है। अधिकांश युवा वर्ग आधुनिक साधनों का दुरुपयोग कर रहा है। आधुनिक बनने के नाम पर नशे की गिरफ्त में फंस रहा है, संस्कार से, परम्पराओं से विमुख हो रहा है। शहरी परिवेश में समाज के मानदण्डों को नकारा जा रहा है। बिना विवाह के युवक–युवती एक ही छत के नीचे साथ–साथ रहने का प्रचलन चल रहा है। खानपान में भी फास्टफूड का उपयोग कर रहे है अर्थात अपनी दिशा और दशा में भटकाव आ रहा है। इसके लिये उसको अपनी सोच बदलना अति आवश्यक है, उसे अपना भविष्य बनाना है तो उसे अपनी दशा और दिशा पर सकारात्मक सोच लाना होगा।

परिचर्चा में भाग लेती **श्रीमती आशा भंसाली** का कहना है कि एक तरफ जहाँ हमारे युवाओं ने प्रगति के आसमान को छुआ है, दूसरी तरफ युवावर्ग का बहुत बड़ा भाग अपने लक्ष्यों से भटक गया है। इसका एक कारण है हमारे समाज में नैतिक मूल्यों का ह्रास, राजनीतिक आदर्शों में गिरावट। दूसरा कारण है युवावर्ग को उचित समय पर उचित मार्गदर्शन नहीं मिलना। अपने खराब परिवेश के कारण व उचित वातावरण न मिलने के कारण भ्रमित होकर पथ भ्रष्ट भी हुआ है। जो वातावरण मिला उसने उसे भ्रमित किया, ऐसे में टी.वी., कम्प्यूटर एवं सिनेमाई–माध्यमों ने भी आग में घी डाला और अपने सपनों को पाने के लिये वह गलत मार्ग पर मुड़ गया। ये वे युवा थे जिनमें धैर्य नहीं था और शोर्टकट से मिली प्रारंभिक सफलताओं ने उन्हें उस मार्ग पर धकेल दिया जहाँ से उनका वापस आना नामुमकिन हो गया। लालच ने, वासना ने, दिखावे ने, धनबल व भुजबल के प्रदर्शन ने, शोर–शराबे ने जो मस्तिष्क की जागृति को रोकता है,

नशे व ड्रग लेने की आदतों ने, पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध ने आज युवाओं को पतन की ओर ढकेल दिया है। हर युवा को अपने जीवन पथ पर गुजरते हुये इन बुराइयों के सांये से बचते हुये गुजरना होगा। उचित मार्गदर्शन मिल जाए तो संभवतः उसकी दिशा बदल सकती है और वह अपराध की दलदल में जाने से बच सकते है।[173]

कारण :—

- आज धन की अधिकता और लोलुपता ही युवाओं को पथ भ्रष्ट होने पर मजबूर कर रही है।
- रेडियो, सिनेमा, टी.वी. आदि हमारी युवा पीढ़ी को भटकाने के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार है।
- नशे की दुष्प्रवृत्ति के कारण युवा वर्ग गलत राह अपना रहे है और पथ—भ्रष्ट होकर हिंसक बन रहे है।
- सामान्य आर्थिक स्थिति वाले मध्यवर्गीय परिवार के बच्चे अपने मित्र, धनी परिवार के बच्चे की बराबरी करने लग जाते है और दिखावे की प्रवृत्ति के कारण अपनी राह से भटक जाते है।
- अंधी भौतिकता के पीछे भागते हुए अभिभावकों द्वारा अपने बच्चों को समय न देने के अभाव में बच्चे स्वतंत्र व उद्दंड हो जाते है तथा युवा होने पर अपनी मनमानी पर उतर आते है।
- युवा पीढ़ी के लिए 'फास्ट' शब्द केवल शाब्दिक अर्थ नहीं रह गया, बल्कि रोमांच व आकर्षण का केन्द्र बन गया है। उन्हें सब कुछ बहुत जल्दी ही चाहिए, यहाँ तक कि प्यार, पति और पत्नी भी।
- टेलीविजन के विभिन्न चैनलों पर भद्दे व परिवारों को तोड़ने वाले कार्यक्रम। बाल किशोर युवा पीढ़ी को जाने—अन्जाने बहुत कुछ सिखा जाते है और उनके मन की कच्ची मिट्टी पर पक्के निशान छोड़ जाते है।
- कुछ युवावर्ग कुसंगति के कारण दिशाहीनता को प्राप्त होते है, तो कही शोषण भी उन्हें अनचाहे रास्तों पर ला पटकता है, तो कुछ अपनी मौज—मस्ती के लिये अपराध का दामन थाम लेते है।
- पढ़—लिखने के बाद भी युवाओं को अपनी योग्यता के अनुसार नौकरी नहीं मिलती जिससे युवा निराश होकर अपनी दिशा से भटक कर गलत मार्ग पर चल पड़ता है।

सुझाव :—

- नैतिक—धार्मिक शिक्षा अनिवार्य रूप से हमारे शैक्षिक पाठ्यक्रम में शामिल किये जायें।

- स्कूल–कॉलेजो में अध्ययन करने वाली युवतियों के पोशाकों में शालीनता और एकरूपता हो। फिल्मी और फैशनेवल नग्नता भरे पोशाकों पर प्रतिबंध लगे।
- युवाओं को रचनात्मक कार्यों में लगना चाहिए, जिससे निराशा की जगह आशा का संचार हो।
- सरकार उनकी उपेक्षाओं के कारणों का अध्ययन कराये और युवकों की समस्याओं का त्वरित समाधान करे।
- आज जरूरत है भटकती युवा पीढ़ी को सही दिशा तथा सही निर्देश देने की। बुजुर्गों को चाहिए कि वे युवाओं पर ध्यान रखें उन्हें अच्छे रास्ते पर लाने का प्रयास करते रहें। तभी शायद हमारी भटकती हुई पीढ़ी सही दिशा में कदम रख सकती है।
- इस विषम वातावरण में माता–पिता, शिक्षक व समाज का कर्त्तव्य बनता है कि बच्चों में नैतिक मानवीय मूल्यों का प्रारम्भ से ही रोपण करें।
- समाज का उत्तरदायित्व है कि युवावर्ग के लिये अच्छे मार्गदर्शन की व्यवस्था करे ऐसा परिवेश दे जिसमें उसके कदमों के डगमगाने की संभावना बहुत कम हो।

3.4.4.2 रुचि के विपरीत शिक्षा ग्रहण करने से मानसिक तनाव :–

रुचि के विपरीत शिक्षा ग्रहण करने से मानसिक तनाव से सम्बन्धित समस्या के प्रमुख लेखक एवं लेखिकाओं के नाम निम्न है –

<u>कथा</u>

- नीलिमा टिक्कू–जब जागो तभी सवेरा

<u>लेख</u>

- श्री विश्व शांति टेकडीवाल परिवार–लुटता बचपन उजड़ता यौवन
- माधुरी शास्त्री–माता–पिता की अभिलाषाएं युवा पीढ़ी पर भारी

कथाओं में रुचि के विपरीत शिक्षा ग्रहण करने से मानसिक तनाव :–

नीलिमा टिक्कू अपनी कथा **'जब जागो तभी सवेरा'** के माध्यम से बता रही है कि बच्चों के माता–पिता उनकी रुचि के विपरीत उन्हें पढ़ाते है और उनसे अच्छे परिणाम की उम्मीद करते है। मगर रुची के विपरीत होने के कारण वह बच्चे अपना पूरा मन लगाकर पढ़ नहीं पाते और उनका परीक्षा परिणाम खराब हो जाता है जिस वजह से उनमें मानसिक तनाव उत्पन्न हो जाता है और वह गलत कदम उठाने को मजबूर हो जाते है। इसी पर प्रकाश डालते हुए वह एक उदाहरण के माध्यम से बताती है कि तनु की सहेली प्राची को उसके घर वाले उसकी इच्छा के विरूद्ध डॉक्टर बनाना

चाहते है क्योंकि उसकी मम्मी खुद डॉक्टर बनना चाहती थी, मगर नहीं बन पाई। प्राची की मैथ्स में रुची थी, वो इंजीनियर बनना चाहती थी। उसने अपनी मम्मी को कहा भी कि वो बायो—मैथ्स दोनों ले लेगी लेकिन उसकी मम्मी तो कुछ सुनना—समझना ही नहीं चाहती थी। इसी का परिणाम यह हुआ कि उसका बायो का प्रश्न—पत्र बहुत खराब हुआ इसलिए बायो में कम नम्बर आने निश्चित थे। इसी कारण वह बेचारी बहुत डरी हुई थी। डर के कारण प्राची अपनी सहेली तनु के घर पर गई मगर उस वक्त तनु वहाँ नहीं थी तो प्राची ने तनु की मम्मी से बहाना बनाकर चुहे मारने की दवा मांगी। तनु की मम्मी उसकी घबराहट को देखकर समझ गई कि प्राची कुछ गलत करने वाली है। वह प्राची को बहाना बनाकर घर वापस भेज देती है तथा उसकी मम्मी को फोन कर मिलने बुलाती है। प्राची की मम्मी से मिलकर वह उनकों सारी घटना बताती है और उनकों समझाती है कि आपकी अदम्य महत्वाकांक्षा और आपके सख्त व्यवहार की वजह से प्राची आपको नहीं बता पाई कि उसका बायोलोजी का प्रश्न—पत्र बहुत ही खराब हुआ है। इस कारण प्राची परीक्षा परिणाम को लेकर तनावग्रस्त है। ऐसे में आप उसकी मानसिक स्थिति को समझकर उसे मनोवैज्ञानिक रूप से भावनात्मक सहयोग दे वरना वह किस सीमा तक जा सकती है आप अनुमान लगा सकती है, आप अपनी बेटी से हाथ धो सकती है। यह सब सुन प्राची की माँ ने तुरन्त प्राची को फोन कर कहा कि बेटा जैसा भी रिजल्ट आये कोई फर्क नहीं पड़ता, बेटा तू तो वो ही विषय लेना जिसमें तेरी रुची हो। यह सुन प्राची खुशी से उछल पड़ी। फिर मैंने उन्हें समझाया कि हम अभिभावक ही अपने बच्चों की क्षमताओं, उनकी रुचियों को समझकर उनमें आत्मविश्वास जगा सकते है, उन्हें सहयोग व भावनात्मक संबल देकर उन्हें मानसिक तनाव व पलायनवादी प्रवृत्ति से दूर रख सकते है। अब प्राची की मम्मी सब समझ गई थी और वह बिना समय गवाए अपनी बेटी के पास जाने लगी थी।[174]

लेखों में रुचि के विपरीत शिक्षा ग्रहण करने से मानसिक तनाव :—

श्री विश्व शांति टेकडीवाल अपने लेख **'लुटता बचपन उजड़ता यौवन'** में अपने विचारों के माध्यम से बताते है कि भौतिकता प्रेरित उपभोक्तावाद, आरक्षण की राजनीति, अभिभावकों की भ्रमित महत्वाकांक्षाएँ तथा प्रतिस्पर्धात्मक मानसिक तनाव से बच्चों का बचपन प्रभावित हो रहा है, युवा हताश हो रहे हैं। 80 प्रतिशत नंबर आने पर भी प्रवेश मिलना मुश्किल होता जा रहा है। हर अभिभावक चाहते हैं कि उनका बेटा—बेटी रियल्टी शो में टी.वी. पर आवे, इंजीनियर, डॉक्टर बनें, विदेश जावे और उसके लिए अनुचित दबाव बचपन से ही शुरू हो जाता है। अच्छी स्कूल में भर्ती करना, तत्पश्चात टयूशन ताकि अच्छे नम्बर पाकर हर जगह अव्वल दर्जे पर आवे। इससे बच्चों का बचपन लुट जाता है और युवा हताश हो जाते है। नतीजन आत्महत्या आदि अपराध बढ़ते जा रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति में वैयक्तिक गुण होते है जिसको निखारने के लिए बच्चों को पर्याप्त अवसर मिलने चाहिए। उनकी भावनाओं का आंकलन किया जाना

चाहिए, उसकी भावनाएँ जाननी चाहिए कि वह आखिरकार क्या बनना चाहता हैं, उसके विपरीत अभिभावक बच्चों पर अपनी महत्वाकांक्षाएँ थोपना चाहते हैं। अभिभावकों का कर्त्तव्य है कि वे अपनी संतान को एक अच्छा इंसान बनावें बल्कि सभी निर्णय बच्चों पर खुद पर छोड़ देना चाहिए कि वे क्या करना चाहते हैं। अच्छे पारिवारिक संस्कार, माता–पिता गुरु का मार्गदर्शन से बच्चों में व्याप्त प्रतिभा निखरकर आयेगी और बच्चे अपनी योग्यतानुसार जो बन सकेंगे बन जाएँगे।[175]

माधुरी शास्त्री अपने लेख **माता–पिता की अभिलाषाएं युवा पीढ़ी पर भारी'** में कह रही है कि आज की नई पीढ़ी के सुख चैन को निगलने वाली एक नई समस्या पिछले दिनों पैदा हुई है जो आपके मन को भी मथ रही होगी, ऐसा मेरा मानना है। आये दिन ऐसे समाचार पढ़ने–सुनने को मिलते हैं कि अमुक छात्र या छात्रा ने पंखे से लटक कर या अन्य किसी भी प्रकार से आत्महत्या कर ली या रेल के नीचे आकर जान दे दी। ऐसी घटनाएँ कुछ दशको पूर्व नहीं सुनी जाती थी। यह कुछ दशकों की उपभोक्ता संस्कृति या कैरियर कामी संस्कृति का ही करिश्मा है जो चाहती है कि नई पीढ़ी अच्छा कैरियर बनाये। कैरियर की परिभाषा एक ही है–'जिसमें अच्छा पैकेज मिले।' लाखों–करोड़ों का पैकेज हमारी नई पीढ़ी की मानसिकता को इतना विकृत कर रहा है कि शिक्षा का उद्देश्य ही धूमिल हो गया है। आज समाज के आदर का पात्र वह हो गया है जो पैसे वाला है। माता–पिता भी यह चाहने लगे है कि हमारी संतान बड़ा पैकेज लाये। इंजीनियर, डॉक्टर, आई.टी. विशेषज्ञ बने, अमरीका जाये, पैसा कमाए। इसलिए अभिभावक अपनी संतान से इतनी बड़ी आशाएँ लगाकर उन पर असंभव महत्वाकांक्षाओं का ऐसा बोझ लाद देते हैं, जिसे ढ़ोते–ढ़ोते उनकी कमर टूट जाती है। अतः संतान पर महत्वाकांक्षाओं की अति का बोझ लादना सबसे बड़ा अन्याय है। बच्चा अधिकाधिक पैसा कमाने वाला बने, यह मापदंड रखना भी उतना ही खतरनाक है, अवांछनीय है। वह अधिकाधिक विद्यार्जन करें, प्रशंसनीय मानव बने, चरित्रवान बनें, यह हमारी संस्कृति कहती है। आज आवश्यकता इस बात की है कि जीवन मूल्यों की दृष्टि को हम सही करें जो विकृतियाँ हमारी सोच में आ गई हैं, उन्हें तत्काल निकाल फेंके। सही जीवन मूल्य अपनाएँ, नई पीढ़ी को भी सही जीवन मूल्यों की शिक्षा दें।[176]

कारण :–

- अभिभावकों की अदम्य महत्वाकांक्षा और सख्त व्यवहार की वजह से बच्चे गलत निर्णय लेने पर मजबूर हो जाते है।
- अभिभावक अपने बच्चे की रुचि के विपरीत उनके व्यवसाय का चुनाव करते है जिसके कारण बच्चा तनावग्रस्त जिन्दगी जीने लगता है।
- अभिभावक अपनी संतान से बड़ी–बड़ी आशाएँ लगाकर उन पर असंभव कार्य का ऐसा बोझ लाद देते है जिसे ढ़ोते–ढ़ोते उनकी कमर टूट जाती है।

- रुचि के विपरीत शिक्षा ग्रहण करने पर बच्चे को मनचाहा परिणाम नहीं मिलता जिससे वह हताश, निराश और तनावग्रस्त होकर आत्महत्या जैसे कार्य करने को मजबूर हो जाता है।

सुझाव :–

- बच्चों को सोचना चाहिए कि वो ऐसे पलायनवादी आत्महत्या के रास्ते को ना अपनाये। ऐसा करने से पहले अपने अभिभावकों, परिवारवालों के बारे में भी सोचें जो उनके इस कदम से जीते जी मर जाते हैं।
- माता–पिता की अपने बच्चों से कुछ आशाएँ तो होती ही है पर हाँ वो इतनी बोझिल ना हो कि बच्चा छटपटाता रहे और माता–पिता को पता भी ना चले।
- अभिभावकों को अपने बच्चों की क्षमताओं, उनकी रुचियों को समझकर उनमें आत्मविश्वास जगाना चाहिए, उन्हें सहयोग व भावनात्मक संबल देकर उन्हें मानसिक तनाव व पलायनवादी प्रवृत्ति से दूर रखना चाहिए।
- अभिभावकों को अपने बच्चे की रुचि को ध्यान में रखकर उसका मित्र बनकर उसका सहयोग करना चाहिए ताकि बच्चे पर कोई मानसिक तनाव उपन्न ना हो।

3.4.4.3 मद्यपान :–

मद्यपान की समस्या से सम्बन्धित प्रमुख लेखक एवं लेखिकाओं के नाम निम्न है –

<u>कथा</u>

- डॉ. सरला अग्रवाल–उड़ती पतंग
- मंजुला गुप्ता–मुरझाती कमलिनी
- सुधा गोयल–हत्यारिन
- श्रीमती कृष्णा बुरड़–स्वामित्व
- मधु हातेकर–अनोखा निर्णय

<u>लेख</u>

- अखिलेश निगम 'अखिल'–नशा बनाम नाश

कथाओं में मद्यपान :–

डॉ. सरला अग्रवाल अपनी कथा **'उड़ती पतंग'** के माध्यम से एक एसे परिवार की समस्या का चित्रण करती है जहाँ घर के मुखिया को नशा करने की आदत है तथा नशा करने के लिए अपनी पत्नी से पैसे छीन लेता है और ना देने पर उसे मारता है। अधिक नशा करने के कारण ही वह अपनी बेटी के साथ जबरदस्ती मुँह काला कर लेता है। इस पर प्रकाश डालते हुए लेखिका विस्तार से कहती है कि तलवण्डी के के.

के. विद्यालय के सामने चम्पा एक चाय की थड़ी लगाती है जिसमे उसकी एक दस–ग्यारह वर्ष की नन्ही बेटी उसका हाथ बटाती हैं। मगर उसका पति शराब पीने का शौकीन है। शराब पीने के लिए वह चम्पा से पैसे माँगता है और ना देने पर उसे मारता है तथा उस पर गन्दे–गन्दे आरोप लगाता है। एक दिन जब चम्पा घर पर नहीं होती है तो वह नशे में धुत होकर अपनी बेटी के साथ बलात्कार कर देता है यह सुन चम्पा क्रोध में पागल होकर अपने पति की हत्या कर देती है और हत्या का आरोप स्वीकार कर पुलिस स्टेशन चली जाती है। मगर हत्या के बाद लोगों ने चम्पा को लेकर तरह–तरह की बाते बनाना शुरू कर दी थी कोई उसे सही बताता तो कोई उस पर गन्दे–गन्दे आरोप लगा रहा था। जो भी हो मगर अब चम्पा को सजा होने के बाद उसके बच्चों का क्या होगा उनका ध्यान कौन रखेगा बस यही चिन्ता लोगों को सता रही थी।[177]

मंजुला गुप्ता अपनी कथा **'मुरझाती कमलिनी'** में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए बताती है कि जब एक मध्यम वर्गीय परिवार में परिवार के मुखिया को नशा करने की लत लग जाती है तो वह नशा करने के लिए अपनी पत्नी से रुपये मांगता है और रुपये ना मिलने पर वह उसे मारता पिटता है जिसके कारण उसके परिवार को कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है और उनका पारिवारिक वातावरण दूषित होता है। इसी समस्या पर प्रकाश डालते हुए लेखिका कौशल्या के माध्यम से बताती है कि जब एक दिन कौशल्या की जगह काम पर उसकी बेटी गंगा जाती है तो लेखिका द्वारा इसका कारण पूछने पर गंगा बताती है कि रात को बापू द्वारा माँ से पैसे माँगने पर माँ ने पैसे देने से इन्कार कर दिया और इसी बात पर गुस्सा होकर बापू ने माँ को बहुत मारा जिसकी वजह से उसे ज्यादा चौट लग गई। कुछ दिनों बाद कौशल्या के काम पर जाने पर लेखिका उसको कहती है कि जब वह तुझे मारता है तो तू क्यों मूक पशु बनी मार खा जाती है। क्या भगवान ने तुझे हाथ पाँव नहीं दिये है। एक डंड़ा घुमाकर तू भी दे दिया कर। कौशल्या बताती है कि उन लागों को बचपन से ही सिखाया हैं कि पति परमेश्वर होता है। वह डांटे–मारे कुछ भी करे, लेकिन पत्नी को पलट कर जवाब नहीं देना। उसका पति कई बार नशे में अपने दोस्तों के साथ घर पर आ जाता है इसलिए वह अपनी बेटियों को घर पर अकेली नहीं छोड़ सकती थी क्योंकि उसका मन घबराता है। यह सब सुन लेखिका उसे सान्तवना देती है तथा उसकी बेटी गंगा को कुछ कपड़े और खाने का सामान देकर घर भेज देती है जिसे पाकर वह दोनों खुशी–खुशी अपने घर लोट जाती है। [178]

इसी प्रकार की समस्या पर **श्रीमती कृष्णा बुरड़** अपनी कथा **'स्वामित्व'** में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए बता रही है कि नंदू बाई के पति को भी नशा करने की आदत है। उसका पति नशे में धूत होकर हमेशा उसे मारता पिटता रहता है व दारू के लिए उससे पैसे मांगता है और खुद कोई काम–धंधा नहीं करता। आगे वह बताती है कि नंदू बाई लेखिका के घर में झाडू–बर्तन का काम करती है। वह बहुत ही हसमुख,

मेहन्ती व संस्कारवान महिला है। मगर आज उसका चेहरा अत्यंत उदास व आँखें सूजी–सूजी सी लग रही थी। छुपाने पर भी उसकी हालत साफ दिख रही थी। पूछने पर पता चला कि उसका शराबी पति नशे में धूत होकर पूरी रात उसे लातों–घूसों से मारा–पिटा व घसीटता रहा। जिससे उसके पीठ, हाथ व कंधे पर गहरी नीली स्याह चोटों के निशान स्पष्ट दिख रहे थे। उसकी यही दिनचर्या थी पति की सेवा करना, दिनभर घरों में काम करना, जो मिला वह खा लेना व रात को पति की मार की मर्मान्तक पीड़ा झेलना ही उसकी नियति बन गयी थी। यहाँ तक कि उसके अपनी कोख से जन्में तीन–तीन जवान गबरु, दबंग पुत्र भी वही सब कर रहे थे जो उनके पिता कर रहे थे। पैतृक–संस्कारों की जड़े घर से ही तो विकसित होती है। जब उसका पति स्वयं वही कर रहा है तो फिर किस हक से वह अपनी संतान को रोके। बेचारी को कोई सकून, शांति नहीं थी। उसके पति का कभी शराब पीकर सड़क पर पड़े मिलना, कभी थाने में, तो कभी गटर में बस यही काम रह गया था। सही सलामत कभी घर आ भी जाता तो गाली–गलौज करना, मारना, पीटना व पड़ोसियों के समझाने पर उन्हें गालियाँ देना ही उसकी संतुष्टि का अंग था। वह बेचारी पाँच–छः घरों में काम निबटाने के बाद कुछ अतिरिक्त कार्य भी करती है ताकी घर का खर्चा चला सके। उसके शराबी पति का स्वामित्व तो पत्नी की कमाई पर पशुवत अपना पेट भरना मात्र है। [179]

अपनी कथा **हत्यारिन'** के माध्यम से **सुधा गोयल** बताती है कि किस प्रकार गरीबी के कारण एक पिता अपनी बेटी का रिश्ता ऐसे घर में कर देता है जहाँ उसका पति शराबी होता है और शराब पीने के लिए अपना सब कुछ बेच देता है तथा पैसे ना होने पर अपनी पत्नी तक को बेचने के लिए तैयार हो जाता है। इस समस्या पर सावित्री की व्यथा सुनाते हुए कहती है कि सावित्री एक गरीब बाप की बेटी थी और बारहवीं तक पढ़ी हुई थी। गरीबी के करण पिता ने उसकी शादी पास के गाँव के रामलाल से कर दी वह देखने में ठीक–ठाक था और पनवाड़ी की दुकान करता था। शादी के बाद वह शराब पीने लगता है और उसे इसकी लत लग जाती है। वह शराब पीकर खूब हो–हल्ला मचाने लगा तथा धीरे–धीरे घर–दुकान और पत्नी के जेवर शराब व जुए की भेंट चढ़ा देता है। शावित्री के कुछ कहने पर उसे मारने दौड़ता तथा मार–पीटकर घर से निकाल देता था। एक दिन रात को वह शराब पीकर अपने दोस्तों के साथ घर में घुस जाता है और सावित्री के साथ जबरदस्ती करने लगता है मगर वह किसी प्रकार वहाँ से भाग निकलती है और एक भली मालकिन के पास पहुँच जाती है। वह मालकिन को अपनी सारी दास्ता सुना देती है जिसे सुन मालकिन उसे अपने पास रख लेती है। मगर दो साल बाद रामलाल ढूँढता हुआ उसके पास पहुँच जाता है और मालकिन के सामने गिड़गिड़ाने लगता है। मालकिन दया कर सावित्री को उसके साथ भेज देती है तथा रामलाल को काम भी दिलवाती है मगर वह लड़–झगड़कर वहाँ से भी भाग आता है। एक दिन रामलाल मालकिन की बेटी दिव्या के साथ जबरदस्ती

करता है तो सावित्री देख लेती है और गुस्से में आकर दरांती से उसकी हत्या कर देती है। जब उसे हत्या के जुर्म में कोर्ट ले जाया जाता है तो वह कहती है कि ''**मुझे उसकी हत्या का कोई दुःख नहीं मैंने तो इस समाज से एक पापी को कम किया है।**'' यह कहते हुए उसने पास खड़ी महिला इंस्पेक्टर की सर्विस रिवाल्वर निकाल ली और खुद पर चला लिया। उसने न्यायधीश के निर्णय का भी इंतजार नहीं किया और स्वयं ही स्वयं को दण्ड़ दे दिया। [180]

अपनी कथा **'अनोखा निर्णय'** के माध्यम से **मधु हातेकर** बताते है कि किस प्रकार अपने पति की शराब पीने के कारण मृत्यु होने पर उसकी पत्नी खुश होती है और दूसरी शादी ना करके स्वतंत्र जीवन जीने का निर्णय लेती है। इस पर विस्तार पूर्वक कहते है कि रजिया के पति की मृत्यु के बाद जब वह काम पर आती है तो लेखक उसको सांत्वना देते हुए उसके पति के बारे में दुःख प्रकट करते है। इस पर रजिया कहती है कि बाबा उसे कभी तो मरना ही था। दारू पी–पीकर अपने शरीर को खोखला कर दिया था। जिन्दगीभर उसने कोई काम नहीं किया। एक पैसे की कमाई नहीं की। दिन भर जुआ खेलता, शराब पीता। दारू के लिए उसे पैसे देना, न देने पर उसकी मार खाना दिनभर मेहनत कर काम करने के बाद भी रात को आराम नहीं। उसकी मार भी खाना, उसकी शारीरिक हवस को पूरी करना, सुबह उठकर अपने घर का काम करना, पेट भरने के लिए बाहर काम करना बस यही उसकी जिन्दगी हो गई थी। 2–3 बार बीमार होने पर रजिया ने पति का इलाज करवाया तब आखरी बार डॉक्टर ने कहा था अबके पीयेगा तो मर जायेगा, फिर भी उसने दारू पी और मर गया। जब लेखक ने उससे पूछा कि तुमने नई साड़ी क्यों पहन रखी है तो रजिया ने बताया कि उसके गाँव में पति के मरने के बाद छः महिनों तक एक नई साड़ी पहननी पड़ती है अगर छः महिनों में वह साड़ी नहीं फटी तो पंचायत वाले उसकी शादी दूसरी जगह कर देते है और अगर साड़ी फट गई तो पंचायत का उस पर कोई बंधन नहीं होता। वह अपना जीवन अपनी मरजी से चाहे जैसा जी सकती है। उसे भी यह साड़ी फाड़नी थी क्योंकि उसे अब दूसरी शादी नहीं करनी, क्योंकि उसे डर था कि अगर दूसरा मर्द भी जुआरी–शराबी मिला तो फिर से उसे नरक की यातना सहनी पड़ेगी और वह ऐसा नहीं चाहती थी। वह ऐसे ही रह कर अपनी बेटी के साथ सुख से जीना चाहती है। पाँच महीने होते–होते उसकी साड़ी फट गई। साड़ी फट जाने से रजिया बहुत खुश हुई क्योंकि अब वह साड़ी पंचायत में दिखाऐगी और पंचायत उस पर दूसरा विवाह करने के लिए बाध्य नहीं कर सकेंगे। अब वह अपना जीवन अपनी खुशी से सुख साधना से बिता सकेगी। अपनी बेटी को पढ़ा सकेगी। अब वह अपने राज में रानी बनकर रहेगी किसी की दासी बनकर नहीं। [181]

लेखों में मद्यपान :—

अखिलेश निगम 'अखिल' अपने लेख **'नशा बनाम नाश'** में कह रहे है कि वर्तमान समाज में नशाखोरी की बढ़ती हुई प्रवृत्ति विकराल समस्या का रूप ले चुकी है। जिसकी वजह से समाज रूपी महल रेत की दीवार की भाँति ढहने की कगार पर है। आज अधिकांश व्यक्ति तनाव, असन्तोष व निराशा से छुटकारा पाने के लिए नशीली वस्तु का सेवन करना प्रारम्भ कर देते है और यहीं से उसके विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। कुछ लोग बुरी संगति में पढकर नशारूपी दलदल में जा फँसते है और व्यक्ति का धन, स्वास्थ्य, समय, सुख—शान्ति, इज्जत एवं शोहरत सब कुछ समाप्त होने लगता है। व्यक्ति की पहचान एक नशेड़ी व्यक्ति के रूप में होने लगती है। नशा विभिन्न अवगुणों का उत्प्रेरक है और जब व्यक्ति नशे के दुष्चक्र में बुरी तरह फँस जाता है तो विभिन्न प्रकार के अपराध करने लगता है। नशा करने के पश्चात व्यक्ति का अपने मस्तिष्क पर कोई नियंत्रण नहीं रहता है। यदि किसी नशेड़ी व्यक्ति के समस्त गुण तराजू के पलड़े पर रख दिये जाएँ तथा नशे की आदत को दूसरे पलड़े पर, तो निश्चित रूप से दूसरा पलड़ा भारी पड़ेगा। नशे की सबसे बड़ी खराबी है इसकी मात्रा का बढ़ते जाना जिसका दुष्परिणाम संबंधित व्यक्ति के तन, मन, धन एवं आचरण पर पड़ने लगता है। समाज में जो भी नशीली वस्तुऐं प्रचलित हैं उनमें अनेक प्रकार के रसायन एवं हानिकारक पदार्थ मिलाकर उनकी क्षमता बढ़ा दी जाती है जो व्यक्ति के स्वास्थ्य के लिए अत्यधिक हानिकारक होता है और यह व्यक्ति को न तो जीवित रखते है और न ही मरने देते हैं। व्यक्ति प्रतिदिन जीवन—मरण के हिंडोले में झूलता रहता है। अतः इसके लिए एक साथ मिलकर नशा रूपी दानव का समूल नाश करने का संकल्प लें। समाज में नशे के दलदल में फँसे हुए लोगों को निकालने का भी पूर्ण प्रयास करें तभी मानव जीवन का स्वर्णिम प्रभात होगा।

अपने लिए जीना कोई जीना नहीं होता,
बहकने के लिए पीना कोई पीना नहीं होता।
अरे जीते हो तो कुछ कीजिए जिन्दों की तरह,
मुरदों की तरह जीना कोई जीना नहीं होता।। [182]

कारण :—

- बच्चे अपने पिता से या घर के किसी बड़े व्यक्ति से ही यह सब कुछ सीखते है अर्थात पैतृक—संस्कारों की जड़े घर से ही तो विकसित होती है।
- आज अधिकांश व्यक्ति तनाव, असन्तोष व निराशा से छुटकारा पाने के लिए नशीली वस्तु का सेवन करना प्रारम्भ कर देते है।

- कुछ लोग बुरी संगति में पड़कर नशारूपी दलदल में जा फँसते है और व्यक्ति का धन, स्वास्थ्य, समय, सुख–शान्ति, इज्जत एवं शोहरत सब कुछ समाप्त होने लगता है।
- बहुत से लोग शौक–शौक में, जिज्ञासा वश या दोस्तों के दबाव के कारण शादी–विवाह में पी लेते है किन्तु धीरे–धीरे यह शौक आदत में बदल जाता है और आदत लत में बदल जाती है उन्हें पता ही नहीं चलता और जब पता चलता है तब तक बहुत देर हो चुकी होती है।
- हम व हमारे देश की सरकार नशे के दुष्प्ररिणाम को जानते है, लेकिन फिर भी इसकी बिक्री खुलेआम होती है। नशे के पदार्थ आसानी से कही भी मिल जाते है जिससे इसे देख देख कर भी लोग इसकी ओर आकर्षित होते है।

सुझाव :–

- महिलाओं को व घर वालों को शराबी पति या पुत्र का विरोध कर उसे समझाना चाहिए व उसे इससे होने वाले कुप्रभाओं के बारे में बताना चाहिए।
- भारत सरकार को विभिन्न प्रकार की नशीली वस्तुओं की बिक्री पर रोक लगा देनी चाहिए। कुछ राज्यों में सरकार ने इसपर रोक भी लगाई है।
- अगर प्रत्येक परिवार में घर की महिलाएँ व पुरुष इस समस्या के प्रति सतर्क हो जाये तो इस समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है।
- उन परिस्थितियों एवं दोस्तों की संगति से बचे जो शराब सेवन को बढ़ावा देते है।
- नशाखोरी की समस्या के बारे में लोगों को बताने के लिए कैम्प, सभा आयोजित करनी चाहिए। गाँव, शहर सभी जगह लोगों को इस समस्या के बारे में खुलकर बताना चाहिए।
- नशामुक्ति केन्द्र, समझाइश कार्यालय अधिक से अधिक खोलें जाएँ।
- इसके लिए एक साथ मिलकर नशा रुपी दानव का समूल नाश करने का संकल्प लें। समाज में नशे के दलदल में फँसे हुए लोगों को निकालने का भी पूर्ण प्रयास करें तभी मानव जीवन का स्वर्णिम प्रभात होगा

3.4.5 दहेज प्रथा :–

दहेज प्रथा से सम्बन्धित समस्या के प्रमुख लेखक एवं लेखिकाओं के नाम निम्न है –

कथा	काव्य
➢ डॉ. निरूपमा राय– आखिरी खत ➢ डॉ. आशा पाण्ड़ेय–पराया धन ➢ श्रीमती नीलिमा टिक्कू–मातृ शक्ति ➢ कपूर चन्द्र जैन 'बंसल'–रंजिश का एक क्रांतिकारी उदय ➢ चन्द्रसिंह तोमर 'मयंक'–लग्न मण्डप ➢ सिद्धेश्वर–दूल्हा बाजार ➢ उषा यादव–इस बार	➢ श्रीमती सरला मनूचा–दहेज दानव ➢ गीता गुर्जर–दहेज के कारण नारी की स्थिति ➢ किरण शर्मा–दहेज बनाम कफन **लेख** ➢ सुषमा जैन–महिला संगठनों की चुप्पी चिन्तनीय है ➢ हरीश कुमार वर्मा–समाज का अभिशाप दहेज

कथाओं में दहेज प्रथा :–

डॉ. निरूपमा राय अपनी कथा **'आखिरी खत'** के माध्यम से कहती है कि नीरज को जब साक्षी के आत्महत्या की बात पता चली तो वह अपनी पुरानी यादों में खो जाती है और सोचने लगती है कि जब साक्षी की शादी की बात पक्की हुई थी तो वह बहुत खुश थी। लड़का शहर से बाहर नौकरी करता था। दो महीने बाद शादी की तिथि निर्धारित हुई थी। मगर शादी से पहले उन लोगों ने सात लाख कैश और एक मारूति वैन मांगी थी तब उसके पिता ने अपनी जमीन बेच कर उनकी मांग पूरी करनी चाही मगर पैसे कम पड़ने पर लड़के वालो ने शादी की तिथि आगे बढ़ादी कहा कि गाड़ी व शेष पैसे देने पर ही विवाह की तिथि तय होगी। इसी प्रकार मांगो को लेकर लगभग डेढ़ वर्ष से केवल तिथियाँ दी जा रही थी। पैसे की व्यवस्था न होने के कारण साक्षी के पिता को चिंता रहने लगी और अचानक गहरे मानसिक तनाव के कारण हृदयाघात से उनकी मौत हो गई। तब सबका बुरा हाल था मगर शादी की व्यवस्था कैसे करनी है यह प्रश्न सबको परेशान कर रहा था। आखिरकार तय हुआ कि साक्षी के पिता के प्राविडेंट फंड और गाँव की पुश्तैनी जमीन बेचकर किसी तरह साक्षी का विवाह कर दिया जाय मगर एक दिन साक्षी को व उसके घर वालों को पता चलता है कि लड़का किसी और से प्रेम करता है और उसी से शादी करना चाहता है मगर अपने माता–पिता के दबाव में आकर कुछ कर नहीं पा रहा। लड़के के माता–पिता ने अपनी बेटी की शादी के लिए उनसे पैसे लिए थे तथा सारे पैसे उसकी शादी में खर्च कर दिये तब साक्षी के घर वालों ने निर्णय लिया की यह शादी नहीं करवायेंगे और सारे पैसे वापस ले लेंगे। जब साक्षी के घर वाले उनसे पैसे मांगते है तो वह पैसे देने से इन्कार करते है और बाद में देने की बात कहते है। लड़का भी अपनी पसन्द की लड़की से शादी

कर लेता है यह सब साक्षी बरदास्त नहीं कर पाई और अपनी सहेली निरजा को खत लिखकर आत्महत्या कर ली। खत में उसने लिखा था कि **"समाज की नजरों में मैं आज आत्महत्या कर रही हूँ... पर मेरी मौत तो उसी दिन हो गयी थी जब मेरे विवाह की चिन्ता में पापा चल बसे थे। मैं जानती हूँ कि मेरे जाने के बाद किसी को कोई फर्क नहीं पड़ेगा। मेरा दर्द केवल मेरे स्वजनों का दर्द मात्र बनकर रह जाएगा... न दहेज प्रथा के खिलाफ आवाज उठेगी... न बेटी का दर्द कोई समझेगा... मैं आहत हूँ... एक गहरे दंश से उबर नहीं पा रही। अनकही वेदना का भार असह्य हो उठा है... इसलिए कई उम्मीदें साथ लिये जा रही हूँ। पर ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि मैं फिर लड़की के रूप में ही जन्म लूं... जिसमें अपने सारे बिखरे ख्वाब सजा सकूं... पर तब, जब समाज से दहेज का कोढ़ मिट जाये। विकसित समाज का ये बदनुमा दाग धुल जाये। क्या ऐसा स्वर्णिम समय कभी आएगा? अगर हाँ, तो मैं भी आऊँगी और नहीं तो समझना तुम्हारी साक्षी चली गयी...!! बस... अब... आखिरी विदा...।"**[183]

डॉ. आशा पाण्डेय अपनी कथा **'पराया धन'** में अपने विचारों के द्वारा बताती है कि शर्मा जी ने अपनी बेटी रानी का विवाह बड़ी धूम–धाम के साथ पूरा दहेज देकर एक उच्च परिवार में किया था। मगर लड़के वालों का उस दहेज से पेट नहीं भरा तो वह और धन मांगने लगे शर्मा जी द्वारा और धन न दे पाने के कारण लड़के वालों ने रानी पर अत्याचार करना आरम्भ कर दिया और एक दिन मोका देखकर उसकी हत्या कर दी। यह खबर सुनते ही शर्मा जी व उसका पूरा परिवार बिलखने लगा। रानी की वृद्ध माँ रोती हुई कह रही थी **"मार डाला रे मेरी बेटी को, क्या नहीं दिया था दहेज की सारी मांग पूरी की थी, लेकिन जालिमों ने नहीं छोड़ा मेरी रानी को।"** शर्मा जी भी क्रोध करते हुए कहने लगे कि किसी को नहीं छोड़ूँगा सबको जेल में डलवा दूंगा। तब उसकी छोटी लड़की कहती है कि पापा उसकी मौत के जिम्मेदार आप हो, आपको पता था कि वहाँ उसकी क्या हालत थी जब वह यहाँ आई थी तब वापस नहीं जाना चाहती थी यही नौकरी करना चाहती थी मगर आपने समाज की दुहाई देकर उसे वापस वहाँ मरने के लिए भेज दिया आखिर क्यों? क्या बेटियाँ इतनी पराई होती है जो शादी के बाद वापस अपने घर नहीं रह सकती। शर्मा जी रोते हुए कह रहे थे ठीक ही कह रही हो बेटी... मैं ही तुम्हारी बहन, अपनी बिटिया, रानी का हत्यारा हूँ।[184]

श्रीमती नीलिमा टिक्कू अपनी कथा **'मातृ शक्ति'** में कहती है कि जब सौम्या के लड़का होता है तो नर्स कहती है कि बधाई हो आपके लड़का हुआ है ब्याह होने पर ढेर सारा दहेज आएगा, घर भर जाएगा आपका। तब वह कहती है कि अब जमाना बदल गया है पढ़ने–लिखने से लोगों की सोच में फर्क आ गया है। तभी नर्स बोली कौनसा जमाना बदला है, खाती–कमाती बहू के साथ भी दहेज की भरपूर मांग अब भी बनी हुई है। सौम्या ने तभी प्रण कर लिया कि वह अपने बेटे को संस्कारवान बनायेगी और दहेज नहीं लेगी। उसका बेटा भी पढ़–लिखकर एक अच्छा डॉक्टर बन जाता है।

एक दिन वह अपने रिस्तेदार के शादी में जाते है। वहाँ पर वर पक्ष दहेज के रुपयों के लिए अड़ गया था और वर फेरों में बैठने के लिए तैयार ना था क्योंकि उन्हें दहेज में कार या मोटरसाईकिल नहीं मिली थी। सौम्या को पता चला कि वधू तीन बहनों में सबसे छोटी थी दो विवाह करके ही उसके माता–पिता कर्जदार हो चुके थे। सौम्या के पुत्र अक्षत ने उन्हें खूब समझाया मगर वो नहीं माने और दहेज पर अड़े रहे तब सौम्या के परिवार वालों ने अक्षत की शादी उस लड़की से करने का फैसला किया और बिना दहेज एक जोड़ी कपड़े में उनकी शादी कर बहू को अपने घर ले जाते है। वहाँ उसे पुरा लाड़ प्यार मिलता है तथा वह एक सुन्दर पुत्री को जन्म देती है जिससे सभी घर वाले बहुत प्रश्न्न होते है। [185]

कपूर चन्द्र जैन 'बंसल' अपनी कथा **'रंजिश का एक क्रांतिकारी उदय'** में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कहते है कि रामपुर के चौधरी रामलाल का मझला पुत्र राजेश जब से सरकारी नौकरी में एक अफसर बन गया है तब से उसके सम्बन्ध के लिये चौधरी साहब के घर तांता लग गया है। ज्यों–ज्यों सम्बन्ध के लिए व्यक्ति उनके यहाँ आते, चौधरी साहब की मांग बढ़ती जाती थी। हनुमान गढ़ी के मुखिया श्यामलाल यद्यपि आर्थिक स्थिति से कमजोर थे मगर अपनी पुत्री के सुखमय जीवन के लिये उन्होंने अपनी संचित पूंजी के साथ–साथ अपने पैतृक खेत गिरवी रखकर एवं समस्त राशि लेकर उन्होंने अपनी बेटी का तिलकोत्सव बड़ी धूमधाम से कर दिया और विवाह की तैयारी में जुट गया। मगर चौधरी साहब की इच्छित माँग पूरी होने पर भी उनका मन नहीं भरा और विवाह से पहले मुखिया जी को बुलाकर अपनी पत्नी के लिए सोने के कड़े व छोटे बेटे के लिए मोटर साइकिल की मांग कर लेता है। श्यामलाल किसी प्रकार से अपनी पत्नी के कड़े व मकान गिरवी रखकर उनकी इच्छा पुरी कर देता है। और अपनी बेटी की शादी करता है जब यह बात चौधरी के बेटे राजेश को पता चलती है तो वह मुखिया के घर ही रुक जाता है। चौधरी साहब को जब यह पता चला तो वह अपने बेटे से इसका कारण पूछता है तो वह कहता है कि **"रिश्तेदारी सम्बन्ध जोड़ने के लिये होती है न किसी को मिटाने के लिये। जब आपको बहू पसंद थी फिर आपने मनमानी राशि और दहेज क्यों मांगा? क्या आपको पता है कि मुखिया जी ने आपको मुँह मांगी राशि एवं दहेज के लिये अपने सभी पैतृक खेत गिरवी रख दिये हैं। माताजी के सोने के कड़े की पूर्ति के लिये तुम्हारी समधिन ने अपने हाथों के सोने के कड़े उन्हें भिजवा दिये। भैया के स्कूटर के लिये उन्होंने अपना अंतिम एक खेत भी गिरवी रख दिया। परिणाम स्वरूप आपके कारण आपके समधी मुखिया जी आज सड़क पर आ गये है। एक पुत्री के पीछे उन्होंने अपना सब कुछ न्योछावर कर दिया है। पिताजी आपने मेरी शादी नहीं, अपितु आपने अपनी मुँह मांगी रकम लेकर मुझे मुखिया जी को बेच दिया है। गिरवी रख दिया है।"** राजेश की यह सब बाते सुनकर चौधरी जी को अपनी गलती का पश्चतावा होता है और वह उनसे क्षमा मांगकर कहता है कि जब

तक मैं मुखिया जी को पूर्व स्थिति में न ला दूंगा तक तक मैं चेन से नहीं बैठूंगा, यह मेरा निश्चय एवं प्रण है।[186]

अपनी कथा **'लग्न मण्डप'** के माध्यम से **चन्द्रसिंह तोमर 'मयंक'** कह रहे है कि हिमांशु और सुमाली दोनों एक साथ कॉलेज में पढ़ते थे और एक–दूसरे को चाहते थे उनका विवाह भी होने वाला था मगर दुर्भाग्यवश शादी से 10 दिन पहले घर आते समय उसकी गाड़ी का एक्सीडेन्ट हो गया और उसकी मृत्यु हो गई इस खबर से सुमाली को गहरा सदमा लगा और उसे अस्पताल ले जाना पड़ा वहाँ पर एक नर्स ने उसे समझाया और आगे बड़ने के लिए कहा वह समझ गई और घर आ गई। कुछ समय बाद उसकी शादी की बात नये सिरे से प्रारम्भ की गई। निकट संबंधियों के सहयोग से उन्हें बैंक में कार्यरत एक लड़का भी आखिरकार मिल ही गया। शादी में लड़के के बाप ने दहेज न लेने का ऊपरी नाटक करते हुए इतना संकेत अवश्य दिया था कि **''वैसे तो हमें कुछ नहीं चाहिए, किन्तु यदि आप कुछ देना ही चाहेंगे तो वह सभी आपकी बेटी ही का तो होगा।''** इस प्रकार उनकी शादी तय हो गई। शादी के दिन दुल्हा गुस्से से मण्डप के बाहर हो गया और कहने लगा कि यह शादी नहीं हो सकती, मुझे इम्पोरटेड कार चाहिए तभी मैं लग्नमण्डप में बैठूंगा वर्ना बारात वापस जायेगी और ऐठते हुए कहने लगा–**''मैं बैंक में प्रोबेशनरी अफसर हूँ, आखिर मेरी भी तो समाज में कोई इज्जत है।''** तब सुमाली ने कहा **''पापा अभी तो यह कार मांग रहा है कल कुछ और मांगेगा और दहेज के लालच में मुझे उत्पीड़ित भी आजीवन करता रहेगा। जब इसकी हवस नहीं भरेगी तब यह मुझे जिन्दा जला डालेगा। ऐसे लोगों को सबक सीखाना ही होगा वर्ना ऐसे दम्भी और अपराधी व्यक्ति न जाने कितनी मासूम बेटियों के जीवन के साथ खिलवाड़ करेंगे।''** इसलिए तुरन्त पुलिस बुलाकर उन्हें पुलिस के हवाले कर दिया। पुलिस ने उनको दहेज उत्पीड़न कानून के तहत जेल में बन्द कर दिया। मगर फिर वह शादी से वंचित रह गई थी तभी वहाँ एक नवयुवक आता है और कहता है कि मैं इस लड़की से शादी करूँगा वह लड़का बारात के साथ ही आया था उस लड़के के इस निर्णय से सब खुश होते है और उन दोनों की शादी कर उन्हें विदा करते है।[187]

सिद्धेश्वर अपनी कथा **'दुल्हा बाजार'** में अपने विचार प्रकट करते हुए कह रहे है कि सरयू की बेटी किरण की शादी रमेश के बेटे से 75 हजार रुपये दहेज में तय हो गई थी मगर अब उसका बेटा सरकारी डॉक्टर बन गया तो उनकी मांग भी बढ़ गई। रमेश ने साफ–साफ कह दिया कि अब उसे दहेज में तीन–चार लाख रुपये व एक स्कूटर तो जरूर चाहिए। नहीं तो यह शादी नहीं करेंगे। सरयू ने उनके सामने हाथ जोड़े, गिड़गिड़ाया मगर वह लोग नहीं माने और शादी टूट गई बिचारी किरण पर तो दुखो का पहाड़ टूट पड़ा तब से किरण को पुरुषों से नफरत होने लगी तथा उसने कँवारी रहने का निर्णय किया। किरण मानने लगी थी कि **''सब मर्द एक जैसे होते है–स्वार्थी और मक्कार, पैसे के भूखे। पैसे मिल जाएं तो जिस्म को नोचकर खा जाएं।**

प्यार आत्मीयता सब बकवास है, शादी तो सिर्फ पैसे ऐंठने का एक बहाना है।'' सरयू को अपनी बेटी की शादी की चिंता सताने लगी थी क्योंकि उसकी उम्र बढ़ती जा रही थी और उसकी जितनी उम्र बढ़ती दहेज भी उतना ही बढ़ता जा रहा था। अब किरण भी बीएड करके एक स्कूल में शिक्षिका बन गई थी तथा अपने पैरों पर खड़ी हो गई थी। मगर किरण को अपने माता–पिता की जिद के आगे मजबूर होना पड़ा क्योंकि उसके पिता ने उसकी शादी पक्की कर दी थी तब किरण सोचने लगी थी कि ''**पैसे से आदमी खरीदा जा सकता है, उसके माँ–बाप भी अपनी जमीन–मकान और बैंक बैलेंस सब बैचकर उसके लिए पति खरीद रहे है। मुझ जैसी न जाने कितनी लड़कियों के ब्याह के लिए माँ–बाप को अपनी रोजी–रोटी और बसेरे बेचने पड़ते है, तब कहीं उन्हें मांग का सिन्दूर और पुरुषत्व प्राप्त होता है। उसे सचमुच ऐसा लगने लगता है कि यह पुरा समाज एक बाजार है, जहाँ पर दुल्हा यानी सुहाग खरीदा और बेचा जाता है, उसके लिए भी दुल्हा यानी सुहाग खरीदा जा रहा है।''** [188]

अपनी कथा '**इस बार**' के माध्यम से **उषा यादव** एक सास के द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों को अभिव्यक्त कर बता रही है कि जब अपने तीसरे बेटे कि शादी में लड़की वालो से मन–मुताबिक दान–दहेज नहीं मिला तो सास का मुँह फुल गया था तथा वह एक दहकता अंगारा बन गई थी। तब एकांत पाते ही उसकी बेटी ने कहा कि ''**फिक्र क्यों करती हो माँ! मनचाहा दहेज अगली शादी में ले लेना।''** तब वह तमतमाई और कहने लगी अब कौनसा बेटा बाकी है जिसके ब्याह में दहेज लूँगी? तो बेटी कहती है कि बड़े दोनों बेटों के ब्याह में भी तो तुमन दो–दो बार दहेज लिया था। उनकी पहली शादी से ही कौन–सा संतुष्ट हुई थी। पहील बहू के लिए उसके बाप के दिये हुए स्कूटर से पेट्रोल निकाल कर उसको जलाया था और दूसरी के लिए उसके बाप के दिये हुए गैस के चूल्हे सिलेण्डर से काम निकाला था और फिर दोनों की दूसरी शादी करके जमकर दहेज वसूला था। इस बार तो तुम खुद एक दहकता अंगारा हो बहू को उठते–बैठते इतना जलाओगी कि बेचारी किसी कुएं में डूब मरेगी। यह सब सुनकर सास की आँखों में चमक आ गई थी। [189]

काव्य में दहेज प्रथा :–

श्रीमती सरला मनूचा अपने काव्य '**दहेज दानव**' में कहती है कि इस धन के लोभी बाजार में रिश्तों का कोई मोल नहीं है यहाँ पर बेटी वाले हारकर दहेज के लिए खुद को भी तौल देते है। माता–पिता अपनी पाली–पोसी बेटी का कन्यादान करते है फिर सास–ससुर क्यों बहू को पैसों से तौलते है। अगर उन्हें मन चाहा दहेज नहीं मिलता तो शादी के कुछ दिनों बाद ही बहू को मारना–पिटना शुरू कर देते है अर्थात मेहन्दी सुखने से पहले ही ससुराल वाले दहेज के लिए उस पर तरह–तरह के अत्याचार करते है व उनसे दहेज मांगते है। इसीलिए वह कहती है कि–

मिटी नहीं समाज से यदि दहेज विषबेल,
देश को निगल जाएगा समझ सके न यह खेल।[190]

'दहेज के कारण नारी की स्थिति' नामक अपने काव्य में **गीता गुर्जर** कह रही है कि जब लड़की की शादी हो रही होती है तो सब खुश रहते है, मंडप सजा हुआ रहता हैं। मगर उसी वक्त दुल्हा कहता है कि यह दहेज कम है मुझे कार और मोटरसाईकिल चाहिए नहीं तो यह शादी नहीं होगी। यह सुन लड़की के माता–पिता अपनी मजबूरियाँ बताते हुए लड़के के सामने गिड़गिड़ाएँ, मगर वह राक्षस रूपी दुल्हा तो अपनी बात पर अडिग था उसने किसी की नहीं मानी, तब पिता ने अपनी पगड़ी उसके पावों में रख दी मगर लड़का पगड़ी को ठोकर लगा कर बारात वापस ले गया। यह सब देख माता–पिता चल बसे और बेटी अचेत हो गई। वह नजारा सबने देखा कि एक तरफ बारात और दूसरी तरफ दो–दो लाशें जा रही थी अर्थात दहेज के कारण मंडप से दो लाशें उठ रही थी। फिर वह कह रही है–

कितनी बहिनें गंगा की गोदी में सो जाती है,
कितनी ही रेल की पटरियों में लहू बहा जाती है।
कौन कुएं में कूद पड़ी है, कौन गिरी मीनारों से,
इनकी संख्या कौन गिनेगा रोज रंगे अखबारों में।।[191]

अपने काव्य **'दहेज बनाम कफन'** में **किरण शर्मा** एक पिता के दर्द को अभिव्यक्त करते हुए कह रही है कि एक पिता बड़े नाजों प्यार से अपनी बेटी को पालता है, भोला–भाला लड़का देखकर उसकी शादी पक्की करता है और पूरा दहेज देने का वादा करता है ताकि उसकी बेटी अपने ससुराल में खुश रह सके मगर पूरा दहेज न दे पाने के कारण बेटी की शादी टूट जाती है। लाख कौशिशों के बाद भी दुल्हा शादी के लिए तैयार नहीं होता है। इसी दुख मैं वह पिता की बेटी जहर खा लेती है। परिणाम स्वरूप उसकी डोली तो नहीं सजती पर अर्थी जरूर सज जाती है और मेहंदी की जगह होथों में खून रचा दिया जाता है। तब उसके पिता रोते हुए कहते है–

किससे कहूँ! कैसे कहूँ! सुनता यहाँ है कौन,
पत्थर आज समाज का पथ पर पड़ा है मौन।[192]

लेखों में दहेज प्रथा :–

सुषमा जैन अपने लेख **'महिला संगठनों की चुप्पी चिन्तनीय है'** में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कहती है कि आज दहेज का दानव ऐसी बुलन्दी पा चुका है जिसने अनेकों मासूमों की किलकारियों को जन्म लेने से पूर्व ही चीखों में बदल डाला, हजारों नवविवाहितों को अपने जबड़े में फँसाकर निर्ममता से मौत के घाट उतार डाला, लाखों कुँवारियों को दुल्हन बनने से रोक दिया और सैकड़ों माता–पिता को परिवार

सहित आत्महत्या करने पर विवश कर दिया। भले ही यह कहा जाता है कि लड़के–लड़की की शादी तो ऊपर वाला ही तय कर देता है मगर यह सच है कि दुल्हे बढ़ती ऊँची कीमतों पर धड़ल्ले से बिक रहे हैं। **''डॉक्टर–इंजीनियर की 20 लाख और आई.ए.एस. की 50 लाख से बोली शुरू होती है। इस नीलामी में जो सबसे ऊँची बोली लगाकर रकम चुका देता है, वही इच्छित दुल्हा पा जाता है।''** यही कारण है दहेज लोभियों की हवस इतनी बढ़ चुकी है कि वे हिमालय खा जाये, समुद्र पी जाये, तब भी उनकी भूख प्यास ना मिटे और उनकी इस प्रवृत्ति को वे लोग बढ़ावा दे रहे हैं जो हराम की कमाई से ऊपर उठ चुके है अर्थात रहीस लोग तो काले धन से दहेज की मोटी रकम चुका कर दिखावा कर लेते है लेकिन जब दूसरे तबकों पर उनकी नकल करने का दबाव पड़ रहा हो तो उससे अनेकों गंभीर और भयावह समस्याऐं पैदा होना स्वाभाविक है। दूसरे **महिलाऐं ही महिलाओं को दहेज के लिए सबसे अधिक प्रताड़ित करती हैं** चाहे वे ननद के रूप में हो या सास के रूप में। हैरत तो इस बात की है कि जो महिला जीवन भर दहेज के लिए प्रताड़ित होती है वही सास बनते ही दहेज की समर्थक बन जाती है और वही ननद और पति के साथ मिलकर बहू पर जुल्म ढाती है। पति की प्रताड़ना, गृह कलह से तंग घरेलू महिलाओं के लिए तलाक लेना अक्सर संभव नहीं होता, इसलिए उनके पास कलह भरे वैवाहिक जीवन से मुक्ति पाने के तीन ही विकल्प बचते हैं–आत्महत्या, पति की हत्या या फिर गृह त्याग। यही कारण है कि आज ऐसी हजारों महिलाएँ देखने में आती है जो या तो वैधव्य की चादर में लिपटी देश के विभिन्न कारागारों में बन्द कष्ट प्रद जीवन जी रही है या भावशून्य चेहरा लिए खतरनाक कारखानों में मजदूरी की भट्टी में जल रही है या अपने बच्चों के भरण–पोषण के लिए चन्द सिक्कों की खातिर वासना के बाजार में बिकने को विवश है। **दिल दहला देने वाले सरकारी भयावह आँकड़े बताते हैं कि प्रतिवर्ष ऐसी लगभग दस हजार दहेज के लिए की गई हत्याऐं अखबारों की सुर्खियाँ बनती है, दहेज उत्पीड़न की तो अनगिनत ऐसी वारदातें है जो सुलह सफाई के नाम पर दबा दी जाती है।** [193]

हरीश कुमार वर्मा अपने लेख **'समाज का अभिशाप दहेज'** के माध्यम से कहते है वर्तमान समय में भारतीय संस्कृति को विभिन्न कुप्रथायें प्रभावित कर रही है। गरीब परिवार के माता–पिता के लिये अपनी बेटी की शादी करना प्रायः कठिन सा हो गया है। परिणाम स्वरूप कई कन्यायें मौत के मुँह में धकेल दी जाती है। गरीब घर की कन्याओं को आत्मदाह एवं आत्महत्या करने को विवश होना पड़ता है क्योंकि दहेज की मांग इतनी अधिक होती है कि कन्या के परिवार जनों का दीवाला तक निकल जाता है, कम मिलने पर कन्याओं को तरह–तरह की यातनायें दी जाती हैं इस पैशायिक प्रवृत्ति से वर पक्ष की छवि सामने आती है। आज दहेज को समाज का कोढ़ भी कहे तो अतिशयोक्ति नहीं होगी, क्योंकि यह कोढ़ प्रत्येक जाति एवं वर्ग में फैलता जा रहा है, जिस पर नियंत्रण प्राप्त करना आवश्यक है। बजाय कि यह कम हो विकराल रूप धारण

करता जा रहा है। इस देश में जहाँ नारी को लक्ष्मी तुल्य माना जाता है, वहीं पर नारी की दहेज के नाम पर, ऐसी दुर्दशा, निश्चित ही अत्यन्त दुःख की बात है, मानव आज इतना क्रूर क्यों हो गया है? दहेज की प्रथा किसी भी परिवार के लिये उचित नहीं है। यह मानसिक तनाव, द्वंद तथा आन्तरिक क्लेश भी उत्पन्न करती है। समाज में नवीन क्रान्ति लाने के लिये दहेज विरोधी कानून की क्रियान्विति भी नितान्त आवश्यक होगी। अन्त में निम्न पंक्तियाँ यहाँ पर चरितार्थ सिद्ध होगी–

हायरे मानव तू इतना लालची क्यों हो गया?
क्यूँ कन्याओं को जलाया?
क्यूँ अबलाओं पर अत्याचार किया?
जो तेरा वंश बढ़ाने आई, उसे यूंही मार दिया?
सोच यदि इस जगह तेरी बेटी होती,
अब, क्यूँ रोया, क्यों पछताया?
अब भी समझ में नहीं आया। [194]

कारण :–

- अमीर लोगों की तरह दिखावा करना, समाज में अपनी झूठी स्टेटस दिखाकर शादी में ज्यादा से ज्यादा खर्च करना, महँगे तोहफे देना दहेज प्रथा को बढ़ावा देता है।
- अक्सर घर में महिलाएँ ही महिलाओं से दहेज लेने के लिए जोर देती है जिसके कारण दहेज की समस्या उत्पन्न होती है।
- दहेज प्रथा को रोकने के लिए ठोस कानून का अभाव होने के कारण भी दहेज प्रथा को बढ़ावा मिल रहा है।
- अच्छी नौकरी वाला लड़का पाने की होड़ के कारण भी दहेज प्रथा को बढ़ावा मिल रहा है।
- दहेज हत्याओं के प्रति समाज का मौन रहना भी दहेज को बढ़ावा देता है।
- लोगों की कुठिंत विचार धारा कि लड़का धन लेकर आता है।
- सदियों से चली आ रही दहेज परम्परा के कारण भी यह समस्या विद्यमान् है।

सुझाव :–

- सबसे पहले हमे अपनी सोच में बदलाव लाने की जरुरत है। हमे लड़कियों को लड़कों के बराबर समझना है। लड़कियों को लड़कों से किसी भी तरह छोटा महसूस नहीं होने देना है। अगर ऐसा हुआ तो लड़कियों को ससुराल जाने के लिए दहेज के साथ की जरुरत नहीं होगी।
- समाज के सभी लोग मिलकर यह निर्णय करे कि वे न दहेज लेंगे और न देंगे।

- दहेज माँगने वाले दुल्हों की बरातों को अपने दरवाजों से वापस लौटाकर नया आदर्श प्रस्तुत किया जाए।
- इस प्रथा को दूर करने के लिए समाज में सभी जगह सामूहिक विवाह प्रणाली अपनाई जाए। यह विवाह प्रणाली कई जगह अपनाई भी जा रही है।
- अपनी बेटी को नियमित रूप से शिक्षण करावें ताकि वह अपने स्वयं के पैरों पर खड़ी होकर स्वयं का व्यवसाय या नौकरी कर सके।
- समाज में नवीन क्रान्ति लाने के लिये लड़कियों को अब आगे आकर उन्हें, दहेज मांगने वाले वर पक्ष का बहिष्कार करना चाहिए।
- इस कुप्रथा को समूल नष्ट करने के लिये हमारे युवा वर्ग को आगे आकर दहेज की प्रथा को दूर रखने का संकल्प ग्रहण करना होगा व समाज में धन के लोभी व्यक्तियों के विचारों को परिवर्तित करने में अपनी सक्रिय भूमिका निभानी होगी।
- अमीर लागों की तरह दिखावा ना करने का संकल्प ले तथा अपनी सुविधानुसार विवाह करे।
- दहेज प्रथा को रोकने के लिए कानून व्यवस्था में बदलाव लाकर उसे और अधिक सख्त करने की आवश्यकता है।

3.4.6 पर्यावरण प्रदूषण :–

पर्यावरण प्रदूषण से सम्बन्धित समस्या के प्रमुख लेखक एवं लेखिकाओं के नाम निम्न है–

कथा	लेख
➢ पवन चौहान–पश्चाताप ➢ नीलिमा टिक्कू–बेघर **काव्य** ➢ डॉ. राम शर्मा–वृक्ष की आवाज ➢ राष्ट्रसंत उपाध्याय श्री गणेश मुनि शास्त्री–इस धरती पर...! ➢ सिद्धेश्वर–कब्र पर बैठी रो रही दम तोड़ रही आशा ➢ शुभम सिंह–गूंज तबाही की ➢ डॉ. वल्ली उल्लाह खां फरोग–अतिभोग	➢ डॉ. शशि प्रभा जैन–पर्यावरण–संरक्षण में महिलाओं की भूमिका ➢ प्राची प्रवीण माहेश्वरी–विध्वंसक पथ पर अग्रसर मानव ➢ राजेन्द्र प्रसाद जोशी–जैन धर्म और पर्यावरण संतुलन ➢ श्रीमती मिथलेश जैन–पर्यावरण की सुरक्षा–महिलाओं की भागीदारी ➢ श्रीमती मिथलेश जैन–भगवान महावीर और पर्यावरण ➢ शुभदा पाण्डे–पर्यावरण संचेतना ➢ श्रीमती कृष्णा बुरड़–धरा की खूबसूरती कायम रहे ➢ रश्मि अग्रवाल–पर्यावरण और संतुलन ➢ साध्वी प्रशंसाश्री 'मोक्षा'–हमारा वातावरण एवं मानवीय संवेदनाएँ ➢ आर. के. भारद्वाज–पर्यावरण और पूर्वजों का पशु–पक्षी–वृक्ष प्रेम

कथाओं में पर्यावरण प्रदूषण :–

पवन चौहान अपनी कथा **'पश्चाताप'** के माध्यम से कहते है कि विद्युत शहर में रहकर नौकरी करता था वह कभी कभार अपने गाँव अपने दोस्तों से मिलने आता था। मगर इस बार जब वह गाँव आया तो गाँव वाले अपनी जमीन, ईट–भट्टी वालों को ईटे बनाने के लिए बेच रहे थे। जब विद्युत को यह बात पता चली तो उसने इसका विरोध किया और इससे होने वाले नुकसान व पर्यावरण प्रदूषण के बारे में गाँव वालों को बताया मगर गाँव वालों के मन में तो लालच था वह तो बिना मेहनत के मोज–मस्ती करना चाहते थे। इसी कारण गाँव वालो ने विद्युत का विरोध कर दिया और वह वापस शहर चला गया। अब धीरे–धीरे भट्टों वालों ने उनकी जमीन पर भट्टियाँ बना दी और वहाँ काम करने के लिए बाहर से लोग आने लगे। देखते ही देखते चारों और प्रदूषण फैलने लगा, सड़क पर गाड़िया दोड़ने लगी, पेड़ काट दिये गये, खेतों का पानी सूखने लगा, कई प्रकार की बिमारियाँ फैलने लगी, प्रदूषण से परेशान होकर गाँव वाले गाँव छोड़कर जाने लगे, विद्युत का दोस्त दिलीप भी गाँव छोड़कर शहर में चला गया और वहाँ पर मजदूरी करने लगा। एक दिन काम से लोटते समय उसका एक्सिडेन्ट हो गया तभी विद्युत ने उसे देख लिया और उसको अस्पताल लेजाकर उसका इलाज करवाया तथा शहर आने का कारण पूछा उसने गाँव की सारी कहानी सुना दी। विद्युत ने गाँव के हालात के बारे में सुनकर दिलीप को आसवासन दिया कि वह गाँव जाकर सब ठीक कर देगा और गाँव वालों को समझाकर उन ईट के भट्टों का विरोध करेगा और उनको बन्द करवायेगा ताकि गाँव में फिर से पहले की तरह हरियाली फैले और वहाँ से प्रदूषण समाप्त हो जाए। यही निर्णय कर दूसरे दिन विद्युत व दिलीप गाँव के लिए निकल गये थे। [195]

अपनी कथा **'बेघर'** के माध्यम से **नीलिमा टिक्कू** जंगल के जानवरों की दशा का वर्णन करते हुए कहती है कि जंगल के जानवर आपस में विचार–विमर्श करते हुए कह रहे है कि आज इंसान अपनी लालच के लिए जंगल काट रहे है तथा पेड़ों के साथ–साथ कई जानवरों का शिकार भी कर रहे है। जिसके परिणामस्वरूप वन के अभाव में जानवर शहरों की तरफ जा रहे है। मगर यहाँ भी इंसान उनके पीछे पड़ा है। आज कई बन्दर, शेर, खरगोश आदि भूखे–प्यासे पानी की तलाश में शहर की तरफ आ रहे है। वही जानवर कह रहे है कि काश इंसान सोचे कि जंगल उजाड़ने से, हरे–भरे वृक्ष काटने से वो स्यवं अपने लिए भी कितनी बड़ी समस्या पैदा कर रहा है। वृक्ष नहीं रहेंगे तो बारिश ना होगी। शुद्ध वायु ना रहेगी। इंसान ने अपनी हरकतों से पर्यावरण को वैसे ही इतना खराब कर लिया है और वृक्षों के अभाव में तो पर्यावरण की सुरक्षा संभव नहीं है। इसीलिए जानवर इंसानों से कह रहे है कि पेड़ काटने में नहीं बल्कि उगाने में ही जानवरों और इंसानों दोनों प्राणियों की भलाई है क्योंकि यह काम इंसान ही बखूबी कर सकते है और संसार के सभी प्राणियों को बेघर होने से बचा सकते है।[196]

काव्य में पर्यावरण प्रदूषण :—

डॉ. राम शर्मा अपने काव्य **'वृक्ष की आवाज'** के माध्यम से एक वृक्ष के भावों को व्यक्त करते हुए बता रहे है कि एक वृक्ष मनुष्य से कह रहा है कि हे मनुष्य मुझे काटने के लिए तुमने जो कुल्हाड़ी उठाई है वह मुझ पर उठी या तुम पर, तुम स्वयं यह विचार करों? तुम मुझे काटने जा रहे हो या स्वयं को? क्या तुमने इसका कभी आत्म विश्लेक्षण किया है? क्या अपनी प्रदूषित भावनाओं पर नियंत्रण किया है? हे मानव तुमने मेरे उपकारों का क्या यही सिला दिया है जो हमारे उपकारों के बदले में हमें दुख की दुख मिला है। फिर वह कहता है—

जिन्होंने तुम्हारा अस्तित्व बनाया,
तुमने उन्हें ही दुख पहुँचाया,
वायु, जल, पृथ्वी सभी को प्रदूषित किया,
साथ ही प्रदूषित किया स्वयं को भी। [197]

राष्ट्रसंत उपाध्याय श्री गणेश मुनि शास्त्री अपने काव्य **'इस धरती पर...!'** के माध्यम से कह रहे है कि आज हमारे चारों और विषैली हवाएँ चल रही है जिससे हमें सांस लेने में परेशानी आ रही है। मनुष्य अपना विवेक खोकर गलत कार्य कर देता है जिससे वह बाद में पछतावा है। आज हमारी वायु में घुटन भर जाने के कारण उससे जी मिचलता है। हमने वायु में इतना जहर घोला है कि उससे आसमान के तारे भी अपनी चमक खो गये है और नदियों में प्रदूषण फैलाने के कारण वह भी सागर में गिरकर रोती है। अतः हम आज महाविनाश की ओर जा रहे है तथा इस धरती पर चारों तरफ धुँआ—धुँआ देख कर हम घबराने लगे है। अन्त में वह कहते है—

अंबर में विष भरा हुआ है,
सागर भी जहरीला है।
आज हवा का आंचल भी,
विष से गीला—गीला है। [198]

प्रकृति के साथ किये गये छेड़—छाड़ के कारण प्रकृति द्वारा असन्तुलित होने से उत्पन्न होने वाली विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं को लेकर **सिद्धेश्वर, शुभम सिंह व डॉ. वली उल्लाह खां फरोग** ने अपने—अपने काव्य में एक जसै विचार प्रस्तुत किये है जो इस प्रकार है—

सिद्धेश्वर अपने काव्य **'कब्र पर बैठी रो रही दम तोड़ रही आशा'** में कह रहे है कि हमारे जीवन की परिभाषा इस तरह बदल रही है कि अब इंसान की आशाएँ दम तोड़ने लगी है वह बैठ कर अपने किये पर आँसू बहा रहा है। क्योंकि यह प्रकृति इंसानों द्वारा किये गये कार्यों से नाराज होकर उन पर जुल्म ढ़ा रही है वह कभी

सुनामी के रूप में तो कभी भूकंप के रूप में इंसानों पर अपना गुस्सा निकाल रही है। क्योंकि इंसान अपने धर्म–ईमान और जीवन की सादगी को भूल कर गंगा नदी की पूजा करने के बजाए उसे व पर्यावरण को प्रदूषित करने लगे है। कई धन के लोभी पापी अपने स्वार्थ के लिए प्रकृति का सोदा कर रहे है जिसे कानून भी नहीं सुधार पा रहा। इसी कारण प्रकृति क्रोधित होकर उन पापियों को सजा दे रही है मगर इसमे उन पापियों के साथ बेकसूर भी पीसा जा रहा है इसलिए कवि कह रहे है–

बेकसूर भी पीसा जा रहा, करो देवता से तुम विनती।
जरा धीरे–धीरे गिने, सृष्टि को खत्म करने वाली गिनती।। [199]

सुभम सिंह अपने काव्य **'गूंज तबाही की'** में कह रहे है कि मानव द्वारा पृथ्वी पर किये गए प्रदूषण से पृथ्वी असंतुलित हो गई और मानव को अपने दुस्साहस के लिए प्रकृति ने उसे सजा देने का ठान लिया क्योंकि मानव ने पर्वतों को काटकर सड़कें बना दी तथा नदियों के तट पर घर बसा लिये और उसे प्रदूषित किया इसिलिए प्रकृति ने विराट महारूद्र अवतार लेकर देवभूमि में उथल–पुथल मचा दी और समस्त वस्तुओं को अपनी गोद में समा लिया। इस प्रकार उसने मानव को सावधानी बर्तने का संदेश दिया और कहा कि अगर वह अभी भी नहीं समझा तो मैं फिर से यूँ ही गरज उठूंगी और तुम सबको अपनी जान से हाथ धोने पड़ेंगे। यह देख मानव कहता है–

सिखा गई एक पाठ यह घटना,
अब कभी न प्रकृति को असंतुलित है करना।
आजीवन याद रहेगी यह त्रासदी,
जिसे भूल न पाएगी यह मानव जाति।। [200]

डॉ. वल्ली उल्लाह खां फरोग भी अपने काव्य **'अतिभोग'** में कह रहे है कि मानव अपनी दादागिरी दिखाते हुए जंगलों को काट रहें है और नदियों के तट पर घर बना रहे है तथा गन्दगी बिखेर रहे है। परिणाम स्वरूप नदियाँ उफान भर रही है और अपने तट पर बसे लोगों को अपने साथ बहा ले जाती है। ताकि मानव अपना लालच छोड़कर सही दिशा में आगे बढ़े और प्रकृति का दुरुपयोग ना करे। वह अन्त में कह रहे है–

संध्या हो चली है थकी थकी सी दिख रही जिन्दगी है,
चढ़ा सूर्य फिर ढला सूर्य करता खुदा की बन्दगी है। [201]

लेखों में पर्यावरण प्रदूषण :–

डॉ. शशि प्रभा जैन अपने लेख **'पर्यावरण–संरक्षण में महिलाओं की भूमिका'** में कहती है कि मनुष्य पर्यावरण का एक महत्त्वपूर्ण घटक है और उसने अपने सर्वाधिक बुद्धिबल के कारण पर्यावरण को विशेष रूप से प्रभावित किया है। विगत 50 वर्षों में पर्यावरण प्रदूषण समस्या जितनी विकट हुई है, उतनी पिछले 400 वर्षों में भी नहीं हुई।

इसका कारण है कि मनुष्य ने प्रकृति का अत्यधिक दोहन करना शुरू कर दिया है। कारण स्पष्ट है–बढ़ती हुई जनसंख्या और प्रति व्यक्ति बढ़ती हुई आवश्यकताऐं। कृषि, उद्योग, आवास, छोटे–बड़े बांधों के लिये क्षेत्र विस्तार वनों को काटकर ही किया गया है। इससे भूमि कटाव, बाढ़, जलवायु की विषमाताएं निरन्तर बढ़ रही हैं। वायु मण्डल में कार्बन–डाई–आक्साइड की मात्रा बढ़ रही है और जीवनदायिनी आक्सीजन की मात्रा कम हो रही है। वस्तुतः आज जितनी भी समस्याएँ है उसका प्रमुख कारण है नितांत व्यक्तिगत–सोच, परिणामतः व्यक्ति स्वार्थान्ध हो गया है। वह अपने ही पारिवारिक, सामाजिक राष्ट्रीय एवं प्राकृतिक पर्यावरण से कट गया है, संवेदनहीन हो गया है। अतः सृष्टि–संचालिका, जगत जननी, संस्कृति–अधिष्ठात्री नारी पर्यावरण संरक्षण की आधार शिला भी बन सकती है। महिलाऐं यहाँ अपने प्रकृति–प्रदत्त गुण–दया, ममता–क्षमा, शील सौन्दर्य, त्याग, करुणा, सहिष्णुता आदि जैसे मानवीय गुणों का उदातीकरण करती हुई परिवार को ही नहीं, समाज को भी स्वर्ग बनाने की क्षमता रखती हैं तो वहीं नकारात्मक सोच और अपने जघन्य विकृत रूप से विनाश का कारण भी बन सकती है।[202]

प्राची प्रवीण माहेश्वरी अपने लेख **'विध्वंसक पथ पर अग्रसर मानव'** में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कहती है कि 20 वीं सदी में मानव की सभ्यता के विकास में चरम सीमा पर उन्नति हुई है पर एक ओर जहाँ लोगों में जागरूकता आयी वहीं दूसरी ओर मृत्युदर घटने व जन्म दर बढ़ने से जनसंख्या भयंकर विस्फोट का रूप धारण कर चुकी है। इस निरन्तर बढ़ती जनसंख्या ने जीवन के अनेक पहलुओं को छुआ है और सबसे ज्यादा प्रभावित हुआ है पर्यावरण जिसने पर्यावरण सुरक्षा नामक विषय को आज वैकल्पिक श्रेणी से उठाकर अनिवार्य श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया है। इस बढ़ती जनसंख्या के जीवन यापन के लिये यातायात साधनों में एक बाढ़ सी आ गयी है। मोटर वाहन इसमें अहम् भूमिका निभा रहे है। आजादी के बाद से ही भारत के सामाजिक व आर्थिक विकास में मोटर वाहनों का योगदान दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है पिछले 30 वर्षों में मोटर वाहनों की संख्या में 5 गुना वृद्धि हुई है मोटर वाहनों की इस बढ़ती संख्या ने पिछले दशकों में कई गंभीर पर्यावरणीय समस्यओं को जन्म दिया है। वायु प्रदूषण की समस्या उनमें से एक है। कई शहरों में तो प्रदूषण कारकों के स्तर **'राष्ट्रीय वायु गुणवत्ता मानक'** के स्तर को पार कर रहे है जो कि एक खतरनाक संकेत है। आंकड़ों से पता चलता है कि महानगरों में कुल प्रदूषण का एक बड़ा भाग मोटर वाहनों से उत्पन्न प्रदूषण है जो वायु की गुणवत्ता को लगातार गिरा रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार शहरों में दिन प्रतिदिन बढ़ती हृदय, कैंसर की बिमारियों का प्रमुख कारण निरन्तर बढ़ता वायु प्रदूषण है। आज स्थिति इतनी भयानक हो चुकी है कि अगर भारत के प्रत्येक छोटे–बड़े शहरों में लोगों ने ईमानदारी से एकजुट होकर प्रयास नहीं किया तो वह दिन दूर नहीं जब दूषित होती वायु के कारण सांस लेना भी मुश्किल हो जायेगा। [203]

अपने लेख **'जैन धर्म और पर्यावरण संतुलन'** में **राजेन्द्र प्रसाद जोशी** कहते है कि आज विश्व पर्यावरण को लेकर काफी चिंतित है। तापमान निरंतर बढ़ने, ब्लैक हॉल में निरंतर वृद्धि होने, ओजोन परत के छेद में हो रही वृद्धि चिंता का प्रमुख कारण है। प्रकृति के अमर्यादित दोहन के कारण प्राकृतिक संतुलन गड़बड़ा रहा है। वृक्षों के लगातार काटते रहने के कारण वन सिकुड़ रहे है। नदयाँ भी प्रदूषित हो रही हैं। महासागर भी प्रदूषण से अछूते नहीं रह गए है। कभी हरित क्रांति का आधार समझे जाने वाले यूरिया जैसे उर्वरक कृषि योग्य भूमि के बंजर होने का मुख्य कारण है। जल के अत्यधिक दोहन के कारण जल स्तर में अत्यधिक गिरावट आ रही है। पेयजल की समस्या विकराल रूप ले रही है। प्लास्टिक के अत्यधिक उपयोग से पर्यावरण काफी दूषित हो रहा है। पैदावार बढ़ाने के लिए कीटनाशकों का प्रयोग बहुतायत मात्रा में होने लगा है जिससे किसानों में कैंसर जैसी घातक बीमारी तेजी से फैल रही है। जैन धर्म के अपरिग्रह और अहिंसा के आधार पर पर्यावरण को सुरक्षित एवं संतुलित रखा जा सकता है। महावीर ने कहा है–जो सूक्ष्म जीवों के सुख–दुःख जानता है वही अपने सुख–दुख को जानता है। अतः प्रकृति संतुलन को बनाए रखने के लिए वनस्पति को हिंसा से बचाना आवश्यक है। वन का संहार होने से वर्षा का संतुलन भी बिगड़ गया है। पर्यावरण की रक्षा के लिए वनस्पति के प्रति अहिंसा आवश्यक है। उपभोक्तावाद की संस्कृति के कारण प्रकृति से अधिकतम प्राप्त करने की होड़ मच रखी है। जैन दर्शन के अहिंसा और अपरिग्रह जैसे सिद्धान्तों को अपनाकर हम पर्यावरण को संरक्षित रख सकते है।[204]

श्रीमती मिथलेश जैन अपने लेख **'पर्यावरण की सुरक्षा–महिलाओं की भागीदारी'** के माध्यम से कह रही है कि पर्यावरण की सुरक्षा और उसका संतुलन निःसंदेह ही वैश्विक समस्या है जिससे पृथ्वी पर प्राणिमात्र का अस्तित्व खतरे में है। मनुष्य को एक भ्रांति है कि प्रकृति की प्रत्येक वस्तु उसके उपयोग के लिए बनी है। यही कारण है कि वह प्रकृति का शोषण, दोहन, छेड़छाड़ अपने निजी हितों के लिए कर रहा है और नतीजा यह है कि पर्यावरण का संतुलन बिगड़ रहा है। विश्व में बढ़ते बंजर इलाके, फैलते रेगिस्तान, कटते जंगल, लुप्त होते पेड़ पौधे आदि जीव जंतु की प्रजातियाँ, प्रदूषित होता जल, गिरता हुआ जलस्तर, प्रदूषित हवा, असमय आंधी एवं वर्षा, हर वर्ष बढ़ती बाढ़ एवं सूखे का प्रकोप, ग्लोबल वार्मिंग इत्यादि इस बात के साक्षी हैं कि हमने धरती और पर्यावरण के साथ दुर्व्यवहार किया है। अपने देश की बात करें तो हाल ही के सर्वेक्षण के अनुसार सतह का 80 प्रतिशत भाग बुरी तरह प्रदूषित है और भूजल का स्तर प्रतिवर्ष निरंतर गिर रहा है। हमारी जीवन दायिनी नदियों को उद्योगों के कचड़ा, सीवर, रासायनिक कचड़े ने जहरीला बना दिया है। पेड़ पौधे, बागवानी और कृषि को अवस्थापित कर बढ़ता शहरीकरण, पहाड़ों का खनन, सिमटती नदियाँ, जनसंख्या विस्फोट, भूगर्भ व सागरों में आणविक विस्फोट, ओजोन पर्त का कम होना इत्यादि मानव जाति को विनाश की ओर इंगित कर चेतावनी दे रहे है। अतः पर्यावरण की

सुरक्षा में महिला वर्ग की भी बराबर की भागीदारी होना आवश्यक है। क्योंकि बच्चों में प्रारंभ से ही प्रकृति के प्रति प्रेम और आदर की भावना का संचार माँ ही कर सकती है। युवा वर्ग में पर्यावरण की बेहतर समझ के लिए प्रारंभिक शिक्षा माँ द्वारा घर में ही दी जा सकती है। इस प्रकार महिलाएँ अपनी भागदारी से पर्यावरण की रक्षा कर सकती है।[205]

अपने दूसरे लेख **'भगवान महावीर और पर्यावरण'** में वह कहती है कि आज विश्व अशांति के कारण विनाश के कगार पर पहुँच गया है और इसका प्रमुख कारण है हमारी असीमित इच्छाएँ, आवश्यकतायें एवं हिंसक जीवन शैली। जिसके कारण अहिंसा करुणा, त्याग, सहिष्णुता, मैत्री और सदाचार के भाव समाज से लुप्त हो गये है वहीं व्यक्ति के स्वार्थी बनने के कारण मनुष्य न केवल मनुष्य का वरन् प्रकृति का अंधाधुंध दोहन करने के कारण पर्यावरण प्रदूषण फैल रहा है। वहीं भगवान महावीर के दर्शन में प्रकृति के सभी जीवधारियों से स्नेह करने का संकेत है। उनके अनुसार पंच स्थावर जीवों, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं वनस्पतिकायिक जीवों के यथाशक्ति घात न करने एवं उनके प्रति करुणापूर्ण व्यवहार रखते हुए जीवनयापन किया जाये तो पृथ्वी पर पर्यावरण प्रदूषण की संभावनायें ही नहीं रहेगी। आज पर्यावरण प्रदूषण विश्व की सबसे बड़ी चुनौती है। आज सम्पूर्ण विश्व, भूकम्पों, भूस्खलनों, जलवायु प्रदूषण और जीव जंतु के असामयिक काल से स्तबध है। इसका प्रमुख कारण है धरती और पर्वतों का मौद्रिक लाभ के लिए दोहन। ऐसे में भगवान महावीर के सिद्धान्तो की विवेचना आवश्यक है जिनका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव विश्व के पर्यावरण पर पड़ता है। [206]

शुभदा पाण्डे अपने लेख **'पर्यावरण संचेतना'** में कह रही है कि नदियों की बात की जाए तो आज गंगा, यमुना सहित सभी नदियाँ प्रदूषण की भयंकर त्रासदी से गुजर रही है। इनका स्वरूप सिकुड़ कर नाले जैसा हो गया है, नगर का मैला उसी में प्रवाहित होने से जल विषैला–सा होता जा रहा है। भारत ही नहीं आज विश्व की अनेक नदियाँ खतरे में जी रही है। इनको बचाने के लिए कई अभियान चले किन्तु सफलता नहीं मिल रही। 17 सितम्बर को 'गंगा बचाओं' राष्ट्रीय अभियान का श्रीगणेश किया गया, लेकिन प्रतिफल कोई विशेष सार्थक नहीं रहा। वनों की दशा भी बांझपन की शिकार होती जा रही है। हम अपनी सभ्यताजन्य भौतिक आवश्यकताओं हेतु उन्हें काटते जा रहे है, जंगलों की हरीतिमा, कंकरीट के जंगलों में परिवर्तित होती जा रही है, और हम अपने ही पाँव पर कुल्हाड़ी मारते जा रहे है। वनों के कटने से इसमें रहने वाले अनेक पशु–पशियों की प्रजातियाँ भी विलुप्त होती जा रही है। कई प्राणी अब देखने को नहीं मिलते। अतः वृक्षों को लगाना, समृद्ध करना और उसके महत्त्व को एक जन जागरण के रूप में प्रस्तुत करना हमारा प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए, क्योंकि वे हमारी सांस है, हमें ऑक्सीजन प्रदान करते है। पर्यावरण संतुलन में प्लास्टिक प्रयोग की व्यवस्था भी विशेष विनाशक रूप ले चुकी है। यह न सड़ती है, न गलती है, धरती के वक्षस्थल पर पड़ी उसकी जैविक ऊर्जा का शोषण करती रहती है। विस्तृत क्षेत्र में

इसका परसार हो चुका है हम सभी इसके दुष्प्रभावों को जानते है, किन्तु इसके प्रयोग पर प्रतिबंध नहीं लग पा रहा है जिससे वायवीय विस्फोट की संभावना बढ़ती जा रही है। अतः इसके किसी भी रूप में प्रयोग को वर्जित करना चाहिए।[207]

श्रीमती कृष्णा बुरड़ अपने लेख **'धरा की खूबसूरती...कायम रहे'** के माध्यम से कह रही है कि एक जमाना था जब घर के बाहर या आस–पास आम, नीम, अमरूद के पेड़ों पर बच्चों की टोलियाँ शरारते किया करती थी। घर के बाहर पशु–पक्षियों के झुंड भी छाँव में ड़ेरा जमाये रहते थे। पेड़े–पौधे के सुगंधित फूलों की भीनी–भीनी खुशबू घर को महका जाती थी पर जैसे–जैसे घरों के आस–पास सीमेंट की इमारते व मकान खड़े होते गये, वैसे–वैसे पेड़–पौधे भी हटा दिये गये। पक्षियों का कलवर बंद हो गया। कम्प्यूटर क्रांति ने तो माहौल ही बदल दिया, परिणाम शुद्ध वायु नहीं मिलती बल्कि प्रदूषण से बचने के लिए अब घरों के खिड़की–दरवाजों को भी बंद रखा जाता है। इस परिस्थिति के जिम्मेदार हम स्वयं हैं। हमने अपनी जीवन शैली कुछ ऐसी बना ली है, जिसमें पृथ्वी को नुकसान पहुँचाने के सिवाय कुछ नहीं हो रहा है। आज बढ़ती जनसंख्या, तपती धरती, पिघलते ग्लेशियर, घटते जंगल, बंजर होती जमीन, खत्म होते संसाधन आदि के कारण पर्यावरण प्रदूषण बढ़ता जा रहा है जिससे कई प्रकार की स्वास्थ्य सम्बन्धी बिमारियाँ उत्पन्न हो रही है जो मानव जीवन के लिए हानिकारक है। अतः हमें मिलकर यह शपथ लेनी चाहिए कि हम कोई भी ऐसा कार्य नहीं करेंगे जिससे इस सुंदर धरा को नुकसान पहुँचे और अगर ऐसा कोई काम करना पड़े तो उसके नुकसान को पूरा करने के लिए हम उचित कदम उठायेंगे।[108]

अपने लेख **'पर्यावरण और संतुलन'** के माध्यम से **रश्मि अग्रवाल** कह रही है कि मनुष्य अपनी प्रारम्भिक अवस्था में जंगलों में फूल–फल खाकर व जानवरों के मांस का भक्षण कर जीवन व्यतीत करता था। पर जैसे–जैसे समाज में सभ्यता का विकास हुआ, लोग कबीलों के रूप में एक दूसरे से परिचित होने लगे, आवश्यकताएँ बढ़ने लगी, रहन–सहन के तरीकों, रीति–रिवाजों में परिवर्तन होने लगे तब समाज में व्यक्ति की जीवन–शैली में भी बदलाव आने लगा जिसके कारण प्रदूषण भी विकसित होने लगा व इसी से पर्यावरण भी प्रभावित होने लगा क्योंकि हमारे चारों ओर जो भी जीवित अथवा निर्जीव वस्तुएँ विद्यमान है उन सभी के मिश्रण से पर्यावरण निर्मित होता है। पर्यावरण का असंतुलन होता है तब इसका प्रभाव सभी देशों पर पड़ता है इसलिए पर्यावरण की समस्याओं की ओर सभी का ध्यान केन्द्रित करने के लिए **5 जून सन् 1977** को एक विशेष दिन **'पर्यावरण दिवस'** के नाम से घोषित किया गया ताकि इस अन्तर्राष्ट्रीय समस्या व चिन्ता के विषय को प्रत्येक नागरिक का प्रथम विषय बनाया जा सके। पर्यावरण असंतुलन के कुछ खास बिंदुओं पर अगर हम नज़र डाले व इनके द्वारा होने वाले प्रभाव को समझ कर जीवन यापन करें तो शायद प्रदूषित वातावरण से राहत मिले जैसे–वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, कीटनाशक दवाओं का छिड़काव, औद्यौगिक कारखाने,

विकिरण प्रदूषण, कूढ़े–कचरे का प्रदूषण, शोर, तम्बाकू, धुम्रपान, प्लास्टिक व पॉलिथीन का प्रयोग। उपरोक्त वस्तुओं से जुटाए गए सभी साधन अदृश्य रूप से प्रदूषण को बढ़ावा देकर पर्यावरण पर प्रभाव डालते है। अतः देश के प्रत्येक नागरिक को जागरूक होकर सिर्फ वर्ष में एक दिन ही नहीं वरन प्रत्येक दिन–पर्यावरण के प्रति सचेत रहकर प्राकृतिक वस्तुओं का प्रयोग करना चाहिए प्रत्येक दिन–पर्यावरण के प्रति सचेत रहकर प्राकृतिक वस्तुओं का प्रयोग करना चाहिए व जब तक जन–जन में चेतना का प्रभाव न हो तब तक जन आन्दोलन के रूप में कार्य करते हुए हम सभी को संतुलित पर्यावरण का सपना देखते हुए प्राकृतिक धरोहरों की रक्षा व उचित प्रयोग के प्रति सावधान रहकर कार्य करते रहना होगा।[209]

साध्वी प्रशंसाश्री 'मोक्षा' अपने लेख **'हमारा वातावरण एवं मानवीय संवेदनाएँ'** में पर्यावरण के कारणों पर प्रकाश डालते हुए कह रही है कि आज मानव अपनी झूठी प्रसिद्धि, मान, सम्मान, पद एवं प्रतिष्ठा के लिए इतना गिर चुका है कि शादियों, पार्टियों में करोड़ों रुपये बरबाद करके पटाखें छोड़ता है, बड़े–बड़े स्पीकर्स लगाता है जिससे वायु व ध्वनि प्रदूषण फैलता हैं। साथ ही अनेक प्रकार का झूठा भोजन कूड़े–करकट तथा नदी–नालों में फेक दिया जाता है। जिससे वह भोजन सड़–गल कर न केवल वायु को प्रदूषित करता है, बल्कि जल–प्रदूषण को भी बढ़ावा देता है। मानव भौतिक सुख–सुविधाओं का इतना आदी बन गया है कि कार पर कार खरीदता जा रहा है, किन्तु उससे होने वाले प्रदूषण की चिंता नहीं कर रहा है। परिणाम स्वरूप कारों से निकलने वाले धुँवें से कई बीमारियाँ फैल रही है। बढ़ते औद्योगीकरण द्वारा न केवल वायुमंडल दूषित हो रहा है, न केवल पानी दूषित हो रहा है, वरन मनुष्य! का मन भी दूषित हो रहा है। मन इतना तनावग्रस्त और कमजोर हो रहा है कि अब उसमें सहन करने की क्षमता क्षीण होती जा रही है। अब मनुष्य यदि आज नहीं संभला तो आने वाली भावी पीढ़ियाँ पानी की एक बूंद और भोजन के एक कण के लिए भी तरस जाएगी। अतः बढ़ते हुए इन शारीरिक एवं मानसिक प्रदूषणों की रोकथाम के लिए हमें सामूहिक रूप से विचार करना चाहिए। सरकार, प्रजा उच्च पदासीन प्रतिष्ठित व्यक्तियों को आगे आकर इसके रोकथाम के प्रयास करने चाहिए।[210]

आर.के. भारद्वाज अपने लेख **'पर्यावरण और पूर्वजों का पशु–पक्षी–वृक्ष प्रेम'** में कहते है कि आज बढ़ते उद्योग धंधे, कल कारखानें, रिहायशी मकानों के कारण बड़े पैमाने पर पेड़ काटे गये तो जंगल घटते गये, प्रकृति का संतुलन बिगड़ गया। कारखानों से निकलता विषैला धुआं और कचरा जो नदियों में डाला जाता है के कारण वायु और जल प्रदूषित हो गये। नदियाँ गंदे नालों में तब्दील हो रही है, कार्बनडाई ऑक्साईड बढ़ रही है, कई पशु–पक्षी लुप्त हो चुके है और कई लुप्त होने के कगार पर है। मगर इसके विपरित हमारे पूर्वज बड़े सूझबूझ वाले और अनुभवी थे। उन्होंने वनों, पशु–पक्षी, पेड़–पौधों, नदियों, झीलों, पहाड़ों आदि के महत्त्व को भलीभाँति समझा था। पूर्वजों ने

पर्यावरण की रक्षा और वातावरण की शुद्धता के लिये कुछ नदियों, पहाड़ों, तालाबों और झीलों तथा पशु–पक्षियों, पेड़–पौधों को देवत्व का रूप दिया। इससे नदियों, पहाड़ों, गायों की वृद्धि हुई, पीपल के वृक्ष खूब लगाये गये और घर–घर में तुलसी उगाई गई, इन बातों से वातावरण शुद्ध रहा और प्रदूषण नहीं फैला। साथ ही पूर्वजों ने जंगलों की उपयोगिता को भी समझा जिनसे कई उपयोगी वस्तुएँ प्राप्त होती है। यदि हमने अपने–अपने पूर्वजों के लक्ष्य को समझा होता तो पर्यावरण की गम्भीर समस्या उत्पन्न ही नहीं होती। अतः अब पर्यावरण को ठीक रखने और प्रदूषण को दूर करने के ठोस उपाय किये जाने आवश्यक है।[211]

कारण :–

- वर्तमान समय की पीढ़ी पर आरामपरस्त व लालच इस कदर चढ़ रहा है कि वह अपनी जमीन, पेड़–पौधे, जंगल सब बेच रहे है जिसके कारण प्रदूषण फैल रहा है।
- निरन्तर बढ़ती जनसंख्या के कारण जीवन यापन के लिये वनों की कटाई व यातायात के साधनों की आवश्यकता से पर्यावरण प्रदूषण बढ़ रहा है।
- लगातार बढ़ रही वाहनों की संख्या व उनसे निकलने वाले धुएँ से वायु प्रदूषण फैलता जा रहा है।
- औद्योगिक एवं नगरीकरण अपने कूड़ाकरकट से नदियों के जल को प्रदूषित कर रहा है, जिससे जलीय जीव–जन्तुओं के साथ–साथ मानव जीवन खतरे में है।
- उर्वरक एवं कीटनाशकों से भूमि प्रदूषण तेजी से बढ़ रहा है।
- आणुविक परीक्षणों से घातक रेडियो धर्मी प्रदूषण बढ़ रहा है जिससे अंतरिक्ष भी प्रदूषित हो रहा है।
- वैज्ञानिकों के अनुसार प्लास्टिक अनेकों रसायनों के मिश्रण से तैयार होती है जो न सड़ती है, न गलती है, इसके जलाने से जो विषाक्त गैस निकलती है वो अत्यधिक घातक एवं हानिकारक होती है जिससे कई प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं।
- झूठा भोजन कूड़े–करकट तथा नदी–नालों में फेंक देने से वह भोजन सड़–गल कर न केवल वायु को प्रदूषित करता है, बल्कि जल–प्रदूषण को भी बढ़ावा देता है।
- शादी–पार्टियों में छोड़े जाने वाले फटाखों व बड़े–बड़े स्पीकर्स से वायु व ध्वनि प्रदूषण बढ़ता है।

सुझाव :–

- आज की युवा पीढ़ी जिसे पढ़ा–लिखा कहा जाता है को पर्यावरण प्रदूषण पर घर वालों के साथ मिलकर बैठकर उसको सुलझाने का प्रयास करना चाहिए।

- वाहनों के सही प्रयोग से वायु प्रदूषण की समस्या काफी हद तक कम कि जा सकती है। परन्तु इसके लिये हम में से सभी को पहल करनी होगी।
- पर्यावरण संरक्षण के लिए आवश्यक है कि पर्यावरण से जुड़े समस्त पहलुओं से आम आदमी को परिचित कराया जाए।
- युवा वर्ग में पर्यावरण की सुरक्षा के लिए प्रारंभिक शिक्षा माँ द्वारा घर में व शिक्षकों द्वारा स्कूल में ही दी जानी आवश्यक है।
- परम्परागत उच्च कार्बन अर्थव्यवस्था को छोड़ वैकल्पिक ऊर्जा स्त्रोतों पर निर्भरता बढ़ाए ताकि विश्व के समस्त राष्ट्र व उसके नागरिक सुरक्षित एवं समृद्ध भविष्य बना सके।
- हमें संकल्प लेना होगा कि हम पेड़–पौधों को न काटे यदि काटने जरूरी हो तो उनके स्थान पर नये पौधे लगाऐं ताकि प्रकृति में संतुलन बना रहे।
- यदि हम अपनी आवश्यकतायें सीमित रखे तो प्रकृति का दोहन कम होगा और प्राकृतिक संपदा अपने नैसर्गिक रूप में विद्यमान रहेगी।
- वृक्षों को लगाना, पोषित करना और उसके महत्त्व को एक जन जागरण के रूप में प्रस्तुत करना हमारा प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए ताकि पर्यावरण प्रदूषण को रोका जा सके।
- पर्यावरण संतुलन के लिए देश में सभी प्रकार के प्लास्टिक उत्पादन पर रोक लगा देनी चाहिए।
- कागज का इस्तेमाल कम से कम करें, इससे कई पेड़ कटने से बच जायेंगे।
- सरकार, प्रजा, उच्च पदासीन प्रतिष्ठित व्यक्तियों को आगे आकर इसके रोकथाम के प्रयास करने चाहिए तथा कानूनी नियमों में ऐसे नियमों को बनाना चाहिए, ऐसी दण्ड व्यवस्था होनी चाहिए जिससे मानव समाज की तथा प्राणी मात्र की जीवन की सुरक्षा हो।

3.4.7 जातिगत भेदभाव :–

जातिगत भेदभाव से सम्बन्धित समस्या के प्रमुख लेखक एवं लेखिकाओं के नाम निम्न है–

<u>कथा</u>

- नानक सिंह–रब्ब अपने असली रूप में
- प्रेम कोमल बूलियां–कुल गौत्र

<u>काव्य</u>

- महेश बी. शर्मा–सच्चा इंसान
- गीता जैन–प्रार्थना

<u>लेख</u>

- माधुरी शास्त्री–भेद नहीं मानव मानव में

कथाओं में जातिगत भेदभाव :–

नानक सिंह अपनी कथा **'रब्ब अपने असली रूप में'** के माध्यम से धर्म के नाम पर किये जाने वाले भेदभाव पर कहते है कि जब दशहरा और मुहरर्म दो दिनों के अंतराल पर एक ही साथ आ गये थे तो सारे शहर में डर और सहम सा छा गया क्योंकि मुसलमानों के रब्ब को इस मातम के वक्त बाजे–गाजे की आवाज सुनना पसन्द नहीं था और हिन्दुओं का ईश्वर इस खुशी के अवसर पर मातमी चीखोपुकार सुनना बदशगुनी समझता था अर्थात दानों रब्ब अपने–अपने अधिकारों के लिए आमने–सामने डटे खड़े थे। ताजीए वाले दिन तो बूढ़े मौलवी की निगरानी में ताजीया जोर–शोर से निकला चारों तरफ पुलिस की निगरानी थी मगर फिर भी एक हिन्दू का कत्ल हो गया था। जब मौलवी शाम को अपने घर जाते है तो उस व्यक्ति की पत्नी को रोता देखते है जो अपने पति की अर्थी के पिछे–पिछे जा रही थी। यह व्यक्ति और कोइ नहीं वही था जिसका कत्ल मौलवी के आदेश पर हुआ था। यह नजारा देख मौलवी को बहुत दुख होता है और उसका ह्रदय परिवर्तित हो जाता है। वह मौलवी जो दूसरे दिन दशहरे पर दंगे करना चाहता था और अपने धर्म को उच्च रखना चाहता था के अपने विचार बदल गये अब उसने अपने लागों को दंगा ना करने की सलाह दी। दशहरे पे जब हिन्दुओं की रेली उनकी मस्जिद के आगे से गुजरना शुरू हुई तो सब घबरा रहे थे कि यहाँ पर खून की नदियाँ बहेंगी मगर ऐसा नहीं हुआ वहाँ पहुँचते ही फूलों की वर्षा होने लगी और 'सीया वर रामचन्द्र की जय' के नारे गूँजने लगे तथा चारों ओर प्यार फैल गया। लोगों ने शायद आज रब्ब को उसके असली रूप में देखा था। [212]

अपनी कथा **'कुल गौत्र'** में **प्रेम कोमल बूंलिया** ऊँच–नीच को लेकर किये जाने वाले भेदभाव पर अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए बताती है कि जब अपने को उच्च समझे जाने वाले व्यक्ति की जान मुश्किल में पड़ती है तो वह किस प्रकार ऊँच–नीच के भेद भाव को भूलकर नीची जाति के व्यक्ति से अपने प्राणों कि रक्षा करने को कहता है और जान बचाने पर उसे गले लगाकर अपने बराबर का दर्जा देता है तथा इस ऊँच–नीच की प्रथा को व्यर्थ बताता है। उदाहरण देते हुए वह कहती है कि माधो एक नीच कुल का व्यक्ति था। एक दिन जब वह बाजार जा रहा था तो उसकी टक्कर पंडित रमाशंकर से हो जाती है जिससे वह नाराज हो जाते है और खुद को भ्रष्ट मानकर वह माधो को खरी–खोटी सुनाते हुए वापस नहाने चले जाते है। आज माधो नहाने गंगा तट पर आया था मगर पंडित जी वहाँ पहले से ही स्नान कर रहे थे यह देख माधो रुक जाता है दूर जाकर बेठ जाता है क्योंकि उसको डर था कि अगर वह नहाने गया तो पंडित जी फिर से उसे भला–बुरा कहेंगे। नहाते–नहाते अचानक पंडित जी का पैर फिसल गया और वे गंगा नदी में जा गिरे। पंडित जी चिल्लाने लगे बचाओं–बचाओं, माधो यह देख रहा था पर पंडित जी को छुने से डांट न खानी पड़े इसलिए उसे बचाने नदी में नहीं कुद रहे थे। मगर पंडित जी ने डूबते हुए माधो को

बचाने के लिए आवाज लगाई तो वह नदी में कुद कर पंडित जी को बचा लेता है और उनको छूने के लिए माफी माँगता है। तब पंडित जी उसे गले लगाकर कहते है कि **''यह ऊँच–नीच कुल तो हम इंसानों का ही बनाया हुआ हैं। ईश्वर ने तो हमें एक जैसा ही बनाया है लेकिन हम लोग ही स्वार्थ में अंधे होकर कुलों का बटवारा कर देते है।''** यह कहते हुए पंडित जी माधो का हाथ थाम और अपने साथ–साथ ले गये माधो आज बहुत खुश था क्योंकि आज उसे बड़े लोगों में उठने–बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।[213]

काव्य में जातिगत भेदभाव :–

महेश बी. शर्मा अपने काव्य **'सच्चा इंसान'** के माध्यम से कह रही है कि आज इस संसार में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध, सिख आदि सभी धर्मों के लोग मिल जाते है मगर उन सब में रंग, जाति व धर्म आदि के आधार पर भेदभाव पाया जाता है उनमें कोई सच्चा इंसान नहीं मिल पाता। फिर वह कहती है कि आज विश्व में राष्ट्रवाद के नाम पर केवल युद्ध ही देखने को मिलते है साथ ही धर्म व जाति के नाम पर घृणा व भेदभाव ही मिलता है। अतः इस स्वार्थी संसार की ये कैसी विडम्बना है जो इस इंसानों की दुनियाँ में कोई सच्चा इंसान नहीं मिल पाता अर्थात आज जो भी मिलते है धर्म का कट्टर प्यासा ही मिलता है जो अपने आपको ज्ञानी समझता है पर अंदर से थोथा रहता है जिनकी कथनी और करनी में भेद रहता है और उनमें मानवीय मूल्यों का अभाव रहता है। इसी तरह वह अंत में कहती है कि–

इंसानियत से भरा सच्चा धनवान न मिला,
सत्य–अहिंसा पर जो अडिग ऐसा इंसान न मिला।
मानवीयता हेतु जो समर्पित हो ऐसा मिले जग में,
अब अधिकांश दानव ही मिले, सच्चा इंसान न मिला।। [214]

अपने काव्य **'प्रार्थना'** के माध्यम से **गीता जैन** प्रभु से प्रार्थना कर सहारा माँगते हुए कह रही है कि हे प्रभु! आप हमे सहारा दीजिए क्योंकि यहाँ सब लोग भटके हुए है जिनको कोई मंजिल नहीं मिल पा रही है यहाँ पर धर्म के नाम पर हिंसा भड़क रही है जिसके कारण चारों तरफ लूट–पात, खून–खराबा हो रहा है और लोग एक दूसरे का साथ देने के बजाए दुश्मनी निकाल रहे है। धर्म के नाम पर मंदिर गिराए जा रहे है, मस्जिद गिराई जा रही है मगर कोई ईनके बीच की नफरत की दीवारों को गिराने की कोशिश नहीं कर रहा। अब हमसे मानवता की यह पीड़ा नहीं देखी जा रही है इसलिए हे प्रभु! आप बादलों में से ज्ञान की किरण फैलाओं और इस समस्या को मिटाने कि कोई तरकीब बताओं ताकि यहाँ पर शान्ति फैल सके और चारों तरफ अमन रह सके। फिर वह कह रही है–

सांसों की डोरी भगवान यूं ही न टूट जाए,
पापों में फंसकर जीवन ऐसे ही न बीत जाए,

मानुष जन्म तो जग में, मिलता नहीं दोबारा,
दे दो प्रभु सहारा..........।[215]

लेखों में जातिगत भेदभाव :–

माधुरी शास्त्री अपने लेख **'भेद नहीं मानव मानव में'** के माध्यम से बता रही है कि इन दिनों मानवाधिकारों की बहुत चर्चा है। मानवाधिकारों का घोषणा पत्र विश्व के सभी राष्ट्रों ने मिलकर इसलिए अंगीकृत किया था कि विश्व के अधिकांश देशों में, बल्कि यों कहें कि प्रायः सभी देशों में, मानव–मानव में इतना भेद था कि कुछ लोग जीवन भर दूसरों की गुलामी करते थे। किसी युग में गुलामों को बेचने तक की प्रथा अनेक देशों में थी। यह असमानता कितनी बड़ी शाप थी यह हम स्वतः कल्पना कर सकते हैं। मानवाधिकार घोषणापत्र इस बात पर जोर देता है कि प्रत्येक मानव स्वतंत्र रूप से जीवन यापन करने, किसी भी पेशे को अख्तियार करने, अपनी संपत्ति का उपभोग करने और विश्व में कहीं भी घूमने का उसे अधिकार होगा। मध्यकाल में सामंती प्रथा के आने के बाद समृद्धों और वंचितों के बीच भेदभाव बढ़ता जाने लगा। धनवानों का अलग वर्ग हो गया दरिद्रों का अलग। इसके अतिरिक्त जाति प्रथा के आने के बाद उच्च और निम्न वर्गों, वर्णों आदि में भी भेदभाव बढ़ता जाने लगा। जब ऊँच–नीच का भेदभाव ज्यादा बढ़ गया और दलितों पर अत्याचार होने लगे तो मानव के समानाधिकार के लिए भक्तिमार्ग के सारे संत और आचार्य जूझ पड़े। इनमें सबसे ज्यादा बुलंद आवाज थी कबीर की। उन्होंने हिन्दुओं के आडम्बरों, ऊँच–नीच और भेदभाव की जमकर आलोचना की, प्रहार किए। वे स्वयं जुलाह थे किन्तु धर्मगुरु का आदर पाते थे। रैदास भी उच्च वर्ग के नहीं थे किन्तु धर्मगुरु माने गये, संत रामानंद ने प्रत्येक वर्ग और जाति के व्यक्तियों को दीक्षा देकर यही तो सिद्ध करना चाहा था कि सबको उपासना का समान अधिकार है। उनका मानना था कि जब वर्गों के मानव ईश्वर के बनाये हुए हैं तो मंदिरों में कुछ व्यक्ति ही जा सकते है और कुछ के लिए प्रवेश भी वर्जित हो, यह कहाँ का न्याय है? शिव, हनुमान, भैरव आदि देवता जन–जन से जुड़े माने गये। जिनका स्पर्श, दर्शन और पूजन का अधिकार सबको समान रूप से माना गया छुआ–छूत भेदभाव या ऊँच–नीच की भावना आज प्रायः है। आज हर कंठ में यह नारा है ''**गूंजे जयध्वनि से आसमान, मानव मानव सब है समान।**''[216]

कारण :–

- इंसान अपने स्वार्थ में अंधे होकर कुलों का बंटवारा कर लेते है और ऊँच–नीच की दिवार खड़ी कर लेते है।
- इस समस्या का एक कारण यह भी है कि एक धर्म अपने सिद्धांतों को ऊँचा बताता है और दूसरे धर्म के सिद्धांतों, प्रथाओं और रूढ़ियों की हँसी उड़ाता है।
- अशिक्षा के कारण भी समाज में यह भेदभाव की समस्या व्याप्त है।

- लोगों की कुंठित मानसिक सोच के कारण वह अपने को ऊँच जाति का समझकर निम्न जातियों के लोगों से भेदभाव करता है।
- पुरानी परम्परागत चली आ रही कुप्रथाओं के कारण आज भी समाज में ऊँच–नीच की समस्या व्याप्त है। परन्तु इनका प्रतिशत बहुत कम रह गया है मगर रूढ़िवादी विचारों का अनुसरण करने वाले मानव–मानव में भेद अवश्य कर रहे है।

सुझाव :–

- सभी धर्मों का मूल संदेश शांति, भाईचारा, प्रेम, अहिंसा, त्याग, एक–दूसरे का सम्मान करना, महिलाओं, अनाथों, गरीबों तथा बच्चों पर तरस करना, दान करना आदि है अतः इनका सही दिशा में प्रचार–प्रसार कर समाज में एकता स्थापित करनी चाहिए।
- सभी लागों को शिक्षित कर इस समस्या के प्रति जगृत करना चाहिए।
- पुरानी परम्परागत चली आ रही कुप्रथाओं का विरोध कर एक नई परम्परा का प्रारम्भ करना चाहिए जिसमें ऊँच–नीच की कोई जगह न हो, जहाँ सभी समान हो।

3.4.8 आतंकवाद :–

आतंकवाद से सम्बन्धित समस्या के प्रमुख लेखक एवं लेखिकाओं के नाम निम्न है –

<u>कथा</u>

- करूणाश्री–और मन्थन के बाद

<u>काव्य</u>

- नाथूलाल मेहता–आतंक और देश प्रेम
- सुगन चन्द्र जैन 'नलिन'–युवकों का संकल्प

<u>लेख</u>

- डॉ. शकुन्तला तंवर–सैनिक की पत्नी होने का अर्थ उत्सर्ग जीवन
- डॉ. बी.एल. वत्स–आतंकवाद : समस्या और समाधान

कथाओं में आतंकवाद :–

करूणाश्री अपनी कथा **'और मन्थन के बाद'** के माध्यम से बताती है कि किस प्रकार गरीबी और भूख से परेशान होकर एक बेटा अपनी माँ की हत्या कर आतंकवादियों के गिरोह से मिल जाता है और आतंकवादी बन जाता है। लेखिका इसका उदाहरण देते हुए बताती है कि गंगा का पति आये दिन चोरी करता, शराब पीता और जेल में पड़ा रहता था। वह पति नहीं वरन् एक राक्षस था। उसके अत्याचारों से गंगा अपने दो बेटों को खो चुकी थी। वह अपने बचे हुए एक मात्र बेटे को लेकर वहाँ से भाग जाती

है और एक महात्मा की शरण में चली जाती है। वह भीख माँगकर, मजदूरी करके अपने बेटे को पालती है और अच्छे संस्कार व उपदेश देकर बड़ा करती है। मगर उसके बेटे को माँ के उपदेशों में कोई रुचि नहीं रहती वह कहता कि **"माँ तेरे उपदेशों से मेरे जीवन की भूख प्यास नहीं मिटेगी। जीवन चलाने के लिए कुछ तो करना ही पड़ेगा।"** एक दिन वह भूख से तंग आकर एक कटार से अपनी माँ की हत्या कर देता है और वहाँ से भागता–भागता आतंक गिरोह के मुखिया के घर जा पहुँचता है और सारा किस्सा ज्यों का त्यों सुना देता है। गिरोह का मुखिया उसे अपने गिरोह में सामिल कर लेता है। कुछ महिनों तक मुखिया के आदेश पर वह खूब लुटपाट करता है और आतंक फैलाता है। एक दिन उसे मदर टेरेसा हाऊस में आतंक फैलाने के लिए भेजा जाता है मगर वहाँ फादर के वचन सुनकर उसका ह्रदय परिवर्तन हो जाता है और वह आतंकवाद छोड़कर पुलिस के पास चला जाता है तथा सारी बाते बता देता हैं। पुलिस वाले उसे पकड़ लेते है और उसके कहे अनुसार उसकी माँ का अन्तिम संस्कार करवाते है। वह अपनी माँ का अन्तिम संस्कार कर अपनी गलती का प्रायश्चित करता है। [217]

काव्य में आतंकवाद :–

नाथूलाल मेहता अपने काव्य **'आतंक और देश प्रेम'** में कह रहे है कि आज इंसान आतंक के साए में जी रहा है वह इस बात से डर रहा है कि न जाने मौत कब उसे अपने आगोश में ले ले। आज आतंकियों का आतंक अपनी चरम सीमा पर है क्योंकि देश की फिक्र किसी को नहीं है सब अपना स्वार्थ साधने में लगे है। नेताओं के झुठे वादे सुन–सुन कर लोगों के कान पक गये है अब उन्हें ऐसा लगने लगा है कि वे नेताओं द्वारा ठगे गए है। अब हम आतंकियों का जुल्म नहीं सहेंगे यह कहते–कहते सहने की आदत हो गई है। इसलिए लेखक कहते है कि अरे नामर्दों! तुम्हारी रगो में खून बहता है या पानी जो आतंकियों की बात सुनते ही तुम्हारे शरीर में कप–कपी सी आ जाती है और तुम कांपने लगते हो, लालत है येसे लोगों पर। आतंकियों के हाथों किसी का लाल मरता है, किसी का बाप, किसी का भाई, किसी का पति मरता है पर अफसोस! यह सब देखने के बाद भी तुम्हारा खून नहीं उबलता आखिर हम इन आतंकियों का आतंक कब तक सहेंगे, कभी ये सोचा है, भारत माँ की लाज लुटने से कैसे बचाएंगे। आज हमारी ये हालत देखकर भारत माँ भी रो रही हैं। अतः इस तरह माँ की हाय मत लो वरना यह हाय हम पर भारी पड़ जाएगी, हमारा सब कुछ मिटाकर हमारा अस्तित्व उड़ा ले जाएगी। अतः इस देश के प्रति अपनी वफादारी का सबूत दो और देश के जवानों का बलिदान व्यर्थ न गवाओं तथा अपने खून में देश प्रेम भरकर इसकी सेवा करों इसके लिए यह जरूरी नहीं कि तुम देश के लिए शहीद हो जाओ मगर भारत माँ को नुकसान पहुँचाने वाले के गाल पर थप्पड़ तो लगा सकते हो। फिर वह कहते है कि–

अब भी वक्त है चेत जाओं! संभल जाओं,
थोड़ी–सी भी गैरत बाकी है तो हरकत में आओं।
भूल जाओं कुर्सी को देश की अस्मिता को बचाओं,
अपने आपको हिन्दुस्तानी कहने का गर्व सीने में लाओं।। [218]

सुगन चन्द्र जैन 'नलिन' अपने काव्य **'युवकों का संकल्प'** के माध्यम से बता रहे है कि आज के युवक आतंकवाद के खिलाफ आवाज उठाते हुए कह रहे है–कौन कहता है कि हममें अनुशासन नहीं है, कौन कहता है कि हममें देशभक्ति नहीं है। जो भी ऐसा कह रहे है हम उनका भ्रम तोड़ देंगे और देश के नक्सलवादियों की हड्डिया तोड़ देंगे तथा देश से उनका सफाया कर आतंकवाद को मिटायेंगे। हम यह जानते है कि इस रास्ते पर बहुत सी परेशानियाँ आयेंगी, बहुत सी बाधायें आयेंगी मगर हम उन सबका सामना करेंगे क्योंकि हमने अब देश को बचाने का संकल्प कर लिया है। इसलिए हम–

टूट जायेंगे हम, लेकिन झुकेंगे नहीं,
कर्तव्य पथ पर बढ़े जो कदम रूकेंगे नहीं।
यह सत्य है कि पथ पर रोड़े बहुत,
मुकाबला करेंगे डटकर, हटेंगे नहीं।। [219]

लेखों में आतंकवाद :–

डॉ. शकुन्तला तंवर अपने लेख **'सैनिक की पत्नी होने का अर्थ उत्सर्ग जीवन'** के माध्यम से कहती है कि पहले दो देशों के मध्य युद्ध की विभीषिका कभी–कभी वर्षों के अंतराल में दृष्टिगोचर होती थी। युद्ध की भयावहता से आम व्यक्ति कांप जाता था क्योंकि परिणाम होता था–वैधव्य, पुत्रहीनता अथवा बहन के लिए भाई की कलाई का अभाव लेकिन विगत वर्षों से आतंकवाद एक नए ढंग का अभिशाप बनकर समाज के सामने विकराल रूप लेकर प्रकट हुआ है। आज आतंक का अर्थ भय है और इसका उद्देश्य व्यक्ति और राष्ट्र को भयभीत कर उसके सामान्य जीवन को बाधित करना है। आज देशों में पनप रहे आतंकवाद का उद्देश्य दूसरे देश में भय की त्रासदी फैलाकर उसकी राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक स्थितियों में विचलन उत्पन्न करना है। दो देशों के मध्य राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक प्रतिद्वन्दिता उत्पन्न करने के उद्देश्य से युवाओं की शक्ति और सामर्थ्य का दुरुपयोग करना कहाँ तक न्यायोचित है। युवा इस अनैतिक अत्याचारी रूप को कैसे चुन लेते हैं? उनके मन में द्वेष–घृणा और हिंसा के बीज का रोपण क्यों होता है? वे कौनसी मानसिक कुंठाएँ हैं जो उन्हें आतंकी बना देती है? पहले कहा जाता रहा है कि बेरोजगारी और सामाजिक उपेक्षा उसे आतंकी बनने को प्रेरित करती है किन्तु बाद में स्पष्ट हुआ कि सत्ताधारी अपने मकसदों को पूरा करने के लिए नवयुवकों का उपयोग करते है। अतः बढ़ते आतंकवाद के खतरे को मध्येनजर रखते हुए सैनिक का कर्त्तव्यबोध और बढ़ जाता है। आतंकी

आक्रमणों से सैनिक परिवारों का सब कुछ लुट जाना, उनके जीवन में घने अंधकार को छोड़ जाना है। अतः एक सैनिक की पत्नी होना उत्सर्ग जीवन का वरण करना है।[220]

अपने लेख **'आतंकवाद–समस्या और समाधान'** के माध्यम से **डॉ. बी.एल. वत्स** कह रहे है कि आज आतंकवाद भारत में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में अपने पांव पसार रहा है। इससे जनता–जनार्दन का हर क्षण भयाक्रान्त है और वह कोई भी सर्जनात्मक कार्य करने में अपने को असमर्थ पा रही है। यदि आतंकवाद को समाप्त करना है तो हमें इसके उदय के कारणों पर विचार करना होगा। आज देश की सबसे बड़ी समस्याएँ अशिक्षा, बेरोजगारी और निर्धनता की है। यदि इन समस्याओं का सही समाधान निकल आए तो आतंकवाद अपने आप समाप्त हो जायेगा। लोग अपराध अधर्मी होने के कारण करते है तथा अभाव और बेरोजगारी के कारण करते हैं। रोजगार में लगे व्यक्तियों के पास अपराध करने का समय ही कहाँ होता है? निर्धनता भी अपराधों को जन्म देती है। जब व्यक्ति अड़ौस–पड़ौस की सम्पन्नता देखता है तो वैसा ही सम्पन्न बनने के लिए परिश्रम के स्थान पर लूट–पाट, राहजनी में लिप्त हो जाता है और आतंकवादियों के हत्थे चढ़कर स्वयं आतंकवादी बन जाता है। सरकार का कर्त्तव्य है कि वह हर हाथ में काम दे और बिना किसी भेदभाव के रोजगार के समान अवसर प्रदान करे। अतः जब तक बिना भेदभाव के समान रूप से सबको जीवन–यापन के साधन नहीं जुटाये जायेंगे, अपराध होते रहेंगे। [221]

कारण :–

- भूख तथा गरीबी से तंग आकर कुछ लोग गलत रास्ता अपना लेते है और आतंकवादियों के गिरोह में शामिल हो जाते है।
- कुछ सत्ताधारी अपने मकसदों को पूरा करने के लिए नवयुवकों का उपयोग गलत तरीके से करते है जिससे आतंकवाद को बढ़ावा मिलता है।
- कुछ लोग अड़ोस–पड़ोस की सम्पन्नता देखकर वैसा ही सम्पन्न बनने के लिए परिश्रम के स्थान पर लूट–पाट करते है और आतंकवादियों के हत्थे चढ़कर स्वयं आतंकवादी बन जाते है।
- धर्म, जाति के नाम पर किये जाने वाले भेदभाव भी आतंकवाद को जन्म देते है।
- आतंकवाद का प्रमुख कारण तो शिक्षा का अभाव एवं आजीविका की समस्या है। बेरोजगार भूखा व्यक्ति और उस पर भी अशिक्षित बहुत जल्दी बहलाया जा सकता है और पाप के कीचड़ में धकेल दिया जा सकता है।

सुझाव :–

- आतंकवाद को दूर करने के लिए अच्छी शिक्षा की बहुत जरूरत है। अनुकूल शिक्षा मिलने पर इन्सान की सोच बदलेगी, उसकी सोचने समझने की शक्ति में

बदलाव आएगा और वो सही दिशा में ही सोचेगा। शिक्षित व्यक्ति अपना अच्छा बुरा जानता है, उसको गलत शिक्षा देकर बहलाया नहीं जा सकता।

- आतंकवाद से निपटने के लिए देश दुनिया को मिल कर काम करना होगा, इस समस्या से लड़ने के लिए एक अकेला देश कुछ नहीं कर सकता, क्योंकि ये विश्व व्यापी समस्या है।
- भारत के प्रत्येक नागरिक को चाहे वह शहर का हो या गाँव का उसे शिक्षा से जोड़ना होगा और उन्हें रोजगार उपलब्ध करवाने होंगे।
- जति, धर्म, प्रान्त, भाषा आदि के नाम पर हो रहे भेदभाव को पूर्णरूप से समाप्त करना होगा।
- आतंकवाद से बचाव के लिए गाँव व शहर में सुरक्षा व्यवस्था को ओर अधिक मजबूत करने की आवश्यकता है।

3.4.9 भ्रष्टाचार :–

भ्रष्टाचार से सम्बन्धित समस्या के प्रमुख लेखक एवं लेखिकाओं के नाम निम्न है –

<u>कथा</u>	<u>लेख</u>
➢ डॉ. रवीन्द्र कुमार उपाध्याय–कफन के लुटेरे ➢ अलका मित्तल–आज का सच <u>काव्य</u> ➢ सौभाग्य मुनि 'कुमुद'–खोज रहा हूँ उजाला ➢ राजेन्द्र रतन–रिश्वत ➢ अखिलेश निगम 'अखिल'–अंगारे बरसाऊंगा ➢ नलिन विभा 'नाजली'–कैंसर भ्रष्टाचार के ➢ राधेश्याम परवाल–ईमानदारी की बेईमानी ➢ दिनेश वर्मा–ईमान, बेईमान और भ्रष्टाचार ➢ सी.ए. साहनी–क्रान्ति स्वर	➢ दिलीप भाटिया–लालची परिवार भ्रष्टाचार का आधार ➢ श्रीमती अनूप घई–बढ़ता भ्रष्टाचार : दोषी कौन ➢ प्रो. कृष्णस्वरूप वशिष्ठ–भ्रष्टाचार मिटाओं डे मनाएं ➢ श्रीमती मिथलेश जैन–देश के विकास का स्पीड ब्रेकर–भ्रष्टाचार ➢ श्रीमती मिथलेश जैन–ये कैसी आजादी ➢ सुनीति रावत–शुचिता हनन और पनपता भ्रष्टाचार

कथाओं में भ्रष्टाचार :–

डॉ. रवीन्द्र कुमार उपाध्याय अपनी कथा **'कफन के लुटेरे'** के माध्यम से न्याय व्यवस्था में विभिन्न प्रकार के मुकदमों में फसे लोगों के पास से तरह–तरह के कारण

बताकर लि जाने वाली रिश्वत पर प्रकाश डालते हुए अपनी कथा में बताते है कि जब डॉक्टर साहब और उनकी पत्नी के बीच किसी बात को लेकर झगड़ा हो जाता है तो वह रूठ कर घर छोड़कर चली जाती है। इस छोटी सी बात पर डॉक्टर साहब के ससुराल वाले उनपर दहेज का मुकदमा कर देते है जिसके कारण उन्हें हर महीने सुनावाई के लिए अदालत जाना पड़ता है। डॉक्टर साहब को अदालत जाते–जाते तेरह वर्ष हो गये थे मगर अभी तक उनका फैसला नहीं हो सका था। वह जब भी अदालत जाते तो उनके वकील को खर्चे के लिए रुपये देने पड़ते और साथ में जज के पी.ए. को भी खर्चा पानी देना पड़ता ताकि वह मुकदमे की तारिक आगे बड़ा सके और डॉक्टर साहब को कुछ ओर समय मिल जाये। मगर आखिर में जज साहब ने उन्हें दो वर्ष की सजा और दो हजार रुपये का जुर्माना लगाया। सजा सुनाने के बाद जब डॉक्टर साहब जमानत के कागजात बनवाते है तो उसके लिए जज साहब के पी.ए. को 100 रुपये देने पड़ते है ताकि कार्य जल्दी हो जाये। मगर इतने पैसों से काम कहा चलता है वहाँ तो हर काम के लिए हर किसी को रुपये देने पड़ते है। वहाँ सरकारी नौकर उनको लुटने के लिए बेठे रहते है क्योंकि न्यायालय का दिन–भर का चाय–पानी, कचोरी, अल्पाहार का खर्चा इसी से चलता है और फिर शाम को ये लोग पेशकार, पी.ए., चपरासी आदि सभी अपना–अपना हिस्सा बाँट लेते है। अतः यहाँ मुल्जिमों से पैसा लेना आम बात है यहाँ बडे–बडे मजिस्ट्रेटों और जजों को चैम्बर में पैसा लेते देखा जाता है। यह सब देख डॉक्टर साहब की आँखों में आँसू आ जाते है और वह अपनी रिहाई की उम्मीद लेकर अपने घर आ जाते है। [222]

अपनी कथा **'आज का सच'** में **अलका मित्तल** यह बताती है कि जब किसी के घर में चोरी हो जाती है और वह पुलिस के पास जाते है तो किस प्रकार वह पुलिस वाले चोर व मालिक दानों से पैसे लेकर लुटते है तथा उन्हें धोखे में रखते है। उदाहरण देते हुए वह कहती है कि रीना के घर में काम करने वाला नौकर एक दिन मोका देखकर रीना के गहने व पैसे चुरा लेता है और भाग जाता है। रीना व उसके पति द्वारा चोरी की रिपोर्ट दर्ज कराने पर पुलिस वाले उस नौकर को पकड़ लेते है मगर उससे कुछ रुपये लेकर पूछताछ करके छोड़ देते है। नौकर के बताये अनुसार पुलिस वाले सर्राफ राधेलाल के पास जाते है जहाँ उसने गहने बेचे थे। वह राधेलाल को डरा–धमका कर और जेल में बन्द करने की धमकी देकर उससे भी चोरी का आधा माल ले लेते है तथा अपनी जेब गरम करके वापस चले जाते है। इधर रीना व उसका पति थाने के चक्कर लगा–लगा के थक जाते है मगर नतीजा कुछ नहीं निकलता। हर बार इंस्पेक्टर उनसे खर्चे के पैसे लेकर उन्हें झूठा दिलासा देकर वापस भेज देता है और वह बेचारे उम्मीद लिए वापिस घर आ जाते है। [223]

काव्य में भ्रष्टाचार :–

सौभाग्य मुनि 'कुमुद' अपने काव्य **'खोज रहा हूँ उजाला'** में कह रहे है कि मैं आज ऐसी जगह ढूँढ रहा हूँ जहाँ पर भ्रष्टाचार ना फैला हो मगर मुझे कहीं पर भी ऐसी जगह नहीं मिली है। वह बड़ी उम्मीदों से धर्म स्थान, मंदिर में गये मगर वहाँ भ्रष्टाचार फैला था। जो पैसा अधिक देता उसके लिए पूजा पहले होती थी और सच्चा भक्त बेचारा प्रतीक्षा में ही खड़ा रह जाता था अर्थात भगवान के नाम पर लोगों से पैसे लिए जा रहे थे। यह सब देख वह न्यायालय में जाते है कि शायद वहाँ पर उन्हें इसका उपाए मिल जाये मगर वहाँ पर तो जेक व चेक का जाल फैला हुआ था अर्थात जो जितना देगा या पहचान बनाएगा कानून उसी का साथ देता है। अतः वहाँ पर भी अन्याय ही फैला हुआ है। अन्त में जब वह संत संयासियों के पास जाते है तो वहाँ पर भी वे लोग धर्म के नाम पर लोगों को लूटते रहते है। फिर वह बताते है कि आज बाजारों में मिलावट का काम तेजी से चल रहा है। कार्यालयों में थानों में रिश्वत खुले आम ली जा रही है। राजनैतिक पार्टियाँ जनता को लूट रही है अर्थात चारों तरफ आज भ्रष्टाचार फैला हुआ है। फिर अन्त में वह कह रहे है कि–

घर–घर में ईर्ष्या–द्वेष का अंबार देखा,
मानवता तो मर गई पग–पग अत्याचार देखा।
उजाला कहीं नहीं दुर्भेध पापों का किला है,
हार कर बैठा हूँ उजाला नहीं मिला है।। [224]

अपने काव्य **'रिश्वत'** के माध्यम से **राजेन्द्र रतन** कह रहे है कि आज हमको वतन की हालत देखकर तरस आता है आज हर जगह रिश्वत की लहर है। अतः आज रिश्वत के बिना कोई काम नहीं होता, रिश्वत का दाम चुकाने पर तो हम जो मन चाहे वो कर सकते है। क्योंकि रिश्वत देने पर कोई हमारी जाँच करने नहीं आयेगा फिर चाहे हम तंदूर में इंसान को पकाये या मुर्गे को कोई कुछ नहीं कहेगा। आज यह सारा शहर, सारी दुनियाँ भ्रष्ट हो रही है जहाँ बेगुनाहों को सजा दी जा रही है और पैसे वाले खुले आम मोज–मस्ती कर रहे है। देश की यह हालत देख लेखक कह रहे है–

देख कर हालत वतन की,
हमको आता है तरस।
हो गया बाजार काला,
रिश्वतों की है लहर।। [225]

अपने काव्य **'अंगारे बरसाऊंगा'** में **अखिलेश निगम 'अखिल'** राजनेताओं पर प्रहार करते हुए कह रहे है कि आज देश के नेताओं के लिए तो वोट और नोट ही सत्य है बाकी सब झूठ है। यहाँ जो नेता रिश्वत लेता है तथा देता है वहीं अपनी कुर्सी पाता है और विभिन्न अधिकारों का गलत फायदा उठाता है। आज देश बेचकर खाने

वाले नेता ही लोगों के मसीहा बने हुए है उनके लिए तो अपनी सत्ता ही सच है देशभक्ति तो केवल एक बहाना है उनका तो मात्र एक ही लक्ष्य है, देश बेचकर अपनी जेबे भरना है। अतः उनकी देशभक्ति में स्वार्थ ही छिपा रहता है। वह केवल जनता का शोषण कर दलाली करते है। इस भ्रष्टाचार के कारण आज योग्य व्यक्ति सड़कों पर मारे–मारे फिर रहे है और अयोग्य रिश्वत देकर उनकी जगह ले रहे है। आज चारों ओर से भारत माँ का शोषण हो रहा है हर नेता के हाथ भ्रष्टाचार से सने है जिसके कारण हर तरफ अपराध बढ़ रहे है और माँ–बहनों की इज्जत लूटी जा रही है। इसीलिए वह इसको रोकने का प्रयास कर देश के युवाओं से कह रहे है–

उठो शेर, अब उठो जागो, यह धरती तुम्हें बुलाती है,
बार–बार वह तुम्हें जगाने, प्रलयी राग सुनाती है,
करों गर्जना भू हिल जाए, तुमको देश बचाना है,
कर्ज भरो इस माटी का, अब चंदन इसे बनाना है। [226]

नलिनी विभा 'नाज़ली' अपने काव्य **'कैंसर भ्रष्टाचार के'** के माध्यम से कह रही है कि आज भ्रष्टाचार के बिना सत्ता का पत्ता भी नहीं हिल सकता भ्रष्टाचार का कैंसर देश को खाये जा रहा है। देश के राजनेता जनता को अपने भाषणों द्वारा राम राज्य लाने के सपने दिखाते है मगर करते कुछ नहीं। अब न्याय दिलाने के मंदिर भी कमजोर पड़ गये है चारों ओर बेरोजगारी, भूख और भ्रष्टाचार फैल रहा है। भ्रष्टाचार से लोगों ने काले धन का अम्बार लगा लिया है तथा रिश्वत देकर अपना काम निकाल रहे है, राजनीति तो नेताओं के लिए व्यवसाय का साधन बन गई है जहाँ मंत्री मौज करते है परिणाम स्वरूप सड़के उखड़ी पड़ी है, इमारते ढ़ह रही है, पुल टूट रहे है और देश विनाश की ओर जा रहा है। क्योंकि मंत्री और ऊँचे अधिकारी सरे–आम रिश्वत लेकर अयोग्य लोगों को नौकरियाँ परोस रहे हैं। अतः इसके विरुद्ध आवाज उठाकर लेखिका कह रही है–

उठो साथियों! भ्रष्ट तंत्र का अब स्वामित्व मिटाना है,
खंड–खंड हो गिरती माटी, टूटता स्वप्न बचाना है। [227]

अपने काव्य **'ईमानदारी की बेइमानी'** में **राधेश्याम परवाल** कह रहे है कि आज हर काम के लिए फीस तय की गई है जैसे–टेण्डर पास करवाना है तो फीस तय है, बिल पास करवाना है तो परसन्टेज तय है। आयकर, बिक्रीकर का निर्धारण, पासपोर्ट हेतु पुलिस इन्कवायरी, पानी–बिजली का नया कनेक्शन हर काम के लिए सुविधा फीस यानी रिश्वत तय है। इनके अतिरिक्त अवैध अतिक्रमण करना, अवैध निर्माण को वैध करना, कोई फैसला अपने पक्ष में करवाना हर किसी के लिए सभी जगह दलाल उपस्थित रहते है। हमें चाहे न्यायालय के सामने न्यायोचित काम ही क्यों न करवाना

हो, समय और श्रम बचाना हो, हर विभाग में हर काम के लिए सुविधा फीस तय है। इसीलिए लेखक कहते है कि–

आज 'बेइमानी' बेइमानी नहीं रही,
'बेइमानी' भी ईमानदारी की बेइमानी हैं। [228]

दिनेश वर्मा अपने काव्य **'ईमान, बेइमान और भ्रष्टाचार'** केमाध्यम से कह रहे है कि आज भ्रष्टाचार के कारण देश का युवा भटक रहा है और थोड़े से लालच में आकर देश का सम्मान बेच रहा है जिसके कारण देश की शान खो रही है, लोकतंत्र खो रहा है और जीने की राह खो रही है। भ्रष्टाचार की जड़े गहराई तक जाकर मन, वचन, कर्म, जीवन सभी में बस गई हैं। लालच में आकर युवा अपना जीवन बेच रहा है और बदले में दुख–दर्द खरीद रहा है अर्थात भ्रष्टाचार के कारण देश विनाश के कगार पर है। अतः देश को बचाने के लिए हमारे युवाओं को आगे आना होगा और मेहनत व ईमानदारी से अपना फर्ज निभाना होगा तथा भटके हुए मानव को रास्ता दिखाना होगा और उनमें बेइमानी को खत्म कर ईमान जगाना होगा तभी भ्रष्टाचार के कीड़े से देश को बचाया जा सकता है। फिर वह देश के युवाओं से कहते है–

बचा लो इस धरा को, मेरे देशवासियों,
बेइमान को हटा के, ईमान को हवा दो।
इन फौलादी इरादों को, मौसम की हवा दो,
युवा शक्ति को आह्वान दो, भ्रष्टाचार मिटा दो।। [229]

अपने काव्य **'क्रान्ति स्वर'** में **सी.ए. साहनी** कह रहे है कि आज शिक्षित लोग भोगवादी बनकर जनता को लूट रहे है और जनतंत्र को धनतंत्र बनाकर अपनी जेबे भर रहे है। वह स्वयं प्रत्यक्ष घोटाला ना करपाने के कारण दूसरों से घोटाले करवाते है और स्वयं इन घोटालों से बचकर पैसे कमाते है। इस प्रकार वह लोग देश को लूट रहे है जिससे देश में भ्रष्टाचार और प्रजा पर अत्याचार बढ़ रहा है। अतः इसको रोकने के लिए भगवान राम की तरह राम राज्य की स्थापना करनी होगी, गाँधी जी की तरह आगे आकर भ्रष्टाचार से लड़ना होगा तभी हमें इस भ्रष्टाचार से मुक्ति मिल सकेगी। अन्त में वह देश के युवाओं से आह्वाहन कर कहते है–

आओ सब मिलकर अब,
क्रान्ति स्वर को गुँजाये हम।
भारत माँ के तन–धन को,
भ्रष्टाचारियों से बचाएँ हम।। [230]

लेखों में भ्रष्टाचार :—

दिलीप भाटिया अपने लेख **'लालची परिवार भ्रष्टाचार का आधार'** के माध्यम से अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कह रहे है कि आज सभी भ्रष्टाचार से भली—भाँती परिचित हैं। सभी इसका दुरूपयोग करते है। यह सबके जीवन में इतना घुल मिल गया है कि हमें महसूस भी नहीं हो पाता कि ये हमारे लिए कोई अवगुण है। ईमानदारी, सत्यनिष्ठा आज मात्र शब्दकोष तक ही सीमित रह गए है। दिन प्रतिदिन के व्यवहार में इनका अस्तित्व नगण्य होता जा रहा है। समाज के हर क्षेत्र में, व्यापार के हर कोने में, संस्थान में कदम—कदम पर इसका इतना अधिक बोलबाला है कि यह तो अब समाज के खून की हर बूँद में घुल मिल गया है। सदाचार—ईमानदार आज हेयदृष्टि से देखे जाते है। व्यापार हो या संस्थान, उन्नति विकास करना है तो भ्रष्टाचार को अपनाए बिना काम चल ही नहीं सकता। बर्लिन की ट्रांसपेरेन्सी इन्टरनेशनल संस्था प्रति वर्ष भ्रष्ट देशों की सूची तैयार करती है। जिसके अनुसार भारत में 80 प्रतिशत भ्रष्टाचार फैला हुआ है। भ्रष्टाचार का समाज में विषबेल के रूप में फलने—फूलने का आधार हमारे लालची परिवार है। हमारे लालची परिवारों के कारण ही इसका अस्तित्व बना हुआ है। आज परिवार में धर्मपत्नी को वह सब चाहिए जो उसकी पड़ोसन, रिश्तेदार, किटी पार्टी सहेलियाँ, लेडीज क्लब की मेम्बर के पास है। चाहे वह महंगी साड़ी हो या हीरे की अंगूठी, बेडरुम में एयरकण्डीश्नर हो या शापिंग के लिए सबसे मंहगी कार, सब कुछ चाहिए उसे। बेटे को मोबाइल चाहिए, बेटी को प्रतिदिन नई ड्रेस चाहिए। मंहगे स्कूल—कॉलेजों में शिक्षा चाहिए। यह सब तनख्वाह के चन्द रुपयों में नहीं हो सकता। इसलिए व्यक्ति ईमानदारी का सत्यमार्ग त्यागकर, भ्रष्टाचार के रास्ते पर चलने लगता है। खूब कमीशन खाता है और सबकी फरमाइशें पूरी कर लालची सदस्यों का पेट भरने की कोशिश करता है। अतः इसे खत्म करने के लिए हमें लालची परिवार वालों की मानसिकता में परिवर्तन लाना होगा, सादा जीवन का उन्हें पाठ पढ़ाना होगा, होड़—फैशन—दिखावे से परहेज करना होगा तभी हम भ्रष्टाचार को मिटाने में सफलता प्राप्त कर पाएंगे।[231]

श्रीमती अनूप घई अपने लेख **'बढ़ता भ्रष्टाचार—दोषी कौन'** के माध्यम से कह रही है कि आज भ्रष्टाचार एक दीमक की तरह हमारे देश के विकास को खोखला कर रहा है। भ्रष्टाचार देश में इस कदर फैल गया है कि एक आम आदमी को विवश होकर अनैतिक एवं अनुचित रूप से काम करवाने को बाध्य होना पड़ता है। तत्पश्चात् इसकी एक कड़ी ही बन जाती है। हमारे देश में आर्थिक असमानता बहुत अधिक है। एक बहुत बड़ा वर्ग गरीबी रेखा के नीचे है। अनेक स्थितियों में भ्रष्टाचार जो अधिकांशतः भरे पेट वाले समर्थ व्यक्ति होते हैं वे इस वर्ग को सरलता से गलत उद्देश्यों की पूर्ति हेतु बहला लेते हैं और इस प्रकार भ्रष्टाचार दिन दुगनी और रात चौगुनी गति से बढ़ता जाता है। हमारे देश में बेरोजगारी भी व्यापक स्तर पेर फैली हुई है एवं इसमें अल्पशिक्षित से

लेकर उच्च शिक्षित तक सभी प्रकार के बेरोजगार सम्मिलित है जो कि देश के लिए एक बड़ा दुर्भाग्य हैं। ये सभी जीविका पाने के लिये भ्रष्टाचार का सहारा लेने को तुरंत उद्धत हो जाते है। हमारे देश की न्याय व्यवस्था इतनी जटिल एवं लम्बी है कि यदि कोई व्यक्ति भ्रष्टाचार के आरोप में पकड़ा भी जाता है तो उसे सजा मिलने में वर्षों लग जाते है और तब तक वह अपने बचाव के नये–नये रास्ते खोज लेता है और फिर वह अगली बार पहले से अधिक निर्भीकता के साथ मैदान में उतरता है। आज महंगाई इस कदर बढ़ गई है कि आम आदमी को अपनी दैनिक आवश्यकता की पूर्ति करने में भी कठिनता आती है और तब वह मात्र बीस–पचास जैसी न्यूनतम राशि तक के लिये अपने नैतिक मूल्यों को ताक पर रख देता है। हमारी पुरानी आध्यात्मिक जीवन पद्धति के जो आधार–बिन्दु सिद्धांत थे जैसे–सादा जीवन उच्च विचार, पूर्वजन्म और कर्मफल जैसे सिद्धांतों को जनता आज भूल गयी है परिणामस्वरूप भ्रष्टाचार का पराजीवी पौधा आज पूरी तरह से पनपा हुआ है और देश की समृद्धि का शोषण कर रहा है। अतएवं हमें चाहियें कि हम अपने आप से प्यार करें, अपने देश से प्यार करें और यदि प्रत्येक व्यक्ति यह प्रण करे कि वह अपना कार्य पूर्ण निष्ठा एवं ईमानदारी से करेगा तब भ्रष्टाचार स्वयंमेव दूर हो जायेगा, जैसा कि शायर तासिर ने भी कहा है–

अंधेरा और बढ़ा है तो कोई बात नहीं,
यह एक नये सवेरे की निशानी है। [232]

अपने लेख **'भ्रष्टाचार मिटाओ डे मनाएं'** में **प्रो. कृष्ण स्वरूप वशिष्ठ** कह रहे है कि भारत की आजादी के 70 वर्षों बाद आज जीवन के हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार की पराकाष्ठा देखने को मिल रही है। बेलगाम वैश्वीकरण की घुसपैठ ने उपभोक्तावाद संस्कृति के जंगल में भारत के आदर्शों की धूरी, मध्यवर्गीय जनता को भ्रमित करके पथभ्रष्ट करने में काफी सफलता पाई है। इन भ्रष्टाचारियों के कुकर्मों से सबसे अधिक हानि बेरोजगार युवा वर्ग को हो रही है जो राजनीति में अपराधीकरण की सांसारिक सफलता देखकर अपराध के मार्ग पर चल पड़ते है। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह आदि की आत्माएँ यह देखकर कि आजादी मिलने के 60–70 वर्षों में ही इन भ्रष्ट तथाकथित नेताओं ने देश की यह दुर्दशा कर दी, शहीदों की आत्माएँ पछताती होंगी कि ऐसे लोगों को सत्ता व अपार वैभव दिलवाने के लिए हमने अपने प्राण न्यौछावर कर दिए। एक दूसरे के देखा–देखी अन्य लोग भी कालाबाजारी, जहरीली मिलावट, नकली प्रोडक्ट बनाने व बेचने का धंधा करने से नहीं हिचकते हैं। देश की यह दशा देखकर एक शायर की सटीक पंक्ति द्वारा कहते है–**"हर शाख पर भ्रष्ट कौए बैठे हैं तो हाले गुलिस्तां क्या होगा।"** [233]

श्रीमती मिथलेश जैन अपने लेख **'देश के विकास का स्पीड ब्रेकर–भ्रष्टाचार'** में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कहती है कि आज देश के विकास के आड़े आ रहा है हमारे यहाँ व्याप्त भ्रष्टाचार जिसकी जड़े बरगद की तरह फैल रही है। समाचार पत्र

पढ़ें या टीवी पर न्यूज देखें आये दिन विभिन्न क्षेत्रों में भ्रष्टाचार घोटालों में खबरे सुर्खियों में रहती है। देश का प्रशासन चलाने वाले राजनेता एवं उच्चाधिकारी गंभीर भ्रष्टाचार आरोपों के घेरे में अक्सर जकड़े दिखाई देते है। कार्य व कानून के सीधे रास्ते के बावजूद पीछे के दरवाजे से कार्य करने की अनीति का चारों ओर साम्राज्य है। भ्रष्टाचार हमारे देश में आम लोगों की कार्य संस्कृति बन गया है। अब भ्रष्टाचार का कोई विरोध भी नहीं बल्कि कहीं न कहीं भ्रष्टाचार को शिष्टाचार के रूप में स्वीकार करने की मौन स्वीकृति दी जा चुकी हैं। चपरासी से लेकर अफसर तक, विधायिका से न्यायपालिका तक चारों ओर भ्रष्टाचार का बोलबाला है। भ्रष्टाचार, विश्वभर में भारत की पहचान बन गया है। भ्रष्टाचार के सम्बन्ध में पूर्व प्रधानमंत्री स्व. श्री राजीव गांधी ने कहा था कि गरीबी उन्नमूलन परियोजनाओं को केन्द्र द्वारा दिये जाने वाले प्रत्येक सौ करोड़ रुपये में से मात्र 15 करोड़ ही मूल परियोजना में खर्च हो पाते है और शेष राशि सत्ता प्रतिष्ठान से जुड़े लोग खा जाते है। ट्रान्सपेरेंसी इन्टरनेशनल के अध्ययन के अनुसार देश में छोटी–छोटी रिश्वत के तौर पर जो राशि दी जाती है वह राशि हर साल 21068 करोड़ हो जाती है। कितना बड़ा विरोधाभास है कि गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन करने वालों ने वर्ष 2007–08 में गरीबी का प्रमाणपत्र लेने के लिये विभिन्न सरकारी विभागों को 900 करोड़ रुपये रिश्वत में दिये। अकेले बीपीएल के ढाई करोड़ लागों द्वारा पुलिस महकमे को 215 करोड़ रुपये बतौर रिश्वत अदा किये गये। गरीबों ने भूमि रिकार्ड व पंजीकरण सेवाओं के लिए 122.4 करोड़ रुपये सेवा–कर बाबुओं को चुकाए। इसप्रकार आज देश नीचे से ऊपर तक भ्रष्टाचार के शिकंजे में इस तरह जकड़ा हुआ है कि यहाँ की जनता का धन हो या विश्व बैंक अथवा दुनिया की दूसरी वित्तीय एजेन्सियों द्वारा सहायता के रूप में प्राप्त धन हो सबका बड़ा हिस्सा देश के विकास कार्यों में न खर्च होकर भ्रष्ट नेताओं और अफसरों की व्यक्तिगत पूंजी बढ़ा रहा है। अतः इस भ्रष्टाचार की समस्या से निजात पाने के लिए शासन, प्रशासन को अपनी कार्य प्रणाली में पारदर्शिता लानी होगी। 'सूचना का अधिकार' इस ओर एक महत्त्वपूर्ण पहल है। साथ ही देश में भ्रष्टाचार निरोधक कानून और अधिक प्रभावशाली बनाये जाने की आवश्यकता है। यह सच है कि देश में भ्रष्टाचार एकदम समाप्त नहीं हो सकता पर उसे अमर बेल की तरह फैलने से अवश्य रोका जा सकता है।[234]

अपने दूसरे लेख **'ये कैसी आज़ादी?'** में वह कह रही है कि आज देश को आजाद हुए 70 वर्ष हो चुके है पर इसकी तस्वीर में कोई बदलाव नहीं आया वरन् तस्वीर बदरंग ही हुई है। अंग्रेजों के समय में देश और जनता को लूटना स्वाभाविक था पर विडम्बना आज अपने ही अपनों को हर तरह से लूट रहे है। दुर्भाग्य है देश में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से जो भी पार्टी सत्तारूढ़ होती है वह निरंकुशता की पराकाष्ठा होती है। तभी तो सत्ता के बल पर भ्रष्ट तन्त्र के विरुद्ध आवाज उठाने वालों को बेरहमी से कुचल कर मसल देने की प्रवृत्ति बढ़ गयी है। यह गहन चिन्ता की बात है कि बेचारे

किसानों की सुध कोई नहीं लेता। गाँवों में टूटी फूटी सड़कों का बुरा हाल है। नौकरशाही के चलते किसानों के विकास के वास्ते मिलने वाला धन किसान तक नहीं पहुँचता है। मौजूदा हालात से भुखमरी, महंगाई, भ्रष्टाचार की मार से आम आदमी त्रस्त है। आज देश राजनेताओं और नौकरशाही की दुरासन्धि के कारण खोखला हो गया है। ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल संस्था की रिपोर्ट के अनुसार देश के सभी राज्यों एवं केन्द्र शासित राज्यों में गरीबी रेखा से नीचे जीने वालों ने भी पुलिस, सार्वजनिक वितरण प्रणाली, अस्पताल, बिजली विभाग आदि सरकारी महकमों को रिश्वत में अरबों रुपया दिया है। यह भ्रष्ट तन्त्र का सवाल आम नागरिक के लिये कई प्रश्न उठाता है कि क्या हम इतना गिर गये है कि हम भारत को पूरे विश्व में आज सबसे भ्रष्टतम् देश का खिताब दिलाने पर उतारु है। अतः आज महत्ती आवश्यकता है कि सरकार आम आदमी के प्रति अपना उत्तरदायित्व समझे और भ्रष्टाचार रहित परिवेश में नये संकल्पों के साथ आजादी को असल मायने देकर खुशहाल एवं समृद्ध, आम आदमी के लिए आजाद भारत का निर्माण करें। [235]

अपने लेख **'शुचिता हनन और पनपता भ्रष्टाचार'** में **सुनीति रावत** कह रही है कि शुचि शब्द पवित्रता का घोतक है, पवित्रता अर्थात मनसा, वाचा, कर्मणा शुद्ध भाव बोध, शुचिता को दो भागों में बाँटा जा सकता हैं, बाह्य एवं आन्तरिक, बाह्य रूप से सुचिता, नित्य स्नान, ध्यान, वस्त्रों का स्वच्छ होना होता है जो आपके व्यक्तित्व को निखारता है। किन्तु आन्तरिक शुचिता होना बाह्य शुचिता से अधिक महत्त्वपूर्ण है, जो आपके चेहरे पर झलकता है, आपके आचार–विचार से झलकता है, आपके व्यक्तित्व को गढ़ता है, वह मन की शुद्ध प्रवृत्तियों को उजागर करता है। मगर आज के इस परिवर्तनशील समय में, जहाँ नित्य दृश्य–श्रव्य माध्यम हमें दुराचरण के दृश्यों को परोसते हैं। वहाँ सदाचरण का रूकना कठिन होता जा रहा है, परिणाम सामने है, सदाचार की पीठ पर सवार हो रहा भ्रष्टाचार। मानव पथ भ्रष्ट हो तो उसे सिखा–समझाकर सुधारा जा सकता है, मतिभ्रष्ट भी हो तो भी धर्म संहिताएँ उसे सुधारने का प्रयास करती हैं, किन्तु आचरण ही भ्रष्ट हो तो पतन की सीधी राह खुल जाती है, आज देश का यही हाल है, भ्रष्टाचार जड़ पकड़ता जा रहा है। राजा–प्रजा, छोटा–बड़ा अपने–अपने ढंग से कहीं न कहीं भ्रष्टाचार की चपेट में आते जा रहे हैं, हमारे मार्गदर्शक नेता, जिनके धन के अम्बार के कच्चे चिठ्ठे प्रायः अखबार, दूरदर्शन, रेड़ियों हमारे सामने खोलते रहते हैं करोड़ों की सम्पदा, जिनके खातों में है, खातों से परे न जाने कहाँ–कहाँ छुपा होता है धन, विदेशी बैंकों में जमा धन को यदि स्वदेशी बैंकों में जमा करने का कोई विकल्प होता तो, अरबों के धन का करोड़ों का ब्याज सरकार के प्रगतिशील कार्यों के काम आता, एक–एक मंत्री की जमा पूँजी का यदि सदुपयोग होने लगे तो न जाने कितने उद्योग पनपने लगें, बेरोजगारी, गरीबी, भुखमरी के घातक तत्व विनष्ट हो जायें तो भ्रष्टाचार अपने आप थम जाये। [236]

कारण :—

- लालची परिवारों की इच्छायें, अरमान, रिश्तेदारों से बराबरी, बेटे को अच्छा मोबाइल, बेटी को प्रतिदिन नई ड्रेस, महंगे स्कूल—कॉलेज में शिक्षा आदि सभी के कारण भ्रष्टाचार फैलता है।
- एक दूसरे के देखा—देखी अन्य लोग भी कालाबाजारी, घूसखोरी, नकली प्रोडक्ट बनाने व बेचने का धंधा करने लगते है।
- इन्सान का लालच व जल्दी अमीर बनने की लालसा उसे रिश्वत लेने पर मजबूर करती है जिसके कारण भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है।
- अपना कार्य जल्दी करवाने के लिए, किसी गैर कानूनी कार्य को कानूनी बनाने के लिए या किसी अपराध को छुपाने के लिए भी रिश्वत का सहारा लिया जाता है।
- भ्रष्टाचार बढ़ाने के लिये हमारी शिक्षा व्यवस्था भी किसी हद तक उत्तरदायी है। हमारे विश्वविद्यालय अब व्यक्तित्व निर्माण एवं विद्यादान की अपेक्षा अधिक से अधिक अर्थोपार्जन के तरीके बताने में लग गये है।
- आज महंगाई इस कदर बढ़ गई है कि आम आदमी को अपनी दैनिक आवश्यकता की पूर्ति करने में भी कठिनता आती है और तब वह मात्र बीस—पचास जैसी न्यूनतम राशि तक के लिये अपने नैतिक मूल्यों को ताक पर रख कर रिश्वत लेने को मजबूर हो जाता है।
- हमारे देश में बेरोजगारी व्यापक स्तर पर फैली हुई है इसमें अल्पशिक्षित से लेकर उच्च शिक्षित तक सभी प्रकार के बेरोजगार सम्मिलित है जो जीविका पाने के लिये भ्रष्टाचार का सहारा लेने को तुरंत तैयार हो जाते है।
- हमारे देश की न्याय व्यवस्था इतनी जटिल एवं लम्बी है कि यदि कोई व्यक्ति भ्रष्टाचार के आरोप में पकड़ा भी जाता है तो उसे सजा मिलने में वर्षों लग जाते है और तब तक वह अपने बचाव के नये—नये रास्ते खोज लेता है और फिर वह अगली बार पहले से अधिक निर्भिकता के साथ मैदान में उतरता है।

सुझाव :—

- अपने लालची परिवार वालों की मानसिकता में परिवर्तन लाना होगा, सादा जीवन का उन्हें पाठ पढ़ाना होगा, ईमानदारी का अखंड दीपक जलाना होगा, होड़—फैशन—दिखावे से परहेज करवाना होगा तभी भ्रष्टाचार से छुटकारा पाया जा सकेगा।
- हमें मिलकर शपथ लेनी होगी कि गलत काम नहीं करेंगे, रिश्वत नहीं लेंगे, काला धन स्वीकार नहीं करेंगे, नियमों का पालन करेंगे, आदर्श समाज का उदाहरण पेश करेंगे और भ्रष्टाचार को समाप्त करेंगे।

- भ्रष्टाचार की समस्या से निजात पाने के लिए शासन, प्रशासन को अपनी कार्य प्रणाली में पारदर्शिता लानी होगी।
- ई–प्रशासन व्यवस्था भ्रष्टाचार के रोग का प्रभावशाली उपाय हो सकता है क्योंकि यह भ्रष्टाचार के कारणों पर सीधा और अचूक असर करेगा। इसके माध्यम से सामान्य व्यक्ति घर बैठे कम्प्यूटर के माध्यम से संबंधित अधिकारी से अपने कार्य के बारे में सूचना प्राप्त कर सकेंगे जिससे रिश्वत माँगने की संभावना भी नहीं रहेगी।
- देश में भ्रष्टाचार निरोधक कानून और अधिक प्रभावशाली बनाये जाने की आवश्यकता है जिसमें न्यायालय द्वारा दोषियों को न्यूनतम समय सीमा में त्वरित रूप से कड़ी से कड़ी सजा व आर्थिक जुर्माने का प्रावधान होना चाहियें।
- सभी मंत्रियों की जमा पूँजी का यदि सदुपयोग होने लगे तो न जाने कितने उद्योग पनपने लगें, बेरोजगारी, गरीबी, भुखमरी के घातक तत्त्व विनष्ट हो जायें तो भ्रष्टाचार अपने आप थम जाये।

3.4.10 जीव हत्या :–

जीव हत्या से सम्बन्धित समस्या के प्रमुख लेखक एवं लेखिकाओं के नाम निम्न है –

<u>काव्य</u>

- कोकिला जैन–दानवता को दफनाये

<u>लेख</u>

- साध्वी डॉ. स्नेहप्रभाजी–जीवन का सार शाकाहार
- प्रवर्तक रमेश मुनि–हिंसा बनाम दैत्य से सावधान
- श्रीमती उषादेवी रारा–जीव रक्षा ही मानव धर्म है
- ओमप्रकाश गुप्ता–अब तो बंद हो मांस का निर्यात
- ओमप्रकाश गुप्ता–नील गायों पर मौत की तलवार

काव्य में जीव हत्या :–

कोकिला जैन अपने काव्य **'दानवता को दफनाये'** में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कह रही है कि आज मानव अपने लालच और भोग–विलासमय जीवन जीने के लिए बेजुबान जानवरों की हत्या कर रहा हैं। जहाँ कभी दूध की नदियाँ भहा करती थी अब वहाँ पर खून की धारा बह रही है। गौ माता जहाँ पूजी जाती थी वहीं आज उन्हें बूचड़खानों में काटा जा रहा है। जिन्हें इनका रक्षक कहा जाता था वही अब इनके भक्षक बन गये है अर्थात लालच में आकर अपनी तिजोरियाँ भरने के लिए उनकी हत्या

कर उनका मांस निर्यात कर रहे है। आज मानव अपनी लाज–लज्जा भूलकर दानवता का रूप धारण कर रहा है। इसलिए ऐसे लोगों से लेखिका कह रही है कि–

> क्षमा दया करुणा ममता की पावन धारा में हम नहाये,
> गले लगाये हर प्राणी को, मानव जन्म सफल कर लें।
> कर सुकृत निज कर्मों से पुण्य लाभ संचय कर लें,
> अपनी शुभ वृत्ति करें जागृत, दानवता को दफनायें।। [237]

लेखों में जीव हत्या :–

साध्वी डॉ. स्नेहप्रभाजी अपने लेख **'जीवन का सार शाकाहार'** के माध्यम से कह रही है कि प्रकृति में मानव शाकाहारी प्राणी माना गया है। मनुष्य की शारीरिक रचना, पाचन प्रणाली सरल–सुपाच्य होने के कारण शाकाहारी मानी गई है। वैज्ञानिक शोधों द्वारा शाकाहार ही मनुष्य का उत्तम आहार माना गया है। संसार का कोई भी धर्म मांसाहार तथा जीव हत्या को सही नहीं ठहराता जैन धर्म का तो आधार ही दया तथा अहिंसा है। परन्तु आज जीव हत्या के कारण पशु–पक्षी की कई जातियाँ लुप्त होने के कगार पर पहुँच गई है, कितनी तो लुप्त हो गई है। कईयों को बचाने हेतु उन्हें संरक्षण दिया जा रहा है। वर्तमान में तो शिकार करना, वन्यजीव पालना, पशुपक्षियों को हिंसक कार्यों में प्रयोग राजकीय रूप से प्रतिबंधित है। ऐसा दुष्कर्म करने वाला दण्ड का भागी बनता है। अगर हम मनुष्य को स्वाद लोलुपता के लिए मांसाहार व शाकाहार का तथ्यात्मक तथा वैज्ञानिक पहलुओं पर विचार करें तो मांसाहार सर्वधा अनुचित, प्रकृति विरोधी, मानवता विरोधी, स्वास्थ्य के लिए हानिकारक पर्यावरण विरोधी, धन व संसाधनों की बर्बादी वाला सिद्ध होता है। यदि हम जीव हिंसा तथा मांसाहार सेवन का सामाजिक दृष्टिकोण से भी विचार करें तो यह स्वीकार करने योग्य भोजन नहीं कहा जा सकता। इस पर **एडवर्ड एच. किरवी (चेयरमैन वेजिटेरियन सोसायटी)** का कहना है कि **''शाकाहार–नीति का अनुसरण करने से ही पृथ्वी पर शान्ति, प्रेम और आनन्द चिरकाल तक बने रहेंगे।''** आज पूरे विश्व में शाकाहार का प्रचार हो रहा है और करना भी चाहिए। पूरे विश्व में शाकाहार पर सेमिनार, संगोष्ठियाँ व सम्मेलन आयोजित हो रहे है। आने वाले दिनों में निश्चय ही मानव मन मांसाहार से घृणा करने लगेगा तथा पशुओं के महत्त्व को स्वीकार करते हुये अहिंसा व शाकाहार पर चलने के लिए प्रेरित होगा। [238]

प्रवर्तक रमेश मुनि अपने लेख **'हिंसा बनाम दैत्य से सावधान'** में बताते है कि आज चारों ओर हिंसा–प्रवृत्ति का बोलबाला है। बाजार गर्म है। जान सस्ती और माल महंगा। बेरोक–टोक हिंसा–प्रवृत्ति दिन दुगुनी रात चौगुनी अपना शिकंजा फैलाने में तत्पर है। किसी की ताकत नहीं कि खतरनाक इस दानवी रफ्तार पर और प्राणों के सौदागर उन दरिन्दों–दानवों पर नियंत्रण की लगाम लगा सकें। पूर्वापेक्षा आज नृशंसता–निष्ठुरता और क्रूरता सीमा लांघ चुकी है। शुद्ध–स्वच्छ और स्वास्थ्यप्रद प्रकृति

में विकृति आने का यही कारण है। फलस्वरूप पशु–पक्षी व जैविक जगत का दम घुट रहा है। कत्लखानों की हिंसक प्रवृत्ति सदैव विषाक्त प्रदूषण उगलती रही है। कहीं बाजार–मार्केटों में मृत मच्छलियों के ढेर लगे दिखाई देते है तो कहीं जानवरों के रूण्ड–मुण्ड लटक रहे है। कहीं धड़ल्ले के साथ अण्ड़ों की बिक्री तो कहीं सरे आम मूक प्राणियों का हलाल। न जल–थल पर सुरक्षा न मकान–दुकान में और न मन्दिर–मठ–मस्जिद–गुरुद्वारों में। दिन प्रतिदिन कत्लखानों की अधिकता को देखकर और प्रतिदिन होने वाली लाखों पशु–पक्षियों की हिंसा को देखकर लगता है कि कुछ वर्षों के बाद पशु–पक्षी बिचारे नमूने के तौर पर भले बच जाय तो बच जाये। [239]

श्रीमती उषा देवी रारा अपने लेख **'जीव रक्षा ही मानव धर्म है'** के माध्यम से कह रही है कि आज हमारी उपेक्षा के कारण यह मूक पशु लाचार अवस्था में अपने साथी को कटता हुआ देख रहे हैं, गाय के थन बता रहे हैं कि यह अभी भी आपको दूध दे सकते थे। काटने के लिए तैयार इस निरीह पशु को अपनी वेदना व्यक्त करने के लिये किसी भाषा की आवश्यकता नहीं। इन कटी हुई गायों के सिरों को देखकर क्या ऐसा नहीं लगता कि आज का मनुष्य कितना कृतघ्न हो गया है। अगर इन्हें देखकर भी हमारी हृदय की वीणा झंकृत नहीं होती आन्दोलित नहीं होती तो क्या हम मानव कहलाने के अधिकारी है? कभी नहीं। आज बिकने के लिये ले जाते हुए यह बेबस और बेजुबान जानवर मानों हमसे पूछ रहे हो कि जब हमारे और तुम्हारे खून की रंगत एक है जब वही आत्मा (जीव) मुझमें विचरण करती है तो क्या तुम अपना ही सौदा नहीं कर रहे हो? जब हमारा ही दूध पीकर बड़े हुये जब हमारे ही गोबर की खाद के कारण अनाज की प्राप्ति हुई। अतः धर्म बन्धुओं यह पशु पक्षी अभी बाजार में है अतः इसे कत्लखानों में ले जाने से अभी भी बचाया जा सकता है। [240]

अपने लेख **'अब तो बंद हो मांस का निर्यात'** में **ओमप्रकाश गुप्ता** कहते है कि सृष्टि के प्रारम्भ से ही भारत अहिंसा प्रधान देश रहा है। इस पावन धरती के कण–कण में करुणा–दया–सहिष्णुता–मानवीयता समाई हुई है। प्राचीन इतिहास के पन्ने उन महापुरुषों की गाथाओं से भरे पड़े हैं जिन्होंने प्राणी मात्र की रक्षा के लिए जीवन पर्यन्त जन–जन को उद्‌बोधन से प्रेरित किया और खुद को समर्पित कर दिया। त्याग, बलिदान और संयम के बल पर प्राणियों के जीवनदान हेतु न जाने कितनी महान आत्माएँ अब तक संसार से विलुप्त हो चुकी है। मगर आज उसी भारत की धरा पर हर वर्ष पशु हिंसा का तांड़व निरन्तर बढ़ रहा है। खून की नदियाँ बह रही हैं और उनकी चीत्कार से प्रकृति कांप रही है। प्रतिदिन लाखों पशु–पक्षी खून और मांस के चटखोरों के लिए तड़फा–तड़फा कर मारे जा रहे है। अतः आज भारत में जितनी मांस की आपूर्ति हो रही है उससे कई गुना अधिक मांस विदेशों को निर्यात हो रहा है। यानी विदेशी मुलकों की पूर्ति के लिए भारत के निरीह मूक प्राणी पर लगातार खंजर चल रहे हैं। मीट व्यवसाईयों को पिछली हुकूमत के लोगों ने इतनी भारी छूट, सब्सिड़ी व

सुविधाएँ प्रदान कर रखी है जिसके कारण मांस निर्यात का धंधा पिछले दस वर्षों में ही कई गुना अधिक हो गया। नए–नए यांत्रिक कत्लखानों की संख्या बढ़ती चली गई। डिब्बा बंद मांस दुनिया भर में सप्लाई हो रहा है और खाल व हड्डियों के व्यवसाय में निरंतर वृद्धि हो रही है। अब गाय–भैंस–पाडे–बछड़े ही नहीं वरन् ऊँट–भेड़–बकरी–घोड़े–मोर–कबूतर–चिड़िया जैसे छोटे–छोटे पक्षियों को भी मारा जा रहा है। स्वार्थी तत्त्वों ने नील गाय जैसी शाकाहारी वन्य प्राणी को भी नहीं बख्शा और वह भी खाल–मांस के लालच में शिकारियों की भेट चढ़ती जा रही है। एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार 2013–14 में 26500 करोड़ रुपये का 14.50 लाख टन मांस भारत से निर्यात किया गया जिस पर तत्कालीन केन्द्र सरकार ने 10150 करोड़ की सब्सिडी प्रदान की। चौकाने वाला तथ्य यह है कि इतने मांस के निर्यात हेतु एक करोड़ 32 लाख भैसों का वध किया गया। हकिकत में अब तक मूक पशुओं का क्रंदन किसी सरकार व उनके आकाओं ने नहीं सुना लेकिन अब भारत को अपनी पावन संस्कृति की रक्षा के लिए समय रहते कम से कम मांस निर्यात व पशु वध पर रोक लगाने में प्रभावी पहल करनी चाहिए। मेरा ऐसा मानना है कि लाखों–करोड़ों पशुओं की इससे प्राण रक्षा होगी और उनकी आशीष सरकार के लिए बहुत बड़ी दुआ का काम करेगी।[241]

अपने दूसरे लेख **'नील गायों पर मौत की तलवार'** में वह कहते है कि राजस्थान विधान सभा के चालू सत्र के दौरान जंगल के वन्य संरक्षित प्राणी नील गायों की हत्या के लिए मौजूदा कानून को और भी सरल करने का जो ऐलान हुआ, वह क्रूरता की पराकाष्टा है। राज्य सरकार से मंत्री ने यह घोषणा की कि किसानों की फसल रक्षा के लए नील गायों को मारने हेतु अब सरपंचों से अनुमति लेने का प्रावधान लागू किया जाएगा। साथ ही उन्होंने सरकार की यह मंशा भी जाहिर कर दी कि निकट भविष्य में कानून में संशोधन करके ऐसा भी प्रयास किया जाएगा जिससे नील गायों का सफाया करने के लिए किसी तरह की अनुमति लेने की जरूरत ही नहीं पड़े। यानी मौजूदा वन्य जीव सुरक्षा अधिनियम कानून की धाराओं से नील गायों को बाहर करने के लिए केन्द्र सरकार को सिफारिश भेजी जाएगी ताकि उसकी हत्या फिर कोई जुर्म (अपराधिक कृत्य) न बन सके। कैसा आश्चर्य है कि एक तरफ शेर–बघेरे–चीते–सांभर–मृग–बारहसिंगा–जंगली सूअर तक की हत्या पर कठोर सजाओं का प्रावधान है। अब रेगिस्तान के ऊँट तक की प्राण रक्षा के लिए उसे संरक्षित प्राणी घोषित कर उसकी तस्करी व हत्या को दण्डनात्मक अपराध लागू कर दिया गया और दूसरी तरफ जंगल में ही रहने वाली नील गायों के जीवन पर लगातार मौत की तलवार लटकाई जा रही है। संभवतः जिस दिन भी प्रदेश के सरपंचों को नील गायों की हत्या यानी उन्हें मारने के लिए अनुमति देने का कानूनी प्रावधान लागू हो गया, तब कुछ ही महीनों के भीतर नील गायों का शिकारी व पेशेवर तस्कर सफाया कर देंगे। नील गायों के साथ अन्य वन्य जीवों की हत्या होना भी फिर कोई आश्चर्य का पहलु नहीं रहेगा।

अतः इन हालात में धर्म व संस्कृति के पक्षधर साधु–संतो, महात्मा और धर्माचार्यों, सभी धार्मिक, सामाजिक, जीव दया व पर्यावरण रक्षा के संगठनों, जागरुक प्रबुद्ध नागरिकों को ही अपनी आवाज बुलन्द करनी होगी ताकि निर्दयता व क्रूरता पर उतारु सत्ताधीशों को नसीहत आ सके और नील गायों की जिन्दगी सुरक्षित हो सके। [242]

कारण :–

- मानव की स्वार्थी प्रवृत्ति ने शाकाहारी वन्य प्राणी को भी नहीं बख्शा और वह भी खाल–मांस के लालच में शिकारियों की भेट चढ़ते जा रहे है।
- सत्ता में बैठे कई बड़े–बड़े लोग और उनके आका स्वयं मांसाहारी है अतः वह जीव हत्या पर उचित कार्यवाही न करके शांत बैठे रहते है।
- कुछ मांसाहार प्रेमियों का मानना है कि अगर पशुओं का वध नहीं किया जाये तो पशुओं की संख्या इतनी हो जायेगी कि मनुष्य का रहना मुश्किल हो जाएगा। अतः उनके अनुसार पशुओं का वध होना आवश्यक है।
- किसानों की फसल रक्षा के लिए नील गायों को मारने हेतु सरपंचों को जिस दिन अनुमति देने का कानूनी प्रावधान लागू हो गया उस दिन नील गायों के साथ ही अन्य वन्य जीवों की हत्या होना भी शुरू हो जायेगा।

सुझाव :–

- पशुओं की रक्षा के लिए हम सभी लोगों को मिलकर उनकी रक्षा के लिए सहयोग करना चाहिए।
- सभी प्रकार के भोजों में मांसाहार को पूर्णतया प्रतिबंधित कर दिया जाए और शाकाहारी भोजन को ही प्राथमिकता दी जाए।
- भारत में संचालित यांत्रिक व अन्य सभी छोटे–बड़े कत्लखानों पर प्रतिबंध लगे और उनकी सब्सिड़ी व सुविधाएँ बंद हो।
- पशुओं की रक्षा के लिए तुरन्त प्रभाव से कम से कम मांस निर्यात व पशु वध पर रोक लगाने में प्रभावी पहल करनी चाहिए।
- पूरे विश्व में शाकाहार पर सेमिनार, संगोष्ठियाँ व सम्मेलन आयोजित हो रहे है जिनके माध्यम से लोगों को शाकाहारी बनने पर जोर दिया जा रहा हैं।
- धर्म व संस्कृति के पक्षधर साधु–संतों, महात्मा और धर्माचार्यों, सभी धार्मिक, सामाजिक, जीव दया व पर्यावरण रक्षा के संगठनों, जागरुक प्रबुद्ध नागरिकों को ही अपनी आवाज बुलन्द करनी होगी ताकि निर्दयता व क्रूरता पर उतारु सत्ता धीशों को नसीहत मिल सके।

3.4.11 हिन्दी भाषा का गिरता स्तर :–

हिन्दी भाषा के गिरते स्तर से सम्बन्धित समस्या के प्रमुख लेखक एवं लेखिकाओं के नाम निम्न है –

<u>काव्य</u>

- डॉ. मनोहर लाल गोयल–आज हिन्दी दिवस है
- अब्बास खान संगदिल–हिन्दी नहीं बोल पाते है

<u>लेख</u>

- डॉ. रेणु सिन्हा–हिन्दी
- रितेन्द्र अग्रवाल–स्वर्णिम कल की ओर हिन्दी
- सुरेखा शर्मा–हिन्दी सेवा राष्ट्र सेवा
- राम आसरे गोयल–राष्ट्रभाषा नीति और कार्यान्वयन
- लीला कृपलानी–विश्व मंच पर हिन्दी
- आर.एस.वर्मा–हिन्दी हृदय की धड़कन और देश का गौरव है

काव्य में हिन्दी भाषा का गिरता स्तर :–

डॉ. मनोहरलाल गोयल अपने काव्य **'आज हिन्दी दिवस है'** में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कह रहे है कि चौदह सितम्बर को हिन्दी दिवस आता है जिसका हिन्दी को इन्तजार रहता है। क्योंकि इसी दिन लोग उसे याद करते है और एक दिन के लिए उसे उसका सम्मान देते है। बाकी तीन सौ चौंसठ दिन तो मानो हिन्दी उपेक्षित और वनवास की जिन्दगी बिताती है। बस आज के दिन ही हिन्दी के सम्मान में जगह–जगह भाषण दिये जाते है, गुणगान किया जाता है, मगर रात होते–होते हिन्दी से दूरियाँ बढ़ने लगती है और उसके स्थान पर अंग्रेजी वापस अपना कब्जा जमा लेती है। इस प्रकार हिन्दी सबसे दूर हो जाती है और अंग्रेजी अपना राज जमाकर हिन्दी को चिढ़ाते हुए गंवार और कम पढ़े भारतीयों की भाषा बताती है तथा खुद को विश्व सुन्दरी के आसन पर बैठाती है। इसी पर वह आगे कहते है–

हिन्दी मायके में बैठी सब्जी रोटी खाती है,
और अंग्रेजी मेवा मिष्ठान खाकर अपनी भूख जगाती है।
अंग्रेजी की पालकी हिन्दी के स्थान पर आकर अपना कब्जा जमाती है,
और हिन्दी के साथ–साथ भारत की दूसरी भाषाओं को भी अपना भोजन बनाती है। [243]

अब्बास खान संगदिल अपने काव्य **'हिन्दी नहीं बोल पाते है'** में अपने विचारों के माध्यम से कह रहे है कि आज हम लोग भारत देश छोड़कर विदेशों में बसने लगे है और गर्व से उनकी भाषा उनके साहित्य पढ़ने लगे है। कुछ लोग यह सब अपनी झूठी शान के लिए अपनाते है और हिन्दी से बहुत दूर हो जाते है। मगर फिर भी हमें गर्व है

कि हम भारतीय है क्योंकि यहाँ अपनी पहचान के लिए विभिन्न भाषाओं को अपना रखा है। कुछ लोग यहाँ जमाने के साथ चलने के नाम पर अंग्रेजी बोलते है, पढ़ते–पढ़ाते है और भारत में रहकर भी अपनी मातृभाषा हिन्दी नहीं बोल पाते है। इसीलिए कवि कहते है–

मानसिक गुलामी से मस्तिष्क,
अभी भी उबर नहीं पाया है।
पाश्चात्य संस्कृति की हमारे,
ऊपर छत्र छाया है...।। [244]

लेखों में हिन्दी भाषा का गिरता स्तर :–

डॉ. रेणु सिन्हा अपने लेख '**हिन्दी**' में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कह रही है आज बोलने वालों की संख्या के आधार पर हिन्दी तीसरी सबसे बड़ी भाषा है। इसे भारतीय अपने गौरव की पहचान मानते है। यह हिमालय से हिन्द महासागर तक, बंगाल से कच्छ (गुजरात) तक सम्पर्क भाषा के रूप में अभिव्यक्ति की सर्वप्रमुख भाषा है। **ब्रिटेन के डॉ. रूपर्ट स्मेल** का कहना है–''**हिन्दी में जो रस है उसका आस्वादन करना चाहिए। यह एक मीठी भाषा है।**'' मगर आज भी हम भारतीयों की अंग्रेजी परस्त गुलाम मानसिकता हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाओं को पीछे धकेल कर अंग्रेजी को महारानी के सिंहासन पर सवार की हुई है। अंग्रेजी उच्च स्तरीय जीवन का प्रतीक, स्टेटस सिंबल बनी हुई हैं। कहने को तो हिन्दी राजभाषा है पर आज भी उसे वह सम्मान नहीं मिल पाया है जो मिलना चाहिए था। आज हम राजनीतिक रूप से भले ही स्वतंत्र भारत के नागरिक है, किन्तु मानसिक स्तर पर हम अभी भी ब्रिटेन के गुलाम हैं। **सुभाषचंद्र बोस** का कथन है–''**हमारी गुलाम मानसिकता अंग्रेजी को अंतरराष्ट्रीय भाषा होने का तर्क देते हुए हिन्दी को तुच्छ समझती है। यहाँ अंग्रेजी को पूर्णतः नकारने की जरूरत नहीं है, जरूरत है गुलाम मानसिकता त्यागने की।**'' हमें चीनी जनता से सीख लेने की जरूरत है, चीनी जनता अंग्रेजी सीख रही है किन्तु अपनी चीनी भाषा की श्रेष्ठता को पददलित करके नहीं। आज हिन्दी भाषी क्षेत्रों में स्थिति इतनी अधिक शर्मनाक है कि... एक बच्चा संसार में पैर रखने के साथ–साथ वाटर, ब्रेड़, डॉग, काऊ की घुट्टी लेने लगता है। समाज में अपने को उच्च साबित करने का मोह, ज्ञानी कहलाने की सनक, ऊँची ओहदेदार नौकरी पाने की ललक, मोटी पगार पाने की लिप्सा ने भारतीयों को अंग्रेजी का गुलाम बना रखा है। ऐसा वातावरण निर्मित किया गया है कि लाखों रुपयों का पैकेज अंग्रेजी माध्यम से प्राप्त शिक्षा से ही सुलभ हो सकता है। यद्यपि इस दिशा में कार्य किये जा रहे है, हिन्दी के मानवीकरण एवं आधुनिकरण के लिए संबंधित संस्थाओं द्वारा तथा विद्वानों द्वारा कार्य किया जा रहा है। हिन्दी भाषा के समुचित विकास एवं प्रचार–प्रसार के लिए कम्प्यूर पटल पर देवनागरी लिपी को सरलतापूर्वक विकसित कर इस दिशामें सराहनीय कार्य किया गया है। हिन्दी के अनेक प्रोग्राम देवनागरी लिपि में विकसित हो गये हैं।[245]

रितेन्द्र अग्रवाल अपने लेख **'स्वर्णिम कल की ओर हिन्दी'** के माध्यम से कह रहे है कि आज सब चाहते हैं, मानते हैं, स्वीकारते है कि हिन्दी ही भारत में एक ऐसी भाषा है जो राष्ट्र भाषा होने का दम भरती है, स्थान रखती है। फिर भी आजादी के 70 वर्ष बाद भी हिन्दी विवश है, मजबूर है क्योंकि जो कर्ता धर्ता हैं, जो ठेकेदार हैं हिन्दी सम्मेलनों में तो बाते बढ़–चढ़कर करते है। लेकिन क्रिया कलाप अंग्रेजी में, बच्चों का स्कूल अंग्रेजी में, बातचीत अंग्रेजी में यहाँ तक कि अगर विदेश गयें तो अपने विचार भी अंग्रेजी में। क्योंकि हिन्दी में बोलना तौहिन लगता है, बेइज्जती होती है। यहाँ तक कि महिलाएं भी बच्चों को अंग्रेजी में ही बोलना सिखाती है। भले ही माँ–ममी हो जाए, पिता–डेड। इतना सब होने के बावजूद भी हिन्दी का विकास हुआ है। हिन्दी ने काफी कुछ हासिल किया है। यहाँ तक कि विश्व के अनेक देशों में हिन्दी का पढ़ना–लिखना शुरू हो गया है। विश्वविद्यालयों में हिन्दी विभाग खुल गए हैं। लोग विदेशों में हिन्दी में लेखन कर रहे है। भारत से शिक्षक बुलाए जा रहे हैं ज्ञानार्जन के लिए। यह एक अच्छा संकेत है। मगर कुछ लागों को शिकायत है कि हिन्दी रोजी–रोटी की भाषा नहीं है। इसके लिए निर्णय हुआ कि हिन्दी को आधुनिक ज्ञान–विज्ञान और वाणिज्य की भाषा बनाई जाए। हिन्दी के विश्वस्तरी सम्मेलनों को प्रोत्साहित किया जाए। [246]

अपने लेख **'हिन्दी सेवा राष्ट्र सेवा'** में **सुरेखा शर्मा** कह रही है कि भाषा और संस्कृति का सम्बन्ध अत्यन्त गहरा है। भाषा के माध्यम से ही संस्कृति जीवित रहती है। किसी भी स्वतंत्र राष्ट्र की आधारशिला राष्ट्रभाषा होती है, जिसके बिना हम राष्ट्र अस्तित्व की कल्पना ही नहीं कर सकते। किसी भी देश के चरित्र का आंकलन वहाँ की भाषा के प्रति वहाँ के लोगों की रुचि से किया जा सकता है। 14 सितम्बर 1949 को हिन्दी को राजभाषा बनाने के लिए संविधान में निर्णय लिया। 26 जनवरी 1950 को सविधान के अनुच्छेध 343 के अंतर्गत संघ की राजभाषा हिन्दी और देवनागरी को लिपि घोषित किया गया। किसी भी भाषा का ज्ञान गलत नहीं है अपितु जिसके विषय में जितना ज्ञान मिल सकें हमें लेना चाहिए लेकिन उसे अपने ऊपर हावी नहीं होने देना चाहिए। मगर हजारों साल की गुलामी ने हमारी चेतना की चमड़ी को इतना मोटा कर दिया है कि हम अपनी आँखों के समक्ष अपनी ही संस्कृति की अवमानना से तनिक भी विचलित नहीं होते। हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा प्राप्त करने में कितनी बाधाओं को पार करना पड़ा ये हम सभी जानते है और फिर भी हम इसकी रक्षा नहीं कर पा रहे। आज जो राष्ट्रभाषा है वह तो अपने ही देशवासियों के लिए विदेशी भाषा के समान हो कर रह गई है। विदेशी भाषा का महत्त्व दिन–प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। जिसके लिए मुख्य रूप से गली–गली में खुल रहे पब्लिक स्कूल जिम्मेदार है। इनमें अंग्रेजी माध्यम रखा जाता है। जो भारतीय विद्यार्थियों के साथ एक खिलवाड़ है। माता–पिता भी चाहते हैं कि हमारे बच्चे धाराप्रवाह अंग्रेजी बोले जबकि ऐसा होता है कि ना वो अंग्रेजी बोल पाते है और न ही उन्हें हिन्दी का ज्ञान होता है। अतः आवश्यकता है कि

अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में हिन्दी माध्यम भी रखा जाए। जब स्कूल ही भारत में स्थापित हैं तो भाषा भी अपनी हो। भाषा के प्रति बच्चों में सम्मान पैदा करें, हीन भावना नहीं।[247]

अपने लेख **'राष्ट्रभाषा नीति और कार्यान्वयन'** में **रामआसरे गोयल** का कहना है कि हमें आजादी मिले 70 वर्ष बीत गए हैं। अंग्रेज हिन्दुस्तान छोड़ गए परन्तु अंग्रेजी की दास्ता को हमारी रगों में इस तरह भर गए है कि उससे अब हम अलग नहीं हो रहें। जो लोग हिन्दी के हिमायती थे उनके बच्चे विदेशों में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। उनके विचार से हिन्दी गंवारों की भाषा है। हिन्दी, हिन्दुस्तान में अपनों के द्वारा ही समाप्त की जा रही है। अक्सर यह कहते सुना जाता है कि अपने ही देश में हिन्दी बेगानी हो गयी। इसमें कोई दो राय नहीं कि अंग्रेजी माध्यम स्कूलों की बाढ़ आई हुई है। कारण है हमारे समाज में अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में बच्चों को पढ़ाने की विवशता क्योंकि जब विश्व के किसी कोने में जाए तो वहाँ अंग्रेजी के साथ–साथ अन्य भाषाएँ समझने वाले लोग भी है। जब विकास की बात आती है तो कई दकियानूसी विचार वाले व्यक्तियों का मानना है कि क्या हिन्दी न पढ़ने से विकास रुक जाता है? हम चाहते है हमारा बच्चा अमेरिका, लंदन जाए तो उसे वहाँ की भाषा का ज्ञान भी होना चाहिए। यहाँ यह भी कहना चाहेंगे कि भाषाएँ सीखना कोई गलत नहीं, अपितु जहाँ से भी ज्ञान मिले लेना चाहिए। पर अपनी मातृ भाषा को भूल कर नहीं। हिन्दी आज केवल राष्ट्र भाषा नहीं बल्कि विश्व भाषा के रूप में भी सम्मानित है। हिन्दी हमेशा आधुनिकरण की प्रक्रिया से गुजर रही है, भारतीय भाषाओं के साथ–साथ विदेशी भाषाओं के शब्दों को भी अपनाकर अपना शब्द भंडार बढ़ाया है। हिन्दी को संस्कृति के साथ–साथ समाज के वातावरण से भी जोड़ना चाहिए तभी हिन्दी को शिखर पर पहुँचने का स्वप्न पूरा हो सकेगा। [248]

अपने लेख **'विश्व मंच पर हिन्दी'** में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए **लीला कृपलानी** कह रही है कि **गाँधी जी** का यह स्पष्ट मत था कि **हर देशवासी को अपनी भाषा से प्यार करना है। भाषा को बढ़ाना और बनाना हमारा ही कर्त्तव्य है।** उन्होंने तो यहाँ तक कह दिया था कि **''मेरी मातृभाषा में कितनी ही खामियाँ क्यों न हो मैं इससे उसी तरह चिपटा रहूँगा जिस तरह बच्चा अपनी माँ की छाती से। यदि अन्य कोई भाषा चाहे अंग्रेजी हो या अन्य कोई उस जगह को हड़पना चाहती है जिसकी वह हकदार नहीं है तो मैं उससे सख्त नफरत करूँगा।''** लेकिन आजादी के बाद हिन्दी की जो संवैधानिक स्थिति रही उससे उलट उसकी व्यवहारिक स्थिति बनी। भाषा को भारत का गौरव माना जाता है। संविधान में हिन्दी को राजभाषा तो घोषित कर दिया परन्तु यह प्रावधान रखा कि संविधान लागू होने के 15 वर्ष बाद तक राजकार्य में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जायेगा। 18 जनवरी 1968 को भारत की लोकसभा ने सर्व–सम्मति से यह प्रस्ताव पारित किया कि केन्द्रीय सरकार का समस्त कार्य हिन्दी में होगा। परन्तु भाषा की मानसिक गुलामी और राजनैतिक इच्छाशक्ति के अभाव में इस प्रस्ताव की पूर्ण पालना नहीं हो पाई। यद्यपि भाषा के आन्दोलनकारियों के सतत प्रयासों से तब से अब

तक भाषा के विकास व भाषा को बचाओं आंदोलन जारी है। लेकिन इस दिशा में आम जनता आवाज उठायेगी तभी हिन्दी का कुछ भला हो पायेगा। अतः हम सबको यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि हम सभी भारतवासी भाषायी मानसिक दासता से ऊपर उठेंगे और कहेंगे–

हिन्दी हमारा दिल है, हिन्दी हमारी धड़कन।
हिन्दी से है सुवासित, हर सांस और तन–मन।।
हिन्दी हमारा बचपन, हिन्दी हमारा यौवन।
हिन्दी में ही रंगा है, भारत धरा का जन–जन।। [249]

आर.एस. वर्मा अपने लेख **'हिन्दी हृदय की धड़कन और देश का गौरव है'** में बताते है कि हिन्दी को संवैधानिक मान्यता 14 सितम्बर 1949 को राजभाषा के रूप में प्राप्त है। इसके बावजूद अंग्रेजी को सम्पर्क भाषा के रूप में निरन्तर अपनाये रखना हमारे अंग्रेजी प्रेम के प्रति दिवानापन ही कहा जा सकता है। अंग्रेजी का मोह आखिर छूटता क्यों नहीं? यह कैसी विडम्बना है कि हिन्दी को अपने ही घर में बाहरी ताकतवर जुबान से मात खानी पड़ रही है। आज आजाद हुए 70 वर्ष का समय हो जाने पर भी अंग्रेजीयत की मंशा से अंग्रेजों के गुलाम ही बनकर जी रहे है। पूरे देश में केवल 5 प्रतिशत व्यक्ति ही अंग्रेजी के विद्वान है। 95 प्रतिशत हिन्दी के जानकार विद्वानों के रहते हिन्दी को राष्ट्र भाषा का सम्मान प्राप्त नहीं होना हमारी मानसिक बिमारी का ही घोतक है। आज देश आजाद है फिर क्या कारण है कि हमारे स्वतंत्र देश का नागरिक, सांसद, विधायक, न्यायपालिका, विधायिका, कार्यपालिका जो स्वयं अपने द्वारा बनाये गये कानूनों के आधार पर चलती है क्यों चुप हैं? क्या कोई व्यक्तिगत स्वार्थ है, क्या मजबूरी है, मात्र वैज्ञानिक, तकनीकी, प्रौद्योगिकी विषयों का ज्ञान हिन्दी लिपि में नहीं है। क्या इस आधार पर हम मौन है। भारत में हर 14 वां व्यक्ति हिन्दी जानता है और समझता है। आज तो विश्व के 137 देशों में हिन्दी और अन्य भाषाओं का अध्ययन हो रहा है। अब राष्ट्रभाषा हो या न हो अब समय आ गया है हमें हिन्दी का महत्त्व समझना चाहिए। राजनैताओं का मुँह ताकने के बजाय हमें स्वयं प्रतिदिन हिन्दी में बातचीत करनी चाहिए, लिखना चाहिए, सबको प्रेरित करना चाहिए और हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा नहीं मिले तब तक संघर्ष निरंतर जारी रखना चाहिए। [250]

कारण :–

- जो लोग हिन्दी के कर्ता धर्ता है, ठेकेदार है वह हिन्दी सम्मेलनों में तो बाते बढ़–चढ़कर करते है। लेकिन अपने क्रिया कलाप अंग्रेजी में, बच्चों का स्कूल अंग्रेजी में, बातचीत अंग्रेजी में करते है। क्योंकि उन्हें हिन्दी में बोलना तौहीन लगता है, बेइज्जती होती है।

- कुछ लोगों का मानना है कि हिन्दी रोजी–रोटी की भाषा नहीं है इसलिए वह हिन्दी को छोड़कर अंग्रेजी भाषा को अपनाने लगते है।
- वर्तमान में हिन्दी अपने ही देशवासियों के लिए विदेशी भाषा के समान हो कर रह गई है। जिससे विदेशी भाषा का महत्त्व दिन–प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। इसके लिए मुख्य रूप से गली–गली में खुल रहे पब्लिक स्कूल जिम्मेदार है। क्योंकि इनमें अंग्रेजी माध्यम रखा जाता है।
- कुछ लोग अक्सर अंग्रेजी बोलने वालों की नकल करने के लिए अंग्रेजी भाषा की ओर आकर्षित हो जाते है।
- युवाओं को विदेश में जाकर पैसा कमाने की लालसा ने भी अंग्रेजी भाषा की तरफ आकर्षित किया है।
- समाज में अपने को उच्च साबित करने का मोह, मोटी पगार पाने की लिप्सा ने भारतीयों को अंग्रेजी का गुलाम बना रखा है।
- आज रोजगार का अधिकतम द्वार अंग्रेजी माध्यम से खुल रहा है जिसके कारण हिन्दी में गिरावट आ रही है।

सुझाव :–

- हिन्दी के विकास के लिए हिन्दी को आधुनिक ज्ञान–विज्ञान और वाणिज्य की भाषा बनाई जाए। हिन्दी के विश्वस्तरीय सम्मेलनों को प्रोत्साहित किया जाए।
- हिन्दी का सही विकास बच्चों से प्रारम्भ होता है इसके लिए आवश्यकता है कि अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में हिन्दी माध्यम भी रखा जाए तथा भाषा के प्रति बच्चों में सम्मान पैदा करें, हीन भावना नहीं।
- विदेशी भाषाएँ सीखना कोई गलत नहीं, अपितु जहाँ से भी ज्ञान मिले लेना चाहिए पर अपनी मातृ भाषा को भूल कर नहीं बल्कि उसको साथ में लेकर चलना चाहिए।
- हिन्दी विकास के लिए भारत सरकार एवं प्रांतीय सरकरें, हिन्दी सेवी संस्थाओं, साहित्यकारों, रचनाकारों, प्रकाशकों एवं हिन्दी प्रेमी जनता का विशेष सहयोग चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. सुनीता कुमारी, रांगेय राघव के उपन्यासों में सामाजिक चेतना, 2017, पृ0 7 http://hdl.handle.net/10603/128971
2. ममता एन. दतवानी, शिवानी के कथा–साहित्य में सामाजिक चेतना, 2016, पृ0 62–63 http://hdl.handle.net/10603/126503
3. आचार्य जैन, प्रेमचन्द के हिन्दी साहित्य में सामाजिक चेतना, पृ0 213
4. श्रीमती पुलिकोंड कमला साई, अमृतलाल नागर के उपन्यासों में सामाजिक चेतना, 2016, पृ0 7 http://hdl.handle.net/10603/104632
5. डॉ. कुँवरपाल सिंह, हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना, पांडुलिपि प्रकाशन, 1976, पृ0 7
6. रत्नाकर पाण्डेय, सामाजिक चेतना और हिन्दी साहित्य, श्री प्रकाशन, 2007, पृ0 154
7. वही, पृ0 156
8. डॉ. नगेन्द्र, साहित्य का समाजशास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1962, पृ0 5–6
9. डॉ. कुँवरपाल सिंह, हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना, पांडुलिपि प्रकाशन, 1976, पृ0 118
10. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, तारसप्तक के कवियों की सामाजिक चेतना, वाणी प्रकाशन, 1984, पृ0 209
11. देवराज पथिक, नई कविता में राष्ट्रीय चेतना, कादंबरी प्रकाशन, 1985, पृ0 16
12. विष्णु आर. सोलंकी, राजेन्द्र यादव के उपन्यास–साहित्य में समाजिक चेतना, 2006, पृ0 7 http://hdl.handle.net/10603/47287
13. वही, पृ0 7–8
14. रमेश कुन्तल मेघ, आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण, वाणी प्रकाशन, 1969, पृ0 11
15. श्रीमती पुलिकोंड कमला साई, अमृतलाल नागर के उपन्यासों में सामाजिक चेतना, 2016, पृ0 6–7 http://hdl.handle.net/10603/104632
16. डॉ. कपिल पटेल, समकालीन हिन्दी नाटकों में सामाजिक चेतना, शांति प्रकाशन, 2007, पृ0 32
17. डॉ. राजेश रानी, हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना, के.के. पब्लिकेशन, 2007, पृ0 5
18. वही, पृ0 5
19. नीलिमा टिक्कू, अंधविश्वास की आड़ में, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2008) पृ0 67–68

20. श्रीमती विनोदिनी गोयनक, आत्मनिर्भर, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2009) पृ0 73–74
21. श्रीमती मोहिनी राजदान, स्वाभिमानी कमला, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2012) पृ0 75
22. सावित्री चौधरी, आखिर क्यों?, जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2014) पृ0 25–26
23. डॉ. राम बहादुर 'व्यथित' अग्नि परीक्षा, जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर, 2004) पृ0 40
24. डॉ. तारालक्ष्मण गहलोत, तब से...कब तक..., जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2011) पृ014
25. डॉ. श्रीमती अनीता सकलेचा, नारी व्यथा, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2013) पृ0 18
26. आशा वर्मा, नारी, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2008) पृ0 42
27. श्रीमती पुष्पा शर्मा 'आलोक', नारी विडम्बना, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2008) पृ0 52
28. सुकीर्ति भटनागर, नारी व्यथा, जगमग दीपज्योति (अंक मार्च, 2014) पृ0 30
29. डॉ. वर्षा पुनवटकर, नारी की व्यथा, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2006) पृ0 22
30. डॉ. रेणु शाह, मानवाधिकार एवं साहित्य में नारी लेखन, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2009) पृ0 77–79
31. प्रो. डॉ. तारालक्ष्मण गहलोत, नारी जीवन अन्दर का सच, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2013) पृ0 17–18
32. हीरालाल जैन, नर–नारी समता और भारत, जगमग दीपज्योति (अंक मार्च, 2004) पृ0 26
33. अमृता जोशी, नारी की स्थिति, जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त, 2004) पृ0 42
34. अंजु दुआ 'जैमिनी', आधुनिकता की दौड़ में पीछे भारतीय नारी, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2008) पृ0 29
35. श्रीमती मिथलेश जैन, कब होगी महिलाओं की हिंसा से मुक्ति?, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2009) पृ0 51–52
36. कमल कपूर, बदल रहें हे हवाओं के रूख, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2012) पृ0 27–28
37. सुमति कुमार जैन, मेरी बात, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2004–2014) पृ0 8–9

38. प्रो. डॉ. तारालक्ष्मण गहलोत, महिला विशेषांक, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2012) पृ0 9
39. प्रो. श्यामलाल कौशल, महिला होना गुनाह है क्या?, जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर, 2007) पृ0 29
40. प्रभा जैन, बोलो मैंने क्या गुनाह किया?, जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर, 2007) पृ0 12
41. डॉ. रचना गौड 'भारती' (आयोजिका) शिक्षित कामकाजी महिलाओं का शोषण : क्यों और कब तक?, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2009) पृ0 33–36
42. डॉ. जयश्री शर्मा, सुमति, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2005) पृ0 69–70
43. नवनीत ठक्कर, रफता–रफता, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2004) पृ0 16–20
44. डॉ. श्रीमती तारा सिंह, प्राचीन काल में नारी, जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त, 2009) पृ0 24
45. डॉ. लतीफ अकबरावादी, मंजिल, जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त, 2004) पृ0 31
46. डॉ. सरला अग्रवाल, आत्मविश्वास, जगमग दीपज्योति (अंक जून–जुलाई, 2007) पृ0 37
47. डॉ. अनिल सुदर्शन, देवी, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2010) पृ0 42
48. आनन्द बिल्थरे, एक बार कह दो, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2004) पृ0 32
49. दिनेश कुमार छाजेड़, पीड़ा, जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2013) पृ0 17
50. आनन्द बिल्थरे, विष और अमृत, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2014) पृ0 29–30
51. आशमा कौल, औरत होने का दर्द, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2011) पृ0 8
52. अशोक 'आनन', आत्म–ग्लानि, जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2014) पृ0 24
53. सावित्री जगदीश चौरसिया, दुष्कर्म क्यों, जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2014) पृ0 48
54. डॉ. रामसिंह यादव, सही निर्णय, जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2005) पृ0 17–18
55. डॉ. इन्दु गुप्ता, नन्हीं जरूर जन्मेगी, जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई–अगस्त, 2012) पृ0 29–30
56. डॉ. कविता किरण, भ्रूण हत्या, जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2013) पृ0 47
57. नयन कुमार राठी, अनहोनी, जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर, 2005) पृ0 55–56

58. सुनील कुमार अग्रवाल, कुल ज्योति, जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2005) पृ0 23–24
59. शैलजा गुप्ता, ममता की छाँव, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2007) पृ0 28
60. मीनाक्षी हल्दानिया, अग्नि रथ, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2008) पृ0 81–82
61. किशन लाल शर्मा, सजा, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी–मार्च, 2008) पृ0 16
62. आचार्य भगवान देव 'चैतन्य', कन्या पूजन, जगमग दीपज्योति (अंक मार्च, 2009) पृ0 28
63. श्रीमती विनोदिनी गोयनका, उपहार, जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त, 2011) पृ0 24–25
64. श्रीमती मंजुला गुप्ता, अब और नहीं, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2012) पृ0 48
65. आकांक्षा यादव, अधुरी इच्छा, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2013) पृ0 21
66. डॉ. राम शर्मा, बेटी का दर्द, जगमग दीपज्योति (अंक जून–जुलाई, 2007) पृ0 44
67. डॉ. खटका राजस्थानी, बेटी की पुकार, जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2009) पृ0 16
68. डॉ. उषा यादव, अजन्मी बच्ची का दुःख, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2010) पृ0 64
69. डॉ. अजय जनमेजय, जन्म लेना चाहती हूँ, जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2012) पृ0 13
70. विनोद कुमारी किरण, बेटी, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2013) पृ0 34
71. सुमन भण्डारी, बेटी के उदगार, जगमग दीपज्योति (अंक मार्च–अप्रेल, 2010) पृ0 38
72. शारदा श्रोत्रिय, बेटी, जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2009) पृ0 47
73. इन्दिरा अग्रवाल, भ्रूण का अभिशाप, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2008) पृ0 18
74. अंजुमन मंसूरी 'आरजू', अस्मिता, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2013) पृ0 59
75. डॉ. कमलेश शर्मा, जो कन्या न होती, जगमग दीपज्योति (अंक अप्रेल, 2007) पृ0 38
76. डॉ. (सुश्री) लीला मोदी, भ्रूण हत्या, जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2007) पृ0 46
77. डॉ. मालती शर्मा, मानव वंश चलेगा कैसे, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2012) पृ0 55
78. श्रीमती मोहिनी राजदान, भ्रूण हत्या के लिए पत्नी का विरोध, जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त–सितम्बर, 2010) पृ0 30

79. राष्ट्रसंत श्री गणेश मुनि शास्त्री, भ्रूण परीक्षण नहीं कराऊँगी, जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई–अगस्त, 2012) पृ0 30
80. सुषमा अग्रवाल, बेटियाँ, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2005) पृ0 43
81. अखिलेश निगम 'अखिल', आदिम युग फिर लौट आया है, जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई–अगस्त, 2006) पृ0 51
82. अशोक जोशी, भ्रूण हत्या करते हो?, जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर–नवम्बर, 2006) पृ0 78
83. अखिलेश निगम 'अखिल', क्यों तुमको लाज न आती है?, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2010) पृ0 26
84. श्री गणेशमुनि शास्त्री, आंगन की तुलसी, जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर–नवम्बर, 2012) पृ0 24
85. गीता भट्टाचार्य, इन्साफ, जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर–नवम्बर, 2013) पृ0 52
86. मंजुला गुप्ता, कन्या हत्यारे, जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर–जनवरी, 2013–2014) पृ0 40
87. ज्ञान दिवाकर राष्ट्रसंत प्रवर्तक श्री गणेशमुनि शास्त्री, खिलवाड़, जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2014) पृ08
88. डॉ. भरत मिश्र प्राची, कन्या भ्रूण हत्या का परिवेश सृष्टि के लिये चुनौती, जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2006) पृ0 43
89. डॉ. संध्या जैन 'श्रुति', घटती कन्याएँ बढ़ता लिंग भेद एवं मानव अधिकार, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2007) पृ0 16
90. प्रो. तारालक्ष्मण गहलोत, कन्या भ्रूण हत्या का सच एक समाज शास्त्रीय विश्लेषण, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2012) पृ0 61–62
91. डॉ. सीमा शाहजी, कन्याभ्रूणों की हत्या से नष्ट होता सांस्कृतिक पर्यावरण, जगमग दीपज्योति (अंक मार्च, 2014) पृ0 35–36
92. कपूर चन्द्र जैन 'बंसल', गर्भस्थ बालिका का वात्सल्यमयी अपनी माँ को अलिखित भावपूर्ण पत्र, जगमग दीपज्योति (अंक जून, 2006) पृ0 30
93. रितेन्द्र अग्रवाल, भ्रूण की गुहार माँ से, जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2006) पृ0 38
94. सुधा गोयल, औरत की कोख का बाजारीकरण, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2007) पृ0 29
95. दिलीप भाटिया, कन्या भ्रूण हत्या कुछ प्रश्न, जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2007) पृ0 29

96. श्रीमती प्रेम कोमल बूंलिया, कोंख या कब्रगाह, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2008) पृ0 39
97. मिथलेश जैन, गुम होती बेटियाँ : जिम्मेदार हम और आप, जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त–सितम्बर, 2008) पृ0 51
98. मार्ग मालती, कन्या भ्रूण हत्या दोषी कौन, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2010) पृ0 44
99. भुवनेश्वरी मालोत, संकल्प ले कन्या भ्रूण हत्या नहीं करेंगे, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2011) पृ0 32
100. सुरजीत सिंह साहनी, अभिशप्त कन्या भ्रूण हत्या कारण एवं निवारण, जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2012) पृ0 19
101. डॉ. शीला चौधरी, भ्रूण हत्या क्यों?, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2005) पृ0 45–46
102. प्रो. डॉ. तारालक्ष्मण गहलोत, अजन्मी बेटी री अरदास, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2013) पृ0 36
103. श्रीमती प्रभा पांडे, माँ से अजन्मी बेटी की शिकायत, जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई–अगस्त, 2006) पृ0 51
104. नीलिमा टिक्कू, (आयोजिका) कन्या का जन्म : खुशी या गम, परिचर्चा, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2010) पृ0 37–48
105. डॉ. सरला अग्रवाल, नव संदेश, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2011) पृ0 15–18
106. पवन चौहान, साथ, जगमग दीपज्योति (अंक मार्च, 2004) पृ0 35–36
107. पुष्पलता कश्चप, संतान, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2006) पृ0 41
108. रंजना फतेपुरकर, अनुराधा, जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2011) पृ0 15–18
109. अनु. लक्ष्मी रूपल, गुड्डी, जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2014) पृ0 37–38
110. शिबली हसन 'शैली', क्योंकि तुम लड़की हो, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2009) पृ0 48
111. श्रीमती विजय माथुर, आंचल में छिपा लो मुझे माँ, जगमग दीपज्योति (अंक जून, 2008) पृ0 21
112. डॉ. संगीता सक्सेना, लोकरंगों में बिटिया, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2013) पृ0 47–48
113. यशी, बेटियाँ भी कम नहीं बेटों से, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2004) पृ0 85
114. श्रीमती शकुंतला सोनी 'शकुन', लिंग भेद असंतुलन–जिम्मेदार कौन?, जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2008) पृ0 25

115. कृष्णा भटनागर, बेटियाँ अनमोल रत्न अथवा अगले जनम मोहे बिटिया ही दीजो, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2011) पृ0 22

116. बसन्ती पंवार 'विष्णु', बेटा–बेटी, जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2013) पृ0 52

117. विनोदिनी गोयनका, आत्म–संतोष, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2005) पृ0 55–57

118. पदम चन्द गान्धी, टूटते रिश्ते, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी,2005) पृ0 29–30

119. डॉ. अखिलेश्वर तिवारी, सामाजिक प्राणी–एक प्रश्नचिन्ह, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2006) पृ0 36

120. महावीर राज जैन, साधन–साधन के सामने छोटे, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2004) पृ0 24

121. श्रीमती अलका मित्तल, टूटते रिश्ते बिखरते परिवार, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2012) पृ0 43

122. श्रीमती नीलमरानी सहगल, क्यों होता है पारिवारिक तनाव?, जगमग दीपज्योति (अंक अप्रेल, 2006) पृ0 53

123. डॉ. वर्षा पुनवटकर 'बरखा', बोझिल रिश्तें..., जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2005) पृ0 37

124. डॉ. पूरन सिंह, तारकोल, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2007) पृ0 37

125. डॉ. मंजु सिंह, अम्मा, जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर–दिसम्बर, 2009) पृ0 71–73

126. डॉ. चांदकौर जोशी, नई दिशा, जगमग दीपज्योति (अंक जून, 2012) पृ0 29–30

127. डॉ. श्रीमती संतोष सांघी, समाधान, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2013) पृ0 31–32

128. पुष्पलता कश्यप, एक लरजती जिंदगी, जगमग दीपज्योति (अंक मार्च, 2004) पृ0 43–44

129. चरण सिंह चौहान, वृद्ध–आश्रम, जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त, 2004) पृ0 26

130. आनन्द बिल्थरे, सिर का बोझ, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2005) पृ0 22

131. नवनीत ठक्कर, अहसान, जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2006) पृ0 30

132. श्रीमती चन्द्रकला गंगवाल, बॉय बॉय वृद्धाश्रम, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2007) पृ0 83–84

133. विनोदिनी गोयनका, पश्चाताप के आँसू, जगमग दीपज्योति (अंक अप्रेल 2012) पृ0 33–34

134. उषा यादव, आलौकिक सुख, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2013) पृ0 39–41

135. ब्रजभूषण भटनागर, राह का पत्थर, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2014) पृ0 17–18

136. साध्वी प्रियदर्शन 'प्रियदा', माता–पिता के उपकार, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2005) पृ0 26

137. राजेन्द्र प्रसाद जोशी, बोझ समझकर, जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2006) पृ0 18

138. जगदीश पंडित, कविता भी रोती है, जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2012) पृ0 22

139. सुधा गोयल, कौन पोछेगा इनके आँसू, जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2005) पृ0 55–56

140. प्रेम कोमल बूंलिया, क्यों करते हैं माँ–बाप का बंटवारा?, जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर–दिसम्बर, 2008) पृ0 58

141. भारती शर्मा, बेटों के कंधे का बोझ, जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त–सितम्बर, 2010) पृ0 10

142. घनश्याम मेठी, पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव ने माँ–बाप को किया तिरस्कृत, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2011) पृ0 30

143. अब्बास खान 'संगदिल', पूत कपूत तो क्या धन संचय, जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2013) पृ0 29

144. डॉ. सरला अग्रवाल, वह सुबह–वह शाम, जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त, 2004) पृ0 11–12

145. मंजु सिंह, मधु, जगमग दीपज्योति (अंक मार्च, 2005) पृ0 41–44

146. जयंत, माता देवी, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2007) पृ0 11–12

147. सरला मनूचा, रिक्शावाला, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2008) पृ0 16

148. विनोद कुमारी 'किरन', भूख, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2012) पृ0 29–30

149. मधु हातेकर, थोड़ा है थोड़े की जरूरत, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2012) पृ0 30

150. प्रो. मुहम्मद सुलेमान, फुटपाथ का बालक, जगमग दीपज्योति (अंक जून–जुलाई, 2007) पृ0 62

151. रितेन्द्र अग्रवाल, श्रमिक तेरी जय हो, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2007) पृ0 18

152. डॉ. आशा मेहता, ये कैसी मजबूरी, जगमग दीपज्योति (अंक जून, 2008) पृ0 45

153. शिवचन्द जैन, चंदन, जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर–दिसम्बर, 2010) पृ0 47

154. डॉ. रेणुका नैय्यर, नीव में काम आ गये बच्चे, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2010) पृ0 35
155. डॉ. शीला कौशिक, बाल श्रम, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2010) पृ0 43
156. डॉ. अमित शुक्ल, बाल श्रम की उभरती चुनौतियाँ एवं समाधान के उपाय, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2012) पृ0 27
157. दिलीप कुमार गुप्ता, बालश्रम एवं कानून, जगमग दीपज्योति (अंक जून–जुलाई, 2007) पृ0 58
158. आकांक्षा यादव, खो रहा है बचपन, जगमग दीपज्योति (अंक जून, 2008) पृ0 54
159. मोनिका चौहान, बचपन बचाओं, जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2006) पृ0 43
160. कमल कपूर, आओ खोज कर लायें कोई नया सूरज, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2010) पृ0 7
161. अंजु दुआ जैमिनी, दिनेश की वापसी, जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2007) पृ0 43–45
162. मृदुला झा, अन्तिम संस्कार, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2012) पृ0 50
163. डॉ. रामसिंह यादव, सब पढ़ें सब बढ़ें, जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2014) पृ0 25–27
164. डॉ. राम बहादुर 'व्यथित', क्या अभिमन्यु पथ से भटक रहा है, जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2005) पृ0 41–42
165. डॉ. लल्लन ठाकुर, देश के युवा वर्गःअपेक्षाएं एवं उपेक्षाएं, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2012) पृ0 35–36
166. डॉ. रेणु सिन्हा, युवा वर्गःदशा एवं दिशा, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2012) पृ0 36
167. डॉ. शकुन्तला तंवर, एक आह्वान युवाओं से, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2012) पृ0 38
168. डॉ. मेजर शक्तिराज, आज का युवा किधर जा रहा है, जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2013) पृ0 30
169. प्रो. शामलाल कौशल, युवा वर्ग में भटकाव, जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2013) पृ0 26
170. ललित नारायण उपाध्याय, वर्तमान विसंगतियों के लिए दोषी हम स्वयं भी है, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2004) पृ0 23–24
171. करुणा श्री, किशोर युवाओं को मेरा नमस्कार, जगमग दीपज्योति (अंक मार्च, 2006) पृ0 38

172. नीलिमा टिक्कू, बच्चे देश का भविष्य व युवा वर्ग वर्तमान है, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2012) पृ0 8
173. इन्द्र भंसाली 'अमर'(आयोजक) आज के युवा की दशा और दिशा, जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2013) पृ0 27–29
174. नीलिमा टिक्कू, जब जागो तभी सवेरा, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2012) पृ0 39–40
175. श्री विश्व शांति टेकडीवाल परिवार, लुटता बचपन उजड़ता यौवन, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी–मार्च, 2012) पृ0 43
176. माधुरी शास्त्री, माता–पिता की अभिलाषाएं युवा पीढ़ी पर भारी, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2012) पृ0 23
177. डॉ. सरला अग्रवाल, उड़ती पतंग, जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2004) पृ0 29–32
178. मंजुला गुप्ता, मुरझाती कमलिनी, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2004) पृ0 67–69
179. श्रीमती कृष्णा बुरड़, स्वामित्व, जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर–दिसम्बर, 2009) पृ0 81
180. सुधा गोयल, हत्यारिन, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2007) पृ0 35–36
181. मधु हातेकर, अनोखा निर्णय, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2014) पृ0 26
182. अखिलेश निगम 'अखिल', नशा बनाम नाश, जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2012) पृ0 16
183. डॉ. निरूपमा राय, आखिरी खत, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2010) पृ0 51–54
184. डॉ. आशा पाण्ड़ेय, पराया धन, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी–मार्च, 2012) पृ0 45–46
185. नीलिमा टिक्कू, मातृ शक्ति, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2009) पृ0 37–38
186. कपूर चन्द्र जैन 'बंसल', रंजिश का एक क्रांतिकारी उदय, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2005) पृ0 33–34
187. चन्द्रसिंह तोमर 'मयंक', लग्न मण्डप, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2006) पृ0 19–22
188. सिद्धेश्वर, दूल्हा बाजार, जगमग दीपज्योति (अंक मार्च, 2011) पृ0 21–22
189. उषा यादव, इस बार, जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2013) पृ0 18
190. श्रीमती सरला मनूचा, दहेज दानव, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2007) पृ0 56

191. गीता गुर्जर, दहेज के कारण नारी की स्थिति, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2008) पृ0 42

192. किरण शर्मा, दहेज बनाम कफन, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2008) पृ0 54

193. सुषमा जैन, महिला संगठनों की चुप्पी चिन्तनीय है, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2004) पृ0 55–56

194. हरीश कुमार वर्मा, समाज का अभिशाप दहेज, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2008) पृ0 20

195. पवन चौहान, पश्चाताप, जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2004) पृ0 25–29

196. नीलिमा टिक्कू, बेघर, जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2009) पृ0 32

197. डॉ. राम शर्मा, वृक्ष की आवाज, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2007) पृ0 36

198. राष्ट्रसंत उपाध्याय श्री गणेश मुनि शास्त्री, इस धरती पर...!, जगमग दीपज्योति (अंक अप्रेल, 2005) पृ0 60

199. सिद्धेश्वर, कब्र पर बैठी रो रही दम तोड़ रही आशा, जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2006) पृ0 25

200. शुभम सिंह, गूंज तबाही की, जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त, 2013) पृ0 34

201. डॉ. वल्ली उल्लाह खां फरोग, अतिभोग, जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर–नवम्बर, 2013) पृ0 26

202. डॉ. शशि प्रभा जैन, पर्यावरण–संरक्षण में महिलाओं की भूमिका, जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2005) पृ0 51–52

203. प्राची प्रवीण माहेश्वरी, विध्वंसक पथ पर अग्रसर मानव, जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2004) पृ0 14

204. राजेन्द्र प्रसाद जोशी, जैन धर्म और पर्यावरण संतुलन, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2007) पृ0 15

205. श्रीमती मिथलेश जैन, पर्यावरण की सुरक्षा–महिलाओं की भागीदारी, जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2008) पृ0 21

206. श्रीमती मिथलेश जैन, भगवान महावीर और पर्यावरण, जगमग दीपज्योति (अंक अप्रेल, 2011) पृ0 20

207. शुभदा पाण्डे, पर्यावरण संचेतना, जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2009) पृ0 21–23

208. श्रीमती कृष्णा बुरड़, धरा की खूबसूरती...कायम रहे, जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2012) पृ0 21

209. रश्मि अग्रवाल, पर्यावरण और संतुलन, जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त, 2013) पृ0 35
210. साध्वी प्रशंसाश्री 'मोक्षा', हमारा वातावरण एवं मानवीय संवेदनाएँ, जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर–जनवरी, 2013–2014) पृ0 68–69
211. आर.के.भारद्वाज, पर्यावरण और पूर्वजों का पशु–पक्षी–वृक्ष प्रेम, जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2014) पृ0 24
212. नानक सिंह, रब्ब अपने असली रूप में, जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त, 2004) पृ0 25–26
213. प्रेम कोमल बूंलिया, कुल गौत्र, जगमग दीपज्योति (अंक जून–जुलाई, 2007) पृ0 71
214. महेश बी. शर्मा, सच्चा इंसान, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2004) पृ0 46
215. गीता जैन, प्रार्थना, जगमग दीपज्योति (अंक अप्रेल, 2004) पृ0 84
216. माधुरी शास्त्री, भेद नहीं मानव मानव में, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2005) पृ0 71–72
217. करूणा श्री, और मन्थन के बाद, जगमग दीपज्योति (अंक जून, 2008) पृ0 27–28
218. नाथूलाल मेहता, आतंक और देश प्रेम, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2009) पृ0 24
219. सुगन चन्द जैन 'नलिन', युवकों का संकल्प, जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2013) पृ0 26
220. डॉ. शकुन्तला तंवर, सैनिक की पत्नी होने का अर्थ उत्सर्ग जीवन, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2009) पृ0 84
221. डॉ. बी.एल. वत्स, आतंकवाद : समस्या और समाधान, जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2011) पृ0 19
222. डॉ. रवीन्द्र कुमार उपाध्याय, कफन के लुटेरे, जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त–सितम्बर, 2010) पृ0 18–19
223. अलका मित्तल, आज का सच, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2006) पृ0 46
224. सौभाग्य मुनि 'कुमुद', खोज रहा हूँ उजाला, जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2005) पृ0 59
225. राजेन्द्र रतन, रिश्वत, जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2005) पृ0 34
226. अखिलेश निगम 'अखिल', अंगारे बरसाऊंगा, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी–मार्च, 2008) पृ0 8

227. नलिन विभा 'नाज़ली', कैंसर भ्रष्टाचार के, जगमग दीपज्योति (अंक मई—जून, 2009) पृ0 50

228. राधेश्याम परवाल, ईमानदारी की बेईमानी, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2011) पृ0 24

229. दिनेश वर्मा, ईमान, बेईमान और भ्रष्टाचार, जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त, 2011) पृ0 15

230. सी.ए. साहनी, क्रान्ति स्वर, जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2013) पृ0 35

231. दिलीप भाटिया, लालची परिवार भ्रष्टाचार का आधार, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2004) पृ0 70

232. श्रीमती अनूप घई, बढ़ता भ्रष्टाचार : दोषी कौन, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2004) पृ0 62

233. प्रो. कृष्ण स्वरूप वशिष्ठ, भ्रष्टाचार मिटाओ डे मनाएं, जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त—सितम्बर, 2008) पृ0 42

234. श्रीमती मिथलेश जैन, देश के विकास का स्पीड ब्रेकर—भ्रष्टाचार, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2011) पृ0 31—32

235. श्रीमती मिथलेश जैन, ये कैसी आज़ादी, जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त, 2013) पृ0 22

236. सुनीति रावत, शुचिता हनन और पनपता भ्रष्टाचार, जगमग दीपज्योति (अंक जून, 2012) पृ0 12

237. कोकिला जैन, दानवता को दफनाये, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2004) पृ0 10

238. साध्वी डॉ. स्नेहप्रभाजी, जीवन का सार शाकाहार, जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त, 2013)पृ0 9—10

239. प्रवर्तक रमेश मुनि, हिंसा बनाम दैत्य से सावधान, जगमग दीपज्योति (अंक मार्च, 2004) पृ0 28

240. श्रीमती उषादेवी रारा, जीव रक्षा ही मानव धर्म है, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2004) पृ0 61

241. ओमप्रकाश गुप्ता, अब तो बंद हो मांस का निर्यात, जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त, 2014) पृ 33—34

242. ओमप्रकाश गुप्ता, नील गायों पर मौत की तलवार, जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2014) पृ0 33—34

243. डॉ. मनोहर लाल गोयल, आज हिन्दी दिवस है, जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2013) पृ0 24

244. अब्बास खान 'संगदिल', हिन्दी नहीं बोल पाते है, जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2014) पृ0 26

245. डॉ. रेणु सिन्हा, हिन्दी, जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर–जनवरी, 2013–2014) पृ0 23–24

246. रितेन्द्र अग्रवाल, स्वर्णिम कल की ओर हिन्दी, जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2007) पृ0 24

247. सुरेखा शर्मा, हिन्दी सेवा राष्ट्र सेवा, जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2013) पृ0 19

248. राम आसरे गोयल, राष्ट्रभाषा नीति और कार्यान्वयन, जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2013) पृ0 19

249. लीला कृपलानी, विश्व मंच पर हिन्दी, जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2014) पृ0 25

250. आर.एस. वर्मा, हिन्दी हृदय की धड़कन और देश का गौरव है, जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2014) पृ0 26

चतुर्थ अध्याय

जगमग दीपज्योति में
अभिव्यक्त सांस्कृतिक चेतना

चतुर्थ अध्याय

जगमग दीपज्योति में अभिव्यक्त सांस्कृतिक चेतना

4.1 सांस्कृतिक चेतना से अभिप्राय

4.2 'जगमग दीपज्योति' में चित्रित विविध विधाओं में अभिव्यक्त सांस्कृतिक समस्याएँ, सन् (2004 से 2014 तक)

4.2.1 लिव–इन–रिलेशनशिप

4.2.2 समाप्त होते संस्कार

4.2.3 मीडिया के माध्यम से विकसित हो रही अश्लीलता

4.2.4 बदलती संस्कृति का प्रभाव

चतुर्थ अध्याय

जगमग दीपज्योति में अभिव्यक्त सांस्कृतिक चेतना

4.1 सांस्कृतिक चेतना से अभिप्राय :–

मनुष्य के जीवन को समृद्ध, उदार, सृजनशील बनाने का, जीवन को परिष्कृत करने का कार्य सांस्कृतिक चेतना करती है। सांस्कृतिक चेतना का मुख्य कार्य मानव जीवन को व्यावहारिक क्रियाकलापों के धरातल से ऊपर उठाकर चेतना या बोध की उस भावभूमि में प्रतिष्ठित करना है, जहाँ सार्थकता का रूचिकर एवं आह्लादकारी उपभोग हमारे जीवन का लक्ष्य बन जाए। सांस्कृतिक चेतना हमारे चेतना मूलक जीवन को विस्तारित करने का तथा व्यक्तित्व को रोचक और गौरवशाली बनाने का कार्य करती है।

सांस्कृतिक चेतना वह तत्त्व हैं, जो व्यक्ति के जीवन को, व्यक्तित्व को, समृद्ध, सुन्दर और सार्थक बनाता है। व्यक्तित्व के गौरव और उसकी भव्यता का आधार प्रेम, सहयोग, करूणा, दया, सहानुभूति, साहस, निर्भीकता, कर्मण्यता, विनयशीलता, उदारता तथा कर्म एवं वाणी का सौन्दर्य आदि गुणों का परिचय सांस्कृतिक चेतना कराती है। इन्हीं गुणों को व्यवहार में लाने का प्रयास संस्कारशील व्यक्ति करता है। यह प्रयास दो स्तरों पर किए जाते है। एक तरफ अमानवीय–अनैतिकता का अस्वीकार, तो दूसरी ओर मानवीय–नैतिकता का स्वीकार एवं स्तुति। इसी प्रक्रिया के फलस्वरूप सांस्कृतिक चेतना व्यक्ति के व्यक्तित्व और चेतनामूलक जीवन को निरन्तर समृद्ध और सम्पन्न बनाती है।[1]

सांस्कृतिक चेतना के संदर्भ में डॉ. जवाहर लाल सिंह लिखते हैं – ''परम्परा से चली आती हुई संकीर्ण साम्प्रदायिक भावनाओं, धार्मिक कटुताओं और विषमताओं को दूर करने तथा राष्ट्र में एकात्मता की भावना फैलाने के लिए संस्कृति के ऐसे–ऐसे आदर्श चरित्र और घटनाओं को चित्रित करना जो वर्तमान की अनेक विषम समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर सके उसे सांस्कृतिक चेतना कहा जा सकता है।''[2]

वस्तुतः सांस्कृतिक चेतना यह शब्द 'संस्कृति और चेतना' इन दो अलग–अलग शब्दों से बना हुआ है। वैसे देखा जाए तो मनुष्य के आदर्शों, आचारों, कार्यों–अनुष्ठानों, कलाओं और जीवन के मुलभूत सत्यों को संस्कृति के रूप में जाना जाता है। संस्कृति के विभिन्न अंग एवं पक्ष होते है। वस्तुतः संस्कृति शब्द अपने आप में एक व्यापक अवधारणा को समाहित किया हुआ है। जिसका एहसास और बोध करते हुए सांस्कृतिक चेतना व्यक्ति के जीवन को परिष्कारित करती है।

आधुनिक युग में संस्कृति के पर्याय के रूप में सभ्यता शब्द का प्रयोग होने लगा है जो पाश्चात्य प्रभाव का परिणाम है। वस्तुतः सभ्यता और संस्कृति में पर्याप्त अंतर है। संस्कृति साध्य है, सभ्यता साधन है। सभ्यता का मूल्यांकन संस्कृति के संदर्भ में होता है। अर्थात सभ्यता का अपना कोई स्वतंत्र मूल्य नहीं है पर संस्कृति के दो रूप हो सकते है भौतिक एवं सूक्ष्म। भौतिक संस्कृति अर्थात सभ्यता जिसमें भौतिक उपकरण आते है। संस्कृति के सूक्ष्म पक्ष में दर्शन, धर्म, रीति–रिवाज, संस्कार कला आदि तत्त्व है।

गतिशीलता संस्कृति की विशेषता है। समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया अखंड रूप में व्याप्त है। भारत में हिन्दु–मुसलमानों पर परिवर्तित सांस्कृतिक प्रभाव तीव्र गति से पड़ रहा है। दोनों धर्मों के रीति–रिवाज कर्मकांड, विचारधारा, जीवन पद्धति आदि सांस्कृतिक तत्त्वों में एकात्मकता आई है।[3]

''मनुष्य की संस्कृति जीवन्त तभी रह सकती है जब उसका साहित्य ठहरा हुआ न रहकर प्रगतिशील हो, तटस्थ या रूठा हुआ नहीं बल्कि संघर्षशील हो।''[4] साहित्य बोध की गतिशीलता जीवन बोध की गत्यात्मकता से अनुस्यूत होती है। संवेदना बोध भी साहित्य और जीवन के संघर्षशील और प्रगतिशील आयामों से अछूता नहीं रहना चाहिए, ''जिस संवेदना की हम बात कर रहे है, जिसे साहित्य–बोध का या व्यापक स्तर पर कला–बोध का नाम दिया गया है वह वास्तव में सांस्कृतिक बोध भी है। इसलिए संस्कृति के साथ–साथ बदलता रहता है।''[5]

अच्छे एवं उच्चकोटि के लेखन के लिए लेखक का संस्कृति सम्पन्न होना जरूरी है। दो तरह का बोध या ज्ञान होता है। एक तरह का ज्ञान वह है कि जिसका सम्बन्ध उपयोगी पदार्थों से रहता है। विभिन्न शास्त्रों या विज्ञानों द्वारा संचित किया हुआ ज्ञान इसी कोटि में आता है। दूसरी तरह का बोध जीवन की उन छवियों एवं मूल्यों की चेतना में निहित होता है जो उपयोगी न होते हुए स्वयं में साध्यरूप होते है। उनकी चेतना भी स्वयं में मूल्यवान और महत्त्वपूर्ण होती है। ''हमारी परिभाषा के अनुसार इस प्रकार की निरुपयोगी चेतना, जो व्यक्ति की निराली संपत्ति न होकर सहभोग्य है, सांस्कृतिक चेतना या संस्कृति है।''[6] इस कोटि की चेतना का विषय जीवन और प्रकृति जगत का सब प्रकार का सौंदर्य और हमारे नैतिक–चारित्रिक एवं धार्मिक अध्यात्मिक मूल्य होते है।

संस्कृति तत्त्व का मुख्य कार्य मानवीय जीवन को केवल उपयोगी क्रिया कलापों के धरातल से ऊपर उठाकर चेतना की उस निरुपयोगी भूमिका में प्रतिष्ठित करना है, जहाँ सार्थकता का रुचिकर आकलन एवं आह्लादपूर्ण उपभोग ही हमारा लक्ष्य बन जाता है। सांस्कृतिक चेतना से सम्बन्धित प्रत्येक प्रत्यय और प्रश्न हमारे चेतनामूलक जीवन को विस्तार देने वाला होता है। वह हमारे व्यक्तित्व को रोचक और महत्त्वशाली भी बनाता है।

इस जीवन के प्रमुख रूप है निरुपयोगी सौंदर्य–बोध, नैतिक एवं आध्यात्मिक बोध, यहाँ निरुपयोगी बोध से हमारा मतलब उस अवगति या चेतना से है जो स्थूल अर्थ में हमारी जीवन रक्षा के लिए आवश्यक नहीं होती। दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि सांस्कृतिक चेतना अपने को किसी व्यक्तित्व या जीवन के सौष्ठव या समृद्धि अथवा दोनों रूप में प्रकट करती है। ''श्रेष्ठ साहित्य किसी न किसी रूप में विकसित चेतना की अभिव्यक्ति देता है और साहित्य का सर्जक व्यक्तित्व स्वयं में विकसित सांस्कृतिक बोध वाला होता है।''[7]

कुछ लोग संस्कृति का सम्बन्ध परम्परागत मान्यताओं और मूल्यों से जोड़ते है। इस सन्दर्भ में भारतीय अथवा पूर्वी और पश्चिमी संस्कृतियों की चर्चा भी की जा सकती है। विशुद्ध साहित्यिक उपलब्धि की दृष्टि से जिसका प्रमुख उद्देय खास तरह के चेतनामूलक जीवन का विस्तार है। भारतीय धार्मिक या आध्यात्मिक चेतना, दर्शन से विशेष प्रभावित होने के कारण दूर तक बौद्धिक और मानववादी भी रही है।

4.2 'जगमग दीपज्योति' में चित्रित विविध विधाओं में अभिव्यक्त सांस्कृतिक समस्याएँ, सन् (2004 से 2014 तक)

4.2.1 लिव–इन–रिलेशनशिप :–

लिव–इन–रिलेशनशिप से सम्बन्धित समस्या के प्रमुख लेखक एवं लेखिकाओं के नाम निम्न है –

<u>कथा</u>	<u>लेख</u>
➢ डॉ. रमाकान्त दीक्षित–इंसान की औलाद ➢ डॉ. सरला अग्रवाल–अहसास ➢ शबनम शर्मा–फैसला ➢ मंजुला गुप्ता–छल ➢ नयन कुमार राठी–रिश्तों की बुनियाद ➢ सुमन सिंह–कैद ➢ रितेन्द्र अग्रवाल–कैनवस पर दूसरा नहीं	➢ डॉ. रामअवतार शर्मा 'आलोक'–लिव इन रिलेशनशिप और भारतीय संस्कृति ➢ किरण राजपुरोहित नितिला–समाज का संक्रमण लिव इन रिलेशनशिप ➢ श्रीमती पूनम अरोड़ा–लिव इन रिलेशनशिप के लिए तय नये मानदंड़ ➢ लक्ष्मी रुपल–प्रेम विवाह का सच <u>स्थाई स्तंभ</u> ➢ अब्बास खान 'संगदिल'–पुरुष मित्रता का बढ़ता दायरा ➢ सुषमा अग्रवाल–प्रेम विवाह : वरदान या अभिशाप

कथाओं में लिव–इन–रिलेशनशिप :–

डॉ. रमाकान्त दीक्षित अपनी कथा **'इंसान की औलाद'** के माध्यम से कह रहे है कि जब लिव इन रिलेशनशिप में रहते हुए एक लड़की गर्भ धारण कर लेती है तो वह किस प्रकार मजबूर होकर अपनी सन्तान को फेकने पर विवश हो जाती है। उदाहरण देते हुए लेखक कहते है कि सुमेधा और हितेश दोनों प्रातः काल भ्रमण के लिए निकलते है तो उन्हें एक गिरजाघर के पास किसी शिशु के सिसकने की आवाज आती है। वहाँ जाने पर उन्होंने देखा कि एक शिशु काले कपड़े में लिपटा हुआ है। वह ठंड से सिकुड़ा जा रहा था। यह देख सुमेधा से रहा न गया और उसे उठाकर अपने घर ले आयी। उस शिशु के कपड़ों से एक कागज का टुकड़ा निकला जिसमे उर्दू में लिखा था–''**या अल्लाह! या परवरदीगार! में इस अभागिन बेटी की कुंवारी माँ हूँ। मेरी गलतियों और नादानियों की सजा मासूम को मत देना। आपसे मेरी इल्तिजा है, इस मासूम की हर तरह से हिफाजत करना। एक अभागिन माँ।**'' यह देख हितेश की माँ ने उसे अनाथ आश्रम छोड़ने को कहा पर वह नहीं माने और उसे अपने पास रखकर उसका नामकरण करवाया। यह बात जब चारो तरफ फैल गई तो लोगों ने उस कन्या को लेकर तरह–तरह की बाते बनायी मगर सुमेधा और हितेश ने उन बातों पर ध्यान न देकर उस कन्या को पाल–पोस कर बड़ा किया और अच्छे संस्कार दिये तथा बड़ी होने पर उसका विवाह बड़ी धूम–धाम के साथ कर विदा किया।[8]

डॉ. सरला अग्रवाल अपनी कथा **'अहसान'** में बताती है कि जब एक भारतीय लड़की विदेश में शिक्षा ग्रहण करते हुए वहीं के एक लड़के से प्रेम करने लगती है तो वह उस लड़की को धर्म परिवर्तन कर शादी करने के लिए राजी करता है मगर उसे अपने भारतीय संस्कार ऐसा करने से रोकते है और वह उसे छोड़कर वापस अपने देश भारत आ जाती है। इसी कथा पर लेखिका विस्तार से कहती है कि मिनी अपने माता–पिता की एकलोती संतान थी वह कनाडा में रहकर अपनी शिक्षा ग्रहण कर रही थी उसे वहीं पर अपने सहपाठी से प्रेम हो जाता है मगर यह बात वह अपने माता–पिता को नहीं बताती है। मिनी के माता–पिता भारतीय थे अतः वह अपनी बेटी की शादी भारत में ही करना चाहते थे मगर मिनी को तो शादी, झंझट पालना लगती थी उसका मानना था कि ''**लिविंग टुगैदर ही बैस्ट है...जब तक परस्पर प्रेम रहे, मन माने, तब तक साथ रहो, बस...कोई बंधन नहीं।**'' मगर उसके माता–पिता को पश्चिम की यह संस्कृति पसन्द नहीं थी इसलिए उन्होंने मिनी की शादी भारत में एक लड़के से कर दी मजबूरी में मिनी को उससे शादी करनी पड़ती है मगर वह तो कनाडा में पहले से ही एक लड़के से प्रेम करती थी इसलिए शादी करके वह वापस कनाडा चली जाती है और सारी बात अपने प्रेमी से कहती है। मिनी का प्रेमी क्रिश्चियन था इसलिए वह मिनी को अपना धर्म परिवर्तन कर शादी करने को कहता है और दोनों शादी करने के लिए कोर्ट में चले जाते है मगर वहाँ जाने के बाद मिनी को अपने भारतीय संस्कार

ऐसा करने से रोकते है और उसे लगता है कि वह उससे शादी करके अपने पति को धोखा दे रही है। इसलिए उसका मन बदल जाता है और वह उसे छोड़कर वापस अपने देश भारत अपने माता–पिता व पति के पास आ जाती है।[9]

अपनी कथा **'फैसला'** में **शबनम शर्मा** यह बताना चाहती है कि आज किस प्रकार लड़के प्रेम में पड़कर अपने घर वालों के विरुद्ध जाकर घर से भागकर शादी करने को तैयार हो जाते है। वह बताती है कि अनु और निधि की कई वर्षों से दोस्ती थी जो धीर–धीरे प्यार में बदल गई, परन्तु दानों में से इस बात का इजहार किसी ने नहीं किया था। कुछ दिनों बाद निधि ने अनु को बुलाकर कहा कि वो उससे शादी करना चाहती है। मगर इसके लिए उसके माता–पिता कभी राजी नहीं होंगे, इसलिए वह निधि के साथ कोर्ट मैरिज कर ले। इसका विरोध करते हुए अनु ने कहा कि **''शादी जिन्दगी का आखिरी ध्येय नहीं है, समाज, माता–पिता, रिश्तेदार सबकी अपनी अहमियत है।''** अनु की बात सुनकर निधि इल्जाम लगाते हुए बोली–**''तुम्हारी नीयत ही खराब है वरन् माँ–बाप को कौन पूछता है, जब मैं भागने को तैयार हूँ तो तुम्हें क्या आपत्ति है।''** निधि की यह बात सुन अनु अपना फैसला सुनाते हुए कहता है कि **''निधि जो लड़की अपने माँ–बाप की नहीं हो सकी, वो भला मेरी या मेरे माँ–बाप की क्या कद्र करेगी।, मुझे तुम्हारा फैसला मंजूर नहीं है।''** यह फैसला सुनाकर अनु अपने घर चला जाता है।[10]

मंजुला गुप्ता अपनी कथा **'छल'** के माध्यम से बताती है कि एक लड़का किस प्रकार लड़की को कई सपने दिखाकर अपने प्रेम के जाल में फँसा लेता है और उसका गलत फायदा उठाकर उसे छोड़ने का प्रयास करता है। इस पर प्रकाश डालते हुए वह विस्तार से कह रही है कि वीनू अपने घर में अपने माता–पिता की इकलोती संतान है उसके माता–पिता ने उसे बड़े लाड़–प्यार से पाला और उसकी हर ख्वाहिश पूरी की थी तथा उसे एक उच्च अधिकारी बनाना चाहते थे उन्हें अपनी बेटी पर बहुत विश्वास था। मगर वीनू को उसके पड़ोस में रहने वाली सहेली के दूर के भाई से प्रेम हो जाता है और वह उसके प्रेम में अपनी सुध–बुध खो बैठती है। अभिषेक उसे बहलाने के लिए उससे कहता कि मेरे पास सब कुछ है परन्तु कोई सच्चा प्यार करने वाला नहीं है। इस तरह अभिषेक ने वीनू को विवाह का आश्वासन देकर उसके तन–मन–धन से जमकर खिलवाड़ किया और झूठ बोल–बोल कर पैसे ऐंठता रहा। वीनू भी उसे मंहगी से मंहगी वस्तुएं उपहार में देती रही। अब वीनू जब भी अभिषेक से विवाह करने को कहती तो वह टाल देता और कहता कि बहन के विवाह के बाद सोचूंगा, कभी कहता कि मेरी माँ इस शादी को स्वीकार नहीं करेगी। एक दिन वीनू ने हिम्मत करके यह बात अपने पापा को बता दी यह सुन पापा को बहुत दुःख हुआ मगर अपनी बेटी की खुशी के लिए उन्होंने अभिषेक से वीनू की शादी करवा दी। मगर शादी के बाद अभिषेक का आचरण बदल जाता है और वह वीनू पर गन्दे–गन्दे आरोप लगा कर उसे मारता–पिटता है।

वीनू के पिता की मृत्यु के बाद अभिषेक व उसके घर वाले मिलकर वीनू को तलाक लेने के लिए मजबूर करते है और तलाक के कागजात पर वीनू के हस्ताक्षर करवाकर उसे घर से बाहर निकाल देते है। वीनू बिचारी अपनी गलती पर पछताने के शिवाय कुछ नहीं कर पाती है।[11]

नयन कुमार राठी अपनी कथा **'रिश्तों की बुनियाद'** के माध्यम से यह बताना चाह रहे है कि जब एक लड़का–लड़की अपने घर वालों के खिलाफ भागकर शादी कर लेते है तो घर वालों से उनका रिश्ता टूट जाता है और उन्हें पछताना पड़ता है। इसी समस्या का उदाहरण देते हुए वह बताते है कि रेखा के माता–पिता की मृत्यु के बाद उसके भैया–भाभी ही उसके लिए सब कुछ थे। उन्होंने अपने बच्चों से भी बढ़कर रेखा को प्यार दिया और उसकी हर मांग पूरी की थी। मगर रेखा को अपनी कॉलेज के एक लड़के से प्यार हो जाता है और वह उसको अपने घर भैया–भाभी के पास मिलवाने लाती है तथा उससे शादी करने का अपना निर्णय सुनाती है। भैया–भाभी उन्हें समझाते है तथा पहले अपनी पढ़ाई करने को कहते है और लड़के के घर वालों से बात करने को कहते है मगर लड़का इसके लिए राजी नहीं होता और वह दोनों भागकर मंदिर में विवाह कर लेते है। उनकी इस हरकत के कारण भैया–भाभी उनसे रिस्ता तोड़ लेते है। रेखा के सास–ससुर ने भी उनकी यह हरकत पसंद नहीं की और अपने रिश्ते–नाते तोड़ लिए। घर छोड़ने के बाद रेखा व उसके पति को अपनी गलती पर पछतावा होता है तथा वह माफी भी मांगना चाहते है मगर उनके घर वाले उन्हें माफ नहीं करते। कुछ वर्षों बाद रेखा व उसका पति, भैया–भाभी के घर चले जाते है तथा अपनी गलती स्वीकार कर माफी मांगते है तो वह उन्हें माफ कर देते है और उन्हें अपना लेते है। अब उन्हें प्रतीक्षा है उस दिन की जब उनके माता–पिता भी उन्हें माफ कर उन्हें अपना लेंगे।[12]

अपनी कथा **'कैद'** में **सुमन सिंह** बताती है कि शादी के बाद जब पति या कोई अन्य सदस्य किसी ओर से प्रेम करने लग जाता है तो किस प्रकार पति–पत्नी के जीवन में कलह मच जाता है और वह मरने पर या घर छोड़ने पर मजबूर हो जाते है। इसी समस्या पर लेखिका बता रही है कि वसु बचपन से ही खेल–कुद में आगे रहती थी उसने कई राष्ट्रिय और अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार भी जीते थे। वह और आगे खेलना चाहती थी मगर उसके पिता की मृत्यु हो जाने के कारण उसकी माता व मामा उसकी शादी कर देते है। लड़का देखने में सुन्दर था और कपड़ो की दुकान करता था। वह वसु से बहुत प्यार भी करता था और उसकी हर इच्छा पूरी करता था। वसु उसके साथ बहुत खुश रहती थी मगर एक दिन रात को वसु ने उसके पति व जिठानी को बाते करते देखा वह दोनों एक दूसरे से प्यार करते थे मगर इस बात का पता वसु के जेठ को नहीं था उसने सोचा की वह अपने जेठ से सारी सच्चाई बता दे मगर अपने संस्कारों को ध्यान में रखकर वह चुप रह गई। कुछ दिनों बाद जब जेठ जी ने उन्हें देखा तो उनसे यह बर्दाश्त नहीं हुआ और उन्होंने आत्महत्या कर ली। अब दोनों का

मिलना और भी आसान हो गया था। जब वसु ने इस बात का विरोध किया तो वह बेशर्मी से सीना तानकर खड़े हो गए और कहने लगे कि जो करना है कर लो वह एक दूसरे को नहीं छोड़ेंगे। यह सब वसु बर्दाश्त नहीं कर पाई और एक दिन मोखा देखकर वह घर छोड़कर अपनी माँ के पास आ गई। अब वह अपनी माँ के साथ रहकर काम करती है और घर का खर्चा चलाकर अपना जीवन बीता रही है।[13]

रितेन्द्र अग्रवाल अपनी कथा **'कैनवस पर दूसरा नहीं'** के माध्यम से बताते है कि शादी के बाद जब पत्नी को किसी अन्य व्यक्ति से प्रेम हो जाता है तो वह उसके लिए अपने पति का घर छोड़ देती है मगर उस व्यक्ति द्वारा उसे न अपनाने पर वह दोनों जगह से ही बेघर होकर रह जाती है। इसे विस्तृत रूप में परिभाषित करते हुए लेखक कहते है कि आरती की शादी उसके पिता ने एक अच्छे परिवार के योग्य लड़के से की थी। आरती को अपने ससुराल में हर सुख–सुविधा मिल रही थी। एक दिन आरती को अपने स्कूल का पुराना मित्र मिल जाता है और दोनों में बातचीत बढ़ने लगती है। देखते ही देखते आरती उस लड़के से प्रेम करने लग जाती है और उससे मिलने के लिए अपने पति से झूठ बोलने लग जाती है मगर उसका पति उन दोनों के बारे में सब जान जाता है और एक दिन वह आरती को कहता है कि **"एक बात समझ लो कैनवस पर एक ही तस्वीर शोभा देती है। अब फैसला तुम्हारे हाथ में है।"** तुम उसे चाहती हो तो उसके पास चली जाओं में तुम्हें कुछ नहीं कहुँगा आरती अपने पति को छोड़कर अपने प्रेमी के पास चली जाती है और उससे शादी करने को कहती है मगर वह शादी के लिए मना कर देता है और उसे वापस अपने पति के पास जाने को कहता है। दुःखी होकर आरती वापस अपने पति के पास जाती है और अपनी गलती की माफी मांगती है मगर वह यह कहकर उसे छोड़ देता है कि **"मैं अब इस कैनवस पर तुम्हें नहीं रख सकूँगा! मुझे माफ कर दो।"** इस प्रकार आरती अपने किये के कारण बेघरबार हो गयी और पछताती हुई वापस चली गयी।[14]

लेखों में लिव–इन–रिलेशनशिप :–

डॉ. रामअवतार शर्मा 'आलोक' अपने लेख **'लिव इन रिलेशनशिप और भारतीय संस्कृति'** में लिव इन रिलेशनशिप को तीन भागों में बाँटते हुए कह रहे है कि प्रथम स्थिति का रिलेशन सिर्फ पशु समाज पर लागु होता है, पशु समाज में कोई शादी विवाह जैसे सम्बन्ध नहीं होते, न सम्बन्ध स्थापित करने से पूर्व या उपरांत किसी तरह के उनके सम्बन्धों पर कोई पाबंदी नहीं होती है। दूसरी स्थिति पाश्चात्य संस्कृति और विदेशी अर्थात विधर्मी लोगों पर लागू होती है। वहाँ दो वयस्क विवाह पूर्व व उपरांत जब चाहें कभी–भी किसी महिला पुरुष से या पुरुष महिला के साथ जब जितना चाहे साथ रह सकते है, शारीरिक यौन सम्बन्ध संभोग जैसी कोई भी क्रिया कर सकता है। उनके लिए न कोई पाप है न पुण्य है। इस रिलेशनशिप से भ्रूण हत्या, नाजायज संतान, वेश्यावृत्ति, बारगर्ल जैसी कई समस्याएँ उत्पन्न होती है। तीसरी स्थिति भारतीय समाज

और भारतीय संस्कृति से जुड़ी हुई है। यहाँ लिव इन रिलेशनशिप छोड़ने के लिये नहीं अपितु जोड़ने और अपनाने के लिये की जाती है। यहाँ पर विवाह जन्म जन्मान्तर का पवित्र रिश्ता माना जाता है। यहाँ दो वयस्कों का विवाहपूर्व शारीरिक सम्बन्ध यौन सम्बन्ध अनैतिक और अमान्य है, नाजायज है और उनसे होने वाली संतान भी नाजायज है। विवाह के उपरांत भी सिर्फ अपनी पत्नी को छोड़कर या पत्नी अपने पुरुष को छोड़कर किसी से कोई शारीरिक या किसी प्रकार का यौन सम्बन्ध नहीं रख सकते, ऐसे सम्बन्ध नाजायज, अनैतिक और पाप की परिभाषा में आते है। यहाँ तक कि स्त्री कभी किसी पुरुष के बारे में या पुरुष किसी स्त्री के बारे में मन, वचन, कर्म से गलत सोचता है तो वह भी अनैतिक और पाप की श्रेणी में आता है।[15]

किरण राजपुरोहित नितिला अपने लेख **'समाज का संक्रमण लिव इन रिलेशनशिप'** में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कह रही है कि भारतीय सभ्यता के विकास से आज तक विवाह को एक पवित्र व अनिवार्य संस्था के रूप में मान्यता दी गई है। समाज के हर नर–नारी को एक अवस्था के बाद इस बन्धन में बन्धने के बाद नीति पूर्वक जीवन निर्वाह करना होता है। ये नैतिकतायें व्यक्तिगत रूप में लागू होकर स्वस्थ समाज का निर्माण करती है जो एक देश के लिए अनिवार्य है। लेकिन पश्चिम के अंधानुकरण के साथ ही एक नया विचार समाज को संक्रमित कर चुका है वो है लिव इन रिलेशनशिप अर्थात बिना विवाह के ही अपने मन पसंद साथी के साथ पति–पत्नी की भाँति रहना। पहले यह धारणा पश्चिम में जन्म लेकर वहीं प्रचलित थी क्योंकि वहाँ उन्मुक्त (आज़ाद) प्रेम व यौनाचार को सामाजिक मान्यता प्राप्त है। मगर धीरे–धीरे इस धारण का प्रसार भारत की संस्कृति पर घातक प्रहार कर रहा है। समय रहते ही इसका निराकरण नहीं किया गया तो परिवार या समाज ही नहीं बल्कि समस्त राष्ट्र को यह घुन की तरह खा जायेगा। विवाह का आधार विश्वास व प्रेम है। आज की नारियाँ उच्च शिक्षित होकर स्वावलंबन जीवन जीना चाहती है। पहले की भाँति पति के चरणों में रहकर सात जन्मों के विधान को चुनौती देने लगी है। पुरुषों की ही भाँति समान विचारों वाले मनपसंद साथी का साथ चाहती है। सम्बन्धों को इच्छा के विरुद्ध ढोना अब उनकी गत शताब्दियों की तरह मजबूरी नहीं रही, नारी अब पति से पृथक एक व्यक्तित्व है। दूर–दूर शहरों व देशों में जाकर अपना परचम पहराने वाली नारियों को विवाह में पाबंदी प्रतीत होती है। उदर पुरुषों को भी पत्नी व बच्चों की जिम्मेदारी रहित उसी भाँति का सुख उपलब्ध हो जाता है। यह प्रक्रिया कैरियर में बाधक नहीं होती शारीरिक आवश्यकतायें पूरित हो जाती है, इसके अतिरिक्त महानगरों में आवासीय व आर्थिक समस्या में सहारा मिल जाता है। वह भी बिना किसी उत्तरदायित्व के। एक दूसरे के मामलों में दखल न देना भी इसका एक हिस्सा है। मौज को तो एक दूसरे के साथ भोगते है किन्तु विपदा में साथ देने जैसा कोई उत्तरदायित्व नहीं होता। विवाह को वे 'सैटल होने के बाद' पर रखते है। अतः युवा पीढ़ी को यह समझना होगा कि वास्तव

में यह खतरनाक है। इसके दूरगामी प्रभाव शोचनीय है इसलिए विवाह संस्था में विश्वास बनाये रखना आवश्यक है। युवक युवतियों का विवाह जातिगत भेदभाव को भूलकर योग्यता के आधार पर होना आवश्यक है। विवाह को बेड़ी न मानकर युवक युवतियों को सोचना चाहिए कि इसमें सुख दुख निभाने का साझा भाव है। विवाह व्यक्तिगत ही नहीं सामाजिक सरोकार है। सुदृढ़ देश की नीव विवाह व परिवार में छुपी है।[16]

अपने लेख **'लिव इन रिलेशनशिप के लिए तय नये मानदंड'** में **पूनम अरोड़ा** कह रही है कि भारत पर छाया पाश्चात्य सभ्यता संस्कृति का रंग कोई नया नहीं है। पाश्चात्य भाषा के साथ–साथ विचार भी क्रान्तिकारी रूप से भारतीयों की सोच में परिवर्तन कर रहे हैं। इसे पाश्चात्य सभ्यता का गहरा असर नहीं कहेंगे तो क्या कहेंगे कि भारत जैसे सुसंस्कृत देश के आदर्श समाज में लिव इन रिलेशनशिप अस्तित्व में आ रहा है। यह सम्बन्ध कई कारणों से बनाये जाते है। कई बार सुरक्षा की दृष्टि से, कई बार एक–दूसरे को बेहतर समझने के लिए और कई बार केवल इसलिए ताकि खर्चों को बाँट दिया जाये लेकिन स्थिति चाहे जो भी हो शारीरिक सम्बन्ध ऐसे में कायम होते ही है। ऐसे सम्बन्धों को आजकल खुलेपन से अपनाया जा रहा है। जब तक साथ रहता है तब तक सब ठीक–ठाक रहता है, जब साथ रहना मुमकिन नहीं लगता तो आपसी सहमति से ब्रेकअप कर लिया जाता है। वैसे तो यह सम्बन्ध आसानी से जुड़ने–टूटने वाले है, लेकिन समस्या तब आती है जब इस सम्बन्ध में रहने के बाद कोई स्त्री गुजारे–भत्ते की माँग करती है। इसके लिए कानूनी मानदंड तय कर दिये गये। जिसके अन्तर्गत लिव इन रिलेशनशिप में रही महिला गुजारे भत्ते की हकदार होगी। ये शर्ते है इनमें युवक–युवती को समाज के समक्ष खुद को पति–पत्नी की तरह पेश करना होगा। दोनों अविवाहित हो तथा विवाह योग्य उम्र हो। वे स्वेच्छा से एक–दूसरे के साथ रह रहे हों और समाज के सामने खुद को एक खास अवधि के लिए जीवन साथी के रूप में दिखाये। ऐसे सम्बन्धों को कानूनी मानदंडों के अनुसार सबूतों के जरिए साबित भी करना होगा तभी कोई महिला जो लिव इन रिलेशनशिप में रही हो, गुजारा भत्ता की माँग कर सकती है। ऐसा लिव इन रिलेशनशिप के देश में उभरते एक नये सामाजिक चलन के कारण किया गया है। यद्यपि सामंती समाज में एक पुरुष और एक स्त्री के बीच विवाहेत्तर यौन सम्बन्ध पूरी तरह प्रतिबंधित था और ऐसे सम्बन्धों को गलत तथा भयानक समझा जाता था। भारतीय समाज का ढांचा तथा स्वरूप बदल रहा है और यह बदलाव परिलक्षित हो रहा है तथा संसद ने इससे संबंधित कानून बनाकर इसे मान्यता भी दी है। बेशक आज हमारी कानून व्यवस्था भी लिव इन रिलेशनशिप को गैर कानूनी नहीं मानती तो भी हमारे समाज का एक बड़ा हिस्सा ऐसा भी है जिनके द्वारा इन्हें समूचे तौर पर नहीं अपनाया गया और इसलिए समाज के बदलते स्वरूप को देखते हुए कानून ने कुछ मानदंड आवश्यक रूप से इनके लिए तय कर दिये है।[17]

लक्ष्मी रूपल अपने लेख **'प्रेम विवाह का सच'** में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कह रही है कि आज समय के साथ बहुत कुछ बदल गया है। आर्थिक विकास, औद्योगिक प्रगति और शिक्षा के प्रसार से लोगों की सोच में परिवर्तन आया है। जहाँ तक प्रेम विवाह की सार्थकता का प्रश्न है आज के परिप्रेक्ष्य में अधिकांश प्रेम–विवाह उन्हीं दो व्यक्तियों के बीच में होते है जो एक साथ काम करते है, पढ़ते है और विचार तथा रुचि में समानता रखते है। एक प्रचलित धारणा है कि **''आग के पास यदि घी रखा होगा तो वह अवश्य पिघलेगा।''** स्त्री और पुरुष का आकर्षण भी कुछ ऐसा ही है। पर प्रेम–विवाह का सारा दोष सह–शिक्षा व्यवस्था पर डालना उच्चीत नहीं है। युग के बदलते हुए वातावरण में जहाँ पर इंटरनेट, कम्प्यूटर, यहाँ तक कि सह–जीवन भी प्रचलन में है, भावनाओं पर अंकुश रखने की बात, व्यवहार में संयम रखने की बात, नैतिक पतन का डर, अच्छे–बुरे कर्मों की परिभाषा आदि बातें रूढ़िवादी, सड़ीगली परम्परावादी सोच के डिब्बे में डाल दी जाती है। यह सोचने के लिए मन करता है कि आखिर प्रेम–विवाह और उससे उत्पन्न समस्याओं का कारण क्या है। इसपर लेखिका का मानना है कि मध्यम वर्ग के परिवारों में आज भी लड़कियाँ सहम कर, दबी रह कर, डर कर रहती हैं, अपने ही लोगों से प्रताड़ित उपेक्षित, अपमानित होती हैं। इस स्थिति से तंग आकर बाहर निकलना चाहती हैं तो प्रेम–विवाह एक विकल्प बन जाता है। यह अलग बात है कि परम्परावादी कट्टर समाज में जहाँ प्रेम–विवाह को घृणित अपराध समझा जाता है लड़का–लड़की को भाग जाना, छिपे रहना और आवश्यकतानुसार सरकारी शरण लेनी पड़ती है। इस प्रकार वे अपने ही लोगों से अलग थलग पड़ जाते हैं, तिरस्कृत तथा उपेक्षित जीवन बिताने के लिए बाध्य होते है। इतने विरोध, धमकियों और शत्रुता के होते हुए भी प्रेम–विवाह का सिलसिला थम नहीं रहा है। अब परिस्थितियों के अनुरूप समाज की सोच और पुरानी मानसिकता में तेजी से बदलाव आ रहा है। वह दिन दूर नहीं है जब माता–पिता और घर के बड़े–बूड़े लोग सन्तान की खुशी में ही अपनी खुशियाँ ढूँढ लेंगे।[18]

स्थाई स्तंभ में लिव–इन–रिलेशनशिप :–

अब्बास खान 'संगदिल' स्थाई स्तंभ में अभिव्यक्त अपने लेख **'पुरुष मित्रता का बढ़ता दायरा'** के माध्यम से कहते है कि आजकल महिलाओं में पुरुष मित्र बनाने का फैशन चला है। नये युग की शुरुआत, पाश्चात्य संस्कृति की नकल बढ़–चढ़ कर दिखने–दिखाने, आकर्षक उत्तेजनात्मक वस्त्रों का धारण करना, शब्दों को तोड़–मरोड़ कर बोलना आदि ऐसी क्रियाएँ हैं जो महिला–पुरुषों को एक दूसरे की ओर आकर्षित करती है और हम असल से नकल की ओर आसानी से आकर्षित होकर मीठी–मीठी बातों में आकर मित्रता कर बैठते हैं। जबकि पहले के दौर में ऐसी बात नहीं थी। पुरुष के मित्र पुरुष, महिला की मित्र महिला हुआ करती थीं। किन्तु फैशन की ऐसी आँधी चली कि हमारी नोजवान पीढ़ी को अपने दायरे में समेट लिया और आधुनिकता के

शिकंजे में ऐसा जकड़ लिया कि अब उससे निकलना मुश्किल लगता है। आधुनिकता के इस दौर में अविवाहित ही नहीं बल्कि विवाहित महिलाएँ भी पुरुष मित्र बनाने में आगे हैं। दोस्ती के नाम पर कुछ लोग अपनी शान शेखी, पैसों का घमंड, आधुनिक फैशन, खर्च, मंहगे होटल, रेस्टोरेंट में खाना पीना, नौकरी, तरक्की आदि का झांसा देते है जिसमें महिलाएँ आसानी से फँसकर अपने जीवन को तबाह कर लेती है। अतः ऐसे अविश्वासी हथकंडे वाले मित्रों से सावधान रहने में ही भलाई है। फिर भी यदि पुरुष मित्र बनाना हो तो स्पष्ट विचारधारा, सुलझे व्यक्तित्व के पुरुषों से मित्रता करें, यह करने में कोई आपत्ति नहीं हैं। इस प्रकार वर्तमान जो पाश्चात्य संस्कृति के साँचे में ढलता जा रहा है, मर्यादा लुप्त होती जा रही है से बचें और अपनी संस्कृति को बढ़ावा देकर नए समाज का निर्माण करे।[19]

स्थाई स्तंभ में **श्रीमती सुषमा अग्रवाल** द्वारा **'प्रेम विवाह : वरदान या अभिशाप'** पर एक परिचर्चा का आयोजन करवाया गया जिसमें कई लेखक–लेखिकाओं ने अपने विचार अभिव्यक्त किये जिनमे से प्रमुख लेखक–लेखिकाओं के विचार इस प्रकार है–

श्रीमती सुषमा अग्रवाल कहती है कि प्रेम विवाह हो या माँ–बाप की इच्छा से सम्पन्न व्यवस्थित विवाह। दोनों ही विवाह–बंधन में बंधने वाले नवयुगलों की एक दूसरे के प्रति भावनाओं पर निर्भर है। भावनायें सच्ची हैं तो वह विवाह वरदान ही साबित होगा न कि अभिशाप। लेकिन विवाह क्षणिक आकर्षण, स्वार्थ मतलबपरस्ती पर टिका है तो वह अभिशाप ही सिद्ध होगा।

श्रीमती मंजुला गुप्ता व सुधा गोस्वामी का मानना है कि ऐसी कोई लक्ष्मण रेखा नहीं खीची जा सकती जिससे यह सिद्ध हो सके कि कौन–सा विवाह बेहतर है। प्राचीनकाल में भी प्रेम विवाह हुये हैं, जिन्हें 'गंधर्व विवाह' के नाम से जाना जाता था। नल–दमयंती, दुष्यन्त–शकुंतला इसके उदाहरण है। हमारे समाज में आजकल प्रेम विवाह का ही प्रचलन अधिक दिखायी दे रहा है। सह–शिक्षा का बढ़ता प्रभाव लड़कियों को लड़कों के समान ही उच्च शिक्षा देने के संग–संग वैसी ही स्वतंत्रता देने के कारण इस तरह के विवाह की संख्या बढ़ती जा रही है। परन्तु जितनी सफल तयशुदा विवाहों की संख्या है, प्रेम विवाहों की नहीं, कारण तयशुदा विवाह में दोनों पक्षों के मुखिया माता–पिता बहुत सोच विचार कर निर्णय लेते है और लड़का एवं लड़की उनके फैसले को मानकर अपनी गृहस्थी की गाड़ी चलाते है। कभी मतभेद होने पर उनके ऊपर बड़ों का दबाव रहता है। अतः परिवार विच्छिन्न नहीं होता है। परन्तु प्रेम विवाह में बड़ों का न तो कोई हस्तक्षेप होता है और न ही उनपर किसी का दबाव होता है। इस कारण उनमें छोटी–छोटी बातों को लेकर मन–मुटाव हो जोते है और उनका वेवाहिक जीवन अभिशाप बन जाता है।

कृष्णा कुमारी व डॉ. रेशम गुप्ता के इस सन्दर्भ में एक समान विचार है उनका मानना है कि प्रेम विवाह तो शास्त्रों से मान्यता प्राप्त है। प्रेम होगा तभी तो शादी सफल होगी। ये बात अलग है कि संस्कारवश एवं सामाजिक अवहेलना के डर से दम्पत्ति विवाह के बाद अनबन होने पर भी तलाक न लेकर बराबर रिश्ते ढोते रहते हैं एवं कई परिवारों की स्थिति दयनीय हो जाती है। प्रेम विवाह में इसकी गुंजाइश कम होती है। यदि भावना में न बहकर प्रेम में भी थोड़ी सूझबूझ एवं समान वैचारिक धरातल देखकर काम लिया जाए तो सुनिश्ति ही प्रेमविवाह वरदान साबित होगा और यदि प्रेम विवाह में लड़के–लड़की प्रेम, आदर, भावना से अपने परिजनों की सहमति ले लें तो उनके भविष्य के लिये वरदान हो जाता है क्योंकि पारिवारिक असहमति एवं विरोध के कारण ही अंधिकांश प्रेम विवाह अभिषाप बनते है।

विजय जोशी का कहना है कि विवाह चाहे रीति–रिवाज से पूर्ण हुआ हो या प्रेम विवाह की पल्लवित वल्लरियों से पनपा हो, बगैर आपसी समन्वयन और पारिवारिकता के साथ सामाजिकता की परिधि से परे जा रहा हो तो वह अभिशप्त हो जाता है। अतः प्रेम विवाह को वरदान के रूप में जीना और अभिशप्त होकर ढोना स्त्री और पुरुष दोनों की सोच, आकांक्षा और दायित्वों पर निर्भर करता है।

अनुमा शर्मा का मानना है कि प्रेम विवाह वरदान अथवा अभिशाप दोनों में से कुछ भी हो सकता है, यह इस बात पर निर्भर है कि प्रेम वास्तविक है अथवा सतही। यदि प्रेम सच्चा है और विश्वास की नींव पर टिका है तो निश्चित रूप से विवाह वरदान सिद्ध होगा। चाहे परिस्थितियाँ प्रतिकूल ही क्यों न हो। इसके विपरीत यदि प्रेम आकर्षण मात्र में है तो विवाह के दायित्वों के निर्वहन में यह आकर्षण घुल जायेगा और ऐसा प्रेम विवाह निश्चित रूप से अभिशाप सिद्ध होगा।

प्रशान्त लाहोटी के अनुसार प्रेम विवाह के दो पहलू है जिसमें प्रथम पहलू है कि वर्तमान में मात्र शारीरिक सम्बन्धों को एवं सौन्दर्य आकर्षण को प्राथमिकता देते हुए लड़का–लड़की एक–दूसरे की ओर आकर्षित होते है तथा अपनी वासना को पूर्ण करने के लिए यह कदम उठा लेते हैं और ऐसी परिस्थिति में यह प्रेम विवाह कदापि नहीं कहा जा सकता और न ही यह सफल हो सकता है। परन्तु इसका दूसरा पहलू हम देखें तो पाते हैं कि यदि दोनों एक दूसरे को सच्चा प्रेम करते है अर्थात मात्र शारीरिक आकर्षण से भिन्न उनकी चाह है एवं वे एक दूसरे को आत्मीय रूप में जानने एवं पहचानने लग गये है तथा दोनों एक–दूसरे से किसी अन्य प्रकार की चाह नहीं रखते हैं तो यदि ऐसा युगल विवाह के सूत्र में बंध जाये तो ऐसा विवाह सही रूप से सार्थक होगा।

श्वेता विजय वर्गीय व रेनु अग्रवाल का मानना है कि प्रेम विवाह आज की 21 वीं सदी में एक वरदान है। कम से कम उन माँ–बाप के लिए जिन्हें अपनी बेटी के लिए एक लड़का ढूंढने के लिए ज्यादा परेशान होना पड़ता है और उन्हें दहेज जैसी

बुराई का सामना करना पड़ता है। प्रेम विवाह वरदान है उन लड़कियों के लिए जिन्हें लड़के व लड़के वालों के सामने बार–बार जाना नहीं पड़ता अपनी नुमाइश नहीं करनी पड़ती और नीचा देखना नहीं पड़ता। प्रेम विवाह अगर अन्तर्जातीय है तो दो व्यक्तियों के साथ दो परिवारों का मिलन होता है और दो भिन्न जातियों एवं रीति–रिवाजों का मिलन होता है प्रेम विवाह अन्तर्धर्मिय है तो दो भिन्न धर्मों का मिलन होता है। इसलिए प्रेम विवाह अभिशाप नहीं वरदान है।

चन्देश सोनी का कहना है कि आज के वैज्ञानिक व आधुनिक दौर में पाश्चात्य सभ्यता का चहुँ ओर बोलबाला नजर आता है प्रेम विवाह अर्थात मनचाहा जीवन साथी प्राप्त करना उसी का एक रूप है। ऐसे विवाह अपना क्या स्थान रखते हैं ये तो देखते ही बनता है। क्योंकि ये विवाह जीवन की गाड़ी को नहीं खींच पाते। क्योंकि इसमें न तो बड़ो की सहमति होती और न ही आशीर्वाद। ऐसे विवाह प्रेम के वशीभूत होते हैं जो बाद में न जाने कहाँ गायब हो जाता है और यह ज्यादा दूरी तय नहीं कर पाते। प्रेम विवाह में प्रेम शब्द नाम मात्र का होता है, प्रेम रिश्तों में कहीं नजर नहीं आता। अतः ऐसा विवाह एक संस्कार न होकर समझोता महज है जो कि स्त्री के लिए अभिशाप से कम नहीं।

माधुरी शास्त्री जी कह रही है कि प्रेम विवाह कोई नया चलन नहीं है जो टी.वी. से या पश्चिमी देशों से आया हो, इसका चलन तो भारत में कई युगों से है। उदाहरण के तौर पर श्रीकृष्ण को ही ले लीजिए उनका और रुक्मणी जी का विवाह प्रेम विवाह ही तो था, अगर ज्यादा पीछे नहीं जाना चाहे तो राजा पृथ्वीराज चौहान और संयोगिता को ही ले लीजिए। प्रेम विवाह विफल होने की संभावना तब गहरी होती है जब प्रेम, प्रेम न होकर मात्र एक आकर्षण होता है जो कि शादी के कुछ समय पश्चात खत्म हो जाता है, शायद यही कारण है कि सबसे ज्यादा तलाक के केस भी लव मैरिज में मिलते है जो इस बात का प्रमाण है कि लोग प्रेम विवाह का सही मायनों में अर्थ नहीं समझ पाते, वे जोश में और जल्दबाजी में गलत फैसला ले लेते हैं जो आगे जाकर उनके लिए अहितकारी साबित होता है। अगर यही फैसले सोच–समझकर आराम से लिए जाएँ तो पछताना नहीं पड़ता क्योंकि प्रेम विवाह के जो फायदे है वह भी कम नहीं है। अर्थात प्रेम विवाह अभिशाप भी हो सकता है और वरदान भी यह सब स्थितियों पर और एक–दूसरे की आपसी समझ पर पूर्णतया निर्भर करता है।

कृष्णा भटनागर अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कह रही है कि समय परिवर्तन के साथ–साथ विवाह के रूप में शत–प्रतिशत परिवर्तन हुआ है। कुछ वर्ष पूर्व विवाह माता–पिता की पसन्द एवं सहमति से हुआ करते थे तथा जाति, योग्यता एवं सम्पन्नता विवाह के मुख्य आधार थे। पर अब ऐसा नहीं है। नियोजित विवाह अब नाम मात्र को ही रह गये हैं। वर्तमान समय में प्रेम विवाहों का प्रचलन आम बात है। दहेज प्रथा, अनमेल विवाह तथा स्वच्छन्द वातावरण ने ही प्रेम विवाहों को प्रचलित किया है। पर क्या ये प्रेम विवाह वरदान सिद्ध हुए है? समाज की मान–मर्यादा बनाये रखकर

क्रिया—कलापों पर नियंत्रण रखकर, तथा माता—पिता की प्रतिष्ठा को ध्यान में रखते हुए जो प्रेम विवाह किये जाते हैं वे अभिशाप नहीं वरदान ही सिद्ध हुए हैं। सहज एवं सरल रूप में आडम्बर विहीन विवाह समाज के लिए गौरव की बात है। आत्महत्या, दहेज उत्पीडन जैसी कुरीतियों को नष्ट करने में प्रेम विवाह पूर्णरूपेण सफल सिद्ध हो सकते है। सामाजिक रूढ़िवादिता, धन लोलुपता, परस्पर टकराव को दूर करने के लिये प्रेम विवाह अच्छा प्रयास है।

सविता लखोटिया का विचार है कि प्रेम विवाह न तो वरदान है और न ही अभिशाप। यह समय की मांग है, वर्तमान की आवश्यकता है। आदिकाल में ऐसा होता आया, मध्य युग में ऐसा हुआ, अब भी होता है, भविष्य में भी होता रहेगा, भारत में भी, अन्य कहीं भी। हाँ, कभी समाज द्वारा स्वीकार्य परन्तु नैतिकता और मर्यादा की सीमा में, तो कभी समाज द्वारा तिरोहित और अपवाद के रूप में। मध्ययुगीन पर्दे में बंद तथा अशिक्षा के कारण जड़ और मूक जन्तु सी बनी किशोरी की भाँति आज की शिक्षित युवती हर किसी को अपने जीवनसाथी के रूप में स्वीकार करने को सहज ही प्रस्तुत नहीं हो सकती। अब वह अपने समरूप या अपने से बेहतर जीवन साथी को पाने के लिए आकांक्षित भी और उत्साहित भी है और उसके लिए अपने आप को शिक्षा और चेतना के साथ निखारने के लिए कृत संकल्प भी है। दूसरी तरफ नव शिक्षा संस्कार से प्रेरित नवयुवक भी दहेज की मांग या लालच में हर किसी युवती के साथ विवाह के बंधन में बंध जाने को तैयार नहीं होता। वह जाति—बन्धन और आर्थिक स्तरों की अंतर रेखा को लांघ कर अपने योग्य और रुचि अनुकूल साथी की तलाश में लग जाते है और नतीजा होता है प्रेम विवाह। अतः अतीत की कुरीतियों के प्रतिकार में उभरी इस धारा को अब रोक पाना अस्वाभाविक और असंभव ही होगा। इसलिए हमें विवाह के मामले में युवक—युवती की राय को प्राथमिकता देनी होगी, हमें खुलेपन के वातावरण को विवेक के साथ संचालित करना होगा।

वर्षा पुनवटकर का कहना है कि आज की इस बदली दुनिया में प्रेम विवाह एक फैशन बन गया है। पढ़े लिखे शिक्षित कहे जाने वाले लोगों को माता—पिता तथा समाज द्वारा करवाये जाने वाले विवाह में अनेक खामियाँ नजर आती हैं उनका कहना है दो अनजान व्यक्तियों को एक साथ परिणय के सूत्र में बांधकर जीवनभर दंडित किया जाता है। परिणामस्वरूप वह प्रेम विवाह की तरफ आकर्षित होते है। प्रेम विवाह के लिए आजकल मीडिया, फिल्में ज्यादा जिम्मेदार है। किशोरावस्था की वह दहलीज, चकाचौंध भरे नजारे, छलावा भरी जिंदगी के चित्र नवयुवकों को प्रेमविवाह के प्रति आकर्षित करते है। इसी चक्रव्यूह में फंसकर आज की पीढ़ी प्रेम विवाह को अधिक पसंद करने लगी है, बदलते समय एवं विचारों ने जाति के बंधनों को ढीला कर दिया है, अब इन विवाहों का अधिक विरोध तो नहीं हो रहा है परंतु हर समाज इसे सम्पूर्ण मान्यता भी नहीं दे पा रहा है। इसका मुख्य कारण दो विभिन्न जाति संस्कारों एवं परिवेशों से आए दो व्यक्तियों का

टकराव है। हर व्यक्ति दूसरे से यह आशा रखता है कि वह उसके परिवार की, उसकी, उसके समाज की मर्जी, मान्यताओं को माने परन्तु दूसरा व्यक्ति भी कुछ इसी तरह की आशा अपने साथी से रखती है। परिणाम टकराव, तनाव एवं तलाक। इस प्रकार वर्तमान युग में इस विवाह के फायदे की अपेक्षा नुकसान देह परिणाम अधिक दिखाई पड़ रहे हैं। फिर भी समाज में यह विवाह वरदान साबित हो रहा है।[20]

कारण :–

- प्रेम विवाह के लिए आजकल मीडिया, फिल्में ज्यादा जिम्मेदार है। किशोरावस्था की वह दहलीज, चकाचौंध भरे नजारे, छलावा भरी जिंदगी के चित्र नवयुवकों को प्रेमविवाह के प्रति आकर्षित करते है और इसी चक्रव्यूह में फंसकर आज की पीढ़ी प्रेम विवाह को अधिक पसंद करने लगी है।
- लिव–इन–रिलेशनशिप कई बार एक–दूसरे को बेहतर समझने के लिए तो कई बार अपना खर्चा बाँटने के लिए बनाए जाते है।
- कुछ लड़के अपनी मोज–मस्ती और खर्चा चलाने के लिए उच्च परिवार की लड़की को झूठे सपने दिखाकर अपने प्रेम जाल में फाँस लेते है।
- पश्चिम संस्कृति को अपनाने के साथ ही यह लिव इन रिलेशनशिप भी भारतीय समाज व संस्कृति में दीमक की तरह फैल रहा है।
- वर्तमान में महिलाएँ पुरुषों की ही भाँति समान विचारों वाले मनपसंद साथी का साथ चाहती है। दूर–दूर शहरों व देशों में जाकर अपना परचम फहराना चाहती है इसलिए नारियों को भी विवाह में पाबंदी प्रतीत होती है।
- लिव इन रिलेशनशिप में पुरुषों को भी पत्नी व बच्चों की जिम्मेदारी रहित उसी भाँति का सुख उपलब्ध हो जाता है और ना ही यह कैरियर में बाधक होती है इसी कारण वह इसे सही मानने लगे है।
- मध्यम वर्ग के परिवारों में आज भी लड़कियाँ सहम कर, दबी रह कर, डर कर रहती हैं, अपने ही लोगों से प्रताड़ित उपेक्षित, अपमानित होती है। इस स्थिति से तंग आकर बाहर निकलना चाहती हैं तो प्रेम–विवाह एक विकल्प बन जाता है।
- कुछ लोग प्रेम विवाह इसलिए भी करते है ताकि दहेज और लेन–देन से बच्च सके, वैवाहिक आडम्बरों से मुक्ति मिल सके, क्योंकि विवाह के अवसर पर एक भव्य प्रदर्शन की आजकल होड़ सी लग गई है।
- कुछ पुरुष अपनी शान शेखी, पैसों का घमंड, आधुनिक फैशन, खर्च, महंगे होटल, रेस्टोरेंट में खाना पीना, नौकरी, तरक्की का झांसा देते है जिसमें महिलाएँ आसानी से फँसकर अपने जीवन को तबाह कर लेती है।

सुझाव :—

- आज युवक—युवतियों का विवाह जातिगत भेदभाव को भूलकर योग्यता के आधार पर होना आवश्यक है।
- विवाह को बेड़ी न मानकर युवक—युवतियों को सोचना चाहिये कि इसमें सुख दुख निभाने का साझा भाव है।
- यदि पुरुष मित्र बनाना आवश्यक हो तो स्पष्ट विचारधारा, सुलझे व्यक्तित्व के पुरुषों से मित्रता करें, यह करने में कोई आपति नहीं है।
- माता—पिता को चाहिए कि वह अपने बच्चों के साथ मित्र बनकर रहे और उन पर किसी प्रकार का दबाव न डालकर उनकी हर बात को समझे तथा उनका सहयोग करें।

4.2.2 समाप्त होते संस्कार :—

समाप्त होते संस्कारों से सम्बन्धित समस्या के प्रमुख लेखक एवं लेखिकाओं के नाम निम्न है —

<u>कथा</u>	<u>लेख</u>
➢ सुकीर्ति भटनागर—संस्कार विहीन ➢ कमल कपूर—उजालों का सफर ➢ अशफाक कादरी—अभी अंधेरा नहीं हुआ है ➢ अलका मित्तल—अच्छे संस्कार ही बच्चों का भविष्य <u>काव्य</u> ➢ बालाराम परमार 'हँसमुख'—मिल बैठ करें विचार <u>स्थाई स्तंभ</u> ➢ सुमति कुमार जैन—मेरी बात ➢ कृष्णा भटनागर—बच्चों की परवरिश में संयुक्त परिवार की प्रासंगिता ➢ महाश्वेता की लेखनी से ➢ घमंडीलाल अग्रवाल—बच्चों का उत्थान जहाँ हो, ऐसा हिन्दुस्तान बनाएँ!	➢ डॉ. अरुणा श्याम—बदलते समय की ढुलकती तस्वीरें ➢ प्रो. शामलाल कौशल—संस्कारों का अंतिम संस्कार ➢ प्रकाश जी गुन्देचा—भावी पीढ़ी और हम ➢ महेश बी. शर्मा—आज के बच्चे कुसंस्कारी क्यों? उन्हें सुसंस्कारी कैसे बनायें ➢ कृष्णा बुरड़—बालक के व्यक्तित्व निर्माण में माँ की भूमिका ➢ शशिप्रभा शर्मा—समाज सुधरे बच्चे सुधरेंगे ➢ कल्पना जैन—संस्कार निर्माण और बाल्यकाल ➢ कल्पना जैन—कैसे मिलेंगे बच्चों को संस्कार अध्यात्म के ➢ ठाकुरदास कुल्हारा—माँ—बाप बच्चों में अच्छे संस्कार भरे ➢ घनश्याम मेठी—बच्चों को संस्कारवान बनाए ➢ विश्वशांति टेकड़ीवाल परिवार—अपराध की डगर पर नौनिहाल ➢ बीना जैन—युवा पीढ़ी भटकाव की अंधेरी गुफा से बाहर निकले ➢ मेधा उपाध्याय—कहाँ गया बच्चों का भोलापन

कथाओं में समाप्त होते संस्कार :–

सुकीर्ति भटनागर अपनी कथा '**संस्कार विहीन**' के माध्यम से बताते है कि जब माता–पिता अपने बच्चों को आया के भरोसे घर छोड़कर बाहर कमाने जाते है तो उनके बच्चों को कोई संस्कार नहीं मिल पाते और वह माता–पिता के अभाव में संस्कार विहीन हो जाते है। इस समस्या पर प्रकाश डालते हुए लेखक कहते है कि–मयंक के माता–पिता बचपन से ही मयंक को आया और नौकरों के पास छोड़कर बाहर कमाने जाते थे, हर रात पार्टियों, समारोहों से लेट तक घर लोटते थे। अपने माता–पिता की प्रतीक्षा और प्यार के इन्तजार में ही मयंक का बचपन बीत गया था। परिणामस्वरूप मयंक को वह संस्कार नहीं मिल पाये जो उसे माता–पिता द्वारा मिलने चाहिए थे। इसलिए मयंक भी बड़ा होकर अपने माता–पिता की तरह ही बन गया। जब वह अपने पिता को बीमारी की हालत में छोड़कर क्लब की मीटिंग में जाता है तो माँ कहती है कि बेटा तेरे पापा की तबीयत खराब है तुम्हें उनका ख्याल रखना चाहिए ना कि पार्टियों में जाना चाहिए इसपर मयंक कहता है कि **"पिता जी बरसों आप दोनों का प्यार पाने के लिए तरसते हुए और हर रात पार्टियों, समारोहों से आप लागों के घर लौट आने की प्रतीक्षा करते हुए मैंने आया और नौकरों की देखरेख में अपना बचपन बिता दिया। फलस्वरूप जो संस्कार मुझे मिलने चाहिएँ थे उनसे मैं वंचित रहा, फिर आप मेरे से ऐसे संस्कारों की कल्पना कैसे कर सकते है।"** यह कहकर मयंक बाहर चला जाता है।[21]

अपनी कथा '**उजालों का सफर**' में **कमल कपूर** कह रही है कि कुछ माता–पिता अपने बच्चों के लिए दिन–रात कमाते रहते है और उन्हें अमीर बनाते है मगर अपने बच्चों को समय नहीं दे पाते जिसके अभाव में बच्चे बिगड़ते जाते है और अपने माता–पिता से दूर होते चले जाते है। इसका उदाहरण देते हुए लेखिका कहती है कि नगर के जाने–माने उद्योगपति रंजन रॉय की इकलौती संतान प्रसन्न था जो 10 वर्ष का था। जिसे रंजन रॉय पढ़ा लिखा कर अपना कारोबार सम्भलाना चाहते थे मगर प्रसन्न की पढ़ने में रुचि नहीं थी इसलिए वह प्रसन्न को प्रो. शरद त्रिवेदी के पास लेकर जाते है जो बिगड़े हुए बच्चों को सुधारने का काम करते थे। रंजन रॉय अपने पैसों का रुतबा दिखते हुए कहते है कि प्रो. साहब आप मेरे बेटे को सुधार दीजिए इसके बदले जितना चाहे उतना पैसा ले लिजिए। प्रो. साहब हाँ कर देते है मगर पैसे नहीं लेते। जब प्रसन्न प्रो. साहब के पास आता है तो वह गुस्से से बात करता है किसी की इज्जत नहीं करता। जब प्रो. साहब उसके इस बरताव का पता लगाते है तो उन्हें पता चलता है कि इसका कारण उसके माता–पिता है। वह रंजन रॉय को बुलाकर समझाते है कि वह अपने बच्चे को समय दे तथा उसकी मन की बात को समझे मगर वह नहीं समझते और अपने पैसों का रुतबा दिखाकर चले जाते है। धीरे–धीरे प्रसन्न प्रो. साहब के बहुत करीब आ जाता है तथा अपने मन की हर बात बताने लगता है और

संस्कारी भी हो जाता है। मगर एक दिन रंजन रॉय के यहाँ पार्टी में प्रसन्न की माँ प्रसन्न को ढांटकर घर से बाहर निकाल देती है और पार्टी में नहीं आने देती जिसके कारण वह घर छोड़कर चला जाता है जब दूसरे दिन वह घर नहीं मिलता तो उनके माता–पिता को अपनी गलती का पछतावा होता है और वह प्रो. साहब के पास जाकर माफी मांगते है और सारी बात उन्हें बताते है। प्रो. साहब व रंजन रॉय मिलकर उसे ढूंढते है मगर वह नहीं मिलता पर कुछ दिन बाद प्रसन्न प्रो. साहब के घर चला जाता है उसे देखकर प्रो. साहब रंजन रॉय को फोन करते है और घर बुलाते है। प्रसन्न के माता–पिता उसके पास आते है और अपनी गलती पर पछताते हुए प्रसन्न से माफी मांगते है तथा उसे पूरा प्यार देने का आश्वासन देते है।[22]

अशफाक कादरी अपनी कथा **'अभी अंधेरा नहीं हुआ है'** के माध्यम से बताते है कि कुछ माता–पिता अपने बच्चे को इकलौती सन्तान होने के कारण पूरी आजादी और छूट दे देते है जिसके कारण वह संस्कार विहीन होकर मनमानी करने लगते है। इसीको विस्तार से समझाते हुए लेखक कह रहे है कि मलिक साहब एक अच्छे संस्कारवान व्यक्ति है और सरकारी नौकरी करते है उन्होंने अपने बेटे को भी एक अच्छा संस्कारी पुत्र बनाया था मगर उनका पोता अमन अपने माता–पिता की इकलौती संतान होने के कारण पूरी आजादी पा रहा था। घर में उसकी हर ख्वाईश पूरी की जाती थी जिससे उसकी इच्छाएँ बढ़ने लगी थी। माँ–बाप उसकी अच्छी परवरिश कर अपना फर्ज पूरा करने में लगे थे मगर वह अपना कर्त्तव्य पूरा नहीं कर रहा था। उसके संस्कार समाप्त होते जा रहे थे। वह किसी का कहना नहीं मानता था। एक दिन मलिक साहब अस्पताल दवाई लेने गये हुए थे तो उन्हें एक व्यक्ति मिला जो घबराया हुआ था और अपने दादा जी को लेकर अस्पताल आया था उसके पास दवाई के पैसे ना होने पर मलिक साहब ने उसे पैसे दिये थे दुकानदार के पूछने पर उन्होंने बताया कि वह व्यक्ति सच्चा और संस्कारी लड़का है जो आज के समय में अपने दादा के लिए इतना कर रहा है। अगले दिन वह व्यक्ति मलिक साहब के घर आकर उनको धन्यवाद देते हुए कहता है कि आपकी वजह से मेरे दादा जी आज जिंदा है मैं जिन्दगी भर आपका एहसान नहीं भूलूँगा और आपके सारे पैसे लोटा दूंगा तो मलिक साहब कहते है कि तुम्हें पैसे लोटाने की जरुरत नहीं है बस तुम मैंरा एक काम कर देना रोज दो घंटे मेरे पोते को यहाँ आकर पढ़ा देना और उसे भी अपनी तरह संस्कारी बना देना बस इसी में तुम्हारा कर्ज चुक जायेगा।[23]

अपनी कथा **'अच्छे संस्कार ही बच्चों का भविष्य'** में **अलका मित्तल** कहती है कि प्रत्येक माता–पिता अपने बच्चे के अच्छे भविष्य के लिए दिन–रात मेहनत करके खूब पैसा कमाते है मगर वह अपने बच्चे को समय नहीं दे पाते जिसके कारण वह संस्कार विहीन होकर गलत राह पर चला जाता है। उदाहरण देते हुए लेखिका बता रही है कि रोहन अपने इकलौते बेटे को वो सब कुछ देना चाहता था जो उसके माता–पिता उसे

नहीं दे पाये। वह चाहता था कि उसका बेटा बड़ा होकर एक बड़ा आदमी बने, उसकी तरह अभावों में न रहे। इसलिए रात–दिन मेहनत करके वह अपने बेटे के लिए दौलत एकत्र कर रहा था। रोहन की पत्नी भी काम करती थी। दोनों दौलत कमाने में इतने व्यस्त हो गये कि अपने बेटे के लिए उनके पास समय ही नहीं बचता था। समय के अभाव में व माता–पिता द्वारा प्यार न मिलने के कारण राघव बाहर घूमने–फिरने लग गया और गलत आदतों का शिकार हो गया, पढ़ने में पीछे रहने लगा। जब यह बात राघव के माता–पिता को पता चलती है तो वह उसे डाँटते है और पीटते है तो राघव कहता है कि ''**आपके पास समय ही कहाँ है मेरे लिए? आप दोनों इतने व्यस्त हैं, मैं बाहर समय नहीं गुजारुं तो क्या करुं?**'' कहते हुए राघव अपने कमरे में चला जाता है। दूसरे दिन वह तिजोरी का ताला तोड़कर सारी धन–दौलत जेवरात लेकर घर से भाग जाता है और एक पत्र छोड़ जाता है जिसमे लिखा था ''**मम्मी–पापा मैं जा रहा हूँ अपना माल लेकर। आपने मेरे लिए ही तो इकट्ठा किया है। आज नहीं तो कल ये मेरा ही तो है। ढूंढने की कोशिश मत करना। आपका इकलौता बेटा राघव।**'' यह पत्र पढ़ दोनों पछता रहे थे कि क्यूं समय रहते वो समझ नहीं पाये कि बच्चों का कल नहीं आज संवारना चाहिए। अगर अच्छे संस्कारों से बच्चे योग्य बनेंगे तो कल तो अपने आप ही संवर जायेगा।[24]

काव्य में समाप्त होते संस्कार :–

बालाराम परमार 'हँसमुख' अपने काव्य **'मिल बैठ करें विचार'** के माध्यम से कहते है कि जब संस्कार विहीन पीढ़ी अपने संस्कार भूलकर अपनी मनमानी करने लगी तब खून के रिश्ते टूटने लगे तो चारों ओर हाहाकार मचने लगा तब जाकर लोगों को बच्चों में खत्म होते संस्कार याद आने लगे और प्रश्न उठने लगा कि खत्म होते संस्कारों के लिए दोषी कौन है? इस पर शिक्षा, समाज, परिवार सब मौन हो जाते है किसी के पास इसका उत्तर नहीं है। जब सब मिलकर इस प्रश्न का उत्तर ढूंढते है तो पाते है कि इसका दोषी समाज है क्योंकि उसने बच्चों में संस्कार डाले ही नहीं, इसका दोषी परिवार है क्योंकि उसने परिवार में संस्कार पाले ही नहीं, दोषी शिक्षा है क्योंकि उसने संस्कार पढ़ाये ही नहीं, दोषी मीडिया है क्योंकि उसने लागों को संस्कार दिखाए ही नहीं अर्थात इसके अपराधी सब जनक, संरक्षक और पहरेदार है क्योंकि उनसे इसे सम्बाल कर रखने में चूक हो गई है। इसके अभाव में युवा पश्चिमी शिक्षा प्राप्त कर वही के संस्कार ग्रहण कर रहे है, भोग–विलास की खातीर बुजुर्गों को अपने से दूर कर रहे है। इसलिए हम कह सकते है कि संस्कारों को भूलाने में सबका हाथ है, संस्कृति को दफनाने में सबकी हाँ है। परिणामस्वरूप आज विदेशी संस्कार देश में पसरते जा रहे है लोग अपने संस्कारों को भूलकर विदेशी संस्कारों को अपनाते जा रहे है। इसलिए लेखक कहते है कि–

कदम सूरज की ओर बढ़े, आपस में लड़ मरे,
दो पैसा क्या कमानें लगे, भूल गये छाप छपरे,
ऊहापोह जिंदगी में छूटते जा रहे हैं संस्कार,
खत्म होते संस्कार पर मिल बैठ करें विचार।[25]

लेखों में समाप्त होते संस्कार :–

डॉ. अरुण श्याम अपने लेख **'बदलते समय की ढुलकती तस्वीरें'** में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कह रही है कि बालक की शिक्षा परिवार से प्रारम्भ होती है। आज के वातावरण में अधिकांश परिवार बालक को उचित संस्कार देने में सक्षम नहीं होते। माता–पिता बालक की संपूर्ण इच्छाएँ पूरी करना चाहते है, बालक की गलतियों को दृष्टिगत नहीं करते। उसकी गलत आकांक्षाओं को भी उभरने देते है। इस प्रकार नैतिकता और उचित संस्कारों से दूर रहकर ऐसा बालक मानवता की श्रेणी से दूर हो जाता है और अनैतिक वृत्तियाँ उसे आ घेरती है। परिणामतः समाज में अपराधों की संख्या बढ़ती जा रही है। निम्न से निम्न श्रेणी के अपराध हो रहे है। क्योंकि ये सभी व्यक्ति उन परिवारों में पल कर आए हैं जहाँ उन्हें नैतिक संस्कारों की शिक्षा नहीं दी गई। टेलिवीजन और मोबाइल फ़ोन ने नैतिकता के स्तर को पूर्णतः समाप्त कर दिया है। टी.वी. के गन्दे, अश्लील, निष्कृष्ट सीरियलों की भरमार और निम्न स्तर के विज्ञापनों, गन्दे नृत्य व गानों ने बच्चों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया है। सोचना यह है कि इन समस्याओं का समाधान क्या है? यदि आज के परिवेश में बच्चों को भ्रष्ट होने से बचाना है तो टी.वी. के गन्दे प्रोग्रामों को देखना बन्द करना होगा। मोबाइल के अनुचित उपयोग पर भी रोक लगानी होगी। बच्चों को माता–पिता का सम्मान करना सिखाना होगा, अपने कर्त्तव्यों का बोध कराना आवश्यक है तथा उनका पालन–पोषण नैतिक संस्कारों से युक्त छांव में करना होगा।[26]

प्रो. शामलाल कौशल अपने लेख **'संस्कारों का अंतिम संस्कार'** के माध्यम से कह रहे है कि भारत ऋषियों, मुनियों, पीर, पैगम्बरों तथा अवतार का देश है। यहाँ रचित वेद, पुराण, रामायण, गीत, गुरु ग्रन्थ साहब आदि सहस्रो वर्षों से मानवता का अध्यात्मक मार्ग दर्शन करते रहे हैं। यह वह देश है जिसे अपनी संस्कृति, सभ्यता तथा परम्परा पर नाज रहा है। यह वह देश है जहाँ पराये धन को मिट्टी, परायी स्त्री को माँ, बहन या बेटी की तरह समझने की अनूठी परम्परा रही है। हमारे यहाँ ऐसे संस्कार दिये जाते हैं कि पिता की आज्ञा का पालन करते हुए श्री रामचन्द्र राजगद्दी को ठोकर मारकर वनवास चले गये, अन्धे माँ–बाप को बोगी में बिठाकर श्रवण कुमार जैसा बेटा तीर्थ यात्रा कराने चला जाये। लेकिन आज के बदले हुए हालात देखकर विश्वास ही नहीं होता कि यह वही भारत है जिस पर जन्म लेने के लिये देवता लोग भी तरसते थे। आज संस्कारों का ऐसा अंतिम संस्कार हो रहा है कि आपस में पहले जैसा प्रेम–प्यार, मेल–जोल, आपसी विश्वास, त्याग देखने को भी नहीं मिलता। मार–पीट,

बलात्कार, अपहरण, आदि आम बात हो गई हैं। स्त्रियों में भी पहले जैसी लाज, शर्म, मान, मर्यादा, ममता, नारीत्व वाली बातें देखने को नहीं मिलती। कन्या भ्रूण हत्या करके भी जब लोग पुत्र प्राप्त करते हैं तो वही बेटे अपने बूढ़े माँ–बाप की सेवा तो दूर उनका तिरस्कार, अपमान तथा अवहेलना करते हैं। यह सब तो मानवता को पतन की तरफ ले जाने वाला है। संस्कार तो आखिर संस्कार ही है। आदमी की पहचान उसके संस्कारों से ही होती है। बिना अच्छे संस्कारों के आदमी पशु समान है। देश में सच्चाई, परिश्रम, ईमानदारी, आपसी भाईचारा, प्रेम–प्यार, सुख–शांति आदि बनाये रखनी हैं तो अच्छे संस्कारों का होना आवश्यक है।[27]

प्रकाश जी गुन्देचा अपने लेख **'भावी पीढ़ी और हम'** के माध्यम से कहते है कि **''एक प्रसिद्ध चीनी कहावत हैं –यदि तुम एक साल की योजना बनाना चाहते हो तो उर्वर धरती पर बीजों की बुवाई करों। यदि तुम दस साल की योजना बनाना चाहते हो तो एक पेड़ लगाओं और यदि तुम सौ साल की योजना बनाना चाहते हो तो एक पीढ़ी को संस्कारित करो।''** वर्तमान में टी.वी., वीडियो, इन्टरनेट व पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण बड़े भी उनके प्रभाव में आ रहे है तथा बच्चे भी उनमें व्यस्त रहने लगे हैं, जिसके दुष्परिणाम हम देख रहे है। बाल मन की सूक्ष्म ग्रन्थियों पर छोटी–छोटी घटनाओं का शीघ्र प्रभाव होता है। इस तरह, जिस तरह के संस्कार बचपन में उनके मन–मस्तिष्क पर पड़ते हैं, वे ही भविष्य में प्रबल होकर उनके स्वभाव रूप में बदल जाते है। आज माँ–बाप बच्चों के लिये हर सुख–सुविधा जुटाने में लगे हैं पर संस्कार देने के नाम पर कुछ ध्यान नहीं है। जब तक माँ–बाप बच्चों में धर्म–संस्कृति व नैतिकता के संस्कार नहीं देंगे तब तक सब शून्य मात्र ही रहेगा। जो माता–पिता अपने बच्चों को संस्कारित नहीं करते है, वे उनके शत्रु हैं, पालक नहीं। सुसंस्कारी व गुणवान संतान ही माता–पिता के यश कीर्ति की पताका फहरा सकती है अर्थात सौ मूर्ख पुत्रों से तो एक गुणी (संस्कारी) पुत्र ही श्रेष्ठ है एक चन्द्रमा अंधकार का नाश कर देता है जो ताराओं का विशाल समुदाय भी नहीं कर सकता है।[28]

महेश बी.शर्मा अपने लेख **'आज के बच्चे कुसंस्कारी क्यों? उन्हें सुसंस्कारी कैसे बनायें',**[29] **कृष्णा बुरड** अपने लेख **'बालक के व्यक्तित्व निर्माण में माँ की भूमिका',**[30] व **शशिप्रभा शर्मा** अपने लेख **'समाज सुधरे बच्चे सुधरेंगे'** में अपने एक जैसे विचार प्रस्तुत करते हुए कह रहे है कि शुद्ध व अशुद्ध संस्कार स्वयं व्यक्ति के कर्मों और विशेषकर माता–पिता के आचरण पर निर्भर करते हैं। आजकल महानगरों व नगरों में देखने को मिल रहा है कि पति–पत्नी दोनों ही नौकरी पर जाते हैं और बच्चे की सारी जिम्मेदारी आया या किसी नौकरानी पर छोड़ दी जाती है। माँ भी धनोपार्जन में लगी हुई है साथ ही एकल परिवार में रहना है और भौतिक उपलब्धियों का खुलकर उपयोग करना है। ऐसे वातावरण में बच्चे कैसे सुसंस्कारी बनेंगे? आज सरकारी व गैर सरकारी शालाओं का तो कहना ही क्या? नैतिकता की शिक्षा तो वहाँ से हवा हो गई। अंग्रेजों के जमाने

की ही शिक्षा का प्रचलन है, जो पाश्चात्य सभ्यता को ही बढ़ावा देती है। टी.वी. ने तो बच्चों को ही नहीं वरन् सारे परिवार को बिगाड़ कर रख दिया। मर्यादा व शालीनता समाप्त हो गई है जीने का रंग–ढंग बदल गया है। नैतिकता, व्यावहारिक ज्ञान, जीने का ढंग कैसा हो? बड़ों का सम्मान कैसे करें? आदि तो न आज के माता–पिता ही जानते हैं और न बच्चे ही। उपरी दिखावा व शान–शौकत ही उनके जीवन का आदर्श होता जा रहा है। शुद्धाचरण, आत्मीयता, परस्पर भाईचारा, सद्चरित्रता आदि को तो आज के बच्चे जानते ही नहीं। अतः आवश्यकता है कि स्वयं माता–पिता व बच्चे सुसंस्कारी बने, माता–पिता व गुरु स्वयं भारतीय संस्कृति के मानवीय मूल्यों को अपनाएँ व उनके आधार पर बच्चों में सुसंस्कारों का रोपण करें। शिक्षा संस्थानों में मानवीय मूल्यों की महत्ता पर ध्यान दिया जावे।[31]

अपने लेख **'संस्कार निर्माण और बाल्यकाल'** में **कल्पना जैन** कह रही है कि बालक संसार की सर्वोत्तम भेंट व सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है। संसार का समग्र स्वरूप, अस्तित्व तथा भविष्य बालक पर निर्भर करता है। बालक मानव–जीवन की नींव है। संसार का समस्त निर्माण इसी नींव पर खड़ा होता है। बालक का निर्माण सही होने पर ही संसार का निर्माण सही होता है। अतः किसी भी देश के भविष्य की तस्वीर को बालकों में देखा जा सकता है। आज बच्चे व्यवहारिक ज्ञान तथा धार्मिक संस्कारों से दूर हटते जा रहे है। क्योंकि परिवार के अभिभावकों द्वारा बच्चों की हर अच्छी–बुरी इच्छा पूर्ण की जाती है, बचपन से ही उन्हें सुख–आराम का मार्ग दिखा दिया जाता है। लेकिन यह अंधा प्यार, बच्चा जब किशोर होता है, तब रंग लाता है। यही नहीं, शिक्षण संस्थानों या विद्यालयों का वातावरण भी आज विद्यार्थियों के अनुकूल नहीं है। वर्तमान शिक्षा–पद्धति व रीति–नीति को सभी दोषपूर्ण मानते हैं। इसके लिए अनेक आयोग गठित होते है लेकिन कोई ठोस परिणाम सामने नहीं आता है। अतः आज आवश्यकता है बच्चों के प्रति माता–पिता तथा अभिभावक पूर्णरूपेण जागरुक हों, उनमें संस्कार–निर्माण तथा सर्वांगीण विकास के ज्यादा से ज्यादा अवसर प्रदान करें। तथा शिक्षकों को अपनी जिम्मेदारी तथा विद्यार्थियों को अपने कर्त्तव्यों का पालन करना होगा। तभी कुछ सुपरिणाम सामने आएंगे। इसके अलावा धर्माधिकारियों अथवा धर्मगुरुओं को ऐसा वातावरण तैयार करना चाहिए जिससे बालकों तथा युवा पीढ़ी के मानस में धर्म के प्रति झुकाव तथा आकर्षण पैदा हो। ये सब सुसंस्कारित बालक तथा विवेकशील युवक के निर्माण में सहायक सिद्ध हो सकते है।[32]

अपने दूसरे लेख **'कैसे मिलेंगे बच्चों को संस्कार अध्यात्म के'** में **कल्पना जैन** कहती है कि पाश्चात्य देशों की अपनी संस्कृति है और उन्हें यह प्रिय हो सकती है, लेकिन हमारे देश के सांस्कृतिक मूल्य उससे अलग हैं। **अच्छाई भले कही से भी मिले, लेने में बुराई नहीं है। हमें अपने दिमाग की खिड़की सदैव खुली रखनी चाहिए लेकिन इतनी भी खुली नहीं कि उसमें अनावश्यक पदार्थ भी घुस जाएँ। उन खिड़कियों में**

जाली लगा कर रखना आवश्यक है ताकि बाहरी हवा शुद्ध और छन–छन कर आ सके, अपने साथ अनावश्यक सामग्री न ला सके। इसे एक विडम्बना ही कहा जाएगा कि आज हम धीरे–धीरे उधर ही बढ़ते जा रहे है। हमारा पहनावा, खान–पान, रहन–सहन बदलता जा रहा है। हमारी जीवन शैली, हमारी सोच और दृष्टि बदलती जा रही है। पहले संयुक्त परिवार हमारे देश में हुआ करते थे। बड़े–बुजुर्ग मानवीय मूल्यों, अपने आदर्शों और अध्यात्म के प्रति समर्पित हुआ करते थे। घर का वातावरण ही सद्संस्कार होता था। बच्चे स्वयमेव संस्कार ग्रहण कर लिया करते थे और वे संस्कार गहरे व स्थाई होते थे। आज एकल परिवार होते है माता–पिता बच्चों को अधिक से अधिक भौतिक सुख–सुविधाओं के साधन उपलब्ध कराने की कशमकश में रहते हैं। ऐसा कर वे अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान बैठते है। इस प्रकार धन, यश और पद की लिप्सा इतनी बलवती होती जा रही है कि इनकी प्राप्ति के लिए मानवीय मूल्यों के हनन से भी परहेज नहीं रहा। ऐसी परिस्थितियों में यह ज्वलंत प्रश्न है कि बच्चों को कैसे मिलेंगे अध्यात्म के संस्कार? बच्चों की भटकती हुई मानसिकता को कौन दिखाएगा सही राह? ये सब सम्भव है अध्यात्म के द्वारा अतः जागरुक होना होगा माता–पिता को। उन्हें स्वयं अध्यात्म को जीवन में उतारना होगा। तभी बच्चों में धर्म का बीज पनप सकेगा। हमारे देश में आज भी ऐसे अनेक साधु–संत है जो हमें सही राह दिखा सकते है और दिखा रहे है। आवश्यकता है हम उनके सान्निध्य का लाभ उठाएं, बच्चों में उनके प्रति श्रद्धा और आकर्षण पैदा करें।[33]

ठाकुरदास कुल्हारा अपने लेख **'माँ बाप बच्चों में अच्छे संस्कार भरें'**[34] व **घनश्याम मेठी** अपने लेख **'बच्चों को संस्कारवान बनाए'** में एक जैसे विचार प्रस्तुत कर कहते है कि भौतिकवाद का युग, पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव आज केवल नई पीढ़ी में ही नहीं, वरन् माता–पिता में भी दृष्टिगोचर हो रहा है। परिणामस्वरूप बच्चों की ओर ध्यान देने की उन्हें फुरसत ही नहीं मिलती। पढ़ाई के लिए कॉपी, किताब, ट्यूशन, स्कूल आने जाने की व्यवस्था तो वे कर देते हैं पर संस्कृति के मूल तत्त्वों से बच्चों को वंचित ही रखते है। माँ अपनी संतान की प्रथम गुरु है। शिशु अवस्था से ही बच्चे का खान–पान, चलना–फिरना, बोल–चाल आदि माँ ही अपने बच्चों में अच्छे संस्कार भरने में सफल होती हैं भले ही इसके लिए बहुत कुछ कष्ट भी उठाने पड़ते हैं। पर आज देखने में आ रहा है कि उचित देखरेख के बिना बच्चे बिगड़ रहे हैं। आवश्यकता है कि माँ–बाप बच्चों के लिए जितना जरुरी है उतना समय अवश्य निकालें। सीधी सी बात है कि यदि माँ–बाप अपने बच्चों के लिए उचित समय, श्रम करें, अच्छे संस्कार भरें तो ही उनकी आशाओं पर बच्चे खरे उतरेंगे। वे ही घर–परिवार, समाज व देश के उज्ज्वल सितारे बनेंगे।[35]

अपने लेख **'अपराध की डगर पर नौनिहाल'** में **विश्वशांति टेकड़ीवाल परिवार** कह रहे है कि आज देश की बढ़ती युवा आबादी देश की धरोहर है, लेकिन यह युवा

पीढ़ी संस्कार विहीन होती जा रही है। आजकल की भागदौड़ की दुनिया में एकल परिवार में जहाँ माँ–बाप दोनों काम पर जाते है, बच्चों में संस्कार नहीं पनप पाते है बल्कि आजाद होकर घर में तरह–तरह की गलत बाते संचार माध्यमों से सीखते है। इन्सान संस्कारों से मानव बनता है। ये संस्कार परिवार से, समाज से एवं विद्यालयों से मिलते है। इस प्रक्रिया में काफी गिरावट आई है। पतनोन्मुखी दौर तथा प्रदूषित वातावरण में चारित्रिक ह्यस के चलते अमर्यादित एवं असंयमित जीवन शैली को बढ़ावा मिला है। जिसके चलते पाश्चात्य जगत की शैली की विष्टिताएँ लिव इन रिलेशनशिप जैसी बुराइयाँ यहाँ भी पनपने लगी है। इन्सान गलत काम करने से ड़रता नहीं है। आध्यात्म एवं भारतीय संस्कृति के व्यापक प्रचार–प्रसार से ही इन अपराधों को रोक सकेंगे।[36]

बीना जैन अपने लेख **'युवा पीढ़ी भटकाव की अंधेरी गुफा से बाहर निकलें'** के माध्यम से कह रही है कि वर्तमान युग की ज्वलंत समस्या है, बच्चों की व युवापीढ़ी की संस्कार हीनता। आज प्रायः अधिकांश माता–पिता व अभिभावकों की यही शिकायतें है कि पता नहीं क्या बात है कि बच्चों को इतना सिखाने के बाद व स्वयं भी व्यवस्थित व अनुशासित रहने के उपरांत भी हम अच्छी आदत डालने में असमर्थ है क्यों? यह एक ऐसा प्रश्न है जो सदा ही मन में उठता रहता है। आज युवा पीढ़ी अपने तरीके से अपनी शर्तों पर जीना चाहती है। आज माता–पिता के आचरण को अपनाने में उसे संकोच है, अन्यथा छोटी–छोटी शिष्टाचार की बातें तो बच्चों को सिखानी भी नहीं पड़ती थी। लेखिका के विचार में हम अकेले युवा–पीढ़ी को ही दोष नहीं दे सकते। कहीं न कहीं हमारे सामाजिक ढाँचे में कुछ इस तरह के परिवर्तन आए है तब ही भटकाव की स्थिति हमारे समक्ष आई है। आज भौतिकवादी संस्कृति ने हमको स्वार्थी बना दिया है हम केवल अपने बारे में सोचते हैं। एकाकी परिवार भी इसके लिए कहीं न कहीं उत्तरदायी है आज महिला घर की चारदिवारी में केवल गृहस्थी नहीं संभाल रही है। संयुक्त परिवार में वृद्ध व अनुभवी लोगों का जो लाड़ दुलार संरक्षण व मार्ग–प्रदर्शन मिलता था आज उसका अभाव है। संयुक्त परिवार में सब एक दूसरे का ख्याल रखते थे आदर सम्मान करते थे अतः बच्चे अप्रत्यक्ष रूप से यह आचरण में अपना लेते थे। आज उनसब का अभाव है। अतः युवा पीढ़ी से अनुरोध है कि पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में न आकर अपनी भारतीय संस्कृति की परम्परा व आदर्शों को यथा–संभव अपनाकर भटकाव की इस अंधेरी गुफा से बाहर निकले तथा बदले हुए परिवेश व समाज की आवश्यकताओं के साथ समायोजन करें।[37]

मेधा उपाध्याय अपने लेख **'कहाँ गया बच्चों का भोलापन'** में अपने विचार प्रकट कर कह रही है कि आज कम्प्यूटर, लैपटॉप, मीडिया और नैट केवल ज्ञान प्राप्ति के साधन अथवा मनोरंजन के लिए नहीं रह गये हैं, जीवन का एक आवश्यक हिस्सा बन गये हैं। वीडियो गेम्स के प्रति तो बच्चों में एक अजीब–सा नशा छाया रहता है जिससे वे घर–परिवार के लोगों से अलग–थलग पड़ गये हैं। गेम्स की मार–काट पर उनका

ध्यान सबसे अधिक जाता है जिसके कारण आजकल बच्चों में कोई डर नहीं रहा, वे इतने निर्भीक और साहसी हो गये हैं कि किसी भी घटना को अंजाम दे सकते हैं। यह भी कहा जाता है कि बच्चे में संस्कार, सद्आचरण की नींव घर में पड़ती है, जिनका प्रभाव उसे नैतिकता और चरित्र निर्माण सिखाता है। वास्तविकता तो यह है कि माता–पिता तो धन कमाने में लगे रहते हैं, देर–सवेर बाहर से हारे–थके, तनावग्रस्त होकर घर आने के बाद बच्चों के साथ दो घड़ी प्यार से बात करने की मानसिकता ही कहाँ रह जाती है। आपस की दूरियां इतनी बढ़ जाती हैं कि बच्चों में अपराधी प्रवृत्ति पनपने लगती है। माता–पिता के व्यवहार से असंतुष्ट बच्चे अपने को उपेक्षित अनुभव करते हैं और बहुत से बुरे काम वे छिपकर और छिपाकर करने लगते हैं। साथ ही आज की पीढ़ी के बच्चे कुछ अधिक ही सिरफिरे हो गये हैं। छोटी सी फटकार पर टीचर पर हाथ उठाने में भी नहीं हिचकते। माता–पिता के साथ तो अक्सर बद्तमीजी से पेश आते हैं। मीडिया, नैट और गेम्स के प्रभाव से हर बच्चा उम्र से पहले जवान हो रहा है, जो जानकारियाँ उन्हें युवा अवस्था में मिलनी चाहिए वे बचपन में ही मिलने लगी हैं और बचपन का भोलापन, सादगी, जाने कहाँ चली गई है। अब प्रश्न उठता है कि बच्चों के स्वभाव में निरंतर बढ़ते रुखेपन, स्वार्थपरता, उग्रता और रोष को कम कैसे किया जाये, रोका कैसे जाये? ऐसी स्थिति में लेखिका का मानना है कि माता–पिता और दूसरे परिवारजनों के साथ बच्चों के बहुत आत्मीय और भावनात्मक सम्बन्धों का पारस्परिक विकास होना चाहिए। इससे बच्चों में आत्मविश्वास और अपनापन गाढा होगा। वे समझने लगेंगे कि घर के लोग उनके हित चिंतक है, भला चाहते है और इसी के लिए वे बड़े से बड़ा त्याग भी करते हैं। जब वह आपका यथार्थ पहचानने लगेंगे उनकी सोच में परिवर्तन आयेगा और एक आत्मविश्वास से भरा पथ उन्हें विकास की ओर अग्रसर करेगा।[38]

स्थाई स्तंभ में समाप्त होते संस्कार :–

सुमति कुमार जैन स्थाई स्तंभ में अभिव्यक्त **'मेरी बात'** के माध्यम से कहते है कि बालक आपके उपवन का पुष्प है, भगवान का रूप है, राष्ट्र का भविष्य है। बच्चों का मन बहुत की कोमल, निर्मल और सहज होता है। इन्हें जैसा वातावरण प्राप्त होता है, वैसा ही ये ग्रहण करते हैं। छोटी उम्र में ही जीवन बनता बिगड़ता है। राजस्थानी में एक कहावत है–''**पाका हांडा रे गार कोनी लागे**'' (जब मिट्टी का बर्तन पक्क जाता है तो उस पर कोई चाहे कितनी भी मिट्टी लगा दें, असर नहीं करती) अर्थात जब तक वह कच्चा है, उसको जैसा चाहे रूप, आकार दे सकते हैं। उसी प्रकार बच्चों को सुसंस्कारित, सुसंस्कारवान बनाया जा सकता है। आज परिवार, समाज और राष्ट्र प्रत्येक क्षेत्र में सुसंस्कारों के पतन के कारण खोखलापन बढ़ता जा रहा है। प्राचीन मूल्यों के ध्वंस हो जाने से भौतिकता की प्रधानता, मद्यपान की समस्या, मांस प्रचार व्यवस्था, टी.वी. आदि पर पाश्चात्य संस्कृति का बोलबाला, सद्संस्कार हीनता बढ़ती जा

रही है। सुसंस्कारों की जगह अव्यवहारिकता, अमानवीयता, अराजकता, अप्रमाणिकता ने स्थान ले लिया है, विकृतियों के बढ़ते–चढ़ते प्रवाह ने सभी को इसमें ढ़केल दिया है। सुसंस्कारों के अभाव में आज चारों और देखने को मिल रहा है कि बच्चे बाल अवस्था में ही शराब, भांग, अफीम, धूम्रपान आदि नशे की प्रवृत्तियों के आदी हो गये है। ऐसे में बालको को संस्कारित करना परम कर्त्तव्य हो जाता है। यदि वह सुसंस्कारित होगा तो बाह्य वातावरण उसके ऊपर आधुनिकता का आवरण नहीं पहना सकेगा और परसों जब वह आपका रक्षक, कर्णधार बनेगा तो संसार की दौड़ में गुमराह नहीं होगा, आपकी आज की दी हुई शिक्षा–दीक्षा उसे नये परिवेश में बह जाने से रोक लेगी।[39]

हम भाग्यशाली है कि हमें मानव जीवन मिला है। संस्कारवान परिवार मिला है, अच्छा धर्म मिला है। ऐसे गुरु मिले हैं जो हमें सदैव ही नैतिकता, मानवीयता, परस्पर अच्छे सम्बन्ध, अच्छे संस्कारों के बीज बोने का प्रयास करते है। संस्कार जन्म से मृत्यु तक चलते है। सद्संस्कार हमारे आचरणों का आईना है जो खूबियों का अपूर्व संगम स्थल प्रयाग है। सद्संस्कार समृद्धि एवं वैभव का जनक है, प्रसन्नता दायक है, प्रगति एवं विकास का सहोदर है। वात्सल्य एवं प्रेम का सदन है। व्यक्ति को नर से नारायण, शैतान से इंसान कंकर से शंकर, बनाते है। सद्संस्कार प्रकाश स्तंभ है जिसको पाकर मानव जीवन स्वर्ण की तरह चमकने लगता है। यह महाचिकित्सक भी है जो मानसिक, शारीरिक एवं भावनात्मक रूप से मानव को स्वस्थ रखता है। परन्तु आज हो तो विपरीत रहा है। आज गिरते हुए संस्कारों से बहुत बड़ी समस्या खड़ी होती जा रही है। अनेक तरीकों की बुराइयाँ जीवन में प्रवेश करती जा रही है। परिणामतः हिंसा, अश्लीलता व अप्रमाणिकता का बोल बाला बढ़ता जा रहा है। पाश्चात्य संस्कृति के बढ़ते प्रसार, टी. वी. सीरियलों की बहुल्यता उन पर किए जा रहे प्रदर्शनों ने हमें विपरीत परिस्थितियों की ओर मोड़ दिया है। इससे बढ़ते दुष्परिणामों को नित्य ही जीवन में झेलने पड़ रहे है। इसके प्रभाव से कोई अछूता नहीं बचा है। चाहे युवा वर्ग हो या घर में पूज्य मातृशक्ति हो। आज खुलेपन के नाम पर सिनेमा, फैशन शो, सौन्दर्य प्रतियोगिताएँ, डांस बार आदि विनाश के बीज बो रही हैं। जिनसे यह लगने लगा है कि भारत की पूर्व संस्कृति, चरित्र सब खत्म होता जा रहा है। आज मंदिर, मस्जिद और गुरुद्वारों में जाने की संस्कृति पर धूल चढ़ रही है, बदले में हावी है क्लब, होटल, किटी पार्टी, यह सब क्या है? पाश्चात्य संस्कृति की आंधी जिसने हमारी भारतीय संस्कृति के महान वृक्षों को ढ़हा दिया है। पाश्चात्य संस्कृति और मीडिया का हावी होने से भारतीय संस्कृति की जड़े खोखली होती जा रही है। अतएव मानवीय जीवन की जो सबसे बड़ी संपदा है सुसंस्कार उस ओर अपने को बढ़ायें, आने वाली पीढ़ी पर ध्यान करते हुए उनमें अपेक्षित संस्कारों का निर्माण करे। सदाचार के प्रति निष्ठा, शालीनता और सभ्यता का विकास करें। तभी हम हमारी संस्कृति को धरोहर के रूप में रख सकेंगे।[40]

कृष्णा भटनागर स्थाई स्तंभ में अभिव्यक्त अपने लेख **'बच्चों की परवरिश में संयुक्त परिवार की प्रासंगिता'** में अपने विचारों के माध्यम से कह रही है कि बच्चों की परवरिश में संयुक्त परिवार का महत्त्व बहुत महत्त्वपूर्ण है। नई पीढ़ी के युवक–युवतियाँ अब विवाह होकर आते हैं तो उन्हें अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रखने के लिये घर के अन्य सदस्यों जैसे बुजुर्ग माता–पिता, चाचा–चाची व भाई–भाभी का सानिध्य अच्छा नहीं लगता। उन्हें लगता है कि उनके रहने सहने के ढंग में ये बुजुर्ग बाधक है। एकल परिवार इन्हीं विचारों का परिणाम है। युवा पीढ़ी किसी अन्य का हस्तक्षेप अपने जीवन में पसन्द नहीं करते। पर इसका परिणाम बच्चों पर खराब ही पड़ता है। बच्चों की सही परवरिश में एकल परिवार कभी भी सहायक नहीं बन सकते। जो बच्चे नौकर अथवा आया द्वारा पलते है उनमें अपनत्व, मैत्री, सहयोग तथा स्नेह की भावना का अभाव रहता है। अपनों के प्यार, स्नेह तथा संग के अभाव में ये बच्चे एकांगी बन जाते है। इसके अतिरिक्त अपने परिवार, माता–पिता के संस्कारों से भी वंचित हो जाते है। इसके विपरीत संयुक्त परिवार में पलने वाले बच्चे दादा–दादी, चाचा–चाची की छत्र छाया में पलकर मित्रता, सहनशीलता, सहयोग व प्यार का पाठ सीखते है। परस्पर त्याग तथा समर्पण की भावना संयुक्त परिवार के बच्चों में ही आ सकती है क्योंकि वहाँ साथ रहकर आपस में मिलजुल कर रहना होता है। संसार के सुख–दुख तथा समस्याओं को सहने का सामर्थ्य भी संयुक्त परिवार के बच्चों में ही आता है। अतः हम कह सकते है कि सही तथा सम्पूर्ण परवरिश संयुक्त परिवार में ही हो सकती है। संयुक्त परिवार बच्चों को संस्कार युक्त बनाने में पूर्ण सक्षम है।[41]

महाश्वेता चतुर्वेदी स्थाई स्तंभ में अतिथि संपादक के रूप में समाप्त होते संस्कार पर अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कह रही है कि साधारणतया दैनिक समाचार पत्रों में आपराधिक चरित्र की हर दिन चर्चा होती रहती है जिसका मूल कारण केवल गरीबी नहीं कुसंगति और कुसंस्कार भी होते हैं जो आरम्भ से बच्चों को मिलते हैं। अभिमन्यु ने गर्भ में ही छह चक्रव्यूहों से निपटने की क्षमता प्राप्त की थी, तो क्या गर्भ के चलते आज भी उन्हें सुसंस्कार नहीं दिए जा सकते जिससे बालक–बालिका तेजस्वी बने। गर्भकाल में अश्लील साहित्य पढ़ना, दूरदर्शन के अश्लील चित्र देखना, कलह–क्लेश करना संतान को क्या संस्कार देगा? घर की प्रथम पाठशाला की प्रथम गुरु माँ का कर्त्तव्य है कि वो स्वयं सुसंस्कृत बनकर, केवल स्वस्थ शरीर पर ही नहीं स्वस्थ बालमन को सुविकसित करने के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करे, तभी उसका सफल मातृत्व कहलाएगा। वर्तमान युग में स्वयं माता–पिता रात्रि के बारह बजे तक जगकर टी.वी. देखते व अन्य अर्थहीन बातें करते हैं जिससे बच्चों का भविष्य प्रभावित होता है। कामकाजी माता–पिता आठ बजे तक घर लौटकर, मनमानी जीवन पद्धति गढ़ते हैं जिससे स्वयं उनका तथा उनके बच्चों का स्वास्थ्य प्रभावित होता है। अतः बच्चों के निर्माण में माँ के साथ पिता का भी योगदान कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। प्रेम, मानवता,

करुणा जैसी सद्‌भावनाओं को पिता अपने क्रियात्मक जीवन में उत्पन्न करें। माता–पिता के समन्वित सहयोग से ही सुसंस्कृत संतति का निर्माण हो सकता है।[42]

स्थाई स्तंभ में अतिथि संपादक **घमंडीलाल अग्रवाल** अपनी रचना **'बच्चों का उत्थान जहाँ हो, ऐसा हिन्दुस्तान बनाएं!'** में अपने विचार रखते हुए कहते है कि बच्चे ही आने वाले भारत के भावी निर्माता है। उनमें है सच्चाई, अच्छाई, प्रेम, मेलजोल, भाईचारा, मैत्री, निश्छलता और सहयोग की भावना। तभी तो कवि ने लिखा है–

बच्चे हीरे हैं, पारस हैं, बच्चे मधुर–मधुर कोरस हैं।
बच्चे एक भागवतगीता, बच्चे रामचरितमानस हैं।।

किन्तु इस बात को कदापि नकारा नहीं जा सकता है कि आज के बच्चे अत्यधिक दबाओं, अप्रत्याशित तनावों, प्रतिकूल परिस्थितियों एवं दिनों–दिन बढ़ती चुनौतियों के बीच जीवनयापन कर रहे हैं। इसका परिणाम यह निकला कि उनसे होटों की हंसी, ममताभरी गोद, गम्भीर पिता का साथ, दादी–नानी की कहानियाँ, खेलकूद की स्वतंत्रता आदि सभी कुछ पीछे छूट गए हैं। वे तो सिर से लेकर पांव तक बस पाश्चात्य संस्कृति की गर्त में सने हुए भौतिकतावादी जीवन व्यतीत करने पर मजबूर हैं जहाँ उनके संगी है–फास्ट फूड़, टी.वी. का रिमोट, वीडियोगेम, कम्प्यूटर या लैपटॉप तथा महंगे–महंगे मोबाइल फोन। बच्चों की इस जीवन–शैली, गलत खानपान, संस्कारहीनता भड़काऊ वेशभूषा और मनमानेपन का जिम्मेदार आखिर कौन हैं। जवाब होगा माता–पिता। क्या माता–पिता पहले की तरह आज अपने बच्चों को पूरा प्यार व समय दे पाते हैं? नहीं न! तभी तो बच्चे स्वयं को असुरक्षित समझने लग गए है। वे बाल साहित्य से भी पूरी तरह कट गए हैं। दादी व नानियां अब रही नहीं, क्योंकि सयुक्त परिवारों का स्थान एकल परिवारों ने ले लिया है, फिर संस्कारित कौन करेगा बच्चों को? समय पंख लगाकर चाहे कितनी ही तेजी से उड़ चले, बच्चों का समुचित विकास करना तो माता–पिता की प्रथम जिम्मेदारी है जिससे वे दूर नहीं भाग सकते।[43]

कारण :–

- आज फिल्मों और धारावाहिकों में किशोरों और युवाओं को मौज–मस्ती करते दिखाया जा रहा है, उनमें कही भी संघर्ष का जज़्बा नहीं है। फिल्मों और धारावाहिकों में खोई युवा पीढ़ी कल्पनालोक में भटक कर संस्कार विहीन होती जा रही है।
- आज माँ–बाप बच्चों के लिये हर सुख–सुविधा जुटाने में लगे है पर सुख–सुविधा प्राप्त करने के लिए किये जाने वाले संघर्षों का शिक्षण बच्चों को नहीं दे पा रहे है जिससे बच्चे संस्कार विहीन हो रहे है।

- बढ़ते एकल परिवारों के कारण तथा दादा–दादी या माता–पिता का प्यार बच्चों को ना मिलने के कारण वह स्वयं ही दूरदर्शन एवं फिल्मों के माध्यम से दिखाये जाने वाले कार्यक्रम जो उनके लिए कौन–सा ठीक है और कौन–सा ठीक नहीं है इस निर्णय के अभाव में बच्चे अनेक बार कुसंस्कारी बन जाते है।
- कम्प्यूटर, लैपटॉप व वीडियों गेम्स की मार–काट पर बच्चों का ध्यान सबसे अधिक जाता है जिसके कारण आज बच्चों में कोई डर नहीं रहा वे इतने निर्भीक और साहसी हो गये है कि किसी भी घटना को अंजाम दे सकते है चाहे उसके परिणाम सकारात्मक हो या नकारात्मक।

सुझाव :–

- जब तक माँ–बाप अपने बच्चों में धर्म–संस्कृति, व नैतिकता के संस्कार नहीं देंगे तब तक इस समस्या का समाधान नहीं मिल पाएगा।
- माता–पिता व गुरु स्वयं भारतीय संस्कृति के मानवीय मूल्यों को अपनाए व उनके आधार पर बच्चों में सुसंस्कारों का रोपण करें तथा शिक्षा संस्थानों में मानवीय मूल्यों की महत्ता पर ध्यान दिया जाये।
- बच्चों में मानवीय संवेदनाओं, मर्यादाओं, शालीनता व बड़ों के प्रति आदर भाव को महत्ता प्रदान की जायें।
- धर्माधिकारियों अथवा धर्मगुरुओं को ऐसा वातावरण तैयार करना चाहिए जिससे बालकों तथा युवा पीढ़ी के मानस में धर्म के प्रति झुकाव तथा आकर्षण पैदा हो। धर्म को उपदेशों तथा पठन–पाठन तक सीमित न रखकर उसको रचनात्मक स्वरूप प्रदान करना होगा।
- हमारे देश में आज भी कुछ ऐसे साधु–संत हैं जो हमें सही राह दिखा सकते हैं और दिखा रहे हैं। आवश्यकता है हम उन्हें परख कर उनके सान्निध्य का लाभ उठाएँ, बच्चों में उनके प्रति श्रद्धा और आकर्षण पैदा करें।
- दूरदर्शन पर दिखाये जाने वाले ऐसे कार्यक्रम जो बच्चों की मानसिकता को दूषित करते हैं बच्चों को नहीं दिखाने चाहिए क्योंकि समय से पहले दिया गया ज्ञान खतरनाक होता है और हो रहा है।
- यदि आज के परिवेश में बच्चों को सुसंस्कारी बनाना है तो बच्चों को माता–पिता का सम्मान करना सिखाना होगा, अपने कर्त्तव्यों का बोध कराना आवश्यक है तथा उनका पालन–पोषण नैतिक संस्कारों से युक्त छांव में कराना होगा।
- बच्चे को खेलने के लिए पारम्परिक वस्तुएँ ही दें व रिक्त समय में महापुरुषों की शिक्षाप्रद कहानियाँ सुनाकर उनके विचार व्यवस्थित करें।
- अपनी व्यवस्तता या तनाव के कारणों का प्रभाव बच्चों पर न पड़ने दें और न हीं उनके समक्ष लड़ाई झगड़ा या कटु वचनों का प्रयोग स्वयं ही करें।

4.2.3 मीडिया के माध्यम से विकसित हो रही अश्लीलता :–

मीडिया के माध्यम से विकसित हो रही अश्लीलता से सम्बन्धित समस्या के प्रमुख लेखक एवं लेखिकाओं के नाम निम्न है –

काव्य	लेख
➢ डॉ. कमलेश रानी अग्रवाल–फैशन की नागफनी ➢ डॉ. ऋषभ पारख–आजकल ➢ सुगनचन्द जैन 'नलिन'–भारतवर्ष हमारा **स्थाई स्तंभ** ➢ श्रीमती हेमलता उपाध्याय–सवाल सर्वत्र बढ़ती नारी नग्नता और अश्लीलता का ➢ डॉ. सुषमा शर्मा (आयोजिका)–भारतीय परिप्रेक्ष्य में महिलाओं को मनचाहे वस्त्र पहनने की स्वच्छन्दता कितनी उचित, प्रासंगिक और शोभनीय है	➢ डॉ. श्रीमती शशि प्रभा जैन–वैश्वीकरण के संदर्भ में भारतीय महिलाएँ ➢ डॉ. विद्यापती जैन–गरिमामय नारी का बदलता रूप : एक प्रश्न चिन्ह? ➢ विश्वप्रताप भारती–भारतीय युवतियों पर पश्चिमी रंग–ढंग का चढ़ता जादू ➢ रितेन्द्र अग्रवाल–वर्तमान नारी : दशा और दिशा ➢ मालती शर्मा–विज्ञापनों के दुःशासन और द्रोपदियों के चीर ➢ श्रीमती कमलेश वशिष्ठ–दूरदर्शन आखिर क्या दिखाना चाहता है ➢ कृष्ण भटनागर–विज्ञापनों व फिल्मों की अश्लीलता बढ़ाने में नारी का योगदान कितना? ➢ अब्बास खान 'संगदिल'–अश्लीलता परोस रहे है क्या टी.वी. चैनल ➢ जोगिंदर पाल 'जिंदर'–क्या मनोरंजन उद्योग अपना दायित्व निभा रहा है? ➢ घनश्याम मेठी–भारतीय परिवारों को पाश्चात्य संस्कृति के झूठे अंधानुकरण से बचायें

काव्यों में मीडिया के माध्यम से विकसित हो रही अश्लीलता :–

डॉ. कमलेश रानी अग्रवाल अपने काव्य **'फैशन की नागफनी'** में कहती है कि–

पश्चिम की सभ्यता ऐसे बौरा गई,
तुलसी के बिरवे में नागफनी आ गई।

अपनी इस कविता में लेखिका कहती है कि वर्तमान में पश्चिम की सभ्यता भारत में इस प्रकार से आकर समा गई है जिस प्रकार किसी तुलसी के पौधे में नागफनी आ जाती है। पश्चिम की लोलुपता आज मानव को अपनी ओर आकर्षित कर रही है जिससे फैशन की आंधी घर–घर में आ गई है परिणाम स्वरूप यह भारतीय युवतियों को खुले

तन घुमने पर विवश कर रही है और उनके शरीर से कपड़े छीनकर अश्लील बना रही है जिसे देखकर भारतीय संस्कृति को शर्म आने लगी है।[44]

डॉ. ऋषभ पारख अपने काव्य **'आजकल'** में अश्लीलता पर प्रकाश डालते हुए कह रहे है कि आज चारों ओर मन की शुद्धता व अशुद्धता का प्रश्न उठ रहा है, सौन्दर्य पर बहस चल रही है आज सत्यम, शिवम, सुन्दरम भी अश्लील नजरों से देखे जा रहे है। नारी की कला–कृतियों में अश्लीलता को ढूंढा जा रहा है साथ ही लक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती हो या राधा, सीता, रंभा, मेनका उनके नए पुराने चित्रों में भी लोग अश्लीलता को ही ढूंढ रहे है। वैश्वीकरण और बाजारवाद की आड़ में फिल्मों में, टी.वी. में, वीडियों में, सीडियों में सभी में आजकल नंगापन बिक रहा है। यह सब लगातार आज बाजार में नग्नता, अश्लीलता, अनैतिकता परोस रहे है। जिसे मनुष्य बडे चाव से बेशर्म होकर उपभोग कर रहा है। इस प्रकार सारा विश्व ही अश्लीलता के प्रचार का खुला बाजार बन रहा है और लोग इस व्यापार के पक्ष में अपना तर्क दे रहे है। साथ ही नाटक, गायन, पुराने गीत आदि की आड़ में बेढ़ंगापन, नंगापन फैशन के नाम पर लोगों को दिखाया जा रहा है। इसीलिए लेखक कह रहे है–

बुद्धिजीवी मौन हैं, संस्कृत पंड़ित चुपचाप है, पांडव दल निराश,
कौन बचाएगा द्रौपदी की लाज को, मोदी जी लाचार है आजकल।[45]

सुगनचन्द जैन 'नलिन' अपने काव्य **'भारत वर्ष हमारा'** के माध्यम से कह रहे है कि हर युग में हमारा भारत महान रहा है क्योंकि प्रकृति ने इसे दुनिया में सबसे अलग बनाया है। यहाँ जंगल, पहाड़, झरने, सागर, नदियाँ आदि सभी मन को भाने वाली लगती है, यहाँ चारों दिशाओं में तीर्थों का संगम बहुत ही सुन्दर लगता है। भारत के ऋषि–मुनियों, कवियों, ग्रन्थों, वेदों से हमे यह पता चलता है कि हम कही बाहर से आकर नहीं बसे बल्कि यही जन्म लेकर बड़े हुए है। हमारा भारत धन–धान्य से सम्पन्न था, यहाँ रत्नों का भण्डार था इस बात का इतिहास साक्षी रहा है। भारत की सभ्यता अति प्राचीन रही है और यहाँ की संस्कृति आज भी प्रसिद्ध है जिसे भारत के महापुरुषों ने अपने ज्ञान से चमकाया था। यहाँ ज्योतिष, गणित, खगोल, आयुर्वेद और विज्ञान का प्रसार था अर्थात यह देश इन सबका व्यापारी रहा और बाकी देश व्यापारी। मगर आज समाज अपनी संस्कृति को छोड़कर पाश्चात्य संस्कृति को अपना रहा है और वहाँ की अश्लीलता, असभ्यता, अप्रकृति को ग्रहण कर रहा है। आज वह स्वयं के संगीत, नाट्य–नृत्य व साहित्य को भुलकर विदेशी साधनों को अपने मनोरंजन का आधार बना रहा है। इसी कारण पीढ़ी दर पीढ़ी हमारा पतन हो रहा है, अब एक वर्ग विलासी बन गया है जिससे दूसरे वर्ग का गुजारा होना मुश्किल हो रहा है। इसीलिए लेखक कह रहे है कि–

पाने अतीत गौरव, अब विदेशी से ले छुटकारा,
स्वदेशी, संस्कृति–सभ्यता से होगा फिर उद्धार।[46]

लेखों में मीडिया के माध्यम से विकसित हो रही अश्लीलता :–

डॉ. श्रीमती शशि प्रभा जैन अपने लेख **'वैश्वीकरण के संदर्भ में भारतीय महिलाएँ'** में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कह रही है कि आज देश, समाज, मनुष्य, जीवन, संस्कृति, जीवनशैली, लोक–व्यवहार, खान–पान, आदतें, रुचियाँ सब कुछ अन्तर्राष्ट्रीय हो जाना चाहती हैं। परिणामतः विकसित देशों से आयातित भोगवादी संस्कृति के फलस्वरूप आज हमारे देश में सामाजिक जीवन की सुंदरता विकृत हुई जा रही है। आज वैश्वीकरण के अंधानुकरण की दौड़ में महिलाओं का उपयोग रैपर यानि डब्बे की पैकिंग की तरह होने लगा है। दवा और पानी के विज्ञापन से लेकर शराब के विज्ञापन तक में महिलाओं के उत्तेजक चित्र प्रस्तुत किये जा रहे है। कहाँ हमारे यहाँ हर नारी सीता, सावित्री, दुर्गाबाई, जीजाबाई, लक्ष्मीबाई, अहिल्या स्वरूपा थी, कहाँ अब ऐश्वर्या, सुष्मिता सेन, मल्लिका शेरावत और विपासा जैसी आदर्श बन गई है। जहाँ पहले लावण्य, लज्जा, अस्मिता, मर्यादा, सदाचरण और सदगुण का महत्त्व था वहाँ अब खुलेपन के नाम पर नग्नता को आधुनिकता का अनिवार्य अंग मान लिया है। आज कुछ महिलाएँ अपनी देह का अधिक से अधिक प्रदर्शन करके उत्पादों का विज्ञापन करती है तथा स्वयं को विषय की अपेक्षा वस्तु के रूप में प्रस्तुत करती है। यदि हमने आधुनिकता के बाह्य आवरण को तुरंत उतार कर नहीं फेका तो हमारी भी वही दशा होगी जो अमेरिका और यूरोपीय देशों की हो रही है। वहाँ नैतिकता के लिए कोई जगह नहीं है, पारिवारिक सम्बन्धों का कोई बोध नहीं है, सामाजिक मर्यादा का कोई भय नहीं है, चारित्रिक पतन की कोई चिंता नहीं। क्या यह संभव है कि हम इस आयातित प्रदूषित संस्कृति को अपनाएं भी और इसकी बुराइयों से भी दूर रहें? निःसंदेह उपभोक्तावाद भारतीय महिलाओं के जीवन शैली को प्रभावित कर रहा है। जनसंचार माध्यमों, मीडिया, फिल्मों, विदेशी टी.वी. चैनल, इंटरनेट आदि के नकारात्मक परिणाम ही अधिक आए है।[47]

डॉ. विद्यापती जैन अपने लेख **'गरिमामय नारी का बदलता रूप : एक प्रश्न चिन्ह?'** के माध्यम से कहती है कि आज गाँव हो या कस्बा, नगर हो या महानगर हर समय हर स्थान पर अश्लीलता देखने को मिलती है। नारी का अश्लील रूप, यह अश्लील शब्द क्या है? जो शील को धारण न करे वह अश्लील। भारत जैसे आध्यात्मिक देश में जहाँ नारी को पूजनीय समझा जाता रहा है उसकी यह दुर्दशा, उसका यह रूप! कौन है इसका उत्तरदायी? स्वयं नारी ही इसके लिये बहुत कुछ दोषी है। जहाँ वह पब्लिक स्कूल में प्रारम्भ से ही अपने बच्चों को बनाठना कर विद्यालय में फैशन करके भैजती है जहाँ जो जितनी सुन्दर व कीमती ड्रेस पहनकर जाता है उसके अन्य विद्यार्थी एवं अध्यापक इज्जत देते है। प्रारम्भ से बालक–बालिकाओं को जब इन कपड़ो को पहिनने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है तब बच्चे को यह अच्छा लगने लगता है और धीरे–धीरे वह इस प्रकार बनठन कर रहना पसन्द करने लगता है। आगे जब वह उच्च शिक्षा के लिए कॉलेज में दाखिला लेती है तब उस छात्रा का यह उद्देश्य हो जाता है

कि वह ऐसी ड्रेस पहने जो कि साथ में पढ़ने वाले छात्रों को आकर्षित कर सके जितनी अधिक किशोरी साथ पढ़ने वाले सहपाठियों का आकर्षण का केन्द्र होती है वह अपने को भाग्यवान समझती है। अन्त में लेखिका यह कहती है कि आज की महिला जो भौतिकता की चकाचौंध से इतनी अन्धी हो गई कि अपने आपको समाज में प्रदर्शित करने के लिये चन्द चांदी के टुकड़ों के लिये बिक जाती है अतः ऐसी नारियों को हमें इस गर्त से बचाने के लिये भारतीय आदर्श नारी की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करनी होगी।[48]

विश्वप्रताप भारती अपने लेख **'भारतीय युवतियों पर पश्चिमी रंग–ढंग का चढ़ता जादू'** में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कहती है कि आज भारत की किशोरियों व युवतियों में पश्चिमी सौन्दर्यमय सुन्दर दिखने की अदम्य लालसा पैदा हो गई है, चाहे उन्हें उसके लिए भूखा ही क्यों न रहना पड़े या किसी हैल्प क्लब या सर्जरी से ही क्यों न गुजरना पड़े। रोज–रोज होने वाली अनुपयुक्त सौन्दर्य प्रतियोगिताएँ भी उसे अपनी ओर खींचे हुए है। कहने का तात्पर्य है कि अति आधुनिक पश्चिमी रंग–ढंग से ग्रस्त आज की युवतियाँ अपनी नंगी देह का प्रदर्शन कर अधिक से अधिक लोगों को अपनी ओर आकृर्षित करना व धन कमाना चाहती है। आज की युवतियाँ अपने कैरियर के प्रति बहुत ही सजग हैं लेकिन इस सबसे अधिक वह कैमरे के सामने बेझिझक हैं। वह मानने लगी हैं कि उनकी कोमल देह कोई दबा–ढका राज नहीं है बल्कि उनके कैरियर के विकास की मजबूत वस्तु है जिसका उपयोग उन्हें हर हाल में करना चाहिए। आज मीडिया के प्रचार ने हर छोटे–बड़े नगर पर कब्जा कर लिया है। फिल्मों व विज्ञापनों में अपनी नंगी देह को दिखाने वाली मॉडल्स व अभिनेत्रियों ने निःसंकोच अश्लीलता को स्वीकार कर लिया है और खेद की बात है कि यही हमारे समाज की युवतियों का आदर्श बना हुआ हैं जिसके कारण कामुकता ने हमारे समाज में पैर पसार लिए हैं और यही कामुकता हमारे समाज के लिए एक मार्डन हथियार के रूप में अत्यन्त खतरनाक साबित हो रहा है। सौन्दर्य प्रतियोगिताओं व युवतियों का सजना–संवरना कोई बुरा नहीं। उम्र के साथ–साथ मानसिक व शारीरिक बदलाव तो आते ही है। युवतियाँ सौन्दर्य प्रतियोगिताओं में बढ़–चढ़कर भाग लें लेकिन वह सिर्फ सौन्दर्य तक ही सीमित रहें, और सभी को सौन्दर्य तक सीमित रखें। देशकाल तथा वातावरण का ध्यान तथा तन–मन पर काबू रखकर ही वे इस ओर बढ़ें जिससे वे मात्र प्रदर्शन की वस्तु न बनें।[49]

अपने लेख **'वर्तमान नारी : दशा और दिशा'** में **रितेन्द्र अग्रवाल** कह रहे है कि प्रकृति की दो अनुपम संरचनाओं में है–एक नारी। सुंदर एवं अनुपम, संस्कार और व्यवहार का प्रतिरूप। देवी समान माँ, बहन, बेटी, पत्नी। नारी वक्त के साथ प्रगति पथ पर अग्रसर हो रही है। आज महिला पढ़–लिखकर हर क्षेत्र में कार्यरत है। वैदिक काल में नारी पढ़ी नहीं थी पर गुणी थी और आज की नारी पढ़ी लिखी, आत्मनिर्भर है पर गुणी नहीं है। क्योंकि आज की नारी पाश्चात्य से प्रेरित होकर आधुनिकता की अंधी दौड़ में इस कदर दौड़ रही है कि महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिये कुछ भी करने को,

किसी भी सीमा तक जाने को तैयार है। आधुनिकता की इस अंधी दौड़ में नारी ने अपने आपको वस्तु के रूप में प्रस्तुत कर दिया है। हम देख सकते है कि आज कल विज्ञापनों में नारी अपने आपको किस तरह प्रस्तुत कर रही है। महिलाएँ कई प्रकार के कपड़ों में अपनी देह प्रदर्शन कर रही है क्या यह आवश्यक है? लगता है नारी अपनी मुक्ति, अपनी स्वतंत्रता के नाम पर सीमाओं का उलघन कर रही है। भूल गयी कि वह माँ, बहन, बेटी भी है। समाज का दर्पण, रिश्तों की गरिमा, घर की इज्जत नारी ही है। अगर इसे महसूस नहीं किया तो हमारी सांस्कृतिक इमारत कमजोर हो जायेगी जिसका हमें गर्व है। अतः नारी को पाश्चात्य के अंधे अनुकरण में डूब कर पुरुष के हाथ का खिलौना नहीं बनना है, वस्तु बनकर बाजार में नहीं बिकना। वरन् अपनी अस्मिता, तेजस्विता को समझना है।[50]

मालती शर्मा अपने लेख **'विज्ञापनों के दुःशासन और द्रौपदियों के चीर'** में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कहती है कि आज फिल्मों, दूरदर्शन, नृत्यायोजनों, पत्र–पत्रिकाओं के विज्ञापनों में वीडियो फिल्म और सी.डीज में, सड़कों, चौराहों पर लगे होर्डिंग में, तरह–तरह के विज्ञापनों के रूप में दुःशासनो ने आज की द्रौपदियों का चीर हरण कर लिया है। विज्ञापनों के इन सारे माध्यमों से आये विज्ञापनों में स्त्री की अनावृत देह, उसके कुछ अंगों को सौन्दर्य वर्धक प्रसाधनों से ही नहीं हर वस्तु के साथ सुन्दर हुआ मानकर दिखाया जा रहा है। इन सौन्दर्य के मानको में अपने को फिट करती, अनेकानेक मॉडल द्रौपदियाँ हर रोज दिख रही है और बहुत सारी इन्हें सीख रही हैं। छोटी–सी पेन्टी पहन अमुक–तमुक फैशन शो की इस सुन्दर प्रतियोगिता की परेड़ में भाग ले उसका ताज पहन सामने आ रही है। दूरदर्शन पर बार–बार ये प्रदर्शन, अन्य युवतियों को उकसा कर लालसा जगा रहे है। यहाँ यह भी देखना होगा कि इस क्षेत्र में पहल समाज के किस वर्ग की स्त्रियों की है तो पहल करती उच्च वर्ग की स्त्री दिखाई देती है। पर खानदानी उच्चवर्ग की स्त्री नहीं। नव धनाढ़य, बड़े घरो की, उच्च वर्ग की संपन्न धनी महिलाएँ इस क्षेत्र में पहल करती है। इससे उन्हें नाम, पैसा, प्रतिष्ठा, प्रचार सब मिलता है। मीडिया उन्हें चार लोगों के बीच पहचान देता है। ये ऐसी महिलाएँ होती है जिन्हें अपनी कोई पहचान चाहिए, नाम प्रतिष्ठा चाहिए। अक्सर देखा जाता है कि हम इस नग्नता, अश्लीलता का सारा दोष पश्चिमी प्रभाव और मीडिया के सिर मढ़ देते है। मगर इस तरह हम पश्चिमी नैतिकता को कुछ अधिक और व्यर्थ ही बदनाम करते है। वहाँ के सार्वजनिक जीवन में महिला देह का ऐसा नग्न प्रदर्शन नहीं है। मीडिया तो माध्यम भर है। वह वही तो दिखाता और सुनता है जो हम करते और बोलते है। विज्ञापनों में नग्नता का होना समाज की दायित्वहीनता का प्रतिफल है। आज यदि जवान पीढ़ी के लिए संस्कार, संस्कृति और नैतिकता कोई मायने नहीं रखती तो इसके लिए उत्तरदायी है व्यक्ति और समाज के बीच नैतिकता के व्यवहारिक अनुशासन की कड़ी परिवार हमारे समाज में कुछ लोगों में बच रहे सौन्दर्य बोध के ऐसे संस्कार

और नैतिक मूल्यों के कारण ऐसे अश्लील अंग प्रदर्शन के विज्ञापनों पर ऊंगली उठा रहे है, आपत्तिया और विरोध प्रकट किया जा रहा है। लेकिन अकेले सामाजिक प्रतिरोध से चाहे वह कितना ही सशक्त हो स्त्री देह का मीडिया में ऐसा नग्न प्रदर्शन तब तक नहीं थमेगा जब तक स्त्री अपनी देह पर पूर्ण अधिकार की, उसकी रक्षा की शक्ति अपने में विकसित नहीं कर लेती।[51]

अपने लेख '**दूरदर्शन आखिर क्या दिखाना चाहता है?**' में **कमलेश वशिष्ठ** कह रही है कि आज दूरदर्शन पर नारी के नारीत्व की धज्जियाँ उड़ाई जा रही है। वहाँ केवल रिश्ते ही खराब नहीं हो रहे हैं बल्कि नारी कम से कम कपड़ो में आकर अपने जिस्म की नुमाईश कर रही है और समस्त नारी समाज के लिए शर्मनाक प्रस्तुति दे रही है। इतने अश्लील, बेढंगे व छोटे वस्त्रों में वह अपना नारीत्व स्वयं ही खो रही है। क्या इस तरह के टॉपलेस और मिनी वस्त्रों को पहनकर कार्यक्रम देने वाली महिलाओं के पिता, भाई या पति नहीं होते या फिर होते है तो अपने घर की नारियों को न्यूनतम वस्त्रों में देखकर उनका खून नहीं खोलता या फिर पैसे की चमक में यह विवेक नहीं रहता कि नारी का सौन्दर्य ढके होने में ही है। खुले होने पर तो घिनौना चित्र ही आता है और आज नारी ने अपने आप को इतना सस्ता बना लिया है कि विज्ञापनों में भी वह कम से कम कपड़े पहनना पसंद करती है। आजकल फिल्मों में भी क्या कुछ नहीं दिखाते है। कोई चंद फिल्में ही ऐसी बनती है जो परिवार के साथ बैठकर अच्छी लगती है वरना तो ऐसे दृश्यों की ही फिल्म होती है जिनमें नारियों के वस्त्र न के बराबर होते है। अतः ऐसे विचारों को जन्म देने वाली लेखनी, अभिनय कराने वाले डायरेक्टर और एक्टिंग करने वाले पात्र, टॉपलेस और मिनी वस्त्रों में नारियाँ और सर्वोपरि अपने घर में इन चैनलों को परिवार सहित देखने वाले सभी अभिभावक समाज को दीमक की तरह चाट रहे है।[52]

कृष्णा भटनागर अपने लेख **विज्ञापनों व फिल्मों की अश्लीलता बढ़ाने में नारी का योगदान कितना?**' में अपने विचार रखते हुए कह रही है कि नवीन–नवीन उत्पादन के विक्रय हेतु विज्ञापनों की भरमार है। अधिकाधिक विज्ञापनों में नारी को जितना हो सकता है उतना अश्लील रूप में प्रस्तुत किया जाता है। नारी के अंग–प्रत्यंगों का प्रदर्शन इन विज्ञापनों का उद्देश्य रहता है। पुरुषों के चित्र बहुत ही कम विज्ञापनों में दिखाई देते है। आज विज्ञापनों का प्रमुख माध्यम नारी ही है। नारी की नग्नता का दूसरा क्षेत्र हमारी आने वाली फिल्में भी हैं। पुरानी फिल्मों की नायिकाएँ अपना अभिनय एक मर्यादा में रहकर करती थी। पर आज फिल्मों में अभिनय कला उत्कृष्ठ रूप को प्रदर्शित करने के बजाय अश्लीलता की ओर ही बढ़ी है। समाज में फैलने वाली अनैतिकता, चरित्रहीनता तथा उच्छृंखलता फिल्मों का ही परिणाम है। प्रश्न उठता है कि विज्ञापनों की अश्लीलता मे किसका योगदान है? क्या समस्त व्यावसायीगण व व्यापारीगण ही इसके लिए जिम्मेदार हैं? मगर नारी की सहभागिता भी कम नहीं। वास्तविकता यही है कि विज्ञापनों की अश्लीलता में नारी का योगदान बहुत अधिक है।

धन–लिप्सा एवं वैभव की चाह ने उन्हें पागल बना दिया है। दिग्भ्रमित हो ये नारियाँ अपने अंग–प्रत्यंगों की प्रदर्शनी लगाने में रंचमात्र भी संकोच नहीं करती है। वे भूल गयी है कि वास्तविक सौन्दर्य मन की शुद्धता तथा जीवन की पवित्रता में है। वे आज अपनी नैतिक एवं चारित्रिक दायित्व को भुलाकर घृणित एवं कुत्सित वातावरण से मुक्ति पा सकती है। उनकी कोई भी मजबूरी ऐसी नहीं है जो उन्हें अश्लील चित्रों के लिये बाध्य करें। सादा जीवन व्यतीत करने से यदि वे संतुष्ट हो जायें, आदर्शों की ओर उन्मुख होकर यदि श्रेष्ठ जीवनयापन का संकल्प करें तो निश्चय ही समाज में कुछ सीमा तक अश्लीलता एवं चरित्र हीनता का अंत हो जायेगा।[53]

अपने लेख **'अश्लीलता परोस रहे है–क्या टी.वी. चैनल'** में **अब्बास खान 'संगदिल'** कह रहे है कि टेलीविजन आज परिवार की प्रमुख आवश्यकता बन गया है। राष्ट्रीय खबरें देश–परदेश की जानकारी खेलकूद घटनाओं की ताजा जानकारी, पारिवारिक सीरियल, साहित्यक जानकारी, राजनैतिक घटनाक्रम सभी कुछ मिलता है टी.वी. में। अदब, तहजीब, संस्कृति के नाम से विश्व में भारत की अलग पहचान है। जो हमें विरासत में मिली है। यहाँ कि संस्कृति, पहनावा, बोलचाल, रहन–सहन, धार्मिक मान्यता के आज भी विदेशी गुणगान करते हैं। किन्तु समय के साथ सब कुछ बदल गया। विज्ञान की तरक्की–आविष्कारों की होड़–विकास के नये आयाम। इन सबकी देन मानव ने मनोरंजन का एक ऐसा करिश्मा तैयार किया जिसका जादू आज आम आदमी के सिर चढ़कर बोल रहा है। घरों की शोभा बढ़ा रहा है। टेलीविजन रखना याने समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करना उद्देश्य बन गया। अब तो प्राइवेट चैनलों की बाढ़ सी आ गई। दूरदर्शन ने अपनी भारतीय संस्कृति का मान रखते हुए घर परिवार के स्वस्थ मनोरंजन का ध्यान रखा। किन्तु प्राइवेट चैनल इससे एक कदम आगे निकल गये। भारतीय संस्कृति के अदब लिहाज से दूर बताते हुए ये अश्लीलता की हदों को पार कर रहे है। एक दूसरे से आगे बढ़ने की होड़ में अश्लीलता को आम लोगों के सामने परोसने मे कोई हिचक नहीं करते। आज परिवार के साथ बैठकर कोई भी कार्यक्रम देखने की हिम्मत तभी जुटा पायेंगे जब शर्म को ताक में रख दें। यदि कोई धार्मिक पारिवारिक सीरियल आ रहा है तब भी कोई ऐसा विज्ञापन आयेगा कि हमारी नजरे शर्म से झुक जायेगी। ये विज्ञापन कोई नहीं हमारी लड़कियाँ कर रही हैं। जो किसी की बेटी, बहिन है। पर दौलत शोहरत की चाहत ने इन्हें अंधा बना दिया है। जिन लड़कियों को जवानी की दहलीज पर पैर रखते ही जिस्म को छुपाकर रखने, निगाह नीचे किये चलने की सलाह, अदब, तहजीब की सलाह माँ देती थी अब वो बात कहाँ... ? अब तो माँ स्वयं ब्यूटीपार्लर जा रही है, तो फिर बेटी...। ये इक्कीसवीं सदी है कुछ नया करने की चाहत है। दुनिया आगे बढ़ रही है पुरानी बातें छोड़ो... ये हमारा जमाना है। विज्ञान ने तरक्की की है फिर हम पीछे क्यूं रहे ये सोच है आधुनिक नारी की।[54]

जोगिंदर पाल 'जिंदर' अपने लेख **'क्या मनोरंजन उद्योग अपना दायित्व निभा रहा है?'** में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कह रहे है कि वर्तमान समय में बन रही फिल्मों एवं टी.वी. कार्यक्रम तैयार करते समय यह नहीं देखा जाता कि इसका दर्शकों पर क्या प्रभाव पड़ेगा? बल्कि यह देखा जाता है कि किस प्रकार अधिक से अधिक दर्शकों को हॉल की टिकट खिड़की की ओर खीचा जाए। आपने ध्यान दिया होगा कि आज बेहद गलत ढंग से फिल्मों एवं टी.वी. वाले दर्शकों के आगे परोस रहे है वह है महिलाओं का कामुक अंदाज में पर्दे पर आना तथा महिलाओं का आवश्यकता से भी कहीं कम कपड़े पहनना विशेष कर फिल्मों ने तो हद ही कर दी है। आज अबोध बस्त्रों में नायिका का पर्दे पर आ जाना एक साधारण सी बात हो गई है। जिस गति से इन फिल्मों में महिलाओं के शरीर से वस्त्रों का आकार सिमट रहा है, क्या बहुत जल्द वह समय नहीं आने वाला जब पूरी तरह निर्वस्त्र दिखना शुरु कर दिया जाएगा? मेरे भारत महान की महान सभ्यता संस्कृति में एक दिन ऐसा भी आ जाएगा, शायद ही किसी ने सोचा हो? माना पाश्चात्य देशों में खुलापन है लेकिन उनमें और हममें आकाश–पाताल का अंतर है। अतः समय की आवश्यकता है कि इस पेशे में ऐसे लोग भी आगे आए जिन्हें भारतीय संस्कृति से मोह हो, भाषा से लगाव हो, समाज जिनके लिए मात्र बाजार न हो, जो समझे समाज के प्रति उनका भी कोई उत्तरदायित्व है। ऐसे धारावाहिक और फिल्मों का निर्माण करे जो नैतिकता का पाठ पढ़ाएँ।[55]

घनश्याम मेठी अपने लेख **'भारतीय परिवारों को पाश्चात्य संस्कृति के झूठे अन्धानुकरण के प्रभाव से बचायें'** में अपने विचार प्रस्तुत कर कह रहे है कि भारतीय संस्कृति में नारी को सर्वश्रेष्ठ व आदर का स्थान दिया है प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में व मनीषियों ने कहा है कि जिस देश में, समाज में नारी की पूजा होती है वही लक्ष्मी व शांति का निवास होता है। पर दुख के साथ लिखना पड़ रहा है कि पाश्चात्य देशों में तो नारी को भोग्या व कामवासना का साधन, मौज मस्ती का कारक माना है। वहाँ न तो परिवार है और न ही बच्चों के माँ–बाप का अता पता है और पत्नियाँ साड़ियों की तरह बदली जाती है। परन्तु उनकी तो यह दिनचर्या व कल्चर का हिस्सा है वहाँ के समाजों ने इसे सहर्ष अंगीकार कर लिया है। अतः इस पर कोई टीका टिप्पणी व अच्छाई बुराई नहीं करना चाहता परन्तु भारत में भी आज पाश्चात्य संस्कृति ने टेलीविजन व सिनेमा के माध्यम से भारतीय परिवारों व बच्चों के मस्तिष्क में जहर घोलना शुरु कर दिया है। भारत के बड़े शहरों में लाइफ इस्टाइल के नाम पर अर्द्धनग्न वस्त्र पहनकर नारियों को मंच पर पेश किया जाता है। जितने भी आधुनिक उत्पाद हैं चाहे मोटर साईकिल हो, साबुन हो चाहे और कोई, नारी को ही अर्द्ध वस्त्रों में प्रचार के माध्यम के रूप में पेश किया जाता है। इस जहर से भारत के युवा छात्र–छात्राएँ भी नहीं बच पा रही हैं। आदर, मर्यादा, शालीनता, आचार–विचार धीरे–धीरे छूटता जा रहा है। जो कभी भारी दुखद संकट का कारक होगा। इस लेख के माध्यम से लेखक का

नारी जाति, माताओं व बहिनों, छात्र–छात्राओं, अभिभावकों से विनम्र आग्रह है कि इस पाश्चात्य संस्कृति से अपने बच्चों व परिवार को दूर रखें व बचावें नहीं तो समाज के समाज, परिवार के परिवार टूटने से कोई बचा नहीं पायेगा।[56]

स्थाई स्तंभ में मीडिया के माध्यम से विकसित हो रही अश्लीलता :–

श्रीमती हेमलता उपाध्याय स्थाई स्तंभ में अभिव्यक्त अपने लेख **'सवाल सर्वत्र बढ़ती नारी नग्नता और अश्लीलता का'** में अपने विचार लिखते हुए कह रही है कि आज सर्वत्र नारी नग्नता, अश्लीलता और नंगापन का बोलबाला हो गया है। किसी जमाने में माता–पिता यह देखते थे कि बच्चा क्या पढ़ रहा है और क्या देख रहा है। आज जब माता–पिता दोनों आर्थिक कारणों से नौकरी करते हैं तब माता–पिता बच्चों को कहते हैं कि तुम टी.वी. देख लो। दूसरी ओर टी.वी. पर कितनी अश्लीलता छाई हुई है। जिन बुरी फिल्मों तथा धारावाहिकों को हम सिनेमाघरों में छोड़ आये आज वे हमारे घर में चौबीस घंटे चलते हैं। हमारे अबोध बालक उसके दर्शक हैं। हमने बालकों एवं पूरे परिवार को टी.वी. एवं सिनेमा के हवाले कर दिया है। कुछ सालों पहले एक नया शब्द चला जिसे अंतर्राष्ट्रीय व्यापारवाद कहते हैं, इस व्यापारवाद में नारी को सबसे बड़ी कठपुतली बनाया गया है और नारी के शरीर को इसका माध्यम बनाया गया है, वैसे तो पुरुषों को भी लगभग नग्न अवस्था में दिखाया जाता है परन्तु स्त्रियों की नग्नता से पूरे मानव समाज का नुकसान होता है। इसमें महिलाओं को इतने कम वस्त्रों में दिखाया जाता है कि मानव मात्र का मन शर्म से झुक जाता है एवं संसार भर में नारी की महत्ता, इज्जत, महत्त्व एवं आदर को ठेस पहुँचती है। अतः हमें व्यापारवाद तथा नारी शोषण की वृत्ति को बदलना होगा तभी इन सब परिस्थितियों में परिवर्तन आयेगा।[57]

स्थाई स्तंभ में **डॉ. सुषमा शर्मा** के निर्देशन में एक परिचर्चा का आयोजन किया गया जिसका विषय **'भारतीय परिप्रेक्ष्य में महिलाओं को मनचाहे वस्त्र पहनने की स्वच्छन्दता कितनी उचित, प्रासंगिक और शोभनीय'** है। इस पर कई लेखक–लेखिकाओं ने अपने विचार अभिव्यक्त किये जिनमें से प्रमुख के विचार निम्न है।

डॉ. सुषमा शर्मा कहती है कि पश्चिम अवधारणा में महिला विज्ञापन और उपयोग की वस्तु हो सकती है, परन्तु भारतीय जनमानस में आज भी महिला माँ, बहन, भाभी, दादी, नानी, बुआ, मौसी, चाची के रूप में जानी जाती है। आज नारी कन्धे से कन्धा मिलाकर सभी सामाजिक क्षेत्रों में दस्तक दे रही है। यह अलग बात है कि दूरदर्शन, सिनेमाओं में नारी का अश्लील तरह का वस्त्रविन्यास दिखाया जा रहा है, वह शोभनीय तो नहीं कहा जा सकता। अंग प्रदर्शन की होड़ में वस्त्रों की न्यूनता फैशन का पर्याय बन गई है। तर्क दिया जाता है कि जब पुरुषों की वेशभूषा के सम्बन्ध में कोई प्रतिबन्ध प्रस्तावित नहीं किया जाता है तो केवल महिलाओं को द्वितीय श्रेणी की नागरिक समझकर क्यों तिरस्कृत किया जाता है? मगर फिर भी सामाजिक अश्लीलता को दूर

करने के लिए महिलाओं के लिए कॉलेज, ऑफिस तथा अन्य कार्य स्थलों के लिए पहनने के वस्त्रों का अनुशासन तो प्रस्तावित करना ही होगा।

श्रीमती डॉ. कृष्णा रावत का कहना है कि कपड़े तन ढ़कने के लिए बनाए गए हैं पर आज की पीढ़ी के लिए इनकी उपयोगिता अंश मात्र रह गई है। तन ढ़की, सजी संवरी महिला के आकर्षक व्यक्तित्व की बात ही निराली है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में तन ढ़के हुए वस्त्र एक महिला के सौंदर्य में चार चांद लगा देते हैं। पर वर्तमान परिप्रेक्ष्य में स्वच्छन्द और उन्मुक्त वस्त्र नाम मात्र के लिए पहनना भद्दापन एवं अश्लीलता के प्रतीक है। जिनमें उसका सौंदर्य भी वासनायुक्त, अश्लील दिखाई पड़ता है। पश्चिम की यह नकल हमारे समाज की नारी जाति पर हावी होकर उसकी जड़ों को खोखला करती जा रही है। परिणाम अश्लीलता, खुलापन, नंगापन, व्यभिचार, बलात्कार, नई पीढ़ी का बिगड़ा रूप रिश्तों का बोनापन के रूप में हमारे समक्ष है। आज नारी का मूल ही खोखला होता जा रहा है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में और जो नारी सृष्टि की रचयिता है, पालनहारी है, एक बहिन है, एक माँ है, एक पत्नी है, एक बेटी है वह आधुनिक छोटे वस्त्र पहनकर वस्त्रहीन होकर उन्मुक्त और स्वच्छन्द होकर अपने समाज को क्या दे पाएगी यह एक विचारणीय प्रश्न है?

श्रीमती मंजुला गुप्ता लिखती है कि भारत में महिलाओं को पहनने के लिए केवल वे ही परिधान भारतीय परिप्रेक्ष्य में उचित माने गए हैं जो उनके शरीर को आराम से ढ़क सकें जिसमें साड़ी व सलवार कमीज है। पर देखने में आ रहा है कि पाश्चात्य संस्कृति की होड़, कुछ अपने को अत्याधुनिक दिखाने की भावना के संग–संग कहीं कोई मुझे पिछड़ा न समझ बैठे कि हीन भावना से त्रस्त एवं कुछ फिल्मों, टी.वी. के नित्य नए परिधानों या परिधान रहित चल–चित्रों ने महिलाओं के लगभग सभी वस्त्रों में अशोभनीयता एवं अश्लीलता ला दी है। आज वस्त्र इतने अश्लील एवं भद्दे ढंग से पहने जाने लगे है कि कई बार सिर स्वयं ही शर्म से झुक जाता है। शालीन, गंभीर एवं गरिमामय व्यक्तित्व का धनी व्यक्ति, अश्लील वस्त्र पहनना कदापि स्वीकार नहीं करेगा।

श्रीमती रंजना पाठक अपने विचार प्रकट करते हुए कह रही है कि आज के युग का यह बड़ा ज्वलन्त प्रश्न है कि युवा पीढ़ी की महिलाएँ जिन अल्प कपड़ों में खुद को प्रदर्शित करती हैं उसका औचित्य क्या है। यह सच है कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है जिसमें लोग अपनी खुशियों को ढूंढ़ते हुए आधुनिकता को अपना लेते हैं। इसी तरह आज के युग में कम से कम तन ढ़कने वाले वस्त्र बाजार में मिलते है और लोग उससे आकर्षित होते हैं। स्वयं को खुश रखने के लिए अपनाते जाते है। कहीं न कहीं इसका जिम्मेदार हमारा समाज है। चाहें वह मीडिया के लोग हों या मनोरंजन के साधन से पैसा कमाना चाहते है। इन्हीं सब कारणों से महिलाएँ इन्हें अपनाती जा रही है। जिन्दगी जीने के लिए पैसों की जरुरत पड़ती है। इन वस्त्रों को उन्होंने अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए पैसा कमाने का जरियाँ बना लिया हैं। समय के अनुसार

वेशभूषा साज–सज्जा धारण करना चाहिए परन्तु यह ध्यान देना उचित है कि यह हमारे लिए व समाज के हित में है या नहीं, कहीं समाज में बुराइयाँ व अत्याचार तो नहीं बढ़ेंगे। अगर ऐसा है तो थोड़ा बदलाव लाना ही पड़ेगा जिससे हम व हमारी संस्कृति दोनों सुरक्षित एवं आदर्श बनी रहें। इसके लिए केवल महिलाएँ ही नहीं बल्कि पुरुषों को भी अपनी सोच बदलनी होगी।

डॉ. स्वर्णलता लिखती है कि वस्त्र केवल तन ढ़कने की ही वस्तु नहीं, वरन् व्यक्ति की पहचान, सभ्यता, संस्कृति, सुरुचि को दर्शाते है। कहा जाता है–''**रंग खुराको ते चाल पोशाकों, अर्थात व्यक्ति की सुन्दरता रंगरूप खान–पान से, तथा चाल–ढ़ाल, पोशाक से उद्घटित होती है।**'' किसी देश–प्रदेश की पोशाक दूर से ही व्यक्ति की पहचान करा देती है। जैसे महिलाओं की साड़ी, महाराष्ट्र, मद्रास, यू.पी., बंगाल आदि की महिलाओं के लिए मात्र वह वस्त्र ही नहीं है, वरन् भौगोलिय सामाजिक संस्कृति विरासत है, आज आधुनिकता के इस दौर में कुछ महिलाएँ अपने को मार्डन, असाधारण दिखाने की ललक में, फैंशन परस्ती के मोहताज में, स्त्री सुलम शालीनता की हदें पार कर अपनी उन्मुक्त स्वच्छन्द अभिव्यक्ति के लिए, वस्त्र विन्यास पर अशोभनीय कहर बरसा रही है, जो भारतीय संस्कृति के अनुकूल नहीं। वस्त्र विन्यास में अशोभनीय प्रदर्शन को मात्र पाश्चात्य की नकल कहना भी उचित नहीं क्योंकि अंग्रेजों में पोशाक का विशेष ध्यान रखा जाता है। वहाँ भी साधारणतया महिलाएँ फ्राक, गाउन व लम्बे स्कर्ट पहनती हैं जो उनकी सुरुचि को दर्शाता है। आज वस्त्र विन्यास के चुनाव में, उन्मुक्त स्वच्छन्दता, भारतीय परिदृश्य में कई ज्वलंत सवालों को जन्म देती है जो स्त्री की शालीनता गरिमा सुरुचि पर सवालिया निशान है, जिनमें कुछ टूटते मूल्यों की सिसकन है। समय के वक्ष पर अपने नक्शे छोड़ते यह नए बिम्ब भारतीय जीवन शैली पर अवसाद उकेरते प्रतीत होते है।

डॉ. सुमन मेहरोत्रा का मानना है कि परिवर्तन स्वाभाविक प्रवृत्ति है, सुखद अनुभूति है तथा आकर्षित करती है। इतिहास साक्षी है कि पुरातन का बहिष्कार और नूतन का स्वीकार सदैव होता रहा है। समय के चक्र में हमारा धर्म, हमारे सिद्धान्त, मान्यताएँ, नैतिकताएँ, हमारी सभ्यता अपने को नवीनता में ढ़ालते रहे हैं। नवीनता ने सदैव आचार–व्यवहार, रहन–सहन, भाषा–बोली को भी समयानुकूल परिवर्तित किया है। अतः मनुष्य चाहकर भी परिवर्तित परिस्थितियों को नकार नहीं सकता है, बल्कि उसके अनुरूप चलना उसकी बाध्यता होती है। परन्तु इस परिवर्तन को तमाशा बनाकर दूर से देखने से काम नहीं चलेगा इसके पीछे का मनोविज्ञान, मानसिकता तथा आवश्यकता को परखना और निरखना होगा। भारतीय संस्कृति की ओर दृष्टिपात करे तो यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे यहाँ अधिक वस्त्रों का चलन देवी–देवताओं में नहीं था। शायद उस समय की मानसिकता शुद्ध और पवित्र थी कि, न उस समय, न आज भी, उन मूर्तियों को देखकर कोई अश्लीलता या कामुकता मन में उत्पन्न होती है। धीरे–धीरे सुविधा

सुख आराम मनोवृत्ति को बदलते रहें उसी के अनुरूप भेष–भूषा में अन्तर आता गया। कभी साड़ी कभी सलवार, कभी स्कर्ट, मीनी स्कर्ट, कभी शार्ट्स, कभी दुपट्टा तो कभी बैकलैस आदि–आदि सब तन और मन की आवश्यकता के अनुसार रूप बदलते रहते है। आज का युवा अपनी शर्ट के चार बटन खोल, पेंट की सामने की जिप पर फैन्सी बटन लगाए, वरमूड़ा पहने सड़कों पर घूमता रहता है, कोई ऊंगली नहीं उठती। क्यों नहीं अश्लीलता की तख्ती उनके गले में लटकाई जाती? आज की युवा पीढ़ी की नारियाँ कम वस्त्रों का प्रयोग कर रही हैं तो बेशर्म का टीका उनके माथे पर लगा दिया जाता है। चारों ओर से छीःछीः का शोर उठने लगता है। अच्छा तो यही होगा कि उस दृष्टिकोण को, उस नजर को बदला जाए जो लड़की देखते ही इन्चटेप लेकर खड़े हो जाते है। ऐसी परिचर्चाऐं, परिसंवाद, गोष्ठियाँ, लेख, पत्रिकाएँ निकाली जाए अर्थात ऐसी शिक्षा दी जाए जो उन कामुक निगाहों को सभ्य बना सकें। यह शिक्षा युवकों को ही देनी आवश्यक है कि हम उम्र की लड़कियों के साथ स्वस्थ मानसिकता का विकास करे। अपनी संस्कृति और परम्परा को बनाए रखे। विदेशी सभ्यताओं का अंधानुकरण करने से बचें। संस्कृति, परम्पराएं, सभ्यता को निभाने का दायित्व एक वर्ग पर नहीं हो सकता। सम्पूर्ण समाज उसके प्रति उत्तरदायी होता है।

कमलेश माथुर कहती है कि वैश्वीकरण, उपभोक्ता संस्कृति तथा पश्चिमी संस्कृति के अंधानुकरण के फलस्वरूप भारतीय परिवेश की जड़ों पर अपसंस्कृति की आंच आ रही है यह चिन्तनीय विषय है। पुरुषों के साथ हर क्षेत्र में उनसे आगे निकलने की होड़ में आज नारी कुछ भी करने को तैयार है। वे अपनी मनचाही बात पूरी करने के लिए स्वतंत्र है। आधुनिक उत्तेजक भड़काऊ वस्त्र पहनना उसी मनचाहे पहनावे की मानसिकता है। शार्टकट की राह पर रातों–रात अधिकाधिक पैसा कमाने की होड़ और सौंदर्य प्रतियोगिताओं के नाम पर जिस्मी नुमाईश के भौंडे प्रदर्शन के फलस्वरूप नारी सुलभ मान–मर्यादा और गरिमामयी संस्कृति को रूढ़िवादी, दकियानूसी करार देते हुए विकास मार्ग की वर्जना मानते हुए आधुनिकतावादी बालाएं तमाम प्राचीन सामाजिक मान्यताओं को रौंदकर विकास का स्वप्न संजो रही है। वे इसे वुमन कैरियर की मुख्य कड़ी मानती हैं। वर्तमान में तथाकथित सौंदर्य प्रतियोगिताएँ अब देखने की कम दिखाने मात्र की वस्तु ज्यादा रह गई है। जिस प्रकार फैशन के बदलते दौर और पश्चिमी संस्कृति की अंधी दौड़ में आधुनिक वस्त्र पहनने की होड़ लग रही है, इस स्वच्छन्दता पर रोक लगनी चाहिए। भारतीय परिवेश की मान्यताएँ और मूल्यों के दृष्टिगत यह नितांत अनुचित, अप्रासंगिक व अशोभनीय है। जहाँ तक वुमन कैरियर का प्रश्न है तो कई जगह वुमन कैरियर क्षेत्र में ड्रेस कोड़ निर्धारित होता है। नारी सुलभशील व लज्जा को ढ़कने वाले वस्त्र पहनकर भी नारी सफलता के सर्वोच्च शिखर पर पहुँची है, इसके असंख्य उदाहरण है।

मनोरमा माथुर का कहना है कि समाज में बहु प्रचलित एक कहावत है–"**खाओ अपने मन का पहनों दूसरे की पसंद का**" इसका अन्तर्निहित अर्थ है जो देखने वालों

को शालीन लगे वही पहनावा उचित है। परन्तु आज के परिप्रेक्ष्य में यह कहावत कही पन्नों में दबकर रह गई है। आज जिसे देखो वही पश्चिमी पहनावे की नकल करता हुआ और टी.वी., सिनेमा को अपना आदर्श मानते हुए अधिक से अधिक आधुनिक बनने की होड़ में लगा हुआ है। महिलाएँ इस दौड़ में कुछ आगे ही नजर आती हैं। यह बात स्वाभाविक है कि महिलाओं में सुंदर दिखने की अभिलाषा पुरुषों से कुछ अधिक ही होती है लेकिन आजकल तो इस अभिलाषा को पर ही लग गए है। फलस्वरूप आज सुंदरता चेहरे में नहीं वरन् छोटे–छोटे तंग और शरीर का अधिक से अधिक प्रदर्शन करने वाले वस्त्रों में सिमटकर रह गई है। आज समाज में जितनी भी नारी उत्पीड़न की घटनाएँ हो रही हैं क्या उसकी जिम्मेदार स्वयं नारी नहीं है? यह सही है कि खाने–पहनने की, चिंतन–मनन की स्वतंत्रता सबका अधिकार है नारी का भी, परन्तु ऐसी स्वच्छंदता जिससे नैतिक मूल्यों व सांस्कृतिक मान्यताओं का अवमूल्यन होता हो कतई उचित या प्रशंसनीय नहीं है। अतः फैशन व प्रगतिशीलता की आड़ में नग्नता, अश्लीलता व मानसिक कुन्ठाओं के प्रदर्शन की खुली छूट न तो उचित है न शोभनीय है और न ही समाज के स्वस्थ वातावरण के लिए अनुकूल है।

माधुरी शास्त्री व राज चतुर्वेदी का कहना है कि पिछले दो दशकों की ही यह देन है कि नग्नता, वस्त्रहीनता तथा अभद्र अंग प्रदर्शन को सौन्दर्य और आकर्षण का प्रकार या उपाय माना जाने लगा है। सौन्दर्य पहले भी होता था और उसका प्रदर्शन भी किया जाता था किन्तु उसकी शैली और परिभाषा यह थी कि सोलह श्रृंगार करके, उत्कृष्ट वस्त्र पहनकर तथा अपने सौंदर्य को त्वचा के निखार एवं अंग सौष्ठव के द्वारा सुंदरियाँ अपना आकर्षण बिखेरती थी। किसी प्रकार के अन्य कपड़े पहन या नग्न होकर अपनी मांसल देह की अभद्र नुमाईश सौन्दर्य का प्रतिमान कभी नहीं रहा। मगर आज हमारी वेशभूषा पहनावे में प्रदर्शन, दिखावे की बढ़ती प्रवृत्ति स्पष्ट दिखाई दे रही है। शरीर के जिस हिस्से को ढंकना, छुपाए रखना सदियों से सभ्यता, शालीनता का घोतक, परिचायक समझा जाता रहा, उसी भाग को आज खासतौर से दिखाना कतिपय महिलाएँ अपनी स्मार्टनेस का प्रतीक मानती हैं। आज अंग प्रदर्शन को ध्यान में रखकर, वस्त्र पहनने का जो प्रचलन बढ़ता जा रहा है वह किसी भी दृष्टि से न तो उचित है और न ही प्रासंगिक। अतः हम जिस देश, समाज, वातावरण में रहते हैं, हमारी पोशाक उसी के अनुरूप होने चाहिए। हम जब स्वयं को सभ्य, सुसंस्कृत होने का दावा करते है तो फिर हमारे वस्त्र भी शालीन, अभिरुचि के परिचायक होने चाहिए।[58]

कारण :–

- आज की युवतियाँ मानने लगी हैं कि उनकी कोमल देह कोई दबा–ढ़का राज नहीं है बल्कि उनके कैरियर के विकास की मजबूत वस्तु है। जिसका उपयोग उन्हें हर हाल में करना चाहिए।

- कुछ युवतियाँ दूसरों की तरह नकल करके सुन्दर दिखना चाहती है जिसके कारण वह बेझिझक अपनी देह का प्रदर्शन करती है।
- आज की नारी पाश्चात्य से प्रेरित होकर आधुनिकता की ऊँची दौड़ में इस कदर दौड़ रही है कि महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिये कुछ भी करने को, किसी भी सीमा तक जाने को तैयार है।
- आज धन–लिप्सा एवं वैभव की चाह ने कुछ स्त्रियों को इतना पागल बना दिया है कि वे दिग्भ्रमित हो अपने अंग–प्रत्यंगों की प्रदर्शनी लगाने में रंचमात्र भी संकोच नहीं करती है।
- प्रारम्भ से बालक–बालिकाओं को जब छोटे कपड़ों को पहिनने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है तब बच्चे को यह अच्छा लगने लगता है और धीरे–धीरे वह इस प्रकार बनठन कर रहना पसन्द करने लगते है।
- कुछ पुरुष अपने लालच के कारण युवतियों को कठपुतली बनाकर उनसे अच्छा काम करवाने के बजाय उन्हें किसी भी तरह जोर–जबरदस्ती से लोगों के सामने अपनी देह का प्रदर्शन करने पर मजबूर करते है।
- आज वैश्वीकरण, उपभोक्ता संस्कृति तथा पश्चिमी संस्कृति के अंधानुकरण के फलस्वरूप भारतीय परिवेश की जड़ों पर अपसंस्कृति की आंच आ रही है

सुझाव :–

- युवतियाँ सौन्दर्य प्रतियोगिताओं में बढ़–चढ़कर भाग लें लेकिन देशकाल तथा वातावरण का ध्यान रखकर तथा तन–मन पर काबू रखकर ही वे इस ओर बढ़े जिससे वे मात्र प्रदर्शन की वस्तु न बने।
- नारी को पाश्चात्य के अंधे अनुकरण में डूबकर पुरुष के हाथ का खिलौना नहीं बनना है, वस्तु बनकर बाजार में नहीं बिकना वरन् अपनी अस्मिता, तेजस्विता को समझना है।
- नग्नता का यह प्रदर्शन तब तक नहीं थमेगा जब तक स्त्री अपनी देह पर पूर्ण अधिकार की, उसकी रक्षा की शक्ति अपने में विकसित नहीं कर लेती।
- यदि नारी सादा जीवन व्यतीत करने से संतुष्ट हो जायें, आदर्शों की ओर उन्मुख होकर यदि श्रेष्ठ जीवनयापन का संकल्प करें तो निश्चय ही समाज में कुछ सीमा तक अश्लीलता एवं चरित्रहीनता का अंत हो जायेगा।
- ऐसी महिलाएँ जो भौतिकता की चकाचौंध में अन्धी होकर अश्लील कपड़े पहनती है ऐसी नारियों को हमें इस गर्त से बचाने के लिये उनके सामने भारतीय आदर्श नारी की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करनी होगी।

- समय के अनुसार वेशभूषा साज–सज्जा धारण करना चाहिए। परन्तु यह ध्यान देना उचित है कि यह हमारे लिए व समाज के हित में है या नहीं, कहीं समाज में बुराइयाँ व अत्याचार तो नहीं बढेंगे। अगर ऐसा है तो थोड़ा बदलाव लाना ही पड़ेगा जिससे हम व हमारी संस्कृति दोनों सुरक्षित एवं आदर्श बनी रहें। इसके लिए केवल महिलाएँ ही नहीं बल्कि पुरुषों को भी अपनी सोच बदलनी होगी।
- ऐसी परिचर्चाऐं, परिसंवाद, गोष्ठियाँ, लेख, पत्रिकाएँ निकाली जाए अर्थात ऐसी शिक्षा दी जाए जो उन कामुक निगाहों को सभ्य बना सकें। यह शिक्षा युवकों को ही देनी आवश्यक है कि हम उम्र की लड़कियों के साथ स्वस्थ मानसिकता का विकास करे।
- आज आवश्यक्ता है कि अपनी संस्कृति और परम्परा को बनाए रखे। विदेशी सभ्यताओं का अंधानुकरण करने से बचें। संस्कृति, परम्पराएं, सभ्यता को निभाने का दायित्य एक वर्ग पर नहीं हो सकता। सम्पूर्ण समाज उसके प्रति उत्तरदायी होता है।

4.2.4 बदलती संस्कृति का प्रभाव :–

बदलती संस्कृति का प्रभाव से सम्बन्धित समस्या के प्रमुख लेखक एवं लेखिकाओं के नाम निम्न है –

<u>काव्य</u>	<u>लेख</u>
➢ डॉ. सूरज मृदुल–आज की टीवी ➢ बद्री प्रसाद वर्मा 'अनजान'–आजकल कॉलेज में ➢ उमाश्री–भोर अखबारी, दूरदर्शनी शाम ➢ सुगन चन्द जैन 'नलिन'–नवयुग का अफसाना देख ➢ बीना जैन–विघटन की कगार <u>स्थाई स्तंभ</u> ➢ सुमति कुमार जैन–क्या हम अपनी पूर्व संस्कृति में आ पाएँगे? ➢ सुमति कुमार जैन–मेरी बात	➢ डॉ. हरिकृष्ण प्रसाद गुप्त 'अग्रहरी'–भारतीय जीवन पर पाश्चात्य प्रभाव क्यों? ➢ अब्बास खान 'संगदिल'–आधुनिकता की आड़ में सांस्कृतिक मूल्यों को न भूले ➢ मुनि श्री विश्वरत्न सागर–संस्कृति का पतन राष्ट्र के लिए घातक ➢ सुधा गोस्वामी–शिक्षा एवं संस्कार

काव्य में बदलती संस्कृति का प्रभाव :–

डॉ. सूरज मृदुल अपनी कविता **'आज की टीवी'** के माध्यम से कह रहे है कि–

आज की टीवी अपने हुस्न की जाल में,
सभी को अपनी ओर खींच रहा है।

अपनी इस कविता में लेखक कह रहे है कि आज का टीवी अपने विभिन्न कार्यक्रमों के द्वारा बच्चे–बूढ़े, युवक–युवतियाँ सभी को अपनी और आकर्षित कर रहा है। इस टीवी ने आज अपने दर्शकों को पाश्चात्य संस्कृति के रंग में रंग दिया है अर्थात उन्हें पाश्चात्य संस्कृति अपनाने पर मजबूर कर दिया है जिसके कारण वह उस संस्कृति में पढ़कर अपनी शर्म–हया को छोड़कर बेशर्म बनने लगे है। आज यही टीवी सभी के घर–घर में घुसकर अपने अश्लील कार्यक्रमों से भारतीय संस्कृति को नष्ट कर रहा है।[59]

बद्री प्रसाद वर्मा 'अनजान' अपनी कविता **'आज कल कॉलेज में'** के माध्यम से बदलती संस्कृति पर अपने विचार प्रकट करते हुए कह रहे है कि

क्या क्या मजे हैं,
आज कल कॉलेज में।

अपनी इस कविता के माध्यम से लेखक कह रहे है कि आज कल कॉलेज में विद्यार्थियों के कई प्रकार से मजे हो रहे है, आज सभी विद्यार्थी कॉलेज में बन–ठन कर जाते है और अपनी सहपाठी छात्रा से मित्रता कर उनसे प्रेम–मिलाप करते है तथा गले मिलकर अपने प्रेम का रंग जमाते रहते है। इस प्रकार वह विद्यार्थी अपनी संस्कृति को भूलकर मौज मस्ती करते रहते है जिन्हें देखकर ऐसा लगता है कि शायद पश्चिमी देश व वहाँ की संस्कृति यहाँ पर आकर बस गई है।[60]

अपने काव्य **'भोर अखबारी, दूरदर्शनी शाम'** में **उमाश्री** कहती है कि–

भोर अखबारी, दूरदर्शनी शाम,
कौन बूढ़े कक्का से करे राम राम।

अपनी इन पंक्तियों के माध्यम से लेखिका कह रही है कि आज सभी लोगों की सुबह अखबार पढ़ने से और शाम दूरदर्शन देखने से होती है ऐसे में घर के बुजुर्ग बूढ़े काका से राम–राम (नमस्कार) कोन करेगा। इसी प्रकार धीरे–धीरे विलुप्त होती संस्कृति, संस्कारों से कह रही है कि श्रद्धापूर्वक किया जाने वाला नमस्कार पश्चिमी संस्कृति से प्रभावित हो रहा है। इसलिए जनगणमन अपने हिन्दुस्तान से पूछ रहा है कि 'गदर' और 'लगान' जैसी फिल्मों से हमारे नौजवान युवा क्या सिखेंगे। कुछ युवाओं को काम देकर यह पश्चिमी संस्कृति आज घर के मन्दिर में प्रवेश कर रही है। जिसके कारण आज के

युवक–युवतियाँ पंचामृत की जगह रम पी रहे है और रेस्तरा, कल्ब उनके लिये चारों–धाम बन रहे है।[61]

सुगन चन्द जैन 'नलिन' अपनी कविता **'नवयुग का अफसाना देख'** के माध्यम से कह रहे है कि–

वो गुजरा हुआ जमाना देख,
ये बदला हुआ जमाना देख।
नेकी के बदले में बुराई,
ये कलयुग का नज़राना देख।।

अर्थात पहले के जमाने में और आज के जमाने में बहुत अन्तर आ गया है कहते है कि यह युग कलयुग का युग है आज यहाँ पर किसी की सहायता करने के बदले में बुराई ही मिलती है अच्छाई नहीं। अब तो लोगों के बीच मिलना–जुलना जैसे गायब ही हो गया है, अब तो वह यहाँ वहाँ चलते–फिरते ही मिलते है। इस बदलते नवयुग के साथ हमारे रीति–रिवाज भी बदल गये है। जिसके कारण अब घर–परिवार में आपसी मन–मुटाव रहने लगा है तथा वह अलग–अलग रहने लगे है और पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से आज के नवयुवक फैशन करके अपने आप पर गर्व महसूस करने लगे है। इस प्रकार धीरे–धीरे हमारे देश की संस्कृति बदल रही है और विदेशी संस्कृति के प्रभाव में आ रही है।[62]

अपनी कविता **'विघटन की कगार'** में **बीना जैन** कह रही है–

आज क्यों हम अपनी पहचान खोते जा रहे हैं,
भौतिक–वादी चकाचौंध में अपने को उलझा रहें है।

अपनी इन पंक्तियों के माध्यम से लेखिका कह रही है कि आज हम धर्म और आध्यात्मिकता के बन्धनों को तोड़कर, भौतिक–वादी चकाचौंध में अपने को उलझा कर अपनी पहचान खोते जा रहे है। जहाँ न दीन है न ईमान अर्थात सामाजिक मूल्यों को नष्ट कर हिंसा और दान लेने की प्रवृत्ति को अपना रहे है। अतः अब जहाँ भी नजर उठाकर देखते है वहीं दुराचार फैला है चारों तरफ लूट–मार, हत्या, गर्भपात, बलात्कार हो रहे है। इस प्रकार युवा पीढ़ी अपनी संस्कृति से भटक कर पथ–भ्रष्ट हो रही है और अपने रिश्तों की पहचान खोते जा रही है। पहले जो मार्ग दर्शक हुआ करते थे वह अब मूक–दर्शक बन देख रहे है जिसके कारण हम विघटन की कगार पर आगे बढ़ते जा रहे है और अपनी पहचान खोते जा रहे है।[63]

लेखों में बदलती संस्कृति का प्रभाव :–

अपने लेख **'भारतीय जीवन पर पाश्चात्य प्रभाव क्यों?'** में **डॉ. हरिकृष्ण प्रसाद गुप्त 'अग्रहरि'** अपने विचार प्रकट करते हुए कह रहे है कि **जब विभिन्न सभ्यता एवं संस्कृतियाँ आमने–सामने होती हैं अर्थात एक दूसरे के सम्पर्क में आती हैं तब वे दोनों**

सामान्य स्तर पर एक दूसरे का कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य ग्रहण करती हैं। उनमें कुछ दुर्बल और पराजित सभ्यता–संस्कृति हुआ करती है जो सबल और विजेता संस्कृति का अधिक प्रभाव ग्रहण करती है। यह प्रभाव जीवन के सभी क्षेत्रों में, क्या भाषा, क्या विचार, क्या वेश– भूषा सब पर समान रूप से पड़ता है। परिणामस्वरूप विभिन्न जातियाँ विजेता के रंग में पूर्ण रूप से रंग जाती हैं क्योंकि उसकी हाँ में हाँ मिलाये उन्हें अपने अस्तित्व की रक्षा का कोई मार्ग दृष्टिगोचर नहीं होता। इस प्रकार हमारे पुराने संस्कारों पर एक अपरिचित सभ्यता और संस्कृति अपना अधिकार जमा लेती है। जहाँ तक भारतीय जीवन, समाज और सभ्यता, संस्कृति का प्रश्न है इसका एक भी क्षेत्र अपनी सभ्यता–संस्कृति के तत्त्वों के लिए सुरक्षित नहीं दिखायी देता है। भारतीय समाज में अनेक संस्कृतियों के लोगों ने अपनी संख्या बढ़ाने का प्रयास किया। कुछ अंशों तक इन लोगों ने भारतीय संस्कृति को अपना लिया, किन्तु कुछ लोगों ने इसकी संस्कृति को अपनाया नहीं बल्कि अपना अस्तित्व अलग बनाये रखा। इस प्रकार भारतीय जीवन और समाज में विभिन्न रूप परिलक्षित होते हैं। भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि में त्याग, तपस्या, दया और दान, संतोष और शान्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान था। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से भारतीय संस्कृति के इन आधारभूत स्तम्भों का स्थान भोगवाद और भौतिकवाद ने ले लिया है। संस्कृत और हिन्दी की शिक्षा प्रायः समाप्त–सी होती गई है। जनता अधिक से अधिक संख्या में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने में प्रयत्नशील है। पश्चिम ने भारत को जो आधुनिक ज्ञान–विज्ञान दिया है, एक राष्ट्रीयता, एक जातियता की भावना दी है, उन सभी के कारण उसका आभारी होना चाहिए। आधुनिक प्रौद्योगिकी की तकनीकी आदि देकर पश्चिम ने हमें बहुत उपकृत किया है। काम के समय काम, विश्राम के समय विश्राम, अनेक तरह की अन्धधारणाओं के प्रति अस्वीकार, राष्ट्रीय चरित्र और व्यवहार जैसा बहुत कुछ अच्छा है पश्चिम में। किन्तु दुःख है कि भारतीय समाज ने उस अच्छे को अपनाने की तरफ ध्यान नहीं दिया। इस प्रकार की बातें जानकर भी हम अनजान बन रहे हैं। जबकि अप–चेतनाओं, हिंसा, नग्नता, कामुकता, अश्लीलता को अपनाने में हमने शर्म और हया त्याग कर किसी तरह की कंजूसी नहीं दिखायी। अच्छा होता यदि विभिन्न संस्कृतियों के सम्पर्क में आने पर उनकी अच्छी रीति–नीतियाँ अपनायी जाती। परन्तु भारत का यह दुर्भाग्य रहा है कि योजनाबद्ध तरीके से इसे पश्चिम के रंग में रंगने का प्रयास किया गया। यह प्रयास आज भी जारी है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के तत्काल बाद से सत्ता का शासन–सूत्र जिन लोगों के हाथ में था वे अधिकतर विदेशी भाषा और वातावरण में पढ़े थे। उनके ज्ञान का आधार भी विदेशी मन–मस्तिष्क था। उनके सोच–विचार का ढ़ंग भी पश्चिमी था। फलतः भारत देश पश्चिम रंग–ढंग में रंगता गया। आज भारत के पास भारतीय कुछ नहीं, सब कुछ पश्चिम का दिया हुआ हैं। लेकिन जो भी हो–

"कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी" [64]

अब्बास खान 'संगदिल' अपने लेख **'आधुनिकता की आड़ में सांस्कृतिक मूल्यों को न भूलें'** में अपने विचार प्रकट कर कहते है कि समय चक्र तेज गति से घूम रहा है। पुरानी परंपरा, सामाजिक मूल्य, पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही पारिवारिक व्यवस्था अब आधुनिकता में ढ़लते जा रही है। संचार व्यवस्था इलेक्ट्रॉनिक युग, विदेशी संस्कृति की घुसपैठ भारतीय जनजीवन को प्रभावित कर रही है। हम भी चुपचाप इसे देख रहे हैं और ग्रहण कर रहे है। आधुनिकता की आड़ में हम अपनी धरोहर, सांस्कृतिक मूल्यों को जो विरासत में मिली है, को शनैः—शनैः भूलते जा रहे हैं और उनके स्थान पर अमर्यादित बेढंगेपन वाली संस्कृति को बेहिचक ग्रहण करने में लगे हैं। इसके परिणाम भी हमारे सामने हैं। यह आलोचना नहीं बल्कि चिंतन का विषय है। आर्य द्रविड वाली वर्षों पुरानी संस्कृति की नकल दूर देश के लोग करते थे। विदेशी लेखकों ने भी इसकी तारीफ की है। विश्वभर में जमकर भारतीय संस्कृति की तारीफ की जाती थी। किन्तु आज हम अपनी संस्कृति को अज्ञानी बताकर आधुनिकता के नाम पर विदेशी संस्कृति को अपना रहे है। जब अभी ये हाल है तो आने वाली पीढ़ी हमारे नैतिक मूल्यों को भूलकर आधुनिक संस्कृति को अपना लेगी और भारतीय संस्कृति विलुप्त हो जायेगी। आज सरे आम घर, परिवार के बड़े बूढ़ो के सामने अश्लील कपड़े पहनकर घूमना, लड़को से दोस्ती करना, शराब पीना, अपनों से बडों का सम्मान न करना आदि ऐसी कई बातें है जो आधुनिकता के नाम पर अपनाई जा रही हैं। परिणामतः इस झूठी शान के पीछे हत्या, बलात्कार जैसी घटनाएँ आम हो गई हैं। लिहाजा हमें सामाजिक परिवर्तन के साथ जन चेतना एवं मानसिक परिवर्तन भी लाना होगा। हम स्वतंत्र रहे पर अपनी सीमा को याद रखें। यदि आधुनिकता के साथ विरासत में मिले सांस्कृतिक मूल्यों को मिलाकर अपने जीवन में उपयोग करें, तो शायद हम अपनी संस्कृति को बचा पाने में सफल हो जायेंगे। वरन् एक दिन देश में संस्कृति को ढूंढते रह जाएंगे।[65]

मुनिश्री विश्वरत्न सागर जी अपने लेख **'संस्कृति का पतन राष्ट्र के लिए घातक'** में अपने विचारों के माध्यम से कह रहे है कि पहले शास्त्र की रक्षा के लिए हम अपनी जान न्यौछावर कर देते थे, धर्म के लिए प्राण भी देने में हम पीछे नहीं हटते थे। देश की अखंडता के लिए लाखों शहीदों ने अपनी कुर्बानी दे दी। तक्षशिला और नालंदा विश्व के पहले विश्वविद्यालय थे। ये विद्यालय हमारी धरोहर थी। यहाँ पर विदेशों से छात्र पढ़ने आते थे, यहाँ से संस्कार लेकर अपने वतन में उस संस्कार का गुणगान करते थे। अब न तो वो शिक्षा है और ना ही वो संस्कार अब तो शिक्षा का स्वरूप ही बदल गया है। हमें अंग्रेजों से 15 अगस्त को मुक्ति मिल गई लेकिन मन आज भी गुलाम है। आज हम आजादी का जश्न मना रहे है, लेकिन यह जश्न नहीं है यह तो बर्बादी का शंखनाद है। हमारी संस्कृति विश्व में पूजनीय है, हमारी मर्यादा आज अपना विशिष्ट महत्त्व रखती है। लेकिन यह आजादी धर्म को भ्रष्ट कर रही है, हमारी श्रद्धा को नष्ट किया जा रहा है। चारों तरफ धर्म का पतन हो रहा है, विनाश की सुरंग पग—पग

पर बिछी हुई है, ऐसे में यह आजादी किस काम की। फिल्मों और टी.वी. चैनलों के माध्यम से अश्लीलता परोसी जा रही है जो वहाँ दिखाया जा रहा है, वह हमारी संस्कृति के विपरीत है जो कि विदेशी संस्कृति की नकल है और यही हमारी आस्था को खत्म कर रही है। हम संयम खोते जा रहे हैं, हम आज टी.वी. के गुलाम हो गए हैं। मुगलों ने हमारे देश के मंदिरों को तोड़ा, परन्तु हमारी आस्था को नहीं तोड़ पाए। आज भी हमारी आस्था पर प्रहार पर प्रहार किया जा रहा है। संस्कृति को चकनाचूर किया जा रहा है, संयम की बात नहीं हो पा रही है, विदेशों के हालात भारत में निर्मित किए जा रहे हैं। हम भी पशु जीवन जीने की आदत डाल रहे हैं। यह स्थिति धर्म को भ्रष्ट कर रही है, श्रद्धा को नष्ट किया जा रहा है। सारी मर्यादाएँ तोड़ी जा रही है, हमारे संस्कार नष्ट हो रहे हैं, फिर हम संस्कार कैसे दे पाएंगे आने वाली पीढ़ी को। अतः धर्म की रक्षा के लिए, संस्कृति की रक्षा के लिए, आत्मा के कल्याण के लिए हमें मिलकर शंखनाद करना होगा। [66]

सुधा गोस्वामी अपने लेख **'शिक्षा एवं संस्कार'** में अपने विचार रखते हुए कह रही है कि पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति से प्रभावित होता हुआ भारतीय समाज बहुत कुछ परिवर्तित हो चुका है। विदेशी संस्कृति के जाल में उलझकर हम अपना वास्तविक स्वरूप खोते जा रहे हैं। वर्तमान में अंधी नकल ने हमारे समाज को खोखला बनाने में काफी हद तक प्रभावित किया है। इसके द्वारा न केवल हमारे चिंतन, आदर्श व शिक्षा में बदलाव आया है बल्कि हर क्षेत्र में इसके कुप्रभाव से हम ग्रस्त दिखाई देते है। समाज में बढ़ती हिंसा, भ्रष्टाचार, प्रतिदिन घटते जा रहे मानवीय मूल्यों में गिरावट आदि चिंताजनक है। हमारे शिक्षित व संस्कारवान होने के नाम पर एक धब्बा है, कलंक है। आत्मावलोकन द्वारा ही हम इस तथ्य को पहचानने की कोशिश कर सकते हैं कि वास्तव में हम वहीं है जो पुरातन समय में थे या बदल गये हैं? अपने आपको हम किस रंग में रंगना चाहते हैं? हमारी पहचान किस रूप में हो? हम अपने आपको पुनः स्थापित करने के लिए क्या उपाय करें ताकि हमारा समाज एक शिक्षित व स्वस्थ समाज बन सके। योरोपीय सभ्यता तथा धर्म की चकाचौंध ने अंग्रेजी पढ़े–लिखे भारतीयों को जिस प्रकार जकड़ रखा है अपने धर्म तथा संस्कृति से जो विश्वास लोगों का हटा है उसे फिर से समझने की आवश्यकता है। **भगवान बुद्ध, महावीर, स्वामी दयानंद, विवेकानन्द, एनीबेसेण्ट, तिलक** जैसे महापुरुषों ने अपने विचारों से ज्ञान की ज्योति जलाई थी उसे पुनः प्रतिष्ठित कर सकेंगे तथा अपनी भारतीय संस्कृति की रक्षा कर सकने में सक्षम हो सकेंगे। [67]

स्थाई स्तंभ में बदलती संस्कृति का प्रभाव :–

सुमति कुमार जैन स्थाई स्तंभ में अभिव्यक्त अपने लेख **'क्या हम अपनी पूर्व संस्कृति में आ पाएंगे?'** में अपने विचार रखते हुए कह रहे है कि बदलते दौर में यह सोचना कि हम अपनी पुरानी संस्कृति में आ पाएंगे एकदम दकियानुसी सा लगता है। आज जब जीने के तौर तरीके, रहने–सहने के ढंग बिल्कुल बदल गए हैं फिर यह

सोचना कि हम एक न एक दिन अपनी पुरानी संस्कृति में अवश्य आएंगे एक मजाक सा लगता है। जीवन के किसी भी पहलू पर निगाहें दौड़ाए, हर जगह बदला रूप हावी हो रहा है। यह बदलाव किसी विशेष में ही हो ऐसा भी नहीं, हर रूप हर वातावरण में बदलता जा रहा है। आज की युवा पीढ़ी के लोगों में जिस प्रकार तेजी से बदलाव आया है, वह एक चिंतन एवं मनन करने योग्य है। चाहें इसे पुरानी रीति कहिए या भारतीय संस्कृति, संस्कार, लड़कियों को संध्या के बाद घर से बाहर जाने की इजाजत नहीं थी, लेकिन आज तेजी से बदलते समय ने मानव जीवन के मूल्यों को ही पलट के रख दिया है। आज देर रात तक पार्टी से लौटना, रेस्तरां व पब्स में हर रात को कुछ नए पन के साथ जीना उनकी आदत में शुमार हो चुका है। इन संस्कारों की कसौटी पर चिन्तन करें तो आने वाले समय में नारी का भारतीय समाज में क्या स्थान होगा यह कहने की कोई जरुरत नहीं। यह बदलाव कैसे आया, क्यों आया यदि इस पर चिंतन और मनन करें तो पाएंगे कि इसमें परिवार जनों की कमियाँ ही है। यदि हमें हमारी पूर्व संस्कृति में आना है तो हमारे पूर्व संस्कारों की ओर ध्यान देना होगा और जिसका ध्यान विशेष तौर पर परिवारजनों को लेना होगा। उन्हें उन स्थितियों से बचाना होगा जिनमें आज का बच्चा या युवा घुल–मिल गया है।[68]

सुमति कुमार जैन स्थाई स्तंभ में अभिव्यक्त **'मेरी बात'** के माध्यम से कह रहे है कि वर्तमान में भारतीय संस्कृति गौण होती जा रही है, हावी हो रही है–पाश्चात्य सभ्यता जिसके अन्धानुकरण ने हमारी संस्कृति एवं सभ्यता को तार–तार कर दिया है। परिणाम निकला है पिरवार टूट रहे हैं, मातृत्व दूर हो रहा है, परिधान बदल गये हैं सभ्यता क्षीण हो गई है, यहाँ तक की अहम पति–पत्नी के रिश्ते भी टूटते नजर आ रहे हैं। आज संस्कार और संस्कृति मृत्यु अवस्था में पहुंच गये हैं। धन–दौलत और तड़क–भड़क ने युवा वर्ग को अपनी नैतिकता अपनी संस्कृति से दूर कर दिया है। चहुँ ओर छाये आधुनिकता ने हमें कहीं का नहीं छोड़ा है। यदि अब भी समय रहते हम अपनी संस्कृति को बचाना चाहते हैं, जीवित रखना चाहते हैं तो पाश्चात्य तड़क–भड़क से बचना होगा, पूर्व रूप में जीवन जीने की कला को सीखना होगा। पूर्ववर्त धर्म एवं संस्कृति की ओर मुड़ना होगा, मनुष्य स्वयं अपना निर्माता है। वह स्वयं अपने व्यक्तित्व का निर्माण करता है। लेकिन इसके लिये उसे बह्य एवं भौतिकता की चकाचौंध से दूर होना होगा। यह न भूले कि हम जिस संस्कृति को आज अपना रहे हैं उसने हमारे परिवार तोड़े है, परिधानों को नव रूप में मात्र अंग प्रदर्शन में बढ़ाया है, सभ्यता को बदला है, स्वछन्दता ने अनैतिकता को बढ़ावा दिया है। संस्कारों की कमी ने युवा पीढ़ी को अर्थहीन बना दिया है। संस्कार विहिन पनपती दूषित संस्कृति को छोड़ें अन्यथा परिणाम अत्यन्त दुःखद ही होंगे।[69]

पश्चिम की संस्कृति के कारण इस देश में संस्कारहीनता का संकट बढ़ने लगा है। जीवन में सलिलताएँ और पारस्परिक स्नेह स्त्रोत सूखने लगे है। विभिन्न स्थितियों

के कारण उत्पन्न कुटिलताओं से हम, हमारा परिवार, हमारा समाज आदि त्रस्त हो गया है। ऐसे में सत्यम–शिवम–सुन्दरम परिवार व समाज का होना कठिन है। यही कारण है कि हमारी संस्कृति व संस्कारों का उचित रूप से बालक–बालिकाओं में समावेश असंभव सा लगता है। नैतिकता व इंसानियत जैसी बाते प्रायः गौण हो गई है। है तो सिर्फ पश्चिमी नकल, आधुनिकता की हौड़, प्रगतिशीलता की अंधी दौड़ जिसके परिणाम स्वरूप हमारी अपनी संस्कृति को थोथी, रूढ़िवादी परंपरा का नाम देकर मजाक उडाया जा रहा है। हमारा रहन–सहन, रीति–रिवाज, खान–पान, बोल–चाल सभी में पश्चिमीकरण बडी तेजी से हो रहा है और जिसका प्रभाव देश का पहनावा, देश का भोजन, भाषा, शिक्षा, परंपराएँ मान्यताएँ, अध्यात्म आदि सभी पर पड़ा है उस पश्चिमी संकल्पना पर जहाँ न समाज स्थाई है, न परिवार, आए दिन जुते चप्पलों की तरह पति–पत्नी बदल लिये जाते है (अर्थात बच्चों को स्थाई माँ–बाप नहीं मिलते) जहाँ अधिकतर कुंवारी कन्याएँ माँ बन जाती हैं, ऐसी परिस्थिति में हम क्या दे पाएंगे अपने बच्चों को संस्कार? आज इसी होड़ में स्त्रियां फैशन शो में भाग ले रही है, अंग प्रदर्शन करके आस्थाओं की वादियों पर बैठना चाहती है। मिस यूनिवर्स बनकर शोहरत पाना चाहती है। आज के वातावरण में शिक्षाएँ तो बहुत है पर संस्कार रत्ती भर भी नहीं हैं, चर्चा तो बहुत है पर व्यवहार बिल्कुल नहीं है और इन्हीं के बोझ में दबकर संस्कारों का दम निकल रहा है। ऐसे में यदि हम चाहते है कि हमारा बच्चा एक आदर्श नागरिक बने, एक नैतिक इंसान बनें तो उसे सुसंस्कारित बनाना होगा।[70]

कारण :–

- आधुनिकता की आड़ में हम अपनी धरोहर, सांस्कृतिक मूल्यों को जो विरास्त में मिली है, को शनैः–शनैः भूलते जा रहे है और उनके स्थान पर अमर्यादित बेढंगेपन वाली संस्कृति को बेहिचक ग्रहण करने में लगे है।
- धन–दौलत और तड़क–भड़क ने युवा वर्ग को अपनी नैतिकता अपनी संस्कृति से दूर कर दिया है।
- भारत में आज पाश्चात्य संस्कृति ने टेलीविजन व सिनेमा के माध्यम से भारतीय परिवारों पर, बच्चों के मस्तिष्क में, जहर घोलना शुरू कर दिया है।

सुझाव :–

- हमें सामाजिक परिवर्तन के साथ जन चेतना एवं मानसिक परिवर्तन लाना होगा। हम स्वतंत्र रहें पर अपनी सीमा को याद रखे। यदि आधुनिकता के साथ विरासत में मिले सांस्कृतिक मूल्यों को मिलाकर अपने जीवन में उपयोग करें तो शायद हम अपनी संस्कृति को बचा पाने में सफल हो जायेंगे।

- यदि हमें हमारी पूर्व संस्कृति में आना है तो हमारे पूर्व संस्कारों की ओर ध्यान देना होगा और जिसका ध्यान विशेष तौर पर परिवारजनों को लेना होगा। उन्हें उन स्थितियों से बचाना होगा जिनमें आज का बच्चा या युवा घुल–मिल गया है।
- यदि समय रहते हम अपनी संस्कृति को बचाना चाहते हैं, जीवित रखना चाहते हैं तो पाश्चात्य तड़क–भड़क से बचना होगा, पूर्व रूप में जीवन जीने की कला को सीखना होगा। पूर्ववर्त धर्म एवं संस्कृति की ओर मुड़ना होगा।
- भगवान बुद्ध, महावीर, स्वामी दयानंद, विवेकानन्द, एनीबेसेण्ट, तिलक जैसे महापुरुषों ने अपने विचारों से जो ज्ञान की ज्योति जलाई थी उसे पुनः प्रतिष्ठित कर अपनी भारतीय संस्कृति की रक्षा कर सकते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. श्री बालाजी बल्लीराम गरड, डॉ. नरेन्द्र मोहन के साहित्य में राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना, 2015, पृ0 151 http://hdl.handle.net/10603/82741
2. जवाहरलाल सिंह, भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास और युगचेतना, 1999, पृ0 253, http://hdl.handle.net/10603/180042
3. संदीप अवस्थी, कुंवर नारायण के काव्य में सांस्कृतिक चेतना, 2000, पृ0 30 http://hdl.handle.net/10603/122236
4. रामधारी सिंह दिनकर, शुद्ध कविता की खोज, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1987, पृ0 177
5. अज्ञेय, हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य, निबंध संग्रह, अभिनव भारती ग्रन्थमाला, 1967, पृ0 18
6. डॉ. देवराज, साहित्य समीक्षा और संस्कृति बोध, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लि., 1977, पृ0 3
7. वही, पृ0 14
8. डॉ. रमाकान्त दीक्षित, इंसान की औलाद, जगमग दीपज्योति (अंक अप्रेल, 2004) पृ0 85–87
9. डॉ. सरला अग्रवाल, अहसास, जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर–दिसम्बर, 2009) पृ0 77–80
10. शबन शर्मा, फैसला, जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर, 2004) पृ0 47
11. मंजुला गुप्ता, छल, जगमग दीपज्योति (अंक मार्च, 2005) पृ0 27–29
12. नयन कुमार राठी, रिश्तों की बुनियाद, जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2006) पृ0 37–38
13. सुमन सिंह, कैद, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2008) पृ0 77–78
14. रितेन्द्र अग्रवाल, कैनवस पर दूसरा नहीं, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी–मार्च, 2008) पृ0 31–32
15. डॉ. रामअवतार शर्मा 'आलोक', लिव इन रिलेशनशिप और भारतीय संस्कृति, जगमग दीपज्योति (अंक जून, 2010) पृ0 22
16. किरण राजपुरोहित नितिला, समाज का संक्रमण लिव इन रिलेशनशिप, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2009) पृ0 45–46
17. श्रीमती पूनम अरोड़ा, लिव इन रिलेशनशिप के लिए तय नये मानदंड, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2012) पृ0 77

18. लक्ष्मी रूपल, प्रेम विवाह का सच, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2013) पृ0 25–26
19. अब्बास खान 'संगदिल', पुरुष मित्रता का बढ़ता दायरा, जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2004) पृ0 41–42
20. सुषमा अग्रवाल (आयोजिका), प्रेम विवाह : वरदान या अभिशाप, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2005) पृ0 25–38
21. सुकीर्ति भटनागर, संस्कार विहीन, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2006) पृ0 21
22. कमल कपूर, उजालों का सफर, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2010) पृ0 31–32
23. अशफाक कादरी, अभी अंधेरा नहीं हुआ है, जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2012) पृ0 17–18
24. अलका मित्तल, अच्छे संस्कार ही बच्चों का भविष्य, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2012) पृ0 15
25. बालाराम परमार 'हँसमुख', मिल बैठ करें विचार, जगमग दीपज्योति (अंक अप्रेल, 2008) पृ0 34
26. डॉ. अरुणा श्याम, बदलते समय की ढुलकती तस्वीरें, जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2009) पृ0 33
27. प्रो. शामलाल कौशल, संस्कारों का अंतिम संस्कार, जगमग दीपज्योति (अंक अप्रेल, 2008) पृ0 45
28. प्रकाश जी गुन्देचा, भावी पीढ़ी और हम, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2006) पृ0 45
29. महेश बी. शर्मा, आज के बच्चे कुसंस्कारी क्यों? उन्हें सुसंस्कारी कैसे बनायें, जगमग दीपज्योति (अंक जून–जुलाई, 2007) पृ0 18
30. कृष्णा बुरड़, बालक के व्यक्तित्व निर्माण में माँ की भूमिका, जगमग दीपज्योति (अंक जून, 2008) पृ0 18
31. शशिप्रभा शर्मा, समाज सुधरे बच्चे सुधरेंगे, जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2013) पृ0 18
32. कल्पना जैन, संस्कार निर्माण और बाल्यकाल, जगमग दीपज्योति (अंक जून–जुलाई, 2007) पृ0 70
33. कल्पना जैन, कैसे मिलेंगे बच्चों को संस्कार अध्यात्म के, जगमग दीपज्योति (अंक जून, 2008) पृ0 61
34. ठाकुरदास कुल्हारा, माँ–बाप बच्चों में अच्छे संस्कार भरें, जगमग दीपज्योति (अंक अप्रेल, 2008) पृ0 40

35. घनश्याम मेठी, बच्चों को संस्कारवान बनाए, जगमग दीपज्योति (मई–जून, 2009) पृ0 40
36. विश्वशांति टेकड़ीवाल परिवार, अपराध की डगर पर नौनिहाल, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2012) पृ0 24
37. बीना जैन, युवा पीढ़ी भटकाव की अंधेरी गुफा से बाहर निकले, जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर–नवम्बर, 2012) पृ0 26
38. मेधा उपाध्याय, कहाँ गया बच्चों का भोलापन, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2011) पृ0 13–14
39. सुमति कुमार जैन, मेरी बात, जगमग दीपज्योति (अंक जून–जुलाई, 2007) पृ0 12
40. वही, (अंक फरवरी–मार्च, 2008) पृ0 7
41. कृष्णा भटनागर, बच्चों की परवरिश में संयुक्त परिवार की प्रासंगिता, जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर, 2005) पृ0 40
42. महाश्वेता चतुर्वेदी की लेखनी से, जगमग दीपज्योति (अंक जून, 2008) पृ0 8
43. घमंडीलाल अग्रवाल, बच्चों का उत्थान जहाँ हो, ऐसा हिन्दुस्तान बनाएँ!, जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2014) पृ0 9
44. डॉ. कमलेश रानी अग्रवाल, फैशन की नागफनी, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2007) पृ0 55
45. डॉ. ऋषभ पारख, आजकल, जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2009) पृ0 11
46. सुगनचन्द जैन 'नलिन', भारतवर्ष हमारा, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2004) पृ0 10
47. डॉ. श्रीमती शशि प्रभा जैन, वैश्वीकरण के संदर्भ में भारतीय महिलाएँ, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2007) पृ0 34
48. डॉ. विद्यापती जैन, गरिमामय नारी का बदलता रूप : एक प्रश्न चिन्ह?, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2005) पृ0 20–21
49. विश्वप्रताप भारती, भारतीय युवतियों पर पश्चिमी रंग–ढंग का चढ़ता जादू, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2004) पृ0 51–52
50. रितेन्द्र अग्रवाल, वर्तमान नारी : दशा और दिशा, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2005) पृ0 18
51. मालती शर्मा, विज्ञापनों के दुःशासन और द्रौपदियों के चीर, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2008) पृ0 35–36
52. श्रीमती कमलेश वशिष्ठ, दूरदर्शन आखिर क्या दिखाना चाहता है, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2009) पृ0 46

53. कृष्णा भटनागर, विज्ञापनों व फिल्मों की अश्लीलता बढ़ाने में नारी का योगदान कितना?, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2010) पृ0 30
54. अब्बास खान 'संगदिल', अश्लीलता परोस रहे है—क्या टी.वी. चैनल, जगमग दीपज्योति (अंक मार्च, 2005) पृ0 30
55. जोगिंदर पाल 'जिंदर', क्या मनोरंजन उद्योग अपना दायित्व निभा रहा है?, जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2005) पृ0 43—44
56. घनश्याम मेठी, भारतीय परिवारों को पाश्चात्य संस्कृति के झूठे अंधानुकरण से बचायें, जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर—दिसम्बर, 2010) पृ0 52
57. श्रीमती हेमलता उपाध्याय, सवाल सर्वत्र बढ़ती नारी नग्नता और अश्लीलता का, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2006) पृ0 41
58. डॉ. सुषमा शर्मा (आयोजिका), भारतीय परिप्रेक्ष्य में महिलाओं को मनचाहे वस्त्र पहनने की स्वच्छन्दता कितनी उचित, प्रासंगिक और शोभनीय है, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2007) पृ0 39—45
59. डॉ. सूरज मृदुल, आज की टीवी, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2007) पृ0 16
60. बद्री प्रसाद वर्मा 'अनजान', आज कल कॉलेज में, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2004) पृ0 82
61. उमाश्री, भोर अखबारी, दूरदर्शनी शाम, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2004) पृ0 85
62. सुगन चन्द जैन 'नलिन', नवयुग का अफसाना देख, जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर, 2005) पृ0 21
63. बीना जैन, विघटन की कगार, जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2006) पृ0 40
64. डॉ. हरिकृष्ण प्रसाद गुप्त 'अग्रहरी', भातीय जीवन पर पाश्चात्य प्रभाव क्यों?, जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2005) पृ0 35—36
65. अब्बास खान 'संगदिल', आधुनिकता की आड़ में सांस्कृतिक मूल्यों को न भूले, जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2008) पृ0 19
66. मुनि श्री विश्वरत्न सागर, संस्कृति का पतन राष्ट्र के लिए घातक, जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर, 2007) पृ0 08
67. सुधा गोस्वामी, शिक्षा एवं संस्कार, जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2004) पृ0 49—51
68. सुमति कुमार जैन, क्या हम अपनी पूर्व संस्कृति में आ पाएंगे?, जगमग दीपज्योति (अंक मई—जून, 2009) पृ0 07
69. सुमति कुमार जैन, मेरी बात, जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त—सितम्बर, 2008) पृ0 09
70. वही, (अंक जुलाई—अगस्त, 2006) पृ0 09

पंचम् अध्याय

मेरी नजर में अभिव्यक्त
पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

पंचम अध्याय
मेरी नजर में अभिव्यक्त पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

---

5. मेरी नजर में अभिव्यक्त पाठकों की प्रतिक्रियाएँ :–

अलवर (राजस्थान) से प्रकाशित मासिक पत्रिका **'जगमग दीपज्योति'** को निरन्तर **सुमति कुमार जैन जी** के सम्पादन में प्रकाशित होते हुए 32 वर्ष पूर्ण हो गये हैं। किसी भी साहित्यिक पत्रिका के प्रकाशन में ये 32 वर्ष उसके गौरव और लोकप्रियता के पैमाने पर खरे उतरते है। यह ज्ञानवर्धक, मनोरंजनात्मक, प्रभावपूर्ण पत्रिका है। पत्रिका के माध्यम से सभी तरह की सामग्री पढ़ने को मिलती है अर्थात इस पत्रिका में धर्म, दर्शन, अध्यात्म, कविताएँ, लघुकथा, कहानी, आलेख, परिचर्चा आदि साहित्य की सभी विधाएँ समाविष्ट हैं। इसमें लेखों तथा कविताओं को उच्च साहित्यकारों ने प्रस्तुत किया है। इससे सिद्ध होता है कि पत्रिका से उच्चकोटि के लेखक एवं कवि सम्बद्ध है। इनके लेखों में गहनता है, श्रेष्ठता है, उच्चता है। पत्रिका में जहाँ लेख हैं वही साथ–साथ साहित्य समीक्षा, समाचार दर्शन, **'मेरी नजर में'** में पाठकों की प्रतिक्रियाएँ है। जिसमे विभिन्न पाठकों ने पत्रिका के विषय में अपने विचार अभिव्यक्त कर वर्तमान समय में पत्रिका की उपयोगिता को सिद्ध किया है और बताया है कि आज यह पत्रिका किस प्रकार से लोगों में सामाजिक व सांस्कृतिक चेतना जागृत कर अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे रही है। पत्रिका के विषय में कुछ प्रमुख प्रसिद्ध साहित्यकारों के विचार इस प्रकार से है–

पंजीकरण सं0 446

'स्पंदन'

महिला साहित्यिक एवं शैक्षणिक संस्थान

श्रीमती नीलिमा टिक्कू
संस्थापक एवं अध्यक्ष
दूरभाष –0141 2741803
मो0 9829304314
फैक्स नं0 0141 2741906
ईमेल- neelima.tikku16@gmail.com

"जगमग दीपज्योति" मासिक पत्रिका, अलवर

वर्तमान समय में सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के पुनर्जीवन हेतु कटिबद्ध पत्रिका, 'जगमग दीपज्योति' (संपादक श्री सुमति कुमार जैन) की प्रासंगिकता अभिनन्दनीय है। सामाजिक–सांस्कृतिक संक्रमण के दौर में जनमानस के अन्तर्मन में व्याप्त अहंकार व अज्ञान के तम को सत् साहित्य के माध्यम से तिरोहित कर ज्ञान–अध्यात्म के प्रकाश की ज्योति प्रस्फुटित करती पत्रिका बाल–युवा–वृद्ध तीनों पीढ़ियों की मानसिक एवं साहित्यिक क्षुधा को तुष्ट करती हुई उनका चहुमुंखी विकास करने का बीड़ा उठाये हुए संग्रहणीय पत्रिका है। पत्रिका द्वारा समय–समय पर प्रकाशित 'महिला विशेषांक' और उनका महिला संपादक द्वारा अतिथि संपादन, महिलाओं के प्रति संपादक जी की श्रद्धा एवं विश्वास को दर्शाता है साथ ही महिलाओं की रचनात्मकता को उजागर करता हुआ पितृसतात्मकता की सामंतशाही के विचारों को ध्वस्त करता है। पत्रिका की स्तरीय रचनाएँ, जीवन के विविध क्षेत्रों की पडताल करती सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक रचनाएँ सारस्वत रचना धर्मियों का सृजन उत्कृष्ट कोटि का है। 'बाल विशेषांक' 'अध्यात्म विशेषांक' 'दीपावली विशेषांक' आदि सभी विशेषांक सर्वजन हिताय व सर्वधर्म संवर्धन से युक्त वसुधैव कुटुम्बकम की भारतीय परम्परा से ओत–प्रोत होते हैं।

पत्रिका का संपादकीय पढ़कर हम संपादक जी के उच्च विचारों से परिचित होते हैं प्रत्येक संपादकीय मन को झकझोर कर सकारात्मक संदेश देते हुए हमारे ज्ञान के चक्षुओं को खोल जाता है।

मैं गत बीस वर्षों से इस पत्रिका से जुड़ी हुई हूँ पत्रिका की उपयोगिता आज के संदर्भ में बेहद प्रासंगिक रही है कहूँ तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। अपनी सहधर्मिणी स्व. ऊषा जी (पत्नी संपादक श्री सुमति कुमार जैन) की जगमग दीपज्योति मासिक पत्रिका को लगातार प्रकाशित करते रहने की इच्छा को जिस कर्मठता–लगन–तन–मन–धन से पूरा करने के लिए संपादक जी तत्पर रहे हैं मैं उन्हें नमन करती हूँ 'जगमग दीपज्योति' मासिक पत्रिका के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ।

नीलिमा टिक्कू

नीलिमा टिक्कू
संस्थापक–अध्यक्ष
स्पँदन महिला एवं साहित्यिक संस्थान
ई–311, लाल कोठी स्कीम, जयपुर–302015, (राजस्थान)

अध्यक्ष
स्पंदन
महिला साहित्यिक एवं शैक्षणिक संस्थान
जयपुर

संपर्कः– 'स्पंदन' संस्थान ई –311 लाल कोठी स्कीम, जयपुर

रजत जयंती वर्ष 2014 - 2015

राजस्थान लेखिका साहित्य संस्थान

पंजीयन संख्या 369

संस्थापक : श्रीमती नलिनी उपाध्याय

कार्यालय: डी-22, शान्ति पथ, तिलक नगर, जयपुर मो: 9214505363

वीना चौहान
अध्यक्ष
+91 9413966566

सुषमा शर्मा
सचिव
0141 2372523

"जगमग दीप ज्योति"

दिनांक..............................

जगमग दीप ज्योति पत्रिका का प्रारम्भ वर्ष 1985 में हुआ था। तब से यह पत्रिका सांस्कृतिक एवं सामाजिक चेतनाओं का समन्वय कर अपनी अमर प्ररेणा से जन जीवन में प्राण फूंक कर युग को चेतनामय व जागृति का निरन्तर सद् संदेश प्रदान कर रही है। आज 'धर्मयुग' व हिन्दुस्तान साप्ताहिक जैसी बड़ी पत्रिका काल की ग्रास बन गई, तब भी यह पत्रिका अपने ज्ञान के प्रकाश से जनमानस में प्रेम, सौहार्द, सद्भावना, मेल मिलाप, संयम सेवा, सहिष्णुता से आगे बढ़ रही है। भारतीय सभ्यता व सांस्कृति की संवाहक यह पत्रिका भारतीय पर्व, त्यौहार हो या भगवान महावीर स्वामी के अहिंसा के सिद्धान्तों से देश विदेश में अपना परचम फहरा रही है। आज जब संसार बारूद के ढ़ेर पर बैठ विनाश के कगार पर सभ्यता को डूबाने के फेर में संलग्न है। यह पत्रिका संसार के हिंसक विचारों को परिवर्तित करने में सक्षम है।

श्री सुमति कुमार जैन जी स्वयं अहिंसा, प्रेम, विन्रम, उदारता, परोपकार की मूर्ति है। धर्मपरायण सर्व धर्म समभाव, धार्मिक सहिष्णुता और समाज में फैली कुरीतियों, अंधविश्वास, भ्रष्टाचार, वैमनस्य जाति प्रथा, अशिक्षा, संवेग विहीन यांत्रिक जीवन को दूर करने के लिये वर्षो से कटिबद्ध है। नारी सशक्तिकरण की पक्षधर पत्रिका जनवरी में महिलाओं के विशेषांक निकाल कर उन्हें सम्मान प्रदान करती है। अपने उपरोक्त गुणों के कारण की यह पत्रिका समाज में अपने सशक्त कीर्तिमान स्थापित कर रही है।

मैं स्वयं व मेरे संस्थान की सभी लेखिकाऐं निरन्तर इस से जुड़ी हुई है।

वीना चौहान
अध्यक्ष
राजस्थान लेखिका साहित्य संस्थान
जयपुर
मो. 9413966566

वीना चौहान
अध्यक्ष
राजस्थान लेखिका साहित्य संस्थान
92/115, पटेल मार्ग दुर्गापथ, मानसरोवर,
जयपुर-302020 (राज.)

शिवम् : 92/115, पटेल मार्ग, दुर्गा पथ, मानसरोवर, जयपुर - 302020
फोन: 0141 2400378 chouhanveena@gmail.com

जगमग दीपज्योति में अभिव्यक्त सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना

जगमग दीपज्योति का अध्ययन, मनन करने पर यह पत्रिका सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना से ओतप्रोत लगती है। इस पत्रिका को मैं करीब बाईस सालों से नियमित पढ़ती आ रही हूँ। पत्रिका में सारवत्ता, अर्थवत्ता और प्राणवत्ता का त्रिवेणी संगम दृष्टिगत होता है जो इस पत्रिका को तीर्थराज प्रयाग के रूप में रूपायित कर देता है। इस पत्रिका में जीवन के विभिन्न रंगों के फूलों के गुलदस्ते की महक मिलती है। इसमें परिवार, समाज, राष्ट्र के प्रति जो संस्कारों की माला पहनायी जाती है और उसको पहन कर बालक–बालिका, नारी–पुरुष अपनी आत्मा–मस्तिष्क–हृदय में हरियाली सावन की मखमली चादर ओढ़कर गर्वित महसूस करते हैं।

सामाजिक, सांस्कृतिक एवं अहिंसावादी विचारधारा से ओतप्रोत पत्रिका में महापुरुषों की वाणी से दिशाबोध तो होता है, लेकिन हृदय में होने वाली हलचल, मस्तिष्क में अन्धकार को दूर करके नई रोशनी, नई जगमगाहट पैदा होती है, आत्मा को सुकून मिलता है। सच में ऐसा लगता है जीवन का सौन्दर्य जगमगा उठा है। इस पत्रिका का उद्‌देश्य है कि विचारों में सूर्य जैसी किरणों की चमक हो, सागर सम गंभीर चित्रांकन चित्त को शांत करे क्योंकि जीवन नकारात्मक चिन्तन से नहीं चलता वरन् सही ढंग से, सोच से चलता है जिसका अलग ही महत्व है। पत्रिका की रचनाएं मधुकण की भांति रसप्रद हैं, तथा मधुमक्खी के डंक की तरह सचेतनता जगाने में सक्षम हैं। कामधेनु की भांति उपयोगी हैं तो संजीवनी की तरह जीवन प्रदाता हैं। तनाव, टकराव और बिखराव के प्रसंगों में शक्ति देने वाली, जीवन को संवारने वाली है। सभी के लिए निश्चित ही यह पत्रिका पठनीय, मननीय और ग्रहणीय के साथ–साथ जीवन का निर्माण करने वाली हैं।

बाल एवं युवा वर्ग में नवीन संस्कार–मूल्यों को रोपित करने में भी यह पत्रिका अपना विशेष योगदान दे रही है। इस पत्रिका का उद्‌देश्य है कि समाज–परिवार–देश में, बालक अपनी उपयोगिता से राष्ट्र नींव को मजबूत कर सकें, भारत मां को अपने हृदय से लगाये रखे।

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं की अभिव्यक्ति ने जन–जन में सांस्कृतिक मूल्यों संस्कारों से हलचल मचा रखी है। पत्रिका जगमग दीपज्योति रोशनी की ऊर्जा–किरणें देकर सबको मार्गदर्शित कर रही है। आज जब अपसंस्कृति, बाजारवाद, दुष्प्रवृतियों ने मौसम की भांति सभी के बदलते दिमागों में दिलों की दूरियां इतनी बढ़ा दी हैं कि जिन्दगी बियबानों में भटकने को मजबूर हो रही है। भविष्य को सुदृढ़ बनाने में अपनी अहम भूमिका निभा रही है।

जहाँ तक पत्रिका के प्रधान सम्पादक सुमतिकुमारजी की बात है, उनकी मेरी बात, अन्तर्आत्मा को झकझोर देने वाली है। हर बार नये रूप, नई भावना, नई सोच और नए मूल्यों द्वारा प्रेरणा देने वाली होती है। सरल आम इंसान की भाषा शैली में लिखा आलेख बेहद प्रभावित करता है। उनका चिन्तन लगता है कुदरत द्वारा रचित है, उसके गर्भ में छुपे ऐसे शब्दों के मोती हैं जो उनके विचारों को अपने आत्मचिंतन में लिप्त कर देते हैं, जब ही तो आज जहां बड़े–बड़े घराने की पत्रिकाएं बंद हो गयी हैं वहीं यह पत्रिका तैतीस वर्षों से नियमित प्रत्येक माह प्रकाशित हो रही है। नैतिक, सामाजिक, पारिवारिक, सांस्कृतिक और व्यक्तिगत रूप से प्रेरणा देने वाली यह पत्रिका जनमानस का हार बनकर हर वक्त पाठक का मार्गदर्शन करती है।

पत्रिका में अभिव्यक्त सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना पर शोध का विषय लेकर एक अहम भूमिका निभाई जा रही है, जिसके लिए शोधकर्ता श्री श्रवण कुमार खोड़ा एवं निर्देशक डॉ. कुसुम शर्मा हार्दिक बधाई के पात्र हैं जिनके अथक परिश्रम से यह कार्य सुलभ हो रहा है।

–करुणाश्री, 'प्रभु कृपा'–एल.–76, मनु विहार कॉलोनी, हिम्मत नगर, टोंक रोड, जयपुर–302018, राज.

साहित्यकारों को आत्मीयता से प्रत्साहन करने वाले पुरोधा : भाई सुमति कुमार जी जैन

(जैसा मैंने देखा-परखा-जाना)

डॉ बालाराम परमार 'हंसमुख'

प्राचार्य

केंद्रीय विद्यालय, चेनानी जिला उधमपुर (जम्मू -कश्मीर)

भाई सुमति कुमार जी जैन

निश्चयता अटल हिमालय,असंख्य काव्यप्रेमी देवालय,

दीपवंत कीर्तिवंत श्री ज्ञानी,पुण्यवंत वरदवंत कव्यदानी ||

साहित्यकरिता यात्रा पर्वतीय डगर की तरह टेढ़ी-मेढ़ी होने के साथ अत्यंत कठिन भी होती है | किसी भी प्रकार की थोड़ी सी चुक भूल सुधार का मोका ही नहीं देती है | काव्य यात्रा में हुई चुक समाज,संस्कृति और पारम्पर का बेडा गर्ग कर सकती है |यह तथ्य और कथ्य भाई सुमति कुमार जी जैन ने ***जगमग दीप ज्योति*** के प्रकाशन करने से पहले शायद भलीभांति समझी,जानी और फिर अपनी साहित्यक यात्रा प्रारंभ की है | इस प्रकार की उज्जवल पत्रकारिता एवं कोने कोने से लेखक,कवि,विचारक एवं चिन्तक को खोजना,उनकी लेखनी परखना, उसे धार प्रदान करना और इन सब से बढकर साहित्यकारों को पत्रिका से सदैव जोड़े रखना तथा उनके सर्जनात्मक कार्य को सम्पादन-प्रकाशन में यथोचित जगह देना भाई सुमति कुमार जी जैन प्रधान सम्पादक ***जगमग दीप ज्योति*** की विशिष्ठ एवं अनोख़ी विशेषता रही है |साहित्य जगत में उनकी इस छाप के लिए वे न केवल बधाई के पात्र हैं अपितु प्रातःस्मरणीय एवं वन्दनीय हैं |

मैं इस साहित्यिक **संज्ञा** से वर्ष २००० जुलाई से जुड़ा हुआ हूँ | बंगलौर मेंएक संपादक मित्र के घर ***जगमग दीप ज्योति***पत्रिका की प्रति पहली बार मैंने पढ़ी थी | इसका कलेवर देख -पढ़ में बहुत प्रभावित हुआ और सहज रूप में एक रचना भेज दी | अगले अंक में मेरी रचना को ***जगमग दीप ज्योति*** में स्थान मिला |यहाँ प्रबुद्ध वर्ग के संज्ञान में लाना प्रासंगिक होगा कि मैं स्वाभाविक लेखक- कवि चन्तक नहीं था और न ही आज हूँ|भाई सुमति कुमार जी जैन ही हैं जिन्होंने दस बरस तक फोन पर रचना भेजने का आग्रह-अनुग्रह कर कर मुझे और मेरी लेखनी को समाज-राष्ट्र में पहचान दिलवाने में अहम् भूमिका अदा की है |इस सोच के पीछे भाई साहब का उद्देश्य क्या है अथवा क्या रहा होगा यह तो वे ही जाने,लेकिन मेरे जैसे सेकड़ों साहित्यकारों को ***जगमग दीप ज्योति***ने साहित्य जीवी की पहचान दी और अन्य साहित्यिक मंचों पर पहचान भी दिलवाई है|

जगमग दीप ज्योति मासिक पत्रिका का शौध परख विश्लेषण करने पर हम पते हैं कि यह अपने आप में एक परिपूर्ण एवं साहित्यीय चरित्र रखने वाली सच्चे अर्थ में सुलझी हुई पठनीय एवं सग्रहनीय पत्रिका है| इसका कवर पेज तथा सम्म्पादकीयलेख पिछले दो दसक से कभी भी किसी भी स्तर पर विवादित नहीं रहे | इसका मतलब हुआ कि ***'अनुपयुक्त एवं चलताऊ की जगह टकसाली शब्द का प्रयोग करना***

1

संम्पादक का कर्तव्य व धर्म होता है" कहावत हु- ब- हु चरितार्थ हो रही है |कवर और कलेवर दोनों रूप में ***जगमग दीप ज्योति ,*** नामके अनुरूप दीपककी ज्योति बन कर निरतर जगमगा रहीं है | 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का कार्य कर रहीं है | कलेवर और प्रकाशित सामग्री की शौधपरख समीक्षा करने पर हम पाते हैं कि किसी भी रचना में आज तक किसी भी इसे शब्द, वाक्य, अथवा भाव का समावेश नहीं हुआ है जिससे किसी व्यक्ति अथवा धर्म अथवा जाति अथवा सम्प्रदाय अथवा मत अथवा प्रान्त को ठेस पहुँची हो | यह एक पत्रिका तथा उसके संपादक की सबसे बड़ी खूबी और अमिट पहचान होती है |भाई सुमति कुमार जैन ने प्रधान संपादक का धर्म बखूबी निभाया है| जिस प्रकार अनेकता में एकता भारतीय संस्कृति की विशेषता है उसी प्रकार एक पत्रिका में अनेक साहित्यिक विधाओं का सुन्दर समन्वय ***जगमग दीप ज्योति*** की विशेषता है | इस पत्रिका में महिलाओं ,बच्चों,धर्म प्रेमियों,ग़ज़ल प्रेमियों, कहानी में रूचि रखने वालों तथा अन्य साहित्य विधा को पढने में रूचि रखने वालों सब के लिए कुछ न कुछ पठनीय सामग्री का समावेश ***जगमग दीप ज्योति*** के प्रत्येक अंक में देखने को मिलती है|भाई सुमति जैन, प्रधान संपादक के रूप में यहाँ ही नहीं रुकते बल्कि एक कदम आगे बढ़कर वह साहित्य प्रेम धर्म निभाते हुए नव लेखक के मचलते भावों को शब्द-वाणी दे कर शाब्दी के घर-आंगन ऐसा नवाचार प्रयोग कर बैठें की अब देश तो क्या विदेश में भी यह सन्देश दे दिया है कि कोई भी साहित्य प्रेमी हिंदी साहित्य विधा की पंहुच से दूर नहीं रहेगा |इस प्रकार भाई सुमति कुमार जी जैन,***जगमग दीप ज्योति*** मासिक पत्रिका के माध्यम से रचनाकारों का मधु मिलन करवाने में भी सफ़ल होते हैं | अंततः **शतशत कोटिशरत्पर्यन्तम प्रवहतात जगमग दीप ज्योति ||**

==

==

2

जीवन में "जगमग दीपज्योति" की महत्ता

- श्रीमती ज्योति झाबक

मानव मूल्यों की रक्षा के लिए चिंतनीय और बहुमुखी चेष्टा एक बड़ा आश्वासन है कि मूल्यों की भयंकर ढाई के इस अंधे युग में भी हम पराजित मनोभाव के शिकार नहीं हुए हैं। इस भरोसे को जगाये रखने में 'जगमग दीपज्योति' चारित्रिक दृढ़ता से सक्रिय लोक हितैषी कर्म है जो सघन अंधकार में उजास रचकर हताशा में डूबती मानवता, नैतिकता के प्रति आश्वस्त करती है। वर्तमानः मनुष्य की त्रासद नियति के प्रति संवेदनशील, सेवाव्रतियों की तरह आज की सामाजिक विकृति, विड़म्बना से जन्में तमस पर पत्रिका 'जगमग दीपज्योति' की सदैव दृष्टि रही है। जिस विशेष उद्देश्य से यह पत्रिका प्रकाशित की जा रही है, वह है उज्जवल संस्कार के जागरण की संभावना।

समय सदैव परिवर्तनशील रहा है। समय के अनुसार समय ने नई-नई राहों का निर्माण किया है। मगर वे राहें प्रगति की बजाय भटकाव की दिशा में जा रही है। यह भटकाव संतति की संस्कारिक प्रगति में भी बाधक हो गई है, विसंगति का एक ऐसा जाल बुन गया है जिसमें उलझकर संस्कार दम तोड़ रहे हैं, आज घर, परिवार, समाज आधुनिकता का लबादा ओढ़कर भ्रमित हुआ जा रहा है। आधुनिकता के नशे में हमारे रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज सभी को प्रभावित कर रखा है। आज पवित्र संगीत और मंगल गीतों की जगह रॉक-एन-रॉल की धुन पर अश्लील व फूहड गीतों के साथ घर की बालिकाएं एवं घर की बहुओं को नृत्य के नाम पर उत्तेजक मुद्राओं में थिरकने की पराकाष्ठा तक पहुंचा दिया है। आधुनिकता के युग में हम इतने निर्दय और पाषाण हृदय हो गये हैं कि कन्या भ्रूण हत्या, दहेज के लिये वधु देहन, तलाक के नाम पर वैवाहिक सम्बन्ध विच्छेद जैसे कृत्यों में भी नहीं झिझकते। यह अपसंस्कृति हमें कहां ले गई है? और ऐसा ही रहा तो वह दिन दूर नहीं जब हमारी संस्कृति, भारतीय संस्कृति का कहीं नामोनिशान ही नहीं रहेगा। आवश्यकता है ऐसी घड़ी आने से पहले हम स्वयं चेतें। 'जगमग दीपज्योति' इसी चेतनता के उजियारे को आंगन-आंगन तक पहुंचाने की जिम्मेदारी बखूबी से निभाने में अग्रसर है। यदि हम में, समाज में, मानव में चेतनता की एक किरण भी फूटती है तो हम अपने इस प्रयास को सार्थक प्रयास कह सकेंगे।

जगमग दीपज्योति का प्रकाशन अन्तश्चेतना के जागरण के लिए है, जो आज कायर और नपुंसक बन बैठी है। जगमग दीपज्योति हमारी, आपकी, समाज की चेतना को जागृत करने में सुबह के सूरज का काम कर रही है। व्यक्ति के जीवन के क्या मूल्य हैं, उसके पारिवारिक, सामाजिक जीवन के क्या दायित्व हैं इससे सीधे रू-ब-रू करवा रही है।

हमारी आत्मा आधुनिकता के लबादे में नहीं है, वरण् मर्यादा, करूणा में समायी है, आज हम जिस विभ्रम के दौर से गुजर रहे हैं उसमें अलख जगाने की जरूरत है, मर्यादा से जहां संस्कृति का अभ्युदय होगा, वहीं करूणा से समग्र इंसानियत की इबादत होगी। आज इस देश में महाआत्माओं के नाम तो लिए जाते हैं पर उनकी मानता कोई नहीं है।

नैतिकता का पूर्ण पतन हो चुका है, आज हमारे मूल्यों में इतनी गिरावट आ गई है कि भाई-भाई का दुश्मन बन गया है, आज हमारी आंखों में जो चीज मूल्यवान बन गई है वह है "पैसा"। मानवीय जीवन विरोधाभासों से घिर चुका है, धर्म शास्त्रों, मंदिरों, पूजा स्थलों से हमारा जीवन विपरीत धारा ले चुका है। प्रलोभन और प्रदर्शन धर्म के पर्याय बन गये हैं, चरित्र का सम्मान कम हो गया है, आज मनुष्य के हाथ में जीवन का मूल्य, जीवन की दृष्टि नहीं है। इतना स्वार्थ इतनी हिंसा, इतना वैर, वैमनस्य बढ़ा है कि हमारी आंखें चकाचौंध हो गई हैं। आज मनुष्य के पास जीवन है, लेकिन कोमलता, सहजता और सरलता नहीं है।

'जगमग दीपज्योति' का आह्वान है कि हमारा जीवन परमपिता परमात्मा का दिव्य प्रसाद है इसे गुनगुनाते हुए जीएं, इसे दिव्यता प्रदान कर जीएं। हम अपने जीवन में ऐसा व्यवहार करें कि हमारे कारण किसी की आंखों में आंसू न आए अपितु हमारे लिए किसी की आंखों में आंसू आएं। हम इस तरह जिएं कि दिल में उतरें, किसी के दिल से नहीं उतरें। आज के वातावरण में सदाचरण की महत्ती आवश्यकता है। ईश्वर ने जो अनमोल मानव जीवन हमें दिया है, अपने सद्व्यवहार, संयम एवं शुभ कर्मों से सफल बनाएं और अमरत्व तक पहुंचाएं। 'जगमग दीपज्योति' अपने प्रकाशन काल के प्रारम्भ से ज्ञान का दीपक प्रज्वलित कर अंधकार में भटकती हुई आत्मा को यथार्थ ज्ञान का प्रकाश दिखा रही है, लक्ष्य प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त कर रही है, बस आवश्यकता है इसमें डूबकी लगाने की, तो आइये आज आप, हम इसमें डूबकी लगाकर तो देखें और रत्नगर्भा में से जीवन के अमूल्य रत्नों को निकालें।

'जगमग दीपज्योति' के प्रकाशन का ध्येय है कि नैतिकता की पुनर्स्थापना के लिए दृढ़ इच्छा-शक्ति चाहिए, गहरा आत्मविश्वास चाहिए, प्रत्येक के मन में एक-दूसरे के प्रति प्रेम की आवश्यकता है, समर्पण की आवश्यकता है। वास्तव में जहां समर्पण है वहां स्वर्ग है, प्रेम है, सौहार्द है, शांति है, संतोषी स्वर्ग है, जीवन है। चिंतन के व्यक्ति के विकास के द्वार खोलता है, अतः जीवन में शांति एवं सुख की प्राप्ती करनी है तो चिंता को चिंतन में बदलें, यही सफलता का द्वार खोलता है। यदि ऐसा नहीं कर सके तो चिंता तो वह आग है जोकि चिंतन को भी जला डालती है, चिंता ग्रस्त व्यक्ति तो हर समय स्वयं को दुःखी और हताश महसूस करता है तभी तो कहा गया है-

ज्वाला नहीं ज्योति बनकर जलना सीखो,
कांटे नहीं फूल बनकर खिलना सीखो।
जीवन में आने वाली कठिनाइयों से डरो नहीं,
चिंतन करके आगे बढ़ना सीखो।

आज हमारी बौद्धिक क्षमता बेहद बढ़ी है किंतु सही मार्ग दर्शन एवं विचार दृष्टि के अभाव में उसकी चेतना, विखंडित विपन्न और घुटन के दौर से गुजर रही है, जगमग दीपज्योति आत्मिक विकास, मानसिक शांति के लिए प्रयासरत है, यह प्रेरणा देती है। भगवान से जीवन के रूप में मिले इस उपहार को इस वरदान को आनंदोत्सव बनाकर जीएं, अमृत महोत्सव बनाकर जीएं।

जगमग दीपज्योति/ 48

डॉ. सरला अग्रवाल पत्रिका की उपयोगिता पर अपने विचार प्रकट करते हुए कह रही है कि पिछले 32 वर्षों में अपने में समाहित सामग्री से इसने अपने समस्त पाठकों का हृदय जीत लिया है...समाज के अन्धकार को दूर करती, अध्यात्म का प्रकाश फैलाती यह अलवर से राजस्थान, राजस्थान से संपूर्ण देश के राज्यों में तथा इससे भी आगे विदेशों में अपनी सफलता की विजय पताका लहराने लगी है। शायद ही कोई ऐसा विषय होगा जो अब तक दीपज्योति की पकड़ से बचा होगा। लेख, चुनी हुई मार्मिक कहानियाँ, हृदयस्पर्शी कविताएँ, सोचने को विवश करती लघुकथाएं, परिचर्चा, विमर्श और सर्वाधिक उपयोगी अध्यात्म, अहिंसा, कर्तव्यपालन, ध्यान, योग पर श्रद्धेय मुनियों एवं साध्वी माताओं का उपदेशामृत जो हमें ज्ञान, विवेक और आत्मदर्शन की प्रेरणा देता रहा है, इस सुन्दर पठनीय एवं संग्रहणीय अनूठी पत्रिका की उपादेय सामग्री रही है। मेरे पास कई दर्जन पत्रिकाएँ आती हैं, कोई भी इतनी विशाल, सुन्दर इतने सारे रचनाकारों को समाहित किए इतनी नियमितता से प्रकाशित नहीं होती।[6]

डॉ. वी.के. अग्रवाल पत्रिका के सांस्कृतिक महत्त्व को प्रकट करते हुए कह रहे है कि अलवर से प्रकाशित **'जगमग दीपज्योति'** आज पूरे देश में ही नहीं अपितु विदेशों तक अपनी सुरभि से सभी को सुरभित कर रही है, अत्यंत उच्चकोटि का साहित्य, असंप्रदायिक विचारधारा को लेकर पूरे देश में अपने नाम को सार्थक कर रही है। मानसिक शांति व आध्यात्मिक परिपेक्ष जहाँ इसका सबल है वहीं बाल वर्ग, युवा वर्ग एवं वयोवृद्ध सभी वर्ग के पाठकों के लिए यह संजीवनी बनी हुई है इसमें प्रकाशित रचनाओं में प्राचीन एवं अर्वाचीन सांस्कृतिक विचारधारा के समन्वय का परिचय मिलता हैं। सांस्कृतिक मूल्यों के पुनरूत्थान हेतु प्रतिबद्ध पत्रिका अपने उद्देश्य में पूर्णतः सफल हो अपने लेखों द्वारा मानव को सही मार्ग की ओर जाने के लिए प्रेरित करती है।[7]

डॉ. वर्षा पुनवटकर 'बरखा' 'जगमग दीपज्योति' को समाज में फैली भ्रांतियों, कुरीतियों के प्रति सामान्य जन को जागरूक करने वाली मानती है और कहती है कि समाज में फैली भ्रांतियों, कुरीतियों के प्रति सामान्य जन को एक ओर आगाह कर रही है तो दूसरी ओर इन्हीं विषयों पर आधारित लेखों का वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत कर इन भ्रान्तियों को तोड़ने का प्रयास कर रही है। बिना किसी की आस्था को, श्रद्धा को आहद किये बिना बड़ी सहजता एवं सरलता से समझाने का कठिन कार्य यह पत्रिका कर रही है। इसीलिए अन्ध विश्वासों, जर्जर खोखली परम्पराओं, रूढ़ियों को दर किनार कर पूर्वाग्रह, दुराग्रह और हठाग्रह को दूर रखकर तथा प्रेम सौहार्द, त्याग, आदर सेवा, कर्त्तव्य परायणता, समर्पण आदि को अपने में संजोये मदमस्ती नदी–सी अठखेलियाँ करती, अपने आगोश में छोटे–बड़े सभी को लेकर अपने ज्ञान से ओत–प्रोत करती जगमग दीपज्योति आज अपने अस्तित्व का परिचय पा चुकी है।[8]

डॉ. इन्दिरा अग्रवाल का मानना है कि यह पत्रिका वर्तमान परिवेश में ज्ञान के नये आयामों को स्पर्श एवं प्रदर्शित करती विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं की भीड़ में अपना

अलग स्थान रखती है। गीत, गजल, लेख, लघुकथा, कहानी लगभग सभी रचनायें स्तरीय और पाठको के मनोनुकूल संतुष्टि प्रदान करती है। प्रतिमाह उन्हें प्राप्त होने वाली लगभग पचास पत्रिकाओं में जगमग दीपज्योति को प्रथम स्थान प्राप्त है। अन्त में वह अपनी पंक्तियों में कहते है–

दीपक जलाकर ज्ञान का
मिटाती सर्वत्र तमस
होता प्रकाशित कण–कण धरती का
होता प्रक्षालन मस्तिष्क कलुष का
फैलाती सौहार्द्र कराती अमृतपान विविध ज्ञान का
देती इच्छित फल कल्पवृत सम
रखते हैं आशा जलती रहे शमां
सदियों से सदियों तक। [9]

डॉ. सुषमा शर्मा इस पत्रिका को प्रत्येक पाठक के लिए एक नई दिशा का स्त्रोत मानते हुए कहती है कि जगमग दीपज्योति विविध विषय ज्ञान के आलोक को बिखेरती है तथा अध्यात्म दर्शन एवं साहित्य की यह अद्वितीय शोधपरक पत्रिका अवश्य पठनीय है एवं संग्रहणीय भी। मानवता की सजग प्रहरी बनकर यह पत्रिका सांस्कृतिक मूल्यों के पुनर्जीवन को जीवंतता दे रही है। सत्यं–शिवं–सुन्दरं के साथ इस पत्रिका के माध्यम से आध्यात्मिक, नैतिकता, चरित्रता के उज्ज्वल पक्षों को निखार मिलता है। सत्य, अहिंसा, त्याग का संदेश है जो जीवन की सफलता के प्रेरक आधार हैं। प्रत्येक पाठक इसके माध्यम से नई राह के साथ नई दिशा को अपनाएगा यह निश्चित है। साथ ही इसका हर अंक विशेषांक है जो संस्कारों की नींव को मजबूत करता है। [10]

डॉ. इन्दु बाली का कहना है कि इस पत्रिका में स्त्री–पुरुष दोनों के पलों को बखूबी निभाया गया है। यह साहित्य और सामाजिक रूपों में मूल्यवान है। वर्तमान की सभी समस्याओं को छूने की और विश्लेषित करने की महत्त्वपूर्ण और सार्थक है। आज ऐसी ही पत्रिकाओं की आवश्यकता है जो सुदृढ़ राष्ट्र निर्माण के साथ–साथ सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं अध्यात्मिक सामग्री एक स्थान पर दे। [11]

डॉ. रेणु शाह पत्रिका के प्रत्येक विशेषांक को महिलाओं, बच्चों एवं युवाओं के विषय में ज्ञान का केन्द्र मानती है। उनका मानना है कि आज के वैश्वीकरण के युग में जबकि सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है। परिवारों के विघटन के बाद विवाह जैसी संस्था भी सलीब पर टंग गई है। ऐसे में यह पत्रिका अपने हर अंक के साथ पाठकों को परितोष प्रदान कर रही है। नारीत्व के गौरव से लेकर उसकी अस्मिता, स्वास्थ्य और घर–बाहर के दायित्व को लेकर चिंतन सामग्री से आपूरित यह पत्रिका न केवल सामाजिक चेतना जगाने वाली है बल्कि नारी रूपी उस धुरी के आलोक को अक्षुण

रखने वाली पत्रिका भी है। हर वर्ष जनवरी का **'महिला विशेषांक'** महिला सशक्तिकरण रूप में महिला जगत को समर्पित उनके सम्मान को लिए होता है जो जागरूकता के साथ ही मातृत्व गरिमा और उसकी अस्मिता को भी स्वर देता है तो जून का **'बाल विशेषांक'** देश की नयी पौध को संस्कारित करने के साथ ही बदलते परिवेश में रिश्तों–नातों में मधुरता बनाए रखते हुए सामाजिक सम्बन्धों की मिठास को सहेजता है। परिवार के दो मुख्य स्तंभ महिला और बालक जो की भावी नागरिक हैं दोनों ही फूलों को पल्लवित करने का प्रयास दीपज्योति का रहा है। [12]

डॉ. रूप देवदुण पत्रिका के **'बाल विशेषांक'** को बच्चों के बारे में ज्ञान प्राप्त करने के लिए महत्त्वपूर्ण मानते हुए कह रहे है कि जगमग दीपज्योति पत्रिका की एक विशेषता यह है कि इस पत्रिका द्वारा विशेषांक बहुत निकलते है जिससे किसी भी विषय पर ढ़ेर सारी सामग्री पाठकों को मिल जाती है और उस विषय की पाठकों के मस्तिष्क व हृदय पर एक अमिट छाप पड़ जाती है। इस तरह के विशेषांक समाज में एक नया बदलाव लाने की भूमिका भी तय करते हैं। हिन्दी में बाल साहित्य बहुत कम लिखा जा रहा है। इस स्तर पर भी इस विशेषांक का अपना महत्त्व बन जाता है।13 इसी विषय पर **डॉ. महाश्वेता चतुर्वेदी** भी कह रही है कि **'बाल विशेषांक'** की सुपाठ्य सामग्री बाल मन को संस्कारित बनाने पर जोर देती है। एक ओर जहाँ स्तरहीन टी.वी. चेनल देश के भावी कर्णधारों पर कहर बनकर टूट रहे हैं, संस्कारहीनता उत्पन्न करने का संकट निरन्तर बढ़ता जा रहा है, सत्यं–शिवं–सुन्दरम् की कल्पनाएँ स्वप्निल होती जा रही है, नैतिकता तथा मानवता का ह्रास होता जा रहा है, ऐसे समय में बाल मन का उद्बोध करने वाला **'बाल विशेषांक'** दिशाभ्रम की स्थिति में एक क्रांतिकारी पहल है। इस संग्रहणीय अंक की घर–घर में आवश्यकता है। उक्त अंक की बाल–कविताएं, बाल–कहानियां तथा विचारोत्तेजन आलेख सभी के लिए शुभ एवं हित समन्वित है। कुल मिलाकर बाल विशेषांक सुपाठ्य और प्रेरक सामग्री से सम्पन्न बाल मन का उद्बोधन करने में समर्थ है। [14]

डॉ. मुक्ता मानते है कि यह पत्रिका जीवन मू ल्यों का दिग्दर्शन कराकर संसार में फैले हुए अंधकार को दूर कर रही है। इस पर अपने विचारों के माध्यम से वह आगे कह रहे है कि जगमग दीपज्योति पत्रिका भारतीय संस्कृति के विभिन्न आयामों की प्रतिस्थापना के साथ–साथ जीवन मूल्यों का दिग्दर्शन कराने में सफल रही है। यह अपनी दिव्य ज्योति से संसार में फैले हुए अंधकार को दूर नहीं कर रही, बल्कि जन–मानस को आलोकित करने का पुनीत कार्य भी कर रही है। **'साहित्य समाज का दर्पण नहीं दीपक है'** के भाव को पुष्ट करती यह पत्रिका मानसिक और वैचारिक प्रदूषण से मानव मात्र को मुक्ति दिलाने का दायित्व निभा रही है। धर्म, दर्शन, कला, साहित्य, विज्ञान के माध्यम से पत्रिका समाज में सहयोग, सौहार्द्र, प्रेम व शांति की भावनाओं के साथ–साथ विश्व–बंधुत्व के भाव जागृत कर रही है। सर्वजन हिताय साहित्य का मूल

प्रयोजन होता है, जिसका वहन पत्रिका कर रही है। पत्रिका घर–परिवार को खुशनुमा बनाती, रिश्तों की अहमियत का अहसास दिलाती, युवा पीढ़ी में आत्मविश्वास व दृढ़ संकल्प जागृत करती, वृद्धों के प्रति सम्मान भाव दर्शाती है जो मानव के हृदय में दया, करूणा, ममता, स्नेह, सहानुभूति, सहनशीलता के दैवीय गुण संचरित करती है। 15

डॉ. शीला कौशिक पत्रिका को धर्म और संस्कृति को एक साथ जोड़कर चलने वाली मानते हुए कहती है कि **जगमग दीपज्योति** आज के भौतिक और प्रदूषित समाज में एक दीपशिखा बनकर उभरी है जो समाज में विषमता और कुसंस्कृति के फैले अंधकार को मिटाने के लिए कृत संकल्प है। यह पत्रिका धर्म और संस्कृति को एक साथ जोड़कर परस्पर नैतिक मूल्यों की स्थापना कर सद्भावना प्रेम और राष्ट्र एकता की भावना को सुदृढ़ करने का पुनीत कार्य कर रही है। विविध पाठ्य सामग्री से सुसज्जित इस पत्रिका में स्थाई स्तम्भ, कथा, लघुकथा, कविता के अतिरिक्त समसामयिक विषयों पर चर्चा–परिचर्चा, साक्षात्कार व आलेख सम्मिलित होते हैं। पत्रिका समय–समय पर **महिला विशेषांक, बाल विशेषांक, दिपावली विशेषांक, अध्यात्मिक विशेषांक** का रूप धरती है। इस प्रकार पत्रिका सामाजिकता, धार्मिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय ज्ञान बांटती है। जीवन के प्रत्येक पहलू से जुड़ी मनोनुकूल ज्ञानवर्द्धक पठनीय रचनाएं समेटे यह पत्रिका आज राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जनमानस की चहेती और शीर्ष पत्रिका बन गई है। पत्रिका में विशेष रूप से **सुमति कुमार जैन जी** का प्रभावी संपादकीय पढ़कर कोई भी पाठक या रचनाकार उनसे सहज ही आत्मीयता से जुड़ जाता है। साथ ही सुमति जी का प्रयास रहता है कि वो सभी वर्गों को एक मंच से जोड़े इसलिए प्रतिवर्ष वे भव्य साहित्यक सम्मेलन भी आयोजित करवाते हैं। [16]

डॉ. विद्या विनोद गुप्त पत्रिका के महत्त्व को अपनी कविता के माध्यम से प्रस्तुत करती हुई कह रही है–

दिव्यता और भव्यता की पत्रिका है, जगमग दीपज्योति।
साधना और सिद्धि की स्वास्तिका है, जगमग दीपज्योति।।
साहित्य और संस्कृति की सुचेतिका है, जगमग दीपज्योति।
चेतना और चिंतन की स्मृतिका है, जगमग दीपज्योति।।
धर्म और कर्म की अवन्तिका है, जगमग दीपज्योति।
उपासना और आराधना की मणिकर्णिका है, जगमग दीपज्योति।।
संतो और मुनियों की वाणी की सदर्शिका है, जगमग दीपज्योति।
सुमति कुमार जैन जी की सम्पादकी की सवंर्धिका है, जगमग दीपज्योति।। [17]

डॉ. जगदीश गांधी का मानना है कि जगमग दीपज्योति साहित्य, संस्कृति, सभ्यता, सर्वोदय सांस्कृतिक मूल्यों के पुनर्जीवन, अध्यात्म, स्वास्थ्य, पर्यावरण, सामाजिक तथा शैक्षिक विचारों से ओतप्रोत है। जगमग दीपज्योति के माध्यम से समस्त मानव जाति

के कल्याण की भावना से किये जा रहे आपके प्रयास सराहनीय ही नहीं अनुकरणीय हैं। आपका उद्घोष भारतीय संस्कृति की मूल भावना वसुधैव कुटुम्बकम् के अनुकूल है। आपकी पत्रिका यह सीख देती है कि **धर्म एक है, ईश्वर एक है तथा समस्त मानव जाति एक है।** [18]

प्रो. (डॉ.) कुसुम शर्मा का मानना है कि यह पत्रिका मानव कल्याण से जुड़े सभी संकल्पों को पूरा कर भ्रमित समाज को एक नई दिशा दे रही है। इस पर विस्तार से वह कहती है कि **सुमति कुमार जैन जी** के प्रयास से **जगमग दीपज्योति** मानव कल्याण से जुड़े उन सभी संकल्पों को पूरा कर रही है जिसकी आपने तथा समाज ने आशा की थी। आप इस पत्रिका में वर्तमान समाज से संबंधित समस्याओं पर रोशनी तो डालते ही हैं इसके साथ समाधान भी उपल्बध कराते हैं। धर्माचरण के विकास हेतु अनेक लेख एवं धार्मिक धारावाहिक भी प्रकाशित किए जाते हैं। यह एक पुण्य कर्म है। नारी साहित्यकारों को प्रोत्साहित करना, कुंठित आत्माओं को मझधार से निकालकर किनारा दिखाना तथा विभिन्न विधाओं के लेखन द्वारा पाठकों की ज्ञान पिपासा शांत करना एक उच्च कोटि का कार्य है। अतः संक्षेप में मैं कहूंगी कि आज के बड़ते साधनों, इलेक्ट्रोनिक मीडिया का बढ़ता प्रभाव, पाश्चात्य संस्कृति का अत्यधिक प्रचलन भारतीय संस्कृति को विकृति की ओर ले जा रहा है जिसके परिणामस्वरूप अव्यवहारिकता, अमानवीयता, अश्लीलता आदि में दिन–प्रतिदिन वृद्धि हो रही है। इस स्थिति में समाज कल्याण के इच्छार्थी इस पत्रिका द्वारा ऐसे लेख, कहानी, कविता आदि प्रकाशित करवा कर भ्रमित समाज को एक नई दिशा दे रहे है। [19]

डॉ. आशा मेहता इस पत्रिका को पाठकों के लिए ज्ञान का प्रकाश देने वाली मानते हुए कहती है कि सही मायने में जगमग दीपज्योति बेमिसाल है क्योंकि इसने सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक जागरण की मशाल अपने हाथ में ली है। जगमग दीपज्योति के वर्ष भर के अनेक विशेषांकों के माध्यम से परिवार के हर सदस्य को चिन्तन–मनन की प्रेरणा मिलती है। ज्ञानवर्द्धक लेखों के माध्यम से जहाँ ज्ञान का प्रकाश मिलता है, वहीं कहानी, गीतों, कविताओं, मुक्तकों व अन्य सामग्री के द्वारा मनोरंजन के साथ–साथ प्रेरणा भी मिलती है। [20]

डॉ. शशि मंगल का कहना है कि जगमग दीपज्योति पत्रिका यथा नाम तथा गुण पत्रिका है। जैसे दीप निष्पक्ष भाव से सभी को प्रकाश देता है इसी प्रकार यह पत्रिका बाल, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष तथा ग्रामीण–शहरी एवं सम्पन्न व निर्धन सभी के लिए अपना प्रकाश देती है, प्रकाशित होती है। स्थानगत दूरियों को भी यह काफी कुछ हद तक पार कर चुकी है। कहने का आशय यह है कि यह सकारात्मक वैचारिक सोच का प्रचार–प्रसार अपनी पूरी दृढ़ता और आत्मविश्वास से प्रसारित करती है। इस पत्रिका का उद्देश्य मात्र स्वातः सुखाय या अर्थोपार्जन नहीं वरन् इसका प्रमुख उद्देश्य मानव जाति को एक सकारात्मक तथा कल्याणकारी धरोहर सौंपना है वह भी भारी भरकम तरीके से। [21]

रमेश शर्मा का मानना है कि **जगमग दीपज्योति** पत्रिका किसी विशेष समुदाय को न लेकर सभी समुदायों व विचार धारा को साथ लेकर निकल रही है। वह कहते है कि यह पत्रिका सांस्कृतिक मूल्यों के पुनर्जीवन की जीवंत मासिकी है। इसमें साहित्य की विभिन्न रचनाओं के साथ आध्यात्मिकता के लेखों का प्रकाशन होता है। पूज्य आचार्य, मुनिराजों, साध्वियों आदि के लेखों का प्रकाशन मानव को सही मार्ग की ओर जाने के लिए प्रेरित करता है। जो पत्रिका के कुशल संपादन की विशेषता को जाहिर करता है। आज के युग में अधिकतर पत्र–पत्रिकाऐं विशेष समुदाय या विशेष वर्ग से जुड़ी हुई हैं। ऐसे में जगमग दीपज्योति पत्रिका इन सब बातों से दूर होकर समदृष्टि व विचार धारा को लेकर प्रकाशित की जा रही है। पत्रिका ने 32 वर्ष की जो लम्बी यात्रा तय की है वह हरेक के बसकी बात नहीं है। आज बड़ी–बड़ी पत्रिकाएँ भी इतनी लम्बी अवधि नहीं निकाल पाती है। यह भी अपने आप में पत्रिका की एक विशेषता है। [22]

तारूनि कारी के अनुसार **जगमग दीपज्योति** पत्रिका में प्राचीन एवं अर्वाचीन सांस्कृतिक विचार धारा के समन्वय का परिचय मिलता है। इस पत्रिका की उपयोगिता पर वह आगे कहते है कि जगमग दीपज्योति के सभी अंक अत्यंत उत्कृष्ट कोठी के साहित्य के परिचायक हैं। इस पत्रिका में बाल वर्ग, युवा वर्ग एवं वयोवृद्ध सभी वर्ग के पाठकों हेतु श्रेष्ठ पठनीय सामग्री उपलब्ध है। इसमें प्रकाशित रचनाओं में प्राचीन एवं अर्वाचीन सांस्कृतिक विचारधारा के समन्वय का परिचय मिलता है जो आज के युग की महती आवश्यकता है। [23]

गीता जैन का कहना है कि आज जगमग दीपज्योति पत्रिका भारतीय संस्कृति के संरक्षण में अपना महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व निभा रही है। इस पर विस्तार से वह कहती है कि भारतीय संस्कृति एक अमूल्य धरोहर है जिसका संरक्षण करने मे साहित्य का विशेष योगदान और उत्तरदायित्व रहा है। यह पत्रिका इस उत्तरदायित्व को बहुत अच्छी तरह निभा रही है। भौतिकता की अंधी दौड़ में जहाँ बहुत–सी पत्रिकाएँ अश्लीलता या साम्प्रदायवाद को बढ़ावा दे रही हैं, वहाँ यह पत्रिका एक दीपज्योति के समान नैतिक मूल्यों को स्थापित करने का प्रयास कर रही है। सही मायनों में यह पत्रिका ज्ञान प्रकाश फैलाकर अपना नाम सार्थक कर रही है। इसके सब लेख, कथा साहित्य, काव्य संग्रह इत्यादि पठनीय और मननीय हैं। हर अंक के सम्पादकीय आदरणीय **सुमति जैन जी** की **'मेरी बात'** में सशक्त लेखनी द्वारा लिखे हुए विचारों को पढ़कर पता चलता है कि वे एक स्वस्थ और सशक्त समाज की रचना में प्रयासरत हैं। [24]

रितेन्द्र अग्रवाल के विचार में यह पत्रिका हमारी रूढ़ियों से लड़ कर, दुनिया के बारे में बताती हुई, एक नई लौ जलाकर जन चेतना जगा रही है। उनका इस विषय में कहना है कि आजकल जिस तरह से पत्रिकाएँ काल के गर्त में समा रही हैं देखकर लगता है, भ्रम टूट रहा है कि और कुछ नहीं बस माली की लापरवाही है। वर्ना पत्रिका दीपज्योति का जीवन्त उदाहरण सामने है। आत्ममंथन करती, भोलेपन से सीधे सच्चे

आचरण के साथ नई लौ जलाती, दुनिया के बारे में बताती नयन चक्षु खोल रही है, धर्म, ज्ञान, नारी, बाल सभी का ध्यान रख रही है। हमारी रूढ़ियों से लड़ रही है, जन चेतना जगा रही हैं। उससे भी ऊपर **'मेरी बात'** के अंतर्गत जो नयी–नयी परन्तु ज्ञानपरक बातें हमारे पूज्य **सुमति कुमार जी जैन** बताते हैं सर्वोत्तम है यही वह पक्ष है जो पत्रिका में चार चाँद लगा रहा है। [25]

रूपनारायण काबरा के मतानुसार यह पत्रिका जीवन को सार्थक रूप से जीने का दिशा बोध देती हुई प्रकाशित हो रही है। इसीलिए वह कहते है कि दीपज्योति सांस्कृतिक जागरण, नैतिक निष्ठा, धर्म प्रेरणा एवं जीवन मूल्यों पर केन्द्रित रहते हुए समाज को चेतन करते हुए साहित्य जगत की भी प्रशंसनीय सेवा को समर्पित है। जीवन को सार्थक रूप से जीने का दिशा बोध देती रचनाएं जीवनोपयोगी हैं। सर्वधर्म–समभाव के दर्शन से भी पत्रिका अभिप्रेरित हैं तभी तो विभिन्न धर्मों, मत–मतांतरों की सौरभ से भी पत्रिका सुवासित है। रचनाओं की विविधता, लघुकथाएँ, छोटी–छोटी संदेशसंपूरित कविताएँ एवं प्रेरक प्रसंग पठनीय हैं। [26]

श्रीमती रेणु आशीष दुबे अपनी कविता के माध्यम से जगमग दीपज्योति की विभिन्न प्रकार की उपयोगिताओं पर प्रकाश डालते हुए कह रही है–

हर ओर दीपज्योति की जगमग बिखरी धरा पर,
देखना हो तो देखिये जगमग दीपज्योति।
यात्रा में करना हो साथ किसी का बेहतर,
तो साथ कीजिये बेशक जगमग दीपज्योति।
सांस्कृतिक मूल्यों के पुनर्जीवन की जीवन्त मासिकी,
पढ़ना हो तो पढ़िये सभी जगमग दीपज्योति।
श्रद्धा, भक्ति, धर्म समाजसेवा, साहित्य को समर्पित,
हर अंकों से करनी बात तो कीजिये जगमग दीपज्योति।
उषा जी की लाड़ली, उन्हीं के सामने पली–बढ़ी,
सुमति जी के मनन चिन्तन सजी, जगमग दीपज्योति।
गीत, काव्यगंगा में यदि चाहते हो स्नान करना,
तो बेशक स्नानरत रहें, जगमग दीपज्योति।
लेख–कथा, महिला जगत, बाल संसार और दर्शन,
इन सभी से करना साक्षात्कार, करे जगमग दीपज्योति।
उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम देश और विदेश में,
सभी ओर छाती जा रही घटाओं सी जगमग दीपज्योति।
जगमगाने लगा है पृष्ठ दर पृष्ठ इसकी जगमगाहट से,
हटने लगा है अंधकार जली जब से जगमग दीपज्योति। [27]

बी.एन. मुदगिल का मानना है कि आज पश्चिम के लुभावने झरोखों से दिग्भ्रमित हो रहे युवाओं को सही पथ पर लाने में यह पत्रिका अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। आगे वह कहते है कि जगमग दीपज्योति निर्विवाद रूप से सांस्कृतिक मूल्यों के पुनर्जीवन की जीवन्त एक ऐसी मासिकी की साकार प्रतिमा है जो प्राचीन भारतीय सभ्यता का सफलतापूर्वक प्रतिनिधित्व करती है। आज पश्चिम के लुभावने झरोखों से आधुनिक विज्ञान की आकर्षक आंधी के जो भ्रामक झोंके भारत के प्रांगण में आकर हमारे देश के अधिकांश युवकों को हमारी सीयत तथा संस्कृति से विमुख कर रहे हैं और वे पाश्चात्य प्रगति की चकाचौंध में आँख मूंद कर कृत्रिम आधुनिकता ओढ़ कर स्वयं को प्रगतिशील कहे जाने का मिथ्या दम भरने लगे है, उनके लिए निश्चय ही जगमग दीपज्योति एक प्रकाश स्तम्भ का काम कर सकती है। [28]

नरेश जैन का कहना है कि यह पत्रिका हमें सांस्कृतिक रीति–रिवाजों, त्यौहारों से जोड़ती है तथा हमें अहिंसा के मार्ग पर चलना सिखाती है। आगे विस्तार पुर्वक वह कहते है कि जगमग दीपज्योति ऐसी पत्रिका है जो समाज के हर वर्ग, बालक, युवा, महिला, पुरुष, बूढ़े, जवान सभी का ख्याल किये हैं। आज जहाँ हम सांस्कृतिक रीति–रिवाजों, त्यौहारों, संस्कारों को भूलते जा रहे हैं, तो वहीं पत्रिका हमें इससे जोड़ती है। आज हर तरफ दहशत और युद्ध आतंकवाद का वातावरण है। हर इन्सान हिंसा पर उतारू है, ऐसे समय में जगमग दीपज्योति हमें अहिंसा का पाठ पढ़ाती है। अहिंसा के मार्ग पर चलना सिखाती है। आज भौतिकता की चकाचौंध में हम पथ–भ्रष्ट होते जा रहे हैं। हमारी संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव हैं। ऐसी परिस्थितियों में युवा–पीढ़ी के मार्गदर्शन के लिए व सामाजिक विघटन को रोकने के लिए आज जगमग दीपज्योति से हर पाठक, लेखक अपने को इससे गहराई से जुड़ा पाता हैं। [29]

नथमल मेहता जगमग दीपज्योति पत्रिका के विभिन्न रूपों को प्रदर्शित कर समाज में उसकी उपयोगिता व आवश्यकता को अपनी कविता के माध्यम से प्रस्तुत करते हुए कह रहे है–

दीप से ज्योति निकलती है,
ज्योति से रोशनी निकलती है।
लेकिन दीपज्योति से ऐसी खुशबू निकलती है,
जो महकाती मानव जीवन को,
और मन की मलिनता निकालती है।
कई सुन्दर बातें इसमें छपती,
संत–संतियों की वाणी इससे बहती।
उज्ज्वल चरित्र का संदेश सबको देती,
भाइचारे से रहने का उपदेश हमको देती।
सभी सम्प्रदायों के समाचार इसमें आते,

राम, कृष्ण, महावीर और बुद्ध के जीवन की बातें।
रोग भगाए! योग सिखाए! और शरीर को सुन्दर बनाए,
आता है वो सब इस पत्रिका में जो सबके मन को भाए।
परिवार और समाज का ये सदा भला करती,
शील, संस्कार, लज्जा जैसे गुण नारी में भरती।
समाज को ये हरदम नई दिशा दिखाती,
कुरीतियां तोड़ने का ये हौंसला दिलाती।
सुन्दर, सुलेख और सुरेख है इसकी छपाई,
ढूंढ़ने से भी कहिं कोई त्रुटि नहीं पाई।
मिटाती है ये मानव मन की खाई,
ऐसी सुन्दर पत्रिका हमको बहुत ही भायी।
ऐसी दीपज्योति का हम दिल से सम्मान करते हैं,
फैले ख्याति खुशबू इसकी ये सुगंध का महासागर बने,
जन जन की प्रतिनिधि बनकर ये सच्चा महामानव बने।[30]

तारा लक्ष्मण गहलोत का मानना है कि जगमग दीपज्योति पत्रिका महिलाओं से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं को उजागर कर उनके समाधान निकालने में समाज की सहायता करती है। इस पर वह कह रहे है कि मैंने कई महिला पत्रिकाएँ पढ़ी–देखी, परन्तु महिला जीवन के बहुआयामी पक्षों पर सामग्री की विशाल व्यापकता, निर्भीक, निष्पक्ष विश्लेषण नारी जीवन के इन्द्रधनुषी रंगों की बिखरती निराली छटा, समस्याओं बाल विवाह, कन्या भ्रूण हत्या, दहेज प्रथा आदि के साथ ही स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ और उनका समाधान सभी पक्षों पर संपूर्ण रूप से पूर्ण प्रकाश डाला गया है, यह जगमग दीपज्योति में ही देखा है। ऐसी सुन्दर, संपूर्ण, बहुआयामी पत्रिका मैंने पहले कभी नहीं पढ़ी है। महिला के संपूर्ण जीवन के विविध आयामों को समेटती यह पत्रिका अत्यंत ही ज्ञानवर्द्धक, सूचनादायक, तथ्यात्मक व गवेषणात्मक विश्लेषण से भरपूर संग्रहणीय है।[31]

करूणा श्री के विचार से यह पत्रिका बुराइयों के अंधकार को मिटाकर भौतिकवादी युग में सही मार्ग का दर्शन कराती है। अपने विचारों से वह आगे कहती है कि संकीर्णता भेदभाव से दूर और उदारता–विवेक–सदाचार की भावना के द्वारा जगमग दीपज्योति ने आज तक अपनी अलग छवि को बनाये रखा है। यह पत्रिका सामाजिक, धार्मिक विषयों को बहुत सुंदर ढंग से प्रस्तुत करती है। लोगों के मस्तिष्क में अमिट छाप छोड़ती है। बुराइयों के अंधकार को मिटाने का भी सार्थक प्रयास करती है। भौतिकवादी युग में सही मार्ग का दर्शन कराती है। सच तो यह है कि धरा पर अद्‌भुत काम कर रही है। यह पत्रिका मानसिक और वैचारिक प्रदूषण को दूर करके आत्म ज्योति में रोशनी पैदा करती है साथ ही साहित्यक पत्रिका को लगातार छापना भी एक विशेष उपलब्धि है। जो बहुत कम पत्रिकाओं में देखने को मिलती है।[32]

साध्वी भारती श्री जी एवं साध्वी नन्दा जी पत्रिका के प्रत्येक अक्षर को विभिन्न अर्थो में परिभाषित करते हुए कहती है कि जगमग दीपज्योति आत्मा की ज्योति को जागृत करने के लिए एक अनोखी पत्रिका है जैसे दीपावली के दिनों में सभी लोग घर का कचरा निकाल कर घर की सफाई करके अपने घरों को दीपमालाओं से सुसज्जित करते हैं ठीक उसी प्रकार जगमग दीपज्योति पत्रिका भी आत्मा के मैल को साफ करने के लिए, आत्मा को ज्योर्तिमय बनाने के लिए एक सर्वश्रेष्ठ पत्रिका है।

ज–ज का अर्थ है जागृति लाना।
ग–ग का अर्थ है गरिमा को बढ़ाना।
म–म से तात्पर्य है मनन कराने में सहायक बनाना।
ग–ग से तात्पर्य है गगन के समान अनन्त आत्मिक गुणों का विकास करना।
दी–दी का अर्थ है दीपक की भांति सबको प्रकाशवान करना।
प–प का अर्थ है पतंग की भांति दूर गगन तक फैलना।
ज–ज अर्थात जगत की दुविधाओं को मिटा कर मोक्ष मार्ग में सहायक बनना।
य–य यानि यति धर्म की आराधना के लिए प्रेरित करना।
ओ–ओ का अर्थ है स्व के साथ औरों का भी कल्याण करना।
ति–ति का अर्थ है अनादि काल से मिथ्यात्व तिमिर को हटाकर सम्यक दर्शन के प्रकाश से आत्मा को प्रकाशित करना।

जगमग दीपज्योति का यह विशाल अर्थ आत्मा को निरन्तर उन स्थानों की श्रेणी पर चढ़ाते–चढ़ाते सहयोगी अवस्था से अयोगी अवस्था तक पहुंचा कर सिद्ध गति को प्राप्त करने में समर्थ है। [33]

करूणा श्रीवास्तव के मतानुसार इस पत्रिका के माध्यम से सभी विषयों पर पढ़ने को मिलता है। इसीलिए वह कहती है कि बड़े लेखक हो या चाहे मध्यम–चाहे निम्न सबकी अपनी शैली, अन्दाज है। यह पत्रिका आत्म जागृति वाली पत्रिका है। दान मर्म की मौलिकता है तो अवतारों का इतिहास। परिचर्चाओं के माध्यम से समाज में फैलने वाले अप्रिय विचारों को सुलझाने वाली, समस्याओं का निदान करने वाली स्वस्थ पत्रिका है। भविष्य में नई सोच–विचार–चिन्तन प्रदान करने वाली जगमग दीपज्योति सदैव आगे बढ़ती रहे और नया रूप लेकर आगे बढ़ती रहे यही कामना है। [34]

बीना जैन का कहना है कि यह पत्रिका सामाजिक–विघटन व कुंठाओं को दूर कर निरन्तर ज्ञान का आलोक फैला रही है। उनके अनुसार इस पत्रिका में धर्म, दर्शन, अध्यात्म, कविताएं, लघुकथा, कहानी, क्षणिकाएं, परिचर्चा, साहित्य की सभी विधाएं समाविष्ट हैं। संतों की मधुरवाणी, प्रवचन, अध्यात्म–संदेश व सुविचारों से सुवासित सुगंध दूर–दूर तक फैल रही है। सामाजिक–विघटन व कुंठाओं को दूर करने के लिए पत्रिका निरंतर ज्ञान का आलोक फैला कर हमारा मार्ग प्रशस्त कर रही है। भारतीय संस्कृति की गरिमा आज खंडित हो रही है। आतंक रूपी दानव समाज में अराजकता फैला रहा है। नारी आज हर जगह असुरक्षित है। ऐसे में यह पत्रिका नैतिक, सामाजिक मूल्यों को जागृत कर नई दिशा दिखा रही है। [35]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. नीलिमा टिक्कू, पत्र, 2018
2. वीना चौहान, पत्र, 2018
3. करुणाश्री 'प्रभु कृपा', पत्र, 2018
4. डॉ. बालाराम परमार 'हंसमुख', पत्र, 2018
5. श्रीमती ज्योति झाबक, जीवन में जगमग दीपज्योति की महत्ता, जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर–दिसम्बर, 2010) पृ0 48
6. डॉ. सरला अग्रवाल, मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर, 2005) पृ0 95–96
7. डॉ. वी.के. अग्रवाल, मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर, 2005) पृ0 85
8. डॉ. वर्षा पुनवटकर 'बरखा', मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर, 2005) पृ0 96–97
9. डॉ. इन्दिरा अग्रवाल, मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर, 2004) पृ0 94
10. डॉ. सुषमा शर्मा, मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2007) पृ0 60
11. डॉ. इन्दु बाली, मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक जून–जुलाई, 2007) पृ0 85
12. डॉ. रेणु शाह, मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2009) पृ0 47–48
13. डॉ. रूप देवगुण, मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2009) पृ0 35
14. डॉ. महाश्वेता चतुर्वेदी, मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2009) पृ0 36
15. डॉ. मुक्ता, मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2010) पृ0 53
16. डॉ. शीला कौशिक, मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर–दिसम्बर, 2010) पृ0 65–66
17. डॉ. विद्या विनोद गुप्त, मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त, 2011) पृ0 35
18. डॉ. जगदीश गांधी, मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2012) पृ0 54
19. प्रो. (डॉ.) कुसुम शर्मा, मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर–नवम्बर, 2013) पृ0 63
20. डॉ. आशा मेहता, मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर–नवम्बर, 2014) पृ0 51
21. डॉ. शशि मंगल, मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर–नवम्बर, 2014) पृ0 54

22. रमेश शर्मा, मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2004) पृ0 62
23. तारूनि कारी, मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2004) पृ0 62
24. गीता जैन, मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर, 2005) पृ0 92–93
25. रितेन्द्र अग्रवाल, मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक अप्रेल, 2005) पृ0 94
26. रूपनारायण काबरा, मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2005) पृ0 49
27. श्रीमती रेणु आशीष दुबे, मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2006) पृ0 95
28. बी.एन. मुदगिल, मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2006) पृ0 64
29. नरेश जैन, मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर, 2006) पृ0 64
30. नथमल मेहता, मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक मार्च, 2009) पृ0 39
31. तारा लक्ष्मण गहलोत, मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2010) पृ0 55
32. करूणा श्री, मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर–दिसम्बर, 2010) पृ0 64
33. साध्वी भारती श्री जी एवं साध्वी नन्दा जी, मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई–अगस्त, 2012) पृ0 51
34. करूणा श्रीवास्तव, मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2012) पृ0 41
35. बीना जैन, मेरी नजर में, जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2013–जनवरी, 2014) पृ0 73

षष्ठम् अध्याय

उपसंहार

षष्ठम् अध्याय

उपसंहार

हिन्दी कहानी, लेख, काव्य–साहित्य अन्य साहित्यांगो की अपेक्षा अधिक विकासोन्मुख, गतिशील एवं प्रभावशाली तथा लोकप्रिय होते हैं। वार्षिक, त्रैमासिक, मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक पत्र–पत्रिकाओं के नियमित प्रकाशन ने आधुनिक हिन्दी साहित्य के आरम्भ से ही भाषा और साहित्य के विकास में बहुत अधिक योगदान दिया है। लघु पत्रिकाओं के बहुआयामी और बहुरंगी सफर ने बीसवीं शताब्दी में हिन्दी साहित्य के हर उतार चढ़ाव को समेटा और यह क्रम आज भी क्रियाशील है। स्वतंत्रता के पश्चात हिन्दी कहानी, कविता, लेख, निबंध के विकास को केन्द्र में रखकर अनेक महत्त्वपूर्ण पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ, **'जगमग दीपज्योति'** उन महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओं में से एक है, जिसमें वैविध्यपूर्ण, कलात्मक, रचनात्मक और गम्भीर चिन्तन–पूर्ण कहानी, लेख, काव्य–साहित्य का प्रकाशन हुआ। **'जगमग दीपज्योति'** पत्रिका से अनेक उच्च कोटि के विद्वान साहित्यकार जुड़े हुए हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से भारतीय समाज व संस्कृति पर खुलकर अपने विचार प्रस्तुत किये तथा उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा समाज व संस्कृति में फैली विभिन्न समस्याओं पर प्रकाश डालकर उन समस्याओं के कारण व निवारण पर प्रकाश डालते हुए, उनके समाज पर पड़ने वाले प्रभावों का भी वर्णन किया है। इस प्रकार यह पत्रिका वर्तमान सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से उपयुक्त है। इसी कारण मैंने पत्रिका में अभिव्यक्त सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना का अध्ययन किया और भारतीय समाज व संस्कृति को विस्तार पूर्वक समझते हुए पत्रिका में अभिव्यक्त विभिन्न समस्याओं का अध्ययन किया है।

समाज का अध्ययन करते हुए मन मैं प्रश्न उठना स्वभाविक है कि व्यक्ति के लिए समाज क्या है? तब कहा जा सकता है कि व्यक्ति के लिए समाजएक अनिवार्य संस्था है। इसका निर्माण व्यक्ति ही करता है। ''**निस्समाज व्यक्ति कोरी कल्पना हैं।**'' इसलिए व्यक्ति समाज से पृथक् रहकर अपना अस्तित्व नहीं रख सकता। जब कुछ व्यक्ति पारस्परिक हितों की रक्षा के लिए एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं और पारस्परिक व्यवहार करते हैं तो इसे हम समाज के गठन की प्रक्रिया कहते हैं। जब तक समाज के जन–समुदाय में एकता और पारस्परिक सह–सम्बन्ध की भावना नहीं होगी तब तक वह जन–समुदाय समाज नहीं कहा जा सकता। जब समुदाय के लोग समान रुचि के कारण समान भावनाओं से बंध जाते हैं तो उनका समुदाय एकता में बंधकर समाज का रूप धारण कर लेता है।

समाज के संगठन में व्यक्ति का भारी योगदान रहता है। प्रत्येक व्यक्ति समाज के आदर्श की रक्षा में अपना योगदान देता है। वह अपने व्यक्तित्व की रक्षा करते हुए

समाज की भलाई का भी ध्यान रखता है। व्यक्ति चाहे अध्यापक हो, चाहे इन्जीनियर हो, कलाकार आदि कुछ भी हो, वह समाज द्वारा निर्धारित मान्यताओं के अनुकूल आचरण करता है। समाज का आदर्श, उसका उद्देश्य व्यापक और स्थायी होता है। इसमें व्यक्ति के जीवन के सभी अंग आ जाते है। समाज के आदर्श से व्यक्ति के जीवन के सभी अंग प्रभावित होते हैं।[1]

अतः कहा जा सकता है कि समाज मनुष्य के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि समाज ही मनुष्य का रक्षक है। मनुष्य आवश्यकताओं का पुँज है यदि उसकी प्रमुख आवश्यकताएँ पूरी न हो तो जीवन सुरक्षित न रहे। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह अन्य व्यक्तियों से सम्बन्ध स्थापित करता है और उनका सहयोग प्राप्त करके अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह हर प्रकार के कार्य करने को तैयार रहता है चाहे वे कार्य समाज के लिए हानिकारक ही क्यों ना हो, इन कार्यों के कारण समाज में कई समस्याएँ उत्पन्न होने लगती है जो समाज के लिए बहुत अधिक विनाश्कारी प्रतीत होती हैं। अतः इन समस्याओं को ध्यान में रखकर'**जगमग दीपज्योति**' पत्रिका के माध्यम से विभिन्न साहित्यकारों ने अपनी विभिन्न विधाओं में सामाजिक समस्याओं को लेकर अपने विचार प्रस्तुत किये और इनके कारण व निवारण के उपायों से परिचित भी कराया। इन साहित्यकारों द्वारा प्रकाशित रचनाओं का अध्ययन कर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि वास्तव में वर्तमान समाज में कई प्रकार की समस्याएँ व्याप्त है जिनका किसी न किसी रूप में भारतीय समाज के लोगों पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों तरह का प्रभाव पड़ रहा है।

'**जगमग दीपज्योति**' पत्रिका में अनेक प्रसिद्ध साहित्यकारों ने अपने लेख, कहानी, कविता, परिचर्चा आदि के माध्यम से अनेक समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए उनके उपायों पर ध्यान आकर्षित करने की चेष्टा की है ताकि पाठकों में सामाजिक चेतना जागृत हो सके वे समस्याएँ इस प्रकार है–

- नारी से सम्बन्धित समस्याएँ :– नारी पर हो रहा अत्याचार, नारी शिक्षा, बलात्कार, भ्रूण हत्या, लिंग भेद।
- पारिवारिक समस्याएँ :– टूटते व बिखरते परिवार, वृद्धावस्था।
- निम्न वर्ग के परिवारों की समस्या :– गरीबी, बाल–मजदूरी, भीख मांगना।
- युवाओं से सम्बन्धित समस्याएँ :– पथ–भ्रष्ट होते युवा, रुचि के विपरीत शिक्षा ग्रहण करने से मानसिक तनाव, मद्यपान।
- दहेज प्रथा
- पर्यावरण प्रदूषण
- जातिगत भेदभाव

- आतंकवाद
- भ्रष्टाचार
- जीव हत्या
- हिन्दी भाषा का गिरता स्तर

इन समस्याओं पर कुछ प्रमुख साहित्यकारों के उदाहरण इस प्रकार है–

डॉ. अनिल सुदर्शन 'देवी' ने कहानी के माध्यम से नायिका नंदिनी की लुटी हुई अस्मिता से सम्बन्धित घटना के माध्यम से पति की मानसिकता का चित्र खीचा है अर्थात पति को बचाने के कारण अपनी अस्मिता को लुटाने के पश्चात जब नायिका घर में आती है तो पहले तो उसका पति उसे देवी बताकर उसको स्वीकार कर लेता है ''**मगर कुछ ही दिनों में वह देवी घर से निष्कासित कर दी जाती है क्योंकि देवियों की पूजा की जाती है। उनके साथ घर नहीं बसाये जाते।**'' घर बसाने के लिए नई पत्नी आ जाती है जो शायद कभी देवी बना दी जाये। इस वाक्य से माध्यम से घटना का सारगर्भित वर्णन किया है। अतः इस प्रकार से अनेक महिलाएँ बलात्कार की शिकार हुई अपने जीवन की लड़ाई लड़ रही है।[2]

इसी प्रकार वृद्धावस्था पर **डॉ. वर्षा पुनवटकर 'बरखा'** अपनी कथा **'बोझिल रिस्तें'** के माध्यम से बताती है कि जब बुढ़ापे में रामपाल की पत्नी की तबियत बिगड़ जाती है तो उसे अस्पताल में भर्ती करवाया जाता है। रामपाल अपनी पत्नी की दिन–रात सेवा करता है मगर उसके दोनों लड़के कर्त्तव्य के नाम पर अपने बूढ़े माता–पिता को झेल रहे थे और उन्हें खाने के नाम पर दो वक्त का भोजन व जरुरत के कपड़े देकर अपने आप को कर्त्तव्य मुक्त समझते है। माँ की तबियत ज्यादा बिगड़ने पर भी वह काम का बहाना बनाकर उनके पास नहीं जाते और पैसों के अभाव में उसकी मृत्यु हो जाती है तब रामपाल दुखी हो एक पत्र लिखता है–''**तुम्हारे अति महत्त्वपूर्ण कार्यों के बीच में माँ के अन्तिम संस्कार जैसा तुच्छ कार्य सौंप कर तुम्हारे कामों में बाधा उत्पन्न नहीं करना चाहता था, इसलिए तुम से यह अधिकार मैं वापस ले रहा हूँ। मैं तुम्हे कभी माफ नहीं कर सकता। ध्यान रहे तुम्हारे अपने भी बेटे हैं, जैसा बोओगे वैसा ही काटोगे।**'' इस प्रकार इस पत्र के माध्यम से वृद्ध पिता के दुख व बच्चों की दूषित मानसिकता का पता चलता है।[3]

डॉ. मनोहरलाल गोयल अपनी कविता **'आज हिन्दी दिवस है'** में हिन्दी भाषा के गिरते स्तर पर अपने विचार अभिव्यक्त कर कहते हैं कि हिन्दी को चौदह सितम्बर का इन्तजार रहता है क्योंकि इसी दिन लोग उसे याद करते है और एक दिन के लिए उसे उसका सम्मान देते है। बाकि तीन सौ चौंसठ दिन तो मानो हिन्दी उपेक्षित और वनवास की जिन्दगी बिताती है। इस प्रकार हिन्दी का स्तर गिर रहा है जिसे लेखक ने अपनी पंक्तियों में इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

हिन्दी मायके में बैठी सब्जी रोटी खाती है,
और अंग्रेजी मेवा मिष्ठान खाकर अपनी भूख जगाती है।
अंग्रेजी की पालकी हिन्दी के स्थान पर आकर अपना कब्जा जमाती है,
और हिन्दी के साथ–साथ भारत की दूसरी भाषाओं को भी अपना भोजन बनाती है।

इस प्रकार इन पंक्तियों के माध्यम से हम समझ सकते है कि आज वास्तव में हिन्दी का स्तर गिर रहा है और यह एक चिन्तनीय विषय है।[4]

अतः ये सभी समस्याएँ आज हमें अपने आस–पास सामाजिक परिवेश में देखने व सुनने को मिलती है कुछ चैनल्स के माध्यम से, कुछ आखों देखी घटनाओं के माध्यम से और कुछ समाचार पत्रों के माध्यम से। निम्नलिखित समस्याओं का विवरण उदाहरण स्वरूप कुछ इस प्रकार से है–

अगर हम **महिला अत्याचार** की बात करे तो आए दिन हमारे समाज में महिलाओं के साथ हिंसा की खबरे आती रहती है। इनमे सबसे ज्यादा मामले घरेलू हिंसा के होते है। किसी भी महिला के साथ घर की चार दिवारी के अंदर होने वाली किसी भी तरह की हिंसा, मारपीट, उत्पीड़न आदि घरेलू हिंसा में आते है इसे रोकने के लिए सरकार ने **'घरेलू हिंसा अधिनियम 2005'** बना रखा है जिसके तहत महिला अपने पति या पति के परिवारवालों से प्रताड़ित होती है तो वो घरेलू हिंसा के तहत शिकायत दर्ज करा सकती है।

8 मार्च, 2017 को दैनिक भास्कर में 'चार कलंक जो महिलाओं को आगे नहीं बढ़ने दे रहे' विषय के माध्यम से महिला अत्याचार पर इस प्रकार जानकारी दी–

मारपीट :–महिलाओं के खिलाफ सबसे ज्यादा पति या परिजनों द्वारा पिटाई करने के मामले सामने आते हैं। पिछले 10 सालों में देखें तो देशभर में 9,09,713 इस तरह के केस दर्ज हुए। यानी हर घंटे 10 मामले।

अंधविश्वास :–पिछले 14 सालों में देश में 2000 से ज्यादा महिलाओं की डायन बताकर लोगों ने हत्या कर दी। देश में सबसे ज्यादा मामले झारखंड में देखे गए है।

यौन शोषण :–78 प्रतिशत महिला कामगार का यौन शोषण होता है। सबसे ज्यादा शोषण 37.8 प्रतिशत वर्कप्लेस पर होता है लेकिन शर्म की बात है कि यौन शोषण के 22.2 फीसदी मामले स्कूल, कॉलेज में हो रहे हैं।

गर्भवती :–देश में 15–19 साल की 7.9 प्रतिशत महिलाएँ ऐसी हैं, जो माँ बन गई हैं या गर्भवती हैं। गाँवों में स्थिति खराब है। यहाँ ऐसी 9.2 प्रतिशत महिलाएँ है जबकि शहरों में 5 प्रतिशत है।[5]

इन आंकड़ों का अध्ययन कर हम कह सकते है कि महिलाओं पर अत्याचार के मामले बढ़ते जा रहे है अतः महिलाओं की सुरक्षा के लिए इनपर पाबन्दी लगाना अति आवश्यक है।

जिस रफ्तार से भारत में आर्थिक प्रगति हो रही है उस अनुपात में शिक्षा के मामले में देश अपेक्षित तरक्की नहीं कर पाया है। देश में लगभग 61 लाख बच्चे ऐसे है जो शिक्षा से वंचित है। इनमे भी विशेष रूप से बालिका शिक्षा की स्थिति चिंताजनक है। सैम्पल रजिस्ट्रेशन सिस्टम बेसलाइन सर्वे 2014 की रिपोर्ट के अनुसार 15 से 17 साल की लगभग 16 प्रतिशत लड़कियाँ स्कूल बीच में ही छोड़ देती है।

8 मार्च, 2017 वुमन भास्कर के 'प्रोफेशनल्स' कॉलम में प्रकाशित 'नारी शिक्षा' से सम्बन्धित जानकारी इस प्रकार है–

- 10 साल में 12 वीं की पढ़ाई पूरी होते ही 15.3 प्रतिशत लड़कियों की शादी कर दी गई और 25.4 प्रतिशत की मिडिल स्कूल के बाद कर दी गई।
- 36 प्रतिशत महिलाएँ देश में ऐसी हैं जो सिर्फ 10 वीं पास है।
- देश की 48 प्रतिशत बच्चियाँ ऐसी हैं जो सिर्फ 5 वीं पास है।
- इसी तरह महिला शिक्षकों को पुरुषों के बराबर पहुँचने में 169 साल लग गये। आज देश में महिला शिक्षकों का 45 प्रतिशत हिस्सा है। 2008–2011 के बीच शिक्षकों की संख्या देश में 6 प्रतिशत बढ़ी है।
- वकालत में भी महिलाओं को एक तिहाई हिस्सा बनने में 123 साल लगे हैं। पिछले दो साल में इनकी संख्या 30 प्रतिशत बढ़ी है।
- पिछले 131 सालों में महिला डॉक्टरों की संख्या सिर्फ 17 प्रतिशत है। मगर पुरुषों के मुकाबले पिछले 5 साल में 4,500 महिलाएँ ज्यादा डॉक्टर बनी है।[6]

इन आंकड़ों का अध्ययन कर हम कह सकते है कि आज लड़कियों की शिक्षा में सुधार हुआ है। सरकारी अभियानों के माध्यम से स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या बढ़ी है।

आज **'बलात्कार'** हमारे देश की सबसे बड़ी समस्याओं में से एक है निस्संदेह, बलात्कार एक राष्ट्रीय कोढ़ जैसी समस्या है और इस समस्या के कारण देश की महिलाओं, युवतियों, किशोरियों और यहाँ तक कि तीन–चार वर्ष की बच्चियाँ भी सुरक्षित नहीं है जिसके कारण देश को अन्य देशों के सामने शर्मसार होना पड़ता है। इस समस्या पर नजर डाले तो पाते है।

15 अप्रेल, 2018 को दैनिक भास्कर के भास्कर विशेष में 'न्याय पाने के लिए भटक रहे हैं आज तक कई परिवार' विषय के माध्यम से बलात्कार के आंकड़े प्रस्तुत किये गये जो इस प्रकार है–

- पिछले 3 सालों में प्रदेश में नाबालिग बच्चियों के साथ 3,897 रेप की वारदाते हुई। हर साल ऐसे रेप के मामलों की संख्या करीब 1,300 है और हर रोज प्रदेश में तीन नाबालिक बच्चियाँ रेप का शिकार हो रही है। रेप के उम्रवार उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार करीब 40 प्रतिशत बच्चियाँ 14 साल तक की उम्र में रेप के दंश को झेल रही है।
- इस तरह नाबालिग लड़कियों से बलात्कार के मामले में राजस्थान देश में चौथे नम्बर पर है गैंगरेप के मामले में तो राजस्थान उत्तरप्रदेश के बाद दूसरे नम्बर पर है।
- 18 से 30 वर्ष की उम्र की महिलाओं के साथ होता है सबसे ज्यादा दुष्कर्म।
- देश में हर दिन औसतन 107 महिलाएँ दुष्कर्म की शिकार हो रही है। 2016 में 39,068 महिलाओं एवं बच्चियों के साथ दुष्कर्म हुआ।
- 2015 से 2017 तक प्रदेश में हुए बलात्कार की संख्या गिने तो यह है– 2015 में 1232, 2016 में 1347, 2017 में 1318, इस प्रकार इन अपराधों की संख्या बढ़ती ही जा रही है।[7]

अतः इसे रोकने के लिए भारत सरकार द्वारा प्रत्येक राज्य में पॉक्सो कोर्ट खोले जा रहे है और अपने अधिनियमों में बदलाव कर नये नियम बनाये जा रहे है। इस बात की जानकारी **23 अप्रेल, 2018 को दैनिक भास्कर में प्रकाशित रिपोर्ट 'केंद्रीय कैबिनेट ने पॉक्सो एक्ट में संशोधन को दी मंजूरी, सरकार लाएगी अध्यादेश'** के आधार पर दी गई है जो इस प्रकार है–

- 12 साल तक की मासूमों से दुष्कर्म, तो दुष्कर्म के दोषी को कम से कम 20 साल, उम्रकैद और मौत की सजा दी जाएगी।
- 16 साल तक की बच्चियों से दुष्कर्म, तो कम से कम 20 साल की सजा व सामूहिक दुष्कर्म पर उम्रकैद की सजा दी जाएगी।
- महिलाओं से दुष्कर्म तो न्यूनतम सजा 7 साल से बढ़ाकर 10 साल की गई है।[8]

देखा जाये तो भारत में भ्रूण हत्या की पहचान पर रोक है और भ्रूण हत्या को गंभीर अपराध माना गया है इसके बावजूद भ्रूण हत्या, खासतौर पर कन्या भ्रूण हत्या के अनेकों मामले सामने आते रहते है। **भ्रूण हत्या पर 3 फरवरी, 2016 को दैनिक भास्कर ने 'यह बेटी हटाओं अभियान!' विषय के माध्यम से अपने आंकड़े प्रस्तुत किये जो इस प्रकार है–**

- भास्कर की रिपोर्ट के अनुसार करीब एक करोड़ कन्याओं की भ्रूण हत्या हो चुकी है देश में 1990 से अब तक। इस प्रकार 5 लाख औसतन प्रति वर्ष कन्या भ्रूण हत्या हो रही है देश में।

- वर्ष वार किये गये आंकड़ों के अनुसार सन् 1961 में 908, 1981 में 919, 2001 में 921 व 2011 में 926 लिंगानुपात दर्ज किया गया है।
- देशभर में वर्ष 1996 के बाद गैरकानूनी करार दी गई लिंग जॉच और कन्या भ्रूण हत्या अब भी चोरी–छिपे चल रही है और आंकड़े साफ़ दर्शाते है कि यह समस्या अन्य राज्यों से कहीं बड़ी है। [9]

इसके अतरिक्त **1 सितम्बर, 2015 को दैनिक भास्कर ने 'दुनिया देखने दो...'** विषय के माध्यम से एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसके अनुसार देश में कन्या भ्रूण हत्या के साथ–साथ लड़कों की भ्रूण हत्याएँ भी हो रही है। जिसके आंकड़े कुछ इस प्रकार से है–

- नेशनल क्राइम रिकॉर्ड्स ब्यूरो की 2014 की रिपोर्ट कहती है कि कन्या भ्रूण हत्या के मुकाबले लड़कों की भ्रूण हत्या के केस ज्यादा दर्ज हुए है।
- 2014 में 53 लड़कों के भ्रूण हत्या के मामले दर्ज हुए है जबकि लड़कियों के 50 मामले कन्या भ्रूण हत्या के आए है और 4 अज्ञात भ्रूण लिंग पाए गए है।
- लिंग चयन पर कानून अपराधीकरण 20 वर्ष पहले 1996 में आया था अतः इस सम्बन्ध में 350 लोगों को सजा दी गई है। यानि हर वर्ष 18 का आंकड़ा रहा है।
- इन 20 वर्षों में 100 संस्थानों का भी पंजीकरण रद्द किया गया है।[10]

इस भ्रूण हत्या का एक कारण लिंग भेद की भावना भी है अर्थात लड़का–लड़की में भेद भाव के कारण भी कन्याओं की हत्याएँ हो रही है। **26 मई, 2018 को दैनिक भास्कर के रियलिटी चेक कॉलम में 'हमारी दुनिया में भेदभाव' विषय के द्वारा लिंग भेद पर आंकड़े प्रस्तुत किये जो निम्न प्रकार से है–**

- मेडिकल जर्नल लैंसेट की रिसर्च के मुताबिक लिंग भेद के कारण राजस्थान 5 साल तक की बच्चियों की मृत्यु दर के मामले में यूपी व बिहार के बाद तीसरे स्थान पर है।
- हर साल प्रदेश में लैंगिक भेद भाव के कारण असमय ही 21 हजार बच्चियों की जिंदगी छीन ली जाती है।
- दुनिया की सबसे प्रतिष्ठत मेडिकल जर्नल लेंसेट की रिसर्च से यह पता चला है कि राजस्थान में हर साल 5 साल तक की 20,963 बच्चियों की मौत लैंगिक भेद भाव के चलते हो जाती है। पूरे देश में इस तरह हर साल 2,39,317 बच्चियों की मौत होती है। [11]

इन आंकड़ों के माध्यम से हम कह सकते है कि वर्तमान में लिंग भेद एक विकट समस्या के रूप में व्याप्त है। अतः इस लिंग असमानता को दूर करने के लिये भारतीय संविधान ने अनेक सकारात्मक कदम उठाये है लेकिन सरकार द्वारा चलाये गए कार्यक्रमों से यह भेद भाव नहीं मिटेगा। इसमे वास्तिविक बदलाव तो तभी संभव हैं जब पुरुषों की

सोच बदलेगी और ये सोच जब बदलेगी तब मानवता का एक प्रकार पुरुष महिला के साथ समानता का व्यवहार करना शुरू कर दे न कि उन्हें अपना अधीनस्थ समझे।

पारिवारिक समस्या पर अगर हम विचार करें तो पाते है कि शिक्षा प्रसार के बढ़ते लड़कियाँ और लड़के जितने शिक्षित हो रहे हैं उतनी ही समस्याएँ आज के दैनिक जीवन में बढ़ रही है परिवार विभाजित हो रहे हैं। छोटी–छोटी समस्याएँ भयंकर रूप धारण कर लेती है और इन सबका खामियाजा वृद्ध लोगों को भुगतना पड़ता है। परिवार विभाजन के कारण वृद्ध माता–पिता की जगह परिवार में नहीं रह पाती और उन्हें वृद्धाश्रम भेज दिया जाता है या घर के किसी कोने में पटक दिया जाता है जहाँ उन्हें कई प्रकार के कष्ट सहने पड़ते है। वर्तमान में हम वृद्ध लोगों को देखे तो कई प्रकार की भयावह घटनाएँ सामने आती है। **इसी से सम्बन्धित एक घटना राजस्थान पत्रिका के 15 फरवरी, 2016 के अंक में 'बुढ़ापे का कौन सहारा' विषय के माध्यम से प्रस्तुत की गई जो है–**

एक विधवा माँ ने अपने पति की मृत्यु के बाद अपने दो बच्चों का मेहनत–मजदूरी कर लालन–पालन किया, लेकिन जब उनकी फर्ज निभाने की बारी आई तो बेटे ने दृष्टिहीन माँ को भूखा मरने के लिए छोड़ दिया और स्वयं अपनी पत्नी व बच्चों के साथ अलग रहने लगा। बिचारी माँ के पास न रहने को झोंपड़ी है और न पहनने को कपड़े वह गाँव के लोगों से मांग कर अपना जीवन व्यतित कर रही है।[12]

इसी समस्या पर 16 जून, 2018 को दैनिक भास्कर ने 'हेल्प एज इंडिया' की रिपोर्ट का विमोचन कर वृद्धजनों पर किये जाने वाले दुर्व्यवहार पर प्रकाश डाला जो निम्न है–

- हेल्प एज इंडिया की एक ताजा रिपोर्ट में बताया गया है कि 51 प्रतिशत से अधिक बेटे–बहू अपने परिवार के वृद्धजनों के साथ दुर्व्यवहार करते है। सबसे ज्यादा 70 प्रतिशत बच्चों से वृद्धजन मौखिक दुर्व्यवहार का शिकार हो रहे हैं।
- बुजुर्गों को सामाजिक और कानूनी सुरक्षा दिलवाने के लिए केन्द्र सरकार ने मेंटेनेंस एंड वेलफेयर आफ पैरेंट्स एंड सीनियर सिटीजेंस एक्ट, 2007 कानून बनाया लेकिन ज्यादातर लोगों को इसके बारे में कोई जानकारी ही नहीं है। 13

अतः आज आवश्यकता है कि लोगों को वृद्धावस्था के लिए बनाए गए कानूनो से परिचित करवाये और उन्हें इसके प्रति जागृत करे ताकि समाज से वृद्धावस्था की यह समस्या मिट सके।

12 जून, 2018 के दैनिक भास्कर के 'जयपुर फ्रंट पेज' पर भास्कर विशेष में 'मासूम हाथों से लाचारी का यह ब्रश अब छीनना ही होगा, ताकि ये जूते नहीं बल्कि

अपना भविष्य चमकाएँ' विषय के द्वारा बाल–मजदूरों का आंकड़ा हमारे समक्ष रखा जो इस प्रकार है–

- देश में 1.25 करोड़ बच्चे मानव श्रम का हिस्सा है।
- 2001 से 2011 के दौरान शहरों में बालश्रम 53 प्रतिशत बढ़ा है।
- देश में 5 से 9 वर्ष के 25 लाख बच्चे साल में 5 से 12 माह तक श्रम करते है।
- राजस्थान में 15 लाख बाल श्रमिक है। इसमे से 3 लाख पूर्णकालिक बाल श्रमिक है।
- बाल श्रमिकों के मामले में राजस्थान का देश में तीसरा स्थान है।
- प्रदेश में 5 से 14 वर्ष की उम्र का हर 10 वां बच्चा बाल श्रमिक है। व हर 10 लड़कियों में से एक लड़की बाल श्रमिक है।
- राज्य में 5 से 14 वर्ष की आयु के 50.25 प्रतिशत लड़के बाल श्रमिक है।[14]

इन बच्चों के सुनहरे भविष्य के लिए सरकार ने 1974 में बाल कल्याण के लिए **'राष्ट्रीय बाल नीति'** की घोषणा की। सन् 1990 में विश्व बाल सम्मेलन के तय लक्ष्यों का समर्थन किया। 1992 में बाल अधिकार कन्वेंशन की पुष्टि की। समेकित बाल विकास सेवाओं के अन्तर्गत उन्हें पौष्टिक आहार, शिक्षा आदि देने की व्यवस्था की लेकिन समय–समय पर हुए अध्ययनों और सर्वेक्षणों ने इन उपलब्धियों को कागजी सिद्ध कर इनके खोखलेपन की पोल खोल दी। ऐसा नहीं है कि बाल बजदूरी समाप्त करने के लिए हमारे देश में कानूनों की कमी है लेकिन समस्या उसे लागू करने की है।[15]

वर्तमान समाज में नशाखोरी की बढ़ती हुई प्रवृत्ति विकराल समस्या का रूप ले चुकी है। जिसकी वजह से समाज रूपी महल रेत की दीवार की भाँति ढहने की कगार पर है। आज अधिकांश व्यक्ति तनाव, असन्तोष व निराशा से छुटकारा पाने के लिए नशीली वस्तुओं का सेवन करना प्रारम्भ कर देते है और यहीं से उसके विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। कुछ लोग बुरी संगति में पढकर नशारूपी दलदल में जा फँसते है और अपने जीवन को बरबाद कर लेते है।

इस समस्या को लेकर 22 जून, 2016 को दैनिक भास्कर ने 'भास्कर इंफोग्राफिक' के माध्यम से बढ़ते नशाखोरी के आंकड़े प्रस्तुत किये जो इस प्रकार है–

- यूनाइटेड नेशन्स ऑफिस ऑन ड्रग्स एंड क्राइम के सर्वे 2015 के अनुसार राजस्थान अफीम की लत के मामले में पंजाब के बाद देश में दूसरे नंबर पर है।
- सर्वे के मुताबिक शहरी इलाको में 11 प्रतिशत लोग इसके आदी है और ग्रामीण इलाको में 76 प्रतिशत लोग इसकी चपेत में है।

- राज्य में सबसे ज्यादा पश्चिमी और राजधानी के आसपास का इलाका इससे प्रभावित है वहीं, हेरोइन लेने वाले बच्चों में राजस्थान 1.5 प्रतिशत के साथ देश में पहले नंबर पर है।
- देश में साल 2000 के बाद सबसे ज्यादा 774 किग्रा अवैध रूप से लाई गई अफीम बरामद हुई है।
- सर्वे के अनुसार ड्रग्स एडिक्टस में 92 प्रतिशत होते है पुरुष जिनमे 29 प्रतिशत बेरोजगार, 21 प्रतिशत अनपढ़, 25 प्रतिशत बेघर, 48 प्रतिशत अविवाहित होते है।
- 22 प्रतिशत बच्चे 15 साल में लेते हैं ड्रग्स इसमे 15 वर्ष से कम 22 प्रतिशत, 16 से 21 वर्ष में 34 प्रतिशत, 21 से 30 वर्ष में 38 प्रतिशत होते है। [16]

इस प्रकार यह नशाखोरी की समस्या समाज में बढ़ती जा रही है जो देश के लिए चिंताजनक विषय है अतः इसे रोकना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है इसके लिए एक साथ मिलकर नशा रूपी दानव का समूल नाश करने का संकल्प लें। समाज में नशे के दलदल में फँसे हुए लोगों को निकालने का भी पूर्ण प्रयास करें तभी मानव जीवन का स्वर्णिम प्रभात होगा।

वर्तमान समाज में दहेज प्रथा एक ऐसा सामाजिक अभिशाप बन गया है जो महिलाओं के साथ होने वाले अपराधों, चाहे वे शारीरिक हों या फिर मानसिक, को बढ़ावा देता है। वर्तमान समय में दहेज व्यवस्था एक ऐसी प्रथा का रूप ग्रहण कर चुकी है जिसके अंतर्गत युवती के माता–पिता और परिवारवालों का सम्मान दहेज में दिए गए धन–दौलत पर ही निर्भर करता है। वर पक्ष भी सरेआम अपने बेटे का सोदा करता है। भले ही सरकार इस समस्या को खत्म करने के लिए समय–समय पर लोगों को जागरूक कर रही है परंतु फिर भी यह समस्या आज खत्म होने का नाम नहीं ले रही।

इस समस्या के बढ़ते आंकड़ों पर दैनिक भास्कर ने 7 जुलाई, 2015 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जो इस प्रकार है–

- देश में दहेज हत्याओं के मामले में राजस्थान छठे पायदान पर है।
- वर्ष 2000–01 से 2011–12 के बीच दहेज हत्याओं के मामले 27 प्रतिशत बढ़ गए और उससे बड़ी चिंता ये है कि लगातार बढ़ते मामलों का बोझ अदालतों पर भी इसी रफ्तार से बढ़ रहा है। दस सालों में कोर्ट में पेंडिंग मामले भी 27 प्रतिशत बढ़ गए।
- वर्ष 2012 में 95 मामलों में ही आरोपियों पर दोष सिद्ध हो पाया, जबकि कुल 478 मामले इस वर्ष दहेज हत्या के दर्ज किए गए थे।

- 15 प्रतिशत कम हो गई वर्ष 2001 से 2012 के बीच दोष सिद्धि की दर। 2001 में 376 मामले दहेज हत्या के दर्ज हुए थे, 106 मामलों में आरोपियों पर दोष सिद्ध हुआ था।
- वर्ष 2001 से 2012 तक यूं घटती गई सजा पाने वालों की संख्या—वर्ष 2001 में सजा पाने वालों की संख्या 28.1 प्रतिशत थी जो घटकर 2012 में 19.87 प्रतिशत रह गई है।
- वर्ष 2001 से 2012 के बीच कुछ राज्यों में दहेज हत्या के कुल मामले इस प्रकार है—उत्तर प्रदेश में 23,824, बिहार में 13,548, मध्यप्रदेश 9,036, आंध्रप्रदेश में 6,215, पश्चिमी बंगाल में 5,172 व राजस्थान में 5,066 मामलें दर्ज किये गए है।
- वर्ष 2001 से 2012 बीच नगालैंड एक मात्र ऐसा राज्य है जहाँ दहेज हत्या का एक भी मामला दर्ज नहीं हुआ है। [17]

अतः इस समस्या के समाधान के लिए सबसे पहले हमे अपनी सोच में बदलाव लाने की जरुरत है। हमे लड़कियों को लड़कों के बराबर समझना है। लड़कियों को लड़कों से किसी भी तरह छोटा महसूस नहीं होने देना है। अगर ऐसा हुआ तो लड़कियों को ससुराल जाने के लिए दहेज के साथ की जरुरत नहीं होगी।

आज विश्व पर्यावरण को लेकर काफी चिंतित है। तापमान निरंतर बढ़ने, ब्लैक हॉल में निरंतर वृद्धि होने, ओजोन परत के छेद में हो रही वृद्धि चिंता का प्रमुख कारण है। प्रकृति के अमर्यादित दोहन के कारण प्राकृतिक संतुलन गड़बड़ा रहा है। वृक्षों के लगातार काटते रहने के कारण वन सिकुड़ रहे है। नदियाँ भी प्रदूषित हो रही हैं। **इन्हीं को लेकर दैनिक भास्कर ने 5 जून, 2017 को 'पर्यावरण दिवस विशेष' में पर्यावरण असन्तुलन के आंकड़े प्रस्तुत किये जो इस प्रकार है–**

- हर साल देश में 56 लाख टन प्लास्टिक कचरे का नया पहाड़ खड़ा हो रहा है।
- हर मिनट 10 लाख पॉलिथीन बैग, हर साल 88 लाख टन प्लास्टिक समुद्र में जा रहा है।
- भारत में एक दिन का प्लास्टिक कचरा 15,342 टन होता है जिसमे 9,205 टन कचरा रोज इकट्‌ठा किया जा रहा है व 6,137 टन कचरा प्रोसेस नहीं हो पाता, बिखरा रहता है।
- दुनिया के 20 प्रदूषित शहरों में 10 हमारे देश के है।
- वायु प्रदूषण से 55 लाख मौतें होती है दुनिया में हर साल, जिनमें 12 लाख मौतें भारत देश में होती है।
- दुनियाभर में कुल 3 खरब पेड़ है जिनमें भारत में 35 अरब अर्थात प्रत्येक व्यक्ति के पास 28 पेड़ है।

- मानव सभ्यता के बढ़ने के साथ ही दुनियाभर में 46 प्रतिशत पेड़ घट चुके है। 73 लाख हेक्टेयर जंगल हर साल काट दिये जाते है और जमीन पाने के लिए हम दुनिया में हर साल काट डालते है 15 अरब से ज्यादा पेड़।
- हर साल देश में 88 अरब टन प्राकृतिक संसाधनों की खपत हो रही है जबकि 50 हजार टन होनी चाहिए।
- केन्द्र सरकार ने प्लास्टिक पर बेन करने के लिए कानून बनाया मगर फिर भी इसका इस्तेमाल नहीं घट रहा। [18]

अतः पर्यावरण प्रदूषण को रोकने के लिए भारत सरकार ने कई सरकारी व गैर सरकारी योजनाएँ आरम्भ की है जिनमें प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी ने महात्मा गाँधी के जन्मदिवस पर 2 अक्टूबर, 2014 को 'स्वच्छ भारत अभियान' का आरम्ब किया है। साथ ही कई कानून भी बनाए ताकि इसपर नियन्त्रण पाया जा सके।

आज सभी भ्रष्टाचार से भली–भाँति परिचित हैं। सभी धन के लेन–देन का दुरूपयोग करते है। यह सबके जीवन में इतना घुल मिल गया है कि हमें महसूस भी नहीं हो पाता कि ये हमारे लिए कोई अवगुण है। ईमानदारी, सत्यनिष्ठा आज मात्र शब्दकोष तक ही सीमित रह गए है। दिन प्रतिदिन के व्यवहार में इनका अस्तित्व नगण्य होता जा रहा है। समाज के हर क्षेत्र में, व्यापार के हर कोने में, संस्थान में कदम–कदम पर इसका इतना अधिक बोलबाला है कि यह तो अब समाज के खून की हर बूँद में घुल मिल गया है। सदाचार–ईमानदार आज हेयदृष्टि से देखे जाते है। व्यापार हो या संस्थान, उन्नति विकास करना है तो भ्रष्टाचार को अपनाए बिना काम चल ही नहीं सकता।

31 जुलाई, 2016 के दैनिक भास्कर ने 'डाक से रिश्वत, मासिक किस्तों पर घूस और बच्चों की पढ़ाई तक काली कमाई से स्पॉन्सर' विषय के अर्न्तगत भ्रष्टाचार के कुछ आंकड़े प्रस्तुत किये जो इस प्रकार है–

- एक अनुमान के मुताबिक देश में 62 प्रतिशत व्यस्क लोगों को कभी न कभी सरकारी दफ्तरों में घूस देनी पड़ती है। देश की कुल ब्लैक मनी में घूस का ही हिस्सा सबसे बड़ा है।
- पिछले दो सालों में सरकार 43,829 करोड़ रुपये की अघोषित आय पकड़ चुकी है।
- वर्तमान में देश की अर्थव्यवस्था के 60 फीसदी के बराबर ब्लैक मनी है। इसका 10 प्रतिशत हिस्सा यानी करीब 9 लाख करोड़ रुपये हर साल देश से बाहर चला जाता है। विदेश भेजी जाने वाली काली कमाई का 30 प्रतिशत निवेश के रूप में देश में आ जाता है।

- घूस देने में शहरी परिवार सालाना देते है 2.12 लाख करोड़ की घूस, ग्रामीण परिवार देते है 2.25 लाख करोड़ की घूस और हाइवे ट्रक ड्राइवरों से वसूले जाते है 22 हजार करोड़ रुपये।
- पिछले 5 साल में भ्रष्टाचार 95 फीसदी बढ़ गया है लेकिन सजा 5 फीसदी को भी नहीं हो पाई। [19]

दैनिक भास्कर ने ही 19–20 मई, 2018 को भ्रष्टाचार पर 'सेन्टर फॉर मीडिया स्टडीज' की एक ओर रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसके अनुसार भ्रष्टाचार के आंकड़े निम्न प्रकार से है–

- सेन्टर फॉर मीडिया स्टडीज के द्वारा जारी रिपोर्ट इंडिया करप्शन स्टडी–2018 के अनुसार राज्यों में तेलंगाना व विभागों में पुलिस–परिवहन सबसे भ्रष्ट पाए गए है।
- देश में आधार कार्ड, वोटर आईडी, ड्राइविंग लाइसेंस जैसी सरकारी सुविधाओं को पाने के लिए पिछले 12 महिनों में 27 प्रतिशत लोगों को रिश्वत देनी पड़ी है।
- भ्रष्टाचार निरोधक ब्यूरो (एसीबी) ने 2014 से 2017 तक प्रदेश में 1,695 भ्रष्टाचार के मामले दर्ज किये है। इनमें सबसे ज्यादा मामले जयपुर जिले में दर्ज हुए है।
- ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल की रिपोर्ट के अनुसार रिश्वतखोरी में भारत एशिया में सबसे अव्वल है वर्ष 2016 में 10 में से 7 लोगों को घूस देनी पड़ी है। [20]

अतः हम इन आंकड़ों का अध्ययन कर कह सकते है कि आज भारत में भ्रष्टाचार दीमक की तरह फैल रहा है जिसे रोकना बहुत आवश्यक है इसके लिए हमें मिलकर शपथ लेनी होगी कि गलत काम नहीं करेंगे, रिश्वत नहीं लेंगे, काला धन स्वीकार नहीं करेंगे, नियमों का पालन करेंगे, आदर्श समाज का उदाहरण पेश करेंगे और भ्रष्टाचार को समाप्त करेंगे।

5 जून, 2017 कोदैनिक भास्कर ने 'पर्यावरण विशेष' में जीव हत्या को लेकर कुछ चौंकाने वाले आंकड़े प्रस्तुत किये जो इस प्रकार है–

- 2014 की लिविंग प्लेनेट रिपोर्ट के अनुसार 1970 से 2010 के बीच 52 प्रतिशत जानवर घट गए है अर्थात 40 साल में जानवरों की संख्या घटकर आधी हो गई है।
- हाथी 12 साल में 60 प्रतिशत घट गये है। दुनिया में अब सिर्फ 1 लाख हाथी ही बचे है।
- कछुए 20 साल में 95 प्रतिशत घट गये है। अब सिर्फ 10 हजार मादा कछुए ही बचे है दुनिया मे।

- डॉल्फिन की संख्या पिछले 30 साल में 75 प्रतिशत घट गई है। अतः हेक्टर्स प्रजाति की डॉल्फिन सिर्फ 7,400 बची है दुनिया भर में।
- वर्तमान में घरेलू गौरेया 60 प्रतिशत तक घट गई है परिणामस्वरूप देश में यह अब विलुप्त प्रजातियों की सूची में आ गई है।
- दुनियाभर में सिर्फ 17 हजार शेर बचे है हालांकि भारत में शेरों की संख्या में 2010 की तुलना में 27 प्रतिशत वृद्धि हुई है भारत में कुल 523 शेर बचे है।[21]

इस प्रकार हम कह सकते है कि आज जीव हत्या व अन्य कारणों के चलते देश से अनेक जीवों की प्रजातियाँ विलुप्त हो रही है जो देश के लिए एक चिंता का विषय है अतः इन जीवों की रक्षा के लिए हम सभी लोगों को मिलकर इनका सहयोग करना होगा और भारत में संचालित यांत्रिक व अन्य सभी छोटे–बड़े कत्लखानों पर प्रतिबंध लगवाना होगा, उनकी सब्सिड़ी व सुविधाएँ बंद करवानी होगी तबी इनकी रक्षा हो पायेगी।

भारत वर्ष अति प्राचीन देश है। **प्राचीनता की दृष्टि से विचार करने पर भारतीय संस्कृति विश्व की आदि सभ्यताओं में से एक है।** भारतीय संस्कृति का विकास न तो एक काल में हुआ और न ही यह रूढ़िवादी बनकर रही। आदिकाल से ही यह एक शिला के रूप में अविचल रही। अन्य सांस्कृतिक लहरों के थपेड़ों ने इस पर अनेकों आघात किए परन्तु वे इसके मूल स्वरूप को बदलने में सफल न हुए अपितु अपने प्रवाह के कुछ अंश अवश्य इस शिला पर छोड़ गये जिसको इसने सहर्ष ग्रहण कर लिया।

कहते हैं कि किसी भी राष्ट्र और उसके नागरिकों के अस्तित्व के लिए संस्कृति उतनी ही महत्त्वपूर्ण है, जितना कि उसके लिए भोजन, हवा और पानी। जिस प्रकार भोजन, हवा और पानी के बिना कोई राष्ट्र और उसके नागरिक जीवित नहीं रह सकते उसी प्रकार बिना संस्कृति के राष्ट्र और नागरिकों का कोई अस्तित्व नहीं रह सकता है। इसलिए यह सत्य है कि संस्कृति किसी व्यक्ति के प्राणों की रक्षा भले ही न करती हो, पर राष्ट्र के अस्तित्व की रक्षा अवश्य करती है। इसलिए प्रत्येक राष्ट्र और जाति की अपनी अलग–अलग संस्कृति होती है, उसी के अनुसार उस समाज, उस राष्ट्र और उस जाति की पहचान होती है।

आज संसार में यूरोपियन, अमरीकन, रूसी, चाइनीज, अरबी आदि अनके संस्कृतियाँ पाई जाती हैं, पर इस संसार के सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है कि इनमें सबसे पुरानी संस्कृति भारतवर्ष की ही है। साथ ही हम यह भी कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति सबसे प्राचानी ही नहीं, सबसे श्रेष्ठ भी है, क्योंकि संसार की अन्य संस्कृतियों में आध्यात्मिकता का बहुत ही कम अंश पाया जाता है या अधिकांश अधिभौतिक विषयों तक ही सीमित है, पर भारतीय संस्कृति का मुख्य लक्ष्य आध्यात्मिक उन्नति ही हैं, क्योंकि जो संस्कृति मनुष्य में पंच तत्त्वों का पुतला होने की भावना भर दे

और इस जीवन के बाद किसी प्रकार की आशा, भरोसा न दिला सके, वह मनुष्य या समाज की उन्नति कदापि नहीं कर सकती।

अतः हम कह सकते है कि संस्कृति का सम्बन्ध मानव बुद्धि, स्वभाव और उसकी मनोवृत्तियों से होता है। इन्हीं तत्त्वों की सहायता से व्यक्ति अपना विकास करता है। अतएव संस्कृति साध्य एवं साधन दोनों है। जब संस्कृति व्यक्ति तक सीमित रहती है तो व्यक्ति के व्यक्तित्व को और जब वह संपूर्ण जाति में प्रसार पाती है, तो वह राष्ट्रीय चेतना को विकसित करती है। उपर्युक्त विवेचन से निष्कर्ष निकलता है कि संस्कृति किसी राष्ट्र के व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत किया गया ऐसा व्यवहार है, जो आने वाले व्यक्तियों का आदर्श है, उनके द्वारा अनुकरणीय है और उन्हें सही अर्थों में सामाजिक बनाता है। संस्कृति किसी समाज को प्रवाहमय जीवन पद्धति हेतु मार्ग प्रशस्त करती है। संस्कृति के नियम शाश्वत होते हैं जो उस समय को एक विशिष्ट जीवन व्यतीत करने की चेतना प्रदान करते है।[22]

इस प्रकार संस्कृति को केन्द्र में रखकर ''**जगमग दीपज्योति**'' पत्रिका में अनेक प्रसिद्ध साहित्यकारों ने अपने लेख, कहानी, कविता, परिचर्चा आदि के माध्यम से अनेक सांस्कृतिक समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए उनके उपायों पर ध्यान आकर्षित करने की चेष्टा की है ताकि पाठकों में सांस्कृतिक चेतना जागृत हो सके प्रमुख समस्याएँ इस प्रकार है–

- लिव–इन–रिलेशनशिप
- **समाप्त होते संस्कार**
- **मीडिया के माध्यम से विकसित हो रही अश्लीलता**
- **बदलती संस्कृति का प्रभाव**

इन समस्याओं पर कुछ प्रमुख साहित्यकारों के उदाहरण इस प्रकार है–

डॉ. रमाकान्त दीक्षित अपनी कथा **'इंसान की औलाद'** में लिव इन रिलेशनशिप पर अपने विचार अभिव्यक्त कर कहते है कि लिव इन रिलेशनशिप के चलते जब एक लड़की गर्भ धारण कर लेती है तो वह मजबूर होकर अपनी सन्तान को फेकने पर विवश हो जाती है और उसे एक गिरजाघर के बाहर रख देती है तथा उसके साथ एक पत्र रखती है जिसमे वह लिखती है कि –''**या अल्लाह! या परवरदीगार! मैं इस अभागिन बेटी की कुंवारी माँ हूँ। मेरी गलतियों और नादानियों की सजा मासूम को मत देना। आपसे मेरी इल्तिजा है, इस मासूम की हर तरह से हिफाजत करना। एक अभागिन माँ।**'' इस प्रकार वह अपनी गलती स्वीकारते हुए पछताती है और दुखी होती है। वह बच्ची सुबह भ्रमण करते समय हितेश और उसकी पत्नी को मिल जाती है जिसे वह अपने साथ घर ले जाते है और उसे पढ़ा लिखाकर अच्छे संस्कार देकर उसकी शादी कर देते है। इस प्रकार इस कथा में चित्रित घटना के माध्यम से हमे पता चलता

है कि लिव इन रिलेशनशिप के चलते, जाने अनजाने में कई गलतियाँ हो जाती है जो एक समस्या का रूप ग्रहण कर लेती है अतः समाज के लोगों को इन समस्याओं से परिचित करवाना आवश्यक है। [23]

सुकीर्ति भटनागर अपनी कथा **'संस्कार विहीन'** के माध्यम से बताते है कि जब मयंक के माता–पिता उसे आया के भरोसे छोड़कर बाहर कमाने जाते है और हर रात पार्टियों, समारोहों से लेट तक घर लोटते है तो अपने माता–पिता की प्रतीक्षा और प्यार के इन्तजार में मयंक का बचपन बीत जाता है। परिणामस्वरूप उसे वह संस्कार नहीं मिलते जो उसके माता–पिता से मिलने चाहिए थे वह इसके अभाव में संस्कार विहीन हो जाता है। बुढ़ापे में उसके माता–पिता के द्वारा उसे रूककर अपनी सेवा करने के लिए कहने पर वह कहता है कि –''**पिता जी बरसों आप दोनों का प्यार पाने के लिए तरसते हुए और हर रात पार्टियों, समारोहों से आप लागों के घर लौट आने की प्रतीक्षा करते हुए मैंने आया और नौकरों की देखरेख में अपना बचपन बिता दिया। फलस्वरूप जो संस्कार मुझे मिलने चाहिएँ थे उनसे मैं वंचित रहा, फिर आप मेरे से ऐसे संस्कारों की कल्पना कैसे कर सकते है।**'' अतः मयंक के इस कथन के द्वारा हम कह सकते है कि आज माता–पिता की लापरवाही और अपने बच्चों को समय ना देने के कारण वह संस्कार विहीन हो रहे है जो आने वाली पीढ़ी के लिए चिन्तनीय है। [24]

श्रीमती रंजना पाठक अपने विचार प्रकट करते हुए कह रही है कि आज के युग का यह बड़ा ज्वलन्त प्रश्न है कि युवा पीढ़ी की महिलाएँ जिन अल्प कपड़ों में खुद को प्रदर्शित करती हैं उसका औचित्य क्या है। यह सच है कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है जिसमें लोग अपनी खुशियों को ढूंढ़ते हुए आधुनिकता को अपना लेते हैं। इसी तरह आज के युग में कम से कम तन ढ़कने वाले वस्त्र बाजार में मिलते है और लोग उससे आकर्षित होते हैं। स्वयं को खुश रखने के लिए अपनाते जाते है। कहीं न कहीं इसका जिम्मेदार हमारा समाज है। चाहें वह मीडिया के लोग हों या मनोरंजन के साधन से पैसा कमाना चाहते है। इन्हीं सब कारणों से महिलाएँ इन्हें अपनाती जा रही है। जिन्दगी जीने के लिए पैसों की जरुरत पड़ती है। इन वस्त्रों को उन्होंने अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए पैसा कमाने का जरियाँ बना लिया हैं। समय के अनुसार वेशभूषा साज–सज्जा धारण करना चाहिए परन्तु यह ध्यान देना उचित है कि यह हमारे लिए व समाज के हित में है या नहीं, कहीं समाज में बुराइयाँ व अत्याचार तो नहीं बढ़ेंगे। अगर ऐसा है तो थोड़ा बदलाव लाना ही पड़ेगा जिससे हम व हमारी संस्कृति दोनों सुरक्षित एवं आदर्श बनी रहें। इसके लिए केवल महिलाएँ ही नहीं बल्कि पुरुषों को भी अपनी सोच बदलनी होगी। [25]

सुगन चन्द जैन 'नलिन' अपनी कविता **'नवयुग का अफसाना देख'** के माध्यम से बदलती संस्कृति पर अपनी पंक्तियों के द्वारा कह रहे है कि–

वो गुजरा हुआ जमाना देख,
ये बदला हुआ जमाना देख।
नेकी के बदले में बुराई,
ये कलयुग का नज़राना देख।।

अर्थात पहले के जमाने में और आज के जमाने में बहुत अन्तर आ गया है कहते है कि यह युग कलयुग का युग है आज यहाँ पर किसी की सहायता करने के बदले में बुराई ही मिलती है अच्छाई नहीं। अब तो लोगों के बीच मिलना–जुलना जैसे गायब ही हो गया है, अब तो वह यहाँ वहाँ चलते–फिरते ही मिलते है। इस बदलते नवयुग के साथ हमारे रीति–रिवाज भी बदल गये है। जिसके कारण अब घर–परिवार में आपसी मन–मुटाव रहने लगा है तथा वह अलग–अलग रहने लगे है और पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से आज के नवयुवक फैशन करके अपने आप पर गर्व महसूस करने लगे है। इस प्रकार धीरे–धीरे हमारे देश की संस्कृति बदल रही है और विदेशी संस्कृति के प्रभाव में आ रही है।[26]

अतः ये सभी समस्याएँ आज हमें अपने आस–पास सांस्कृतिक परिवेश में देखने व सुनने को मिलती है कुछ चैनलस के माध्यम से, कुछ आखों देखी घटनाओं के माध्यम से और कुछ समाचार पत्रों के माध्यम से। निम्नलिखित समस्याओं का विवरण उदाहरण स्वरूप कुछ इस प्रकार से है–

वर्तमान समय में हम अगर लिव इन रिलेशनशिप पर चर्चा करे तो पाते है कि आज यह एक विवाद का विषय है इस पर कुछ लोगों का मानना है कि यह भारतीय संस्कृति के और महिलाओं के लिए हानिकारक है और कुछ लोगों का मानना है कि यह संस्कृति के लिए हानिकारक नहीं वरन् महिलाओं के लिए बराबरी का हक है अर्थात इस विषय पर किसी की एक राय नहीं है।

लिव इन रिलेशनशिप को लेकर 19–20 अगस्त, 2017 को दैनिक भास्कर में ''लिव इन रिलेशनशिप सामाजिक साइड इफेक्ट या मौलिक हक'' विषय पर चर्चा की गई जिस पर अलग–अलग विचार प्राप्त हुए जो इस प्रकार है–

- सुप्रीम कोर्ट कहता है कि लिव इन रिलेशनशिप अपराध नहीं है, जब तक कि उसमे कोई शादीशुदा लोग न हों।
- लखनऊ हाईकोर्ट ने माना है कि विवाहित लिव इन मे रहे तो अपराध है क्योंकि वे जीवन साथी से धोखा करते है।

- मुंबई हाईकोर्ट ने कहा कि लिव इन में रहने वाली महिलाओं को गर्भपात की इजाजत है।
- भारत में महिलाओं को और अधिक प्रभावशाली सुरक्षा प्रदान के लिए प्रोटेक्शन ऑफ वूमेन फ्रॉम डोमेस्टिक वायलेंस एक्ट–2005 (डीवी एक्ट) बनाया गया। डवी एक्ट के तहत लिव इन रिलेशनशिप को मान्याता प्रदान की गई है।
- महिला व बाल विकास मंत्री अनिता भदेल का कहना है कि लिव इन रिलेशनशिप हिन्दू संस्कृति और हिन्दुस्तान को बर्बाद कर देगी। हमारी संस्कृति विवाह और परिवार को मानती है। महिलाओं के लिए 50 पुरुष छोड़ देना और पुरुषों के लिए 50 महिलाएँ छोड़ देना पश्चिम संस्कृति में आम बात है लेकिन हमारे यहाँ नहीं।
- लिव इन रिलेशनशिप के नाम पर जो लोग साथ में रहते है और संतान पैदा कर लेते है बाद में उस संतान को न तो अपने पिता का पता होता है न माता का, यही है लिव इन रिलेशनशिप। बाद में ऐसे बच्चों की कोई जिम्मेदारी नहीं लेता।
- लिव इन रिलेशनशिप का सबसे बुरा असर महिला और बच्चों पर पड़ता है। पुरुष तो पांच–सात साल बाद छोड़कर किसी और के साथ चला जाता है लेकिन पीछे से भुगतना महिला को ही पड़ता है।
- पूर्व महिला व बाल विकास मंत्री ममता शर्मा का कहना है कि लिव इन रिलेशनशिप में रहना बुरा नहीं है। यदि कोई व्यक्ति एक पत्नी के होते दूसरी महिला के साथ रहता है तो वह गलत है। महिला या पुरुष यदि खुद की मर्जी से एक दूसरे के साथ रहते हैं तो उन पर ऐसी संस्कृति या ऐसे सामाजिक नियम थोपना गलत है।
- अब महिलाओं को शादी के नाम पर हमेशा के लिए घर में कैद नहीं रखा जा सकता है। लिव इन रिलेशनशिप उन्हें बराबरी का हक देती है। [27]

लिव इन रिलेशनशिप के रिश्ते से उत्पन्न संतान और रिश्ते में रहने वाले व्यक्तियों के परिवार, माता–पिता, भाई–बहन, रिश्तेदारों इत्यादि के मानव अधिकारों का क्या होगा? आयोग में इसको लेकर भी विचार किया जाएगा। क्योंकि बिना शादी से उत्पन्न बच्चों के लिए अवैध संतान का नाम दिया गया है। लेकिन इसमें न बच्चे की गलती है न ही उनके द्वारा किया गया कोई अवैध कार्य है। बिना शादी के उत्पन्न बच्चों को कुछ अधिकार से भी कानूनन वंचित किया हुआ है। इन बच्चों की मानसिकता, परिवार, स्कूल, कॉलेज एवं समाज के व्यवहार से हाने वाले प्रभाव मानव अधिकार से सम्बन्धित है।

समय चक्र तेज गति से घूम रहा है। पुरानी परंपरा, सामाजिक मूल्य, पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही पारिवारिक व्यवस्था अब आधुनिकता में ढ़लते जा रही है। संचार व्यवस्था इलेक्ट्रॉनिक युग, विदेशी संस्कृति की घुसपैठ भारतीय जनजीवन को प्रभावित कर रही है। हम भी चुपचाप इसे देख रहे हैं और ग्रहण कर रहे है। आधुनिकता की आड़ में हम अपनी धरोहर, सांस्कृतिक मूल्यों को जो विरासत में मिली है, को शनैः–शनैः भूलते जा रहे हैं और उनके स्थान पर अमर्यादित बेढंगेपन वाली संस्कृति को बेहिचक ग्रहण करने में लगे हैं। इसके परिणाम भी हमारे सामने हैं। यह आलोचना नहीं बल्कि चिंतन का विषय है। अतः इस समस्या को लेकर समय–समय पर लोगों को जागृत करने के लिए विभिन्न कार्यक्रमों एवं परिचर्चाओं का आयोजन किया जाता है। जैसे

20 मई, 2018 को दैनिक भास्कर ने झुंझुनूं के एक स्कूल के द्वारा बच्चों के माता–पिता को दिये गये होमवर्क की रिपोर्ट प्रस्तुत कर बच्चों में संस्कार स्थापित करने का प्रयास किया और माता–पिता को अपनी जिम्मेदारी को समझने में सहायता दी उसके द्वारा दी गई रिपोर्ट इस प्रकार से है–

- दादा–दादी से मुलाकात करें। बच्चों को उनके साथ समय व्यतीत करने के लिए प्रेरित करें। बच्चे के लिए उनका प्यार और भावनात्मक समर्थन महत्त्वपूर्ण है। उनके साथ तस्वीरे खिंचवाएँ।
- बच्चों को अपने कार्यस्थल पर ले जाएं। बच्चे को यह समझने दे कि परिवार चलाने के लिए आपको कितनी कड़ी मेहनत करनी होती है।
- अपने बच्चे को कम से कम एक लोक गीत अवश्य सिखाएं चाहे वह किसी भी भाषा का हो।
- बच्चों के साथ लंच, डिनर करे। उन्हें खेती करने वालों और उनके काम के बारे में सिखाएं खाना बर्बाद न करने की सीख दे। [28]

इसी प्रकार दैनिक भास्कर ने 21 मई, 2018 को 'इंटरनेट एंड मोबाइल एसोसिएशन की रिपोर्ट' के द्वारा बच्चों पर मीडिया के माध्यम से पड़ने वाले बुरे प्रभावों की रिपोर्ट प्रस्तुत की जो इस प्रकार से है–

- इंग्लैंड की एसेक्स यूनिवर्सिटी की रिसर्च की माने तो कम्प्यूटर से 10 साल तक के बच्चों में 27 प्रतिशत तक उठक–बैठक की क्षमता कम हुई है। ग्रिप क्षमता 7 प्रतिशत और भुजाओं की ताकत 26 प्रतिशत कम हुई है।
- बच्चों के खेलने का वक्त पिछले 10 सालों में आधा रह गया है।
- 50 करोड़ इंटरनेट यूजर हो जाएंगे जून 2018 तक देश में। 295 करोड़ शहरी इंटरनेट यूजर है देश में अभी।

- 16 प्रतिशत गाँवों में और शहरों में 19 प्रतिशत बच्चे रोजाना इंटरनेट यूज कर रहे है देश में।
- 5 में से 1 बच्चे को इंटरनेट की लत है दिल्ली में।[29]

अतः हमें इन आंकड़ों को देखते हुए सामाजिक परिवर्तन के साथ जन चेतना एवं मानसिक परिवर्तन भी लाना होगा। हम स्वतंत्र रहे पर अपनी सीमा को याद रखें। यदि आधुनिकता के साथ विरासत में मिले सांस्कृतिक मूल्यों को मिलाकर अपने जीवन में उपयोग करें, तो शायद हम अपनी संस्कृति को बचा पाने में सफल हो जायेंगे। वरन् एक दिन देश में संस्कृति को ढूंढते रह जाएंगे।

यही एक कारण है कि यह पत्रिका सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से जितनी मुझे उपयोगी लगी क्या उतनी ही दूसरे प्रसिद्ध विद्वान साहित्यकारों को भी उपयोगी लगी होगी? इसको जानने के लिए मैंने कुछ साहित्यकारों से व्यक्तिगत रूप से मिलकर और कुछ से पत्राचार के माध्यम से यह जानकारी प्राप्त की जिसका विवरण पांचवे अध्याय में मैंने दिया है। अतः सम्पूर्ण पत्रिका का अध्ययन कर मैं संक्षेप में कह सकता हूँ कि भारत एक विशाल देश है जहाँ भारतीय समाज बहुत गहराई से धार्मिक विश्वासों से जुड़ा हुआ है अर्थात हमारा भारतीय समाज प्राचीन काल से ही अनेकता में एकता पर विश्वास करता आया है जिसमें विभिन्न संस्कृतियाँ, विभिन्न भाषाएँ, विभिन्न परिधान, विभिन्न रीति–रिवाज, विभिन्न धर्म सम्मलित है मगर भौतिक युग आने से इन सब पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा जैसे कि–भाषा के बदलने से अपनेपन की परिभाषा में ही परिवर्तन आ गया, अपनी भाषा का स्तर नीचे गिरना प्रारम्भ हो गया तथा हम ऊँच–नीच के भावों से ग्रस्त हो गये जिसके कारण अन्य कई समस्याएँ उत्पन्न हो गई। पाश्चात्य संस्कृति के कारण भी भारतीय समाज पर प्रभाव पड़ा है। यह प्रभाव सकारात्मक पड़ा या नकारात्मक, इसका **'जगमग दीपज्योति'** पत्रिका में किये गये शोध कार्य के माध्यम से ज्ञान प्राप्त हो सकेगा। कुछ साहित्यकारों का मानना है कि इसका प्रभाव सकारात्मक पड़ा है तो कुछ का मानना है कि इसका प्रभाव नकारात्मक पड़ा है जैसे कि प्रेम विवाह के सम्बन्ध में कुछ का कहना है कि यह समाज के लिए उपयोगी हैं क्योंकि प्रेम विवाह करने से दहेज जैसी कुप्रथा से बचा जा सकता है व शादी के नाम पर अनावश्यक व्यय नहीं करना पड़ता तथा लड़का–लड़की एक दूसरे को अच्छी तरह जान लेते है जिससे उनका जीवन सुखमय व्यतीत होता है। इसके विपरित कुछ का मानना है कि यह विवाह प्रणाली समाज के लिए अभिशाप है क्योंकि आज प्रेम सम्बन्ध मात्र शारीरिक आकर्षण में बंधकर रह गये है जो शादी के बाद समाप्त हो जाता है और पति–पत्नी में आपसी मनमुटाव होने लगता है। इसी प्रकार भौतिकवाद के कारण युवाओं में मानसिक तनाव बढ़ रहा है जिससे वह नशे करने की प्रवृत्ति को अपना रहे है और इसी नशे के कारण आज समाज में बलात्कार की समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं, महिलाओं पर अत्याचार बढ़ रहा है, परिवार टूट रहे है तथा युवा अपने पथ से भटक कर कुमार्ग पर

जा रहे हैं। युवाओं को अपनी आवश्यकताओं, मोज–मस्ती, गृह–खर्च आदि के लिए रुपये कम पड़ने लगते है जिसके कारण वह अपनी छोटी–छोटी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए रिश्वत लेने पर मजबूर हो जाते है। परिणामस्वरूप भ्रष्टाचार और अधिक बढ़ता जा रहा है। इसी भ्रष्टाचार व दिग्भ्रमित युवा पीढ़ी के कारण देश में आतंकवाद जैसी समस्या फैल रही है जिनको धर्म व जाति से जोड़कर राजनेता अपनी कुर्सी मजबूत करने में भी लग सकते है। इन सबके अतिरिक्त मीडिया भी समाज पर अपना नकारात्मक व सकारात्मक प्रभाव डाल रहा है। मीडिया के माध्यम से जहाँ घर बेठे हमे देश–दुनिया की जानकारी प्राप्त होती है वहीं इसमें दिखाये जाने वाले कुछ अभद्र क्रियाकलापों से सम्बन्धित कार्यक्रमों से हमारे बच्चे समझ के अभाव में, अपनी प्रवृत्ति के आधार पर, नकारात्मक प्रभाव भी ग्रहण कर सकते हैं जिसके कारण हमारी संस्कृति कुप्रभावित भी हो सकती है। बच्चे कुसंस्कारी हो सकते है, उन्हें दिये जाने वाले संस्कार भी समाप्त हो सकते हैं जो हमारे देश के बच्चों के लिए बिल्कुल भी उपयुक्त नहीं है। अतः आज आवश्यकता है कि इन समस्याओं पर मिल–बैठकर विचार करें व इनके समाधान निकालने का प्रयास करें। इस प्रयास में मेरे द्वारा किया गया शोध कार्य महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा पाएगा क्योंकि अनेक विद्वान साहित्यकारों द्वारा सुझाये गये सुझाव जो विभिन्न विधाओं में प्रस्तुत किये गये है अत्यन्त उपयोगी व प्रासंगिक हैं। ये शोध कार्य समस्याओं के प्रति चेतना जागृत करने का एक माध्यम होगा जो मेरे द्वारा समाज सुधार की ओर बढ़ाया गया सकारात्मक प्रयास सिद्ध हो पाएगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. डॉ. एस.पी. चौबे, शिक्षा के दार्शनिक, ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय आधार, लायल बुक डिपो, 1995, पृ0 58
2. डॉ. अनिल सुदर्शन, देवी, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2010) पृ0 42
3. डॉ. वर्षा पुनवटकर 'बरखा', बोझिल रिस्तें, जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2005) पृ0 37
4. डॉ. मनोहरलाल गोयल, आज हिन्दी दिवस है, जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2013) पृ0 24
5. दैनिक भास्कर, 8 मार्च, 2017, पृ0 2
6. दैनिक भास्कर, 8 मार्च, 2017, पृ0 1–2
7. दैनिक भास्कर, 15 अप्रेल, 2018, पृ0 4
8. दैनिक भास्कर, 23 अप्रेल, 2018, पृ0 1
9. दैनिक भास्कर, 3 फरवरी, 2016, पृ0 6
10. दैनिक भास्कर, 1 सितम्बर, 2015, पृ0 1
11. दैनिक भास्कर, 26 मई, 2018, पृ0 8
12. राजस्थान पत्रिका, 15 फरवरी, 2016, पृ0 3
13. दैनिक भास्कर, 16 जून, 2018, पृ0 10
14 दैनिक भास्कर, 12 जून, 2018, पृ0 4
15. डॉ. रेणुका नैय्यर, नीव में काम आ गये बच्चे, जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2010) पृ0 35
16. दैनिक भास्कर, 22 जून, 2016, पृ0 4
17. दैनिक भास्कर, 7 जुलाई, 2015, पृ0 4
18. दैनिक भास्कर, 5 जून, 2017, पृ0 2
19. दैनिक भास्कर, 31 जुलाई, 2016, पृ0 3
20. दैनिक भास्कर, 19–20 मई, 2018, पृ0 3–15
21. दैनिक भास्कर, 5 जून, 2017, पृ0 2
22. पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, भारतीय संस्कृति एक जीवन दर्शन, युग निर्माण योजना गायत्री, 2005, पृ0 3–4
23. डॉ. रमाकान्त दीक्षित, इंसान की औलाद, जगमग दीपज्योति (अंक अप्रेल, 2004) पृ0 85–87
24. सुकीर्ति भटनागर, संस्कार विहीन, जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2006) पृ0 21
25. श्रीमती रंजना पाठक, परिचर्चा, जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2007) पृ0 40
26. सुगन चन्द जैन 'नलिन', नवयुग का अफसाना देख, जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर, 2005) पृ0 21
27. दैनिक भास्कर, 19–20 अगस्त, 2017, पृ0 4–8
28. दैनिक भास्कर, 20 मई, 2018, पृ0 3
29. दैनिक भास्कर, 21 मई, 2018, पृ0 2

प्रकाशित पत्रों
की सूची

प्रकाशित पत्रों की सूची

1. ''**जगमग दीपज्योति पत्रिका में अभिव्यक्त सांस्कृतिक चेतना**''नाम से एक पत्र UGC द्वारा मान्यता प्राप्त '**विद्यावार्ता**' नामक पुस्तक में **हर्षवर्धन पब्लिकेशन प्रा. लि., महाराष्ट्र**से अक्टूबर–दिसम्बर, 2017 में प्रकाशित हुआ जिसका UGC Jr. No.-62759 है तथा ISSN NO. – 2319-9318 है।

2. ''**जगमग दीपज्योति पत्रिका में अभिव्यक्त सामाजिक चेतना**''नाम से एक पत्र UGC द्वारा मान्यता प्राप्त '**प्रिंटिंगएरिया**'नामक पुस्तक में **हर्षवर्धन पब्लिकेशन प्रा. लि., महाराष्ट्र**से अगस्त, 2017 में प्रकाशित हुआ जिसका UGC Jr. No.- 43053 है तथा ISSN No.- 2394-5303 है।

3. ''**वह हिन्दी है**''नाम से एक कविता '**मणिपाल दर्पण सांस्कृतिक पत्रिका**' में नवम्बर, 2017 में प्रकाशित हुयी।

4. ''**समकालीन हिन्दी कविताओं में स्त्री अस्मिता**''नाम से एक पत्र **संगोष्ठी पुस्तक**, में **साहित्य संचय, दिल्ली**, से मार्च, 2017 में Volume-III में प्रकाशित हुआ जिसका ISBN No.-978-93-82597-72-8 है।

5. ''**समाज और संस्कृति के परिवर्तन में मीडिया की भूमिका**'' नाम से एक पत्र '**मीडिया का बाज़ारीकरण और भारतीय लोकतंत्र**'नामक पुस्तक में **यश पब्लिकेशंस, दिल्ली**से जनवरी, 2017 में प्रकाशित हुआ जिसका ISBN NO.- 978-93-85689-66-6 है।

6. ''**मीडिया : साहित्य, संस्कृति एवं पर्यावरण**''नाम से एक पत्र '**मीडिया : अतीत, वर्तमान एवं भविष्य**' नामक पुस्तक में **श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली**से नवम्बर, 2016 में प्रकाशित हुआ जिसका ISBN NO. : 978-93-86113-13-9 है।

7. ''**अजातशत्रु प्रेरक नाटक**'' नाम से एक पत्र '**जगमग दीपज्योति**' के फरवरी, 2016 की पत्रिका में प्रकाशित हुआ जिसका ISSN NO. 2278-7623 है।

8. ''**आधुनिक काल में राष्ट्रीय काव्यधारा**'' नाम से एक पत्र '**जगमग दीपज्योति**' के जुलाई, 2015 की पत्रिका में प्रकाशित हुआ जिसका ISSN NO. 2278-7623 है।

9. ''**फिल्मों के माध्यम से बदलता सांस्कृतिक परिवेश**'' नाम से एक पत्र **"Universal Multidisciplinary Research Journal"** के Volume-1, Issue-1, फरवरी, 2015 में प्रकाशित हुआ जिसका ISSN NO. (Online) 2395-6941 है।

10. ''**वर्तमान सामाजिक परिवेश में बदलते सांस्कृतिक मूल्य**'' नाम से एक पत्र संगोष्ठी पुस्तक '**स्मारिका**'में नवम्बर, 20014 में '**अखिल भारतीय साहित्य परिषद, राजस्थान**'द्वारा प्रकाशित हुआ।

राष्ट्रीय संगोष्ठियाँ

1. 10–11 अगस्त, 2018 को राजस्थान ब्रजभाषा अकादमी एवं हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के संयुक्त तत्वावधान में दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसका विषय था ''**ब्रजभाषा साहित्य, समाज और संस्कृति**'' जिसमे मैंने ''**राम काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ**'' पर पत्र–वाचन किया।

2. 20–21 दिसम्बर, 2017 को राजस्थान ब्रजभाषा अकादमी, जयपुर एवं कानोड़िया पी जी महिला महाविद्यालय, जयपुर के संयुक्त तत्वावधान में दो दिवसीय अखिल भारतीय ब्रजभाषा साहित्यकार सम्मेलन एवं राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसका विषय था ''**भक्तिकालीन ब्रजभाषा साहित्य में कला एवं संस्कृति : वर्तमान परिप्रेक्ष्य**'' जिसमे मैंने ''**ब्रजभाषा साहित्य एवं प्रवृत्तियाँ**'' पर पत्र–वाचन किया।

3. 24–25 नवम्बर, 2017 को केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा एवं देवकी देवी जैन मैमोरियल कॉलेज फॉर–विमैन, लुधियाना द्वारा दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसका विषय था ''**बाज़ारवाद का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव**'' जिसमे मैंने ''**बाजारवाद का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव**'' पर पत्र–वाचन किया।

4. 23–24 मार्च, 2017 को पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के संयुक्त तत्वावधान में दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसका विषय था ''**स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविताःनए रचनात्मक सरोकार**''जिसमे मैंने ''**समकालीन हिन्दी कविताओं में स्त्री अस्मिता**'' पर पत्र–वाचन किया एवं यह पत्र प्रकाशित भी हुआ।

5. 30 सितम्बर – 1 अक्टूबर, 2016 को हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर में श्री प्राणनाथ मिशन–दिल्ली एवं श्री प्रणामी पंचायत–जयपुर के संयुक्त तत्वावदान में दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसका विषय था ''**संत साहित्य और महामति प्राणनाथ : समसामयिक संदर्भ**'' जिसमे मैंने ''**महामति प्राणनाथ का जीवन दर्शन**'' पर पत्र–वाचन किया।

6. 27–28 नवम्बर, 2015 को दादू अध्ययन प्रकोष्ठ, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर द्वारा दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसका विषय था ''**संत साहित्य का काव्य सौष्ठव**'' जिसमे मैंने ''**भक्ति आन्दोलन और संत साहित्य**'' पर पत्र–वाचन किया।

7. 14–15 सितम्बर, 2015 को हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर द्वारा दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसका विषय था ''**भूमंडलीकरण के दौर में हिन्दी**'' जिसमे मैंने ''**सर्म्पक भाषा के रूप में हिन्दी**'' पर पत्र–वाचन किया।

8. 26–27 मार्च, 2015 को आत्मा राम सनातन धर्म महाविद्यालय द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली के सहयोग से दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसका विषय था ''**मीडिया का बाज़ारीकरण और भारतीय लोकतंत्र**'' जिसमे मैंने ''**समाज और संस्कृति के परिवर्तन में मीडिया की भूमिका**'' पर पत्र–वाचन किया।

9. 19–20 मार्च, 2015 को हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर द्वारा दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसका विषय था ''**हाशिए का स्वर और आधुनिक हिन्दी साहित्य**'' जिसमे मैंने ''**स्त्री अस्मिता का स्वर और साहित्य**'' पर पत्र–वाचन किया।

10. 5–6 दिसम्बर, 2014 को बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राज.) द्वारा दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसका विषय था '**मीडिया : अतीत, वर्तमान एवं भविष्य**' जिसमें मैंने ''**मीडिया : साहित्य संस्कृति एवं पर्यावरण**'' पर पत्र–वाचन किया।

11. 9 नवम्बर, 2014 को 'अखिल भारतीय साहित्य परिषद, राजस्थान' द्वारा एक राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसका विषय था ''**परिवर्तित सामाजिक परिवेश में धार्मिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक मूल्य**'' जिसमे मैंने''**वर्तमान सामाजिक परिवेश में बदलते सांस्कृतिक मूल्य**'' पर पत्र–वाचन किया एवं पत्र प्रकाशित भी हुआ।

12. 27 अगस्त, 2014 को 'नेहरु अध्ययन केन्द्र एवं पी.जी. स्कूल ऑफ सोशल साईन्सेज राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर' द्वारा एक राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया जिसका विषय था ''**भारत की विदेश नीति : निरन्तरता और परिवर्तन**'' में मेरी सहभागिता रही।

अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियाँ

1. 19–20 सितम्बर, 2017 को डॉ. शंकरदयाल शर्मा (पी.जी.) महाविद्यालय, पावटा, जयपुर एवं केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा के संयुक्त तत्वावधान में दो दिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसका विषय था ''**वैश्विक परिप्रेक्ष्य में हिन्दी : संदर्भ और चुनौतियाँ**''जिसमे मैंने ''**भारत में राजभाषा के रूप में हिन्दी**'' पर पत्र–वाचन किया।

2. 12–13 दिसम्बर, 2015 को राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर में भारतीय हिन्दी परिषद, इलाहाबाद का 42 वां अधिवेशन एवं दो दिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसका विषय था ''**इक्कीसवीं शताब्दी में हिन्दी : संदर्भ और चुनौतियां**'' जिसमे मैंने ''**हिन्दी बाल साहित्य का स्वरूप एवं विकास**'' पर पत्र–वाचन किया।

3. 14–15 फरवरी, 2015 को 'Centre For Gandhian Studies & Centre For Jain Studies, University of Rajasthan, Jaipur' द्वारा दो दिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया जिसका विषय था **"Tradition of Nonviolence:changing context"** (अहिंसा की परंपरा : बदलता प्रसंग) जिसमे मैंने ''**भारतीय समाज में अहिंसा के तत्त्व**'' पर पत्र–वाचन किया।

4. 28–29 अक्टूबर, 2014 को राजस्थान इन्टरनेशनल फिल्म फेस्टिवल (riff) द्वारा दो दिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसका विषय था'**हिन्दी सिनेमा : समाज और सरोकार**' जिसमें मैंने ''**भारतीय सांस्कृतिक परिदृश्य और हिन्दी सिनेमा**'' पर पत्र–वाचन किया जो जवाहर कला केन्द्र, जयपुर में आयोजित की गई थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ

1. अकबरावादी, डॉ. लतीफ. *मंजिल* : जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त, 2004)
2. 'अनजान' बद्री प्रसाद वर्मा. *आज कल कॉलेज में* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2004)
3. अग्रवाल, डॉ. सरला. *आत्मविश्वास* : जगमग दीपज्योति (अंक जून–जुलाई, 2007)
4. अग्रवाल, डॉ. सरला. *नव संदेश* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2011)
5. अग्रवाल, डॉ. सरला. *वह सुबह–वह शाम* : जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त, 2004)
6. अग्रवाल, डॉ. सरला. *उड़ती पतंग* : जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2004)
7. अग्रवाल, डॉ. सरला. *अहसास* : जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर–दिसम्बर, 2009)
8. अग्रवाल, डॉ. सरला. *मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर, 2005)
9. अग्रवाल, सुनील कुमार. *कुल ज्योति* : जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2005)
10. अग्रवाल, डॉ. इन्दिरा. *मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर, 2004)
11. अग्रवाल, इन्दिरा. *भ्रूण का अभिशाप* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2008)
12. अग्रवाल, सुषमा. *बेटियाँ* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2005)
13. अग्रवाल, सुषमा. (आयोजिका), *प्रेम विवाह : वरदान या अभिशाप* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2005)
14. 'अखिल', अखिलेश निगम. *आदिम युग फिर लौट आया है* : जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई–अगस्त, 2006)
15. 'अखिल', अखिलेश निगम. *क्यों तुमको लाज न आती है?* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2010)
16. 'अखिल', अखिलेश निगम. *नशा बनाम नाश* : जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2012)
17. 'अखिल', अखिलेश निगम. *अंगारे बरसाऊंगा* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी–मार्च, 2008)
18. अग्रवाल, रितेन्द्र. *भ्रूण की गुहार माँ से* : जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2006)
19. अग्रवाल, रितेन्द्र. *श्रमिक तेरी जय हो* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2007)
20. अग्रवाल, रितेन्द्र. *स्वर्णिम कल की ओर हिन्दी* : जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2007)

21. अग्रवाल, रितेन्द्र. *कैनवस पर दूसरा नहीं* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी–मार्च, 2008)

22. अग्रवाल, रितेन्द्र. *वर्तमान नारी : दशा और दिशा* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2005)

23. अग्रवाल, रितेन्द्र. *मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक अप्रेल, 2005)

24. 'अमर', इन्द्र भंसाली. (आयोजक),*आज के युवा की दशा और दिशा* : जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2013)

25. अग्रवाल, रश्मि. *पर्यावरण और संतुलन* : जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त, 2013)

26. अरोड़ा, श्रीमती पूनम. *लिव इन रिलेशनशिप के लिए तय नये मानदंड़* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2012)

27. अग्रवाल, घमंडीलाल. *बच्चों का उत्थान जहाँ हो, ऐसा हिन्दुस्तान बनाएँ!* : जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2014)

28. अग्रवाल, डॉ. कमलेश रानी. *फैशन की नागफनी* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2007)

29. 'अग्रहरी', डॉ. हरिकृष्ण प्रसाद गुप्त. *भातीय जीवन पर पाश्चात्य प्रभाव क्यों?* : जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2005)

30. अग्रवाल, डॉ. वी.के. *मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर, 2005)

31. 'आनन', अशोक. *आत्म–ग्लानि* : जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2014)

32. 'आरजू', अंजुमन मंसूरी. *अस्मिता* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2013)

33. 'आलोक', डॉ. रामअवतार शर्मा. *लिव इन रिलेशनशिप और भारतीय संस्कृति* : जगमग दीपज्योति (अंक जून, 2010)

34. 'आलोक', श्रीमती पुष्पा शर्मा. *नारी विडम्बना* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2008)

35. उपाध्याय, ललित नारायण. *वर्तमान विसंगतियों के लिए दोषी हम स्वयं भी है* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2004)

36. उपाध्याय, डॉ. रवीन्द्र कुमार. *कफन के लुटेरे* : जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त–सितम्बर, 2010)

37. उपाध्याय, मेधा. *कहाँ गया बच्चों का भोलापन* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2011)

38. उपाध्याय, श्रीमती हेमलता. *सवाल सर्वत्र बढ़ती नारी नग्नता और अश्लीलता का* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2006)

39. उमाश्री. *भोर अखबारी, दूरदर्शनी शाम* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2004)

40. कपूर, कमल. *बदल रहें हे हवाओं के रूख* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2012)

41. कपूर, कमल. *आओ खोज कर लायें कोई नया सूरज* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2010)
42. कपूर, कमल. *उजालों का सफर* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2010)
43. कश्चप, पुष्पलता. *संतान* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2006)
44. कश्यप, पुष्पलता. *एक लरजती जिंदगी* : जगमग दीपज्योति (अंक मार्च, 2004)
45. कृपलानी, लीला. *विश्व मंच पर हिन्दी* : जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2014)
46. कादरी, अशफाक. *अभी अंधेरा नहीं हुआ है* : जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2012)
47. कारी, तारूनि. *मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2004)
48. काबरा, रूपनारायण. *मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2005)
49. किरण, डॉ. कविता. *भ्रूण हत्या* : जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2013)
50. किरण, विनोद कुमारी. *बेटी* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2013)
51. किरन, विनोद कुमारी. *भूख* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2012)
52. 'कुमुद', सौभाग्य मुनि. *खोज रहा हूँ उजाला* : जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2005)
53. कुल्हारा, ठाकुरदास. *माँ–बाप बच्चों में अच्छे संस्कार भरें* : जगमग दीपज्योति (अंक अप्रेल, 2008)
54. कौशल, प्रो. श्यामलाल. *महिला होना गुनाह है क्या?* : जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर, 2007)
55. कौशल, प्रो. शामलाल. *युवा वर्ग में भटकाव* : जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2013)
56. कौशल, प्रो. शामलाल. *संस्कारों का अंतिम संस्कार* : जगमग दीपज्योति (अंक अप्रेल, 2008)
57. कौल, आशमा. *औरत होने का दर्द* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2011)
58. कौशिक, डॉ. शीला. *बाल श्रम* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2010)
59. कौशिक, डॉ. शीला. *मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर–दिसम्बर, 2010)
60. गहलोत, प्रो. डॉ. तारालक्ष्मण. *तब से...कब तक...* : जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2011)
61. गहलोत, प्रो. डॉ. तारालक्ष्मण. *नारी जीवन अन्दर का सच* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2013)
62. गहलोत, प्रो. डॉ. तारालक्ष्मण. *महिला विशेषांक* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2012)

63. गहलोत, प्रो. डॉ. तारालक्ष्मण. *कन्या भ्रूण हत्या का सच एक समाज शास्त्रीय विश्लेषण* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2012)

64. गहलोत, प्रो. डॉ. तारालक्ष्मण. *अजन्मी बेटी री अरदास* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2013)

65. गहलोत, प्रो. तारालक्ष्मण. *मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2010)

66. गुप्त, डॉ. विद्या विनोद. *मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त, 2011)

67. गुप्ता, डॉ. इन्दु. *नन्हीं जरूर जन्मेगी* : जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई–अगस्त, 2012)

68. गुप्ता, शैलजा. *ममता की छाँव* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2007)

69. गुप्ता, मंजुला. *अब और नहीं* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2012)

70. गुप्ता, मंजुला. *कन्या हत्यारे* : जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर–जनवरी, 2013–2014)

71. गुप्ता, मंजुला. *मुरझाती कमलिनी* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2004)

72. गुप्ता, मंजुला. *छल* : जगमग दीपज्योति (अंक मार्च, 2005)

73. गुप्ता, दिलीप कुमार. *बालश्रम एवं कानून* : जगमग दीपज्योति (अंक जून–जुलाई, 2007)

74. गुप्ता, ओमप्रकाश. *अब तो बंद हो मांस का निर्यात* : जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त, 2014)

75. गुप्ता, ओमप्रकाश. *नील गायों पर मौत की तलवार* : जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2014)

76. गुन्देचा, प्रकाश जी. *भावी पीढ़ी और हम* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2006)

77. गुर्जर, गीता. *दहेज के कारण नारी की स्थिति* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2008)

78. गोयनक, श्रीमती विनोदिनी. *आत्मनिर्भर* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2009)

79. गोयनका, श्रीमती विनोदिनी. *उपहार* : जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त, 2011)

80. गोयनका, विनोदिनी. *आत्म–संतोष* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2005)

81. गोयनका, विनोदिनी. *पश्चाताप के आँसू* : जगमग दीपज्योति (अंक अप्रेल 2012)

82. गोयल, सुधा. कौन पोछेगा इनके आँसू : जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2005)

83. गोयल, सुधा. *औरत की कोख का बाजारीकरण* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2007)

84. गोयल, सुधा. *हत्यारिन* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2007)

85. गोयल, डॉ. मनोहर लाल. *आज हिन्दी दिवस है* : जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2013)

86. गोयल, डॉ. मनोहर लाल. *आज हिन्दी दिवस है* : जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2013)

87. गोयल, राम आसरे. *राष्ट्रभाषा नीति और कार्यान्वयन* : जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2013)

88. गोस्वामी, सुधा. *शिक्षा एवं संस्कार* : जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2004)

89. गंगवाल, श्रीमती चन्द्रकला. *बॉय बॉय वृद्धाश्रम* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2007)

90. गांधी, पदम चन्द. *टूटते रिश्ते* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2005)

91. गांधी, डॉ. जगदीश. *मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2012)

92. घई, श्रीमती अनूप. *बढ़ता भ्रष्टाचार : दोषी कौन* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2004)

93. चतुर्वेदी डॉ. महाश्वेता. *लेखनी से* : जगमग दीपज्योति (अंक जून, 2008)

94. चतुर्वेदी, डॉ. महाश्वेता. *मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2009)

95. 'चैतन्य', आचार्य भगवान देव. *कन्या पूजन* : जगमग दीपज्योति (अंक मार्च, 2009)

96. चौधरी, सावित्री. *आखिर क्यों?* : जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2014)

97. चौरसिया, सावित्री जगदीश. *दुष्कर्म क्यों* : जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2014)

98. चौधरी, डॉ. शीला. *भ्रूण हत्या क्यों?* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2005)

99. चौहान, पवन. *साथ* : जगमग दीपज्योति (अंक मार्च, 2004)

100. चौहान, पवन. *पश्चाताप* : जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2004)

101. चौहान, चरण सिंह. *वृद्ध–आश्रम* : जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त, 2004)

102. चौहान, मोनिका. *बचपन बचाओं* : जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2006)

103. छाजेड़, दिनेश कुमार. *पीड़ा* : जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2013)

104. जनमेजय, डॉ. अजय. *जन्म लेना चाहती हूँ* : जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2012)

105. जयंत, *माता देवी* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2007)

106. 'जिंदर', जोगिंदर पाल. *क्या मनोरंजन उद्योग अपना दायित्व निभा रहा है?* : जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2005)

107. जैन, सुमति कुमार. *पत्र* : 2017

108. जैन, सुमति कुमार. *मेरी बात* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2004–2014)

109. जैन, सुमति कुमार. *मेरी बात* : जगमग दीपज्योति (अंक जून–जुलाई, 2007)

110. जैन, सुमति कुमार. *मेरी बात* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी–मार्च, 2008)

111. जैन, सुमति कुमार. *क्या हम अपनी पूर्व संस्कृति में आ पाएंगे?* : जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2009)

112. जैन, सुमति कुमार. *मेरी बात* : जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त–सितम्बर, 2008)

113. जैन, सुमति कुमार. *मेरी बात* : जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई–अगस्त, 2006)

114. जैन, हीरालाल. *नर–नारी समता और भारत* : जगमग दीपज्योति (अंक मार्च, 2004)

115. जैन, श्रीमती मिथलेश. *कब होगी महिलाओं की हिंसा से मुक्ति?* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2009)

116. जैन, श्रीमती मिथलेश. *गुम होती बेटियाँ : जिम्मेदार हम और आप* : जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त–सितम्बर, 2008)

117. जैन, श्रीमती मिथलेश. *पर्यावरण की सुरक्षा–महिलाओं की भागीदारी* : जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2008)

118. जैन, श्रीमती मिथलेश. *भगवान महावीर और पर्यावरण* : जगमग दीपज्योति (अंक अप्रेल, 2011)

119. जैन, श्रीमती मिथलेश. *देश के विकास का स्पीड ब्रेकर–भ्रष्टाचार* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2011)

120. जैन, श्रीमती मिथलेश. *ये कैसी आज़ादी* :जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त, 2013)

121. जैन, प्रभा. *बोलो मैंने क्या गुनाह किया?* : जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर, 2007)

122. जैन, महावीर राज. *साधन–साधन के सामने छोटे* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2004)

123. जैन, शिवचन्द. *चंदन* : जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर–दिसम्बर, 2010)

124. जैन, सुषमा. *महिला संगठनों की चुप्पी चिन्तनीय है* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2004)

125. जैन, डॉ. शशि प्रभा. *पर्यावरण–संरक्षण में महिलाओं की भूमिका* : जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2005)

126. जैन, गीता. *प्रार्थना* : जगमग दीपज्योति (अंक अप्रेल, 2004)

127. जैन, गीता. *मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर, 2005)

128. जैन, कोकिला. *दानवता को दफनाये* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2004)

129. जैन, कल्पना. *संस्कार निर्माण और बाल्यकाल* : जगमग दीपज्योति (अंक जून–जुलाई, 2007)

130. जैन, कल्पना. *कैसे मिलेंगे बच्चों को संस्कार अध्यात्म के* : जगमग दीपज्योति (अंक जून, 2008)

131. जैन, बीना. *युवा पीढ़ी भटकाव की अंधेरी गुफा से बाहर निकले* : जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर–नवम्बर, 2012)

132. जैन, बीना. *विघटन की कगार* : जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2006)

133. जैन, बीना. *मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2013–जनवरी, 2014)

134. जैन, डॉ. श्रीमती शशि प्रभा. *वैश्वीकरण के संदर्भ में भारतीय महिलाएँ* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2007)

135. जैन, डॉ. विद्यापती. *गरिमामय नारी का बदलता रूप : एक प्रश्न चिन्ह?* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2005)

136. जैन, नरेश. *मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर, 2006)

137. 'जैमिनी', अंजु दुआ. *आधुनिकता की दौड़ में पीछे भारतीय नारी* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2008)

138. जैमिनी, अंजु दुआ. *दिनेश की वापसी* : जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2007)

139. जोशी, अमृता. *नारी की स्थिति* : जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त, 2004)

140. जोशी, अशोक. *भ्रूण हत्या करते हो?* : जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर–नवम्बर, 2006)

141. जोशी, डॉ. चांदकौर. *नई दिशा* : जगमग दीपज्योति (अंक जून, 2012)

142. जोशी, राजेन्द्र प्रसाद. *बोझ समझकर* : जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2006)

143. जोशी, राजेन्द्र प्रसाद. *जैन धर्म और पर्यावरण संतुलन* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2007)

144. झा, मृदुला. *अन्तिम संस्कार* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2012)

145. झाबक, श्रीमती ज्योति. *जीवन में जगमग दीपज्योति की महत्ता* : जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर–दिसम्बर, 2010)

146. टिक्कू, नीलिमा. *अंधविश्वास की आड़ में* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2008)

147. टिक्कू, नीलिमा. (आयोजिका)*कन्या का जन्म : खुशी या गम, परिचर्चा* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2010)

148. टिक्कू, नीलिमा. *बच्चे देश का भविष्य व युवा वर्ग वर्तमान है* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2012)

149. टिक्कू, नीलिमा. *जब जागो तभी सवेरा* :जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2012)

150. टिक्कू, नीलिमा. *मातृ शक्ति* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2009)

151. टिक्कू, नीलिमा. *बेघर* : जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2009)

152. ठक्कर, नवनीत. *रफता–रफता* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2004)

153. ठक्कर, नवनीत. *अहसान* : जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2006)

154. ठाकुर, डॉ. लल्लन. *देश के युवा वर्गः अपेक्षाएं एवं उपेक्षाएं* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2012)

155. तिवारी, डॉ. अखिलेश्वर. *सामाजिक प्राणी–एक प्रश्नचिन्ह* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2006)

156. तंवर, डॉ. शकुन्तला. *एक आह्वान युवाओं से* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2012)

157. तंवर, डॉ. शकुन्तला. *सैनिक की पत्नी होने का अर्थ उत्सर्ग जीवन* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2009)

158. दीक्षित, डॉ. रमाकान्त. *इंसान की औलाद* : जगमग दीपज्योति (अंक अप्रेल, 2004)

159. दुबे, श्रीमती रेणु आशीष. *मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2006)

160. देवगुण, डॉ. रूप. *मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2009)

161. 'नलिन', सुगन चन्द जैन. *युवकों का संकल्प* : जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2013)

162. 'नलिन', सुगन चन्द जैन. *भारतवर्ष हमारा* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2004)

163. 'नलिन', सुगन चन्द जैन. *नवयुग का अफसाना देख* : जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर, 2005)

164. 'नाज़ली', नलिन विभा. *कैंसर भ्रष्टाचार के* : जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2009)

165. नितिला, किरण राजपुरोहित. *समाज का संक्रमण लिव इन रिलेशनशिप* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2009)

166. नैय्यर, डॉ. रेणुका. *नीव में काम आ गये बच्चे* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2010)

167. परिवार, श्री विश्वशांति टेकडीवाल. *लुटता बचपन उजड़ता यौवन* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी–मार्च, 2012)

168. परिवार, श्री विश्वशांति टेकड़ीवाल. *अपराध की डगर पर नौनिहाल* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2012)

169. परवाल, राधेश्याम. *ईमानदारी की बेईमानी* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2011)

170. पाण्ड़ेय, डॉ. आशा. *पराया धन* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी–मार्च, 2012)

171. पाण्डे, शुभदा. *पर्यावरण संचेतना* : जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2009)

172. पारख, डॉ. ऋषभ. *आजकल* : जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2009)

173. पाठक, श्रीमती रंजना. *परिचर्चा* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2007)

174. प्राची, डॉ. भरत मिश्र. *कन्या भ्रूण हत्या का परिवेश सृष्टि के लिये चुनौती* : जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2006)

175. 'प्रियदा', साध्वी प्रियदर्शन. *माता–पिता के उपकार* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2005)

176. पुनवटकर, डॉ. वर्षा. *नारी की व्यथा* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2006)

177. पंडित, जगदीश. *कविता भी रोती है* : जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2012)

178. पांडे, श्रीमती प्रभा. *माँ से अजन्मी बेटी की शिकायत* : जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई–अगस्त, 2006)

179. फतेपुरकर, रंजना. *अनुराधा* : जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2011)

180. फरोग, डॉ. वल्ली उल्लाह खां. *अतिभोग* : जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर–नवम्बर, 2013)

181. 'बरखा', डॉ. वर्षा पुनवटकर. *बोझिल रिश्तें..* : जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2005)

182. 'बरखा', डॉ. वर्षा पुनवटकर. *मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर, 2005)

183. 'बरखा', डॉ. वर्षा पुनवटकर. *बोझिल रिस्तें* : जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2005)

184. बाली, डॉ. इन्दु. *मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक जून–जुलाई, 2007)

185. बिल्थरे, आनन्द. *एक बार कह दो* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2004)

186. बिल्थरे, आनन्द. *विष और अमृत* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2014)

187. बिल्थरे, आनन्द. *सिर का बोझ* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2005)

188. बुरड़, श्रीमती कृष्णा. *स्वामित्व* : जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर–दिसम्बर, 2009)

189. बुरड़, श्रीमती कृष्णा. *धरा की खूबसूरती...कायम रहे* : जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2012)

190. बुरड़, श्रीमती कृष्णा. *बालक के व्यक्तित्व निर्माण में माँ की भूमिका* : जगमग दीपज्योति (अंक जून, 2008)

191. बूंलिया, प्रेम कोमल. *कुल गौत्र* : जगमग दीपज्योति (अंक जून–जुलाई, 2007)

192. बूंलिया, प्रेम कोमल. *क्यों करते हैं माँ–बाप का बंटवारा?* : जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर–दिसम्बर, 2008)

193. बूंलिया, प्रेम कोमल. *कोंख या कब्रगाह* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2008)

194. 'बंसल', कपूर चन्द्र जैन. *गर्भस्थ बालिका का वात्सल्यमयी अपनी माँ को अलिखित भावपूर्ण पत्र* दीपज्योति (अंक जून, 2006)

195. 'बंसल', कपूर चन्द्र जैन. *रंजिश का एक क्रांतिकारी उदय* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2005)
196. भटनागर, सुकीर्ति. *नारी व्यथा* : जगमग दीपज्योति (अंक मार्च, 2014)
197. भटनागर, सुकीर्ति. *संस्कार विहीन* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2006)
198. भटनागर, सुकीर्ति. *संस्कार विहीन* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2006)
199. भटनागर, कृष्णा. *बेटियाँ अनमोल रत्न अथवा अगले जनम मोहे बिटिया ही दीजो* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2011)
200. भटनागर, कृष्णा. *बच्चों की परवरिश में संयुक्त परिवार की प्रासंगिता* : जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर, 2005)
201. भटनागर, कृष्णा. *विज्ञापनों व फिल्मों की अश्लीलता बढ़ाने में नारी का योगदान कितना?* जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2010)
202. भटनागर, ब्रजभूषण. *राह का पत्थर* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2014)
203. भण्डारी, सुमन. *बेटी के उदगार* : जगमग दीपज्योति (अंक मार्च–अप्रेल, 2010)
204. भट्टाचार्य, गीता. *इन्साफ* : जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर–नवम्बर, 2013)
205. 'भारती',डॉ. रचना गौड. (आयोजिका) *शिक्षित कामकाजी महिलाओं का शोषण : क्यों और कब तक?* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2009)
206. भारद्वाज, आर.के. *पर्यावरण और पूर्वजों का पशु–पक्षी–वृक्ष प्रेम* : जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2014)
207. भाटिया, दिलीप. *लालची परिवार भ्रष्टाचार का आधार* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2004)
208. भाटिया, दिलीप. *कन्या भ्रूण हत्या कुछ प्रश्न* : जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2007)
209. भारती, विश्वप्रताप. *भारतीय युवतियों पर पश्चिमी रंग–ढंग का चढ़ता जादू* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2004)
210. मनूचा, सरला. *रिक्शावाला* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2008)
211. 'मयंक', चन्द्रसिंह तोमर. *लग्न मण्डप* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2006)
212. मनूचा, श्रीमती सरला. *दहेज दानव* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2007)
213. मृदुल, डॉ. सूरज. *आज की टीवी* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2007)
214. मालती, मार्ग. *कन्या भ्रूण हत्या दोषी कौन* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2010)
215. मालोत, भुवनेश्वरी. *संकल्प ले कन्या भ्रूण हत्या नहीं करेंगे* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2011)

216. माथुर, श्रीमती विजय. *आंचल में छिपा लो मुझे माँ* : जगमग दीपज्योति (अंक जून, 2008)

217. माहेश्वरी, प्राची प्रवीण. *विध्वंसक पथ पर अग्रसर मानव* : जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2004)

218. मित्तल, अलका. *टूटते रिश्ते बिखरते परिवार* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2012)

219. मित्तल, अलका. *आज का सच* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2006)

220. मित्तल, अलका. *अच्छे संस्कार ही बच्चों का भविष्य* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2012)

221. मुनि, प्रवर्तक रमेश. *हिंसा बनाम दैत्य से सावधान* : जगमग दीपज्योति (अंक मार्च, 2004)

222. मुक्ता, डॉ. *मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2010)

223. मुदगिल, *बी.एन. मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2006)

224. मेठी, घनश्याम. *बच्चों को संस्कारवान बनाए* : जगमग दीपज्योति (मई–जून, 2009)

225. मेठी, घनश्याम. *पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव ने माँ–बाप को किया तिरस्कृत* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2011)

226. मेठी, घनश्याम. *भारतीय परिवारों को पाश्चात्य संस्कृति के झूठे अंधानुकरण से बचायें* : जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर–दिसम्बर, 2010)

227. मेहता, डॉ. आशा. *ये कैसी मजबूरी* : जगमग दीपज्योति (अंक जून, 2008)

228. मेहता, डॉ. आशा. *मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर–नवम्बर, 2014)

229. मेहता, नथमल. *मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक मार्च, 2009)

230. मेहता, नाथूलाल. *आतंक और देश प्रेम* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2009)

231. मोदी, डॉ. (सुश्री) लीला. *भ्रूण हत्या* : जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2007)

232. 'मोक्षा', साध्वी प्रशंसाश्री. *हमारा वातावरण एवं मानवीय संवेदनाएँ* : जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर–जनवरी, 2013–2014)

233. मंगल, डॉ. शशि. *मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर–नवम्बर, 2014)

234. यशी.*बेटियाँ भी कम नहीं बेटों से* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2004)

235. यादव, डॉ. रामसिंह. *सही निर्णय* : जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2005)

236. यादव, डॉ. रामसिंह. *सब पढ़ें सब बढ़ें* : जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2014)

237. यादव, आकांक्षा. *अधुरी इच्छा* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2013)

238. यादव, आकांक्षा. *खो रहा है बचपन* : जगमग दीपज्योति (अंक जून, 2008)

239. यादव, डॉ. उषा. *अजन्मी बच्ची का दुःख* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2010)

240. यादव, उषा. *आलौकिक सुख* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2013)

241. यादव, उषा. *इस बार* : जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2013)

242. रतन, राजेन्द्र. *रिश्वत* : जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2005)

243. राजदान, श्रीमती मोहिनी. *स्वाभिमानी कमला* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2012)

244. राजदान, श्रीमती मोहिनी. *भ्रूण हत्या के लिए पत्नी का विरोध* : जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त–सितम्बर, 2010)

245. राठी, नयन कुमार. *अनहोनी* : जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर, 2005)

246. राठी, नयन कुमार. *रिश्तों की बुनियाद* : जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2006)

247. राजस्थानी, डॉ. खटका. *बेटी की पुकार* : जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2009)

248. राय, डॉ. निरूपमा. *आखिरी खत* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2010)

249. रावत, सुनीति. *शुचिता हनन और पनपता भ्रष्टाचार* : जगमग दीपज्योति (अंक जून, 2012)

250. रारा, श्रीमती उषादेवी. *जीव रक्षा ही मानव धर्म है* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2004)

251. रूपल, लक्ष्मी. (अनुवादक) *गुड्डी* : जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2014)

252. रूपल, लक्ष्मी. *प्रेम विवाह का सच* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2013)

253. 'व्यथित' डॉ. राम बहादुर. *अग्नि परीक्षा* : जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर, 2004)

254. 'व्यथित', डॉ. राम बहादुर. *क्या अभिमन्यु पथ से भटक रहा* है : जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2005)

255. वर्मा, आशा. *नारी* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2008)

256. वर्मा, हरीश कुमार. *समाज का अभिशाप दहेज* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2008)

257. वर्मा, दिनेश. *ईमान, बेईमान और भ्रष्टाचार* : जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त, 2011)

258. वर्मा, आर.एस. *हिन्दी हृदय की धड़कन और देश का गौरव है* : जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2014)

259. वत्स, डॉ. बी.एल. *आतंकवाद : समस्या और समाधान* : जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2011)

260. वशिष्ठ, प्रो. कृष्ण स्वरूप. *भ्रष्टाचार मिटाओ डे मनाएं* : जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त–सितम्बर, 2008)

261. वशिष्ठ, श्रीमती कमलेश. *दूरदर्शन आखिर क्या दिखाना चाहता है* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2009)

262. 'विष्णु', बसन्ती पंवार. *बेटा–बेटी* : जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2013)

263. श्याम, डॉ. अरुणा. *बदलते समय की ढुलकती तस्वीरें* : जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2009)

264. शर्मा, डॉ. जयश्री. *सुमति* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2005)

265. शर्मा, किशन लाल. *सजा* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी–मार्च, 2008)

266. शर्मा, डॉ. राम. *बेटी का दर्द* : जगमग दीपज्योति (अंक जून–जुलाई, 2007)

267. शर्मा, डॉ. राम. *वृक्ष की आवाज* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2007)

268. शर्मा, डॉ. कमलेश. *जो कन्या न होती* : जगमग दीपज्योति (अंक अप्रेल, 2007)

269. शर्मा, डॉ. मालती. *मानव वंश चलेगा कैसे* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2012)

270. शर्मा, भारती. *बेटों के कंधे का बोझ* : जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त–सितम्बर, 2010)

271. शर्मा, किरण. *दहेज बनाम कफन* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2008)

272. शर्मा, महेश बी. *सच्चा इंसान* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2004)

273. शर्मा, महेश बी. *आज के बच्चे कुसंस्कारी क्यों? उन्हें सुसंस्कारी कैसे बनायें* : जगमग दीपज्योति (अंक जून–जुलाई, 2007)

274. शर्मा, शबन. *फैसला* : जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर, 2004)

275. शर्मा, शशिप्रभा. *समाज सुधरे बच्चे सुधरेंगे* : जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2013)

276. शर्मा, मालती. *विज्ञापनों के दुःशासन और द्रौपदियों के चीर* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2008)

277. शर्मा, डॉ. सुषमा. (आयोजिका), *भारतीय परिप्रेक्ष्य में महिलाओं को मनचाहे वस्त्र पहनने की स्वच्छन्दता कितनी उचित, प्रासंगिक और शोभनीय है* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2007)

278. शर्मा, डॉ. सुषमा. *मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2007)

279. शर्मा, प्रो. (डॉ.) कुसुम. *मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर–नवम्बर, 2013)

280. शर्मा, रमेश. *मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2004)

281. शर्मा, सुरेखा. *हिन्दी सेवा राष्ट्र सेवा* : जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2013)

282. 'शकुन', श्रीमती शकुंतला सोनी. *लिंग भेद असंतुलन–जिम्मेदार कौन?* : जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2008)

283. शक्तिराज, डॉ. मेजर. *आज का युवा किधर जा रहा है* : जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2013)

284. शाह, डॉ. रेणु. *मानवाधिकार एवं साहित्य में नारी लेखन* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2009)

285. शाह, डॉ. रेणु. *मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2009)

286. शास्त्री, राष्ट्रसंत श्री गणेश मुनि. *भ्रूण परीक्षण नहीं कराऊँगी* : जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई–अगस्त, 2012)

287. शास्त्री, राष्ट्रसंत उपाध्याय श्री गणेश मुनि. *इस धरती पर...!* : जगमग दीपज्योति (अंक अप्रेल, 2005)

288. शास्त्री, श्री गणेशमुनि. *आंगन की तुलसी* : जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर–नवम्बर, 2012)

289. शास्त्री, ज्ञान दिवाकर राष्ट्रसंत प्रवर्तक श्री गणेशमुनि. *खिलवाड़* : जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2014)

290. शाहजी, डॉ. सीमा. *कन्याभ्रूणों की हत्या से नष्ट होता सांस्कृतिक पर्यावरण* : जगमग दीपज्योति (अंक मार्च, 2014)

291. शास्त्री, माधुरी. *माता–पिता की अभिलाषाएं युवा पीढ़ी पर भारी* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2012)

292. शास्त्री, माधुरी. *भेद नहीं मानव मानव में* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2005)

293. शुक्ल, डॉ. अमित. *बाल श्रम की उभरती चुनौतियाँ एवं समाधान के उपाय* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2012)

294. 'शैली', शिबली हसन. *क्योंकि तुम लड़की हो* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2009)

295. स्नेहप्रभाजी, साध्वी डॉ. *जीवन का सार शाकाहार* : जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त, 2013)

296. सहगल, श्रीमती नीलमरानी. *क्यों होता है पारिवारिक तनाव?* : जगमग दीपज्योति (अंक अप्रेल, 2006)

297. सकलेचा, डॉ. श्रीमती अनीता. *नारी व्यथा* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2013)

298. सक्सेना, डॉ. संगीता. *लोकरंगों में बिटिया* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2013)

299. साहनी, सुरजीत सिंह. *अभिशप्त कन्या भ्रूण हत्या कारण एवं निवारण* : जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2012)

300. साहनी, सी.ए. *क्रान्ति स्वर* : जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2013)

301. सागर, मुनि श्री विश्वरत्न. *संस्कृति का पतन राष्ट्र के लिए घातक* : जगमग दीपज्योति (अंक अक्टूबर, 2007)

302. सिंह, डॉ. श्रीमती तारा. *प्राचीन काल में नारी* : जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त, 2009)

303. सिंह, डॉ. पूरन. *तारकोल* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2007)

304. सिंह, डॉ. मंजु. *अम्मा* : जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर–दिसम्बर, 2009)

305. सिंह, मंजु. *मधु* : जगमग दीपज्योति (अंक मार्च, 2005)

306. सिंह, शुभम. *गूंज तबाही की* : जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त, 2013)

307. सिंह, नानक. *रब्ब अपने असली रूप में* : जगमग दीपज्योति (अंक अगस्त, 2004)

308. सिंह, सुमन. *कैद* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2008)

309. सिन्हा, डॉ. रेणु. *युवा वर्गःदशा एवं दिशा* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2012)

310. सिन्हा, डॉ. रेणु. *हिन्दी* : जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर–जनवरी, 2013–2014)

311. सिद्धेश्वर. *दूल्हा बाजार* : जगमग दीपज्योति (अंक मार्च, 2011)

312. सिद्धेश्वर. *कब्र पर बैठी रो रही दम तोड़ रही आशा* : जगमग दीपज्योति (अंक दिसम्बर, 2006)

313. सुदर्शन, डॉ. अनिल. *देवी* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2010)

314. सुलेमान, प्रो. मुहम्मद. *फुटपाथ का बालक* : जगमग दीपज्योति (अंक जून–जुलाई, 2007)

315. 'संगदिल', अब्बास खान. *पूत कपूत तो क्या धन संचय* : जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2013)

316. 'संगदिल', अब्बास खान. *हिन्दी नहीं बोल पाते है* : जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2014)

317. 'संगदिल', अब्बास खान. *पुरुष मित्रता का बढ़ता दायरा* : जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2004)

318. 'संगदिल', अब्बास खान. *अश्लीलता परोस रहे है–क्या टी.वी. चैनल* : जगमग दीपज्योति (अंक मार्च, 2005)

319. 'संगदिल', अब्बास खान. *आधुनिकता की आड़ में सांस्कृतिक मूल्यों को न भूले* : जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई, 2008)

320. सांघी, डॉ. श्रीमती संतोष. *समाधान* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2013)

321. हल्दानिया, मीनाक्षी. *अग्नि रथ* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2008)

322. हातेकर, मधु. *थोड़ा है थोड़े की जरूरत* : जगमग दीपज्योति (अंक मई, 2012)

323. हातेकर, मधु. *अनोखा निर्णय* : जगमग दीपज्योति (अंक फरवरी, 2014)

324. 'हँसमुख', बालाराम परमार. *मिल बैठ करें विचार* : जगमग दीपज्योति (अंक अप्रेल, 2008)

325. श्रीवास्तव, *करूणा. मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक सितम्बर, 2012)

326. श्री, करुणा. *किशोर युवाओं को मेरा नमस्कार* : जगमग दीपज्योति (अंक मार्च, 2006)

327. श्री, करूणा. *और मन्थन के बाद* : जगमग दीपज्योति (अंक जून, 2008)

328. श्री, करूणा. *मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक नवम्बर–दिसम्बर, 2010)

329. श्री, साध्वी भारती और साध्वी नन्दा जी. *मेरी नजर में* : जगमग दीपज्योति (अंक जुलाई–अगस्त, 2012)

330. 'श्रुति', डॉ. संध्या जैन. *घटती कन्याएँ बढ़ता लिंग भेद एवं मानव अधिकार* : जगमग दीपज्योति (अंक जनवरी, 2007)

331. श्रोत्रिय, शारदा. *बेटी* : जगमग दीपज्योति (अंक मई–जून, 2009)

सहायक ग्रन्थ (हिन्दी)

1. अग्रवाल, वासुदेवशरण. *कला और संस्कृति* : लोकभारती प्रकाशन, 1952.

2. अग्रवाल, डॉ. पृथ्वीकुमार. अनुवाद–*भारतीय संस्कृति की रूपरेखा*

3. अवस्थी, संदीप. *कुंवर नारायण के काव्य में सांस्कृतिक चेतना* : 2000.

4. अज्ञेय, *हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य, निबंध संग्रह* : अभिनव भारती ग्रन्थमाला, 1967.

5. आचार्य, पं. श्रीराम शर्मा. *भारतीय संस्कृति एक जीवन दर्शन* : युग निर्माण योजना गायत्री, 2005.

6. उपाध्याय, डॉ. भगवतशरण. *भारत की संस्कृति की कहानी* : राजपाल एंड सन्स प्रकाशन, 2012.

7. कार, ई.एच. *इतिहास क्या है* : अनुवादक–अशोक चक्रधर,

8. कुमारी, सुनीता. *रांगेय राघव के उपन्यासों में सामाजिक चेतना* : 2017.

9. गरड, श्री बालाजी बल्लीराम. *डॉ. नरेन्द्र मोहन के साहित्य में राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना* : 2015.

10. गुप्त, डॉ. नत्थूलाल. *महाभारत एक समाजशास्त्रीय अनुशीलन* :

11. गुप्ता, डॉ. मंजुला. ऋग्वेद, मंडल–10, सूक्ति–90, मंत्र–12 उद्धतः *हिन्दी उपन्यास समाज और व्यक्ति का द्वन्द्व,*

12. गुलाबराय, बाबू. *भारतीय संस्कृति की रूपरेखा* : ज्ञान गंगा, 2008.

13. चौबे, डॉ. एस.पी. *शिक्षा के दार्शनिक, ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय आधार* : लायल बुक डिपो, 1995.

14. जगदीशचन्द्र. *निराला–काव्य में सांस्कृतिक चेतना* : अभिनव प्रकाशन, 1979.

15. जैन, आचार्य. *प्रेमचन्द के हिन्दी साहित्य में सामाजिक चेतना* :
16. दतवानी, ममता एन. *शिवानी के कथा–साहित्य में सामाजिक चेतना* : 2016.
17. दिनकर, रामधारी सिंह. *संस्कृति के चार अध्याय* : साहित्य अकादमी, 1956.
18. दिनकर, रामधारी सिंह. *शुद्ध कविता की खोज* : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1987.
19. देवराज, डॉ. *साहित्य समीक्षा और संस्कृति बोध* : दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लि., 1977.
20. नगेन्द्र, डॉ. *साहित्य का समाजशास्त्र* : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1962.
21. निवृत्ती, कांबके द्वारकादास. *मनोज सोनकर के काव्य में सामाजिक चेतना* : 2011.
22. पथिक, देवराज. *नई कविता में राष्ट्रीय चेतना* : कादंबरी प्रकाशन, 1985.
23. पटेल, डॉ. कपिल. *समकालीन हिन्दी नाटकों में सामाजिक चेतना* : शांति प्रकाशन, 2007.
24. प्रसाद, महादेव. *समाज दर्शन* : चाँद कार्यालय, 1994.
25. प्रसाद, डॉ. राजेन्द्र. *तारसप्तक के कवियों की सामाजिक चेतना* : वाणी प्रकाशन, 1984.
26. पाण्डेय, रत्नाकर. *सामाजिक चेतना और हिन्दी साहित्य* : श्री प्रकाशन, 2007.
27. पुरी, डॉ. बैजनाथ. *सुदूरपूर्व में भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास* : चौखम्भा प्रकाशन, 1962.
28. भूषण, विद्या. *समाजशास्त्र के सिद्धान्त* : किताब महल, 1979.
29. मलिक, भीमसिंह. *जायसी काव्य का सांस्कृतिक अध्ययन* : 1978.
30. मीतल, प्रभुदयाल. *ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास भाग–1* : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1962.
31. मेघ, रमेश कुन्तल. *आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण* : वाणी प्रकाशन, 1969.
32. रायजादा, डॉ. बी.एस और डॉ. वन्दना वर्मा.*शिक्षा में अनुसंधान के आवश्यक तत्व* :राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2011.
33. रानी, डॉ. राजेश. *हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना* : के.के. पब्लिकेशन, 2007.
34. लाल, रमन बिहारी और गजेन्द्र सिंह तोमर.*शिक्षा के दार्शनिक, समाजशास्त्रीय और आर्थिक आधार* : रस्तौगी पब्लिकेशन्स, 1998.
35. विद्यालंकार, सत्यकेतु. *समाजशास्त्र* : श्री सरस्वती सदन, 1972.
36. विद्यालंकार, सत्यकेतु. *भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास* :श्री सरस्वती सदन, 1976.
37. शर्मा, डॉ. मनमोहन. *भारतीय संस्कृति और साहित्य* :

38. स्वर्णलता, *स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि* : विवेक पब्लिशिंग हाउस, 1975.
39. सत्यप्रकाश, *मानक अंग्रेजी हिन्दी कोश* : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1983.
40. साई, श्रीमती पुलिकोंड कमला. *अमृतलाल नागर के उपन्यासों में सामाजिक चेतना* : 2016.
41. सांस्कृत्यान, राहुल. *बौद्ध संस्कृति, अध्याय–1* : आधुनिक पुस्तक भवन, 1953.
42. स्मिथ, ब्रेडफोर्ड. अनुवादक–कृष्णचन्द्र, *अमेरिका की संस्कृति* :
43. सिंहल,शशिभूषण. *हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ* : विनोद पुस्तक मंदिर, 1988.
44. सिंह, डॉ. कुँवरपाल. *हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना* : पांडुलिपि प्रकाशन, 1976.
45. सिंह, जवाहरलाल. *भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास और युगचेतना* : 1999.
46. सोलंकी, विष्णु आर. *राजेन्द्र यादव के उपन्यास–साहित्य में समाजिक चेतना* : 2006.
47. त्रिपाठी,शम्भूरत्न. *समाज शास्त्र के मूलाधार* : किताब महल, 1962.
48. श्रीवास्तव, डी.एन. *सामाजिक मनोविज्ञान* : साहित्य प्रकाशन, 1994.

सहायक ग्रन्थ (अंग्रेजी)

1- Anestesi, N. *Encyclopedia of education research* : Macmillan company, 1969.

2- Arnold, Matthew. *Culture and Anarchy* : Smith elderand co., 1869.

3- Child, H.P. Fair. *Dictionary of Sociology* : Philosophical Library, 1944.

4- Cooley, C.H. *The social process* :

5- Devis, Kingsley. *Human society* : Collier mamiln limited, 1949.

6- Gillin, John Lewis. *Culture Socialogy a revision of an introduction to sociology* : Macmillan company, 1954.

7- Page, R.M. Maclver. *Socicty* : New york holt, Rinehart and Winston, 1961.

8- Seligman, E.R. A. *Encyclopaedia of the social sciences* : Macmillan publishers, 1930.

9- Taylor, E. B. *Primitiv Culture* : Dover publication, Vol.-1, Reprint 2016.

10- Young, Kimball. *Social Psychology* : American journal of sociology, Vol.-51, Issue-1, 1945.

पत्र–समाचार पत्र

1. चौहान, वीना. *पत्र* : 2018.
2. टिक्कू, नीलिमा. *पत्र* :2018.
3. 'प्रभु कृपा', करुणाश्री. *पत्र* :2018.
4. 'हंसमुख', डॉ. बालाराम परमार. *पत्र* :2018.
5. दैनिक भास्कर, 7 जुलाई, 2015.
6. दैनिक भास्कर, 1 सितम्बर, 2015.
7. दैनिक भास्कर, 3 फरवरी, 2016.
8. दैनिक भास्कर, 22 जून, 2016.
9. दैनिक भास्कर, 31 जुलाई, 2016.
10. दैनिक भास्कर, 8 मार्च, 2017.
11. दैनिक भास्कर, 8 मार्च, 2017.
12. दैनिक भास्कर, 5 जून, 2017.
13. दैनिक भास्कर, 5 जून, 2017.
14. दैनिक भास्कर, 19–20 अगस्त, 2017.
15. दैनिक भास्कर, 15 अप्रेल, 2018.
16. दैनिक भास्कर, 23 अप्रेल, 2018.
17. दैनिक भास्कर, 19–20 मई, 2018.
18. दैनिक भास्कर, 20 मई, 2018.
19. दैनिक भास्कर, 21 मई, 2018.
20. दैनिक भास्कर, 26 मई, 2018.
21. दैनिक भास्कर, 12 जून, 2018.
22. दैनिक भास्कर, 16 जून, 2018.
23. राजस्थान पत्रिका, 15 फरवरी, 2016.

वेबसाइट

1. https://chakradhar.in/books/translation/itihaskyaahai
2. http://hdl.handle.net/10603/128971
3. http://hdl.handle.net/10603/126503

4. http://hdl.handle.net/10603/91290
5. https://books.google.co.in/books?isbn=8170559235
6. http://hdl.handle.net/10603/104632
7. http://hdl.handle.net/10603/47287
8. http://hdl.handle.net/10603/122236
9. http://hdl.handle.net/10603/82741
10. http://hdl.handle.net/10603/180042